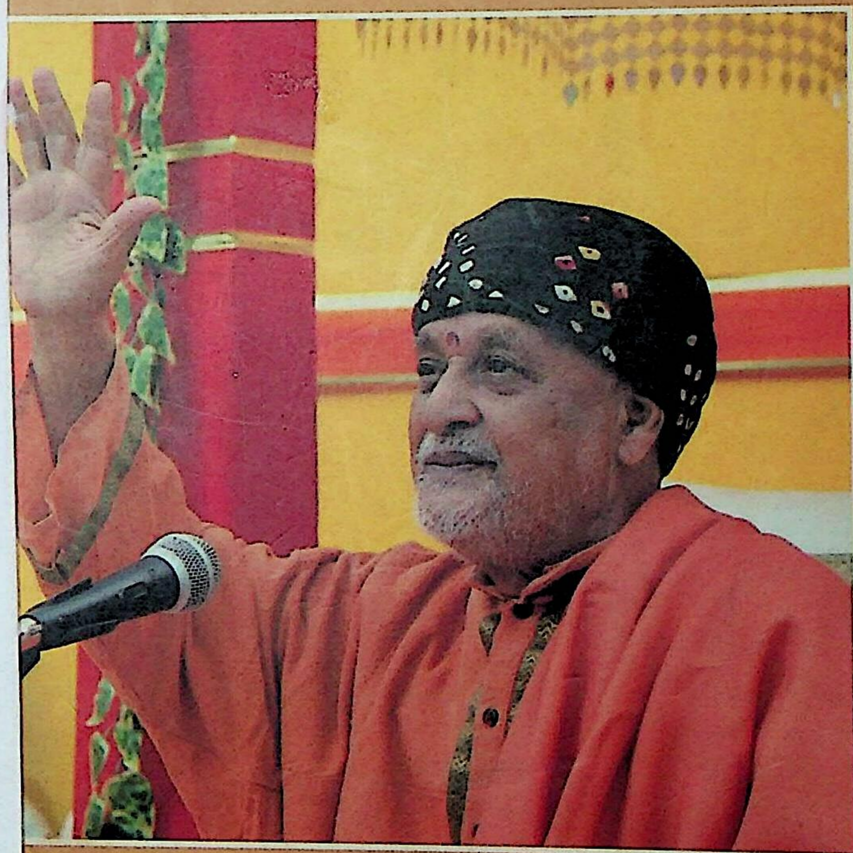
5.1

BIHAR YOGA

रिखियापीठ सत्संग

भाग 1

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत



रिखियापीठ सत्संग

भाग 1

ॐ, प्रेम, मंगलम्

स्वामी निरंजन

रिखियापीठ सत्संग 1

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रिखियापीठ, देवघर में वर्ष 2004, 2005 तथा 2006 में
श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संग

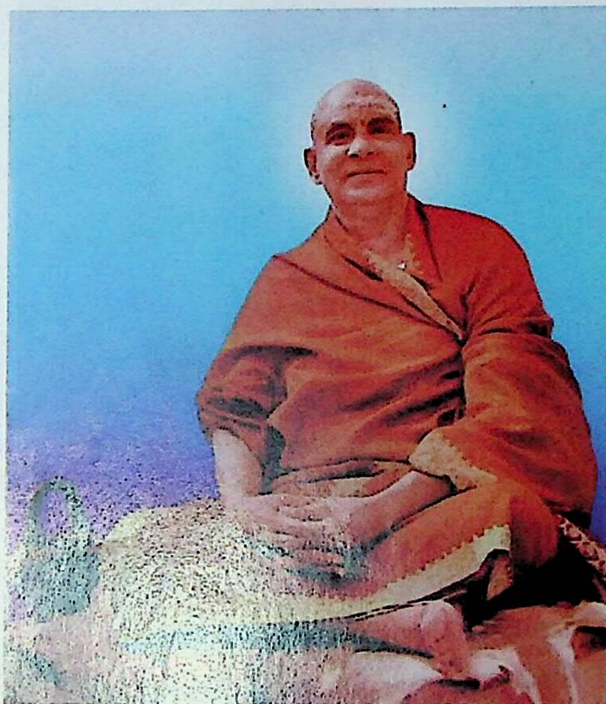


योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम संस्करण 2007
द्वितीय संशोधित संस्करण 2008

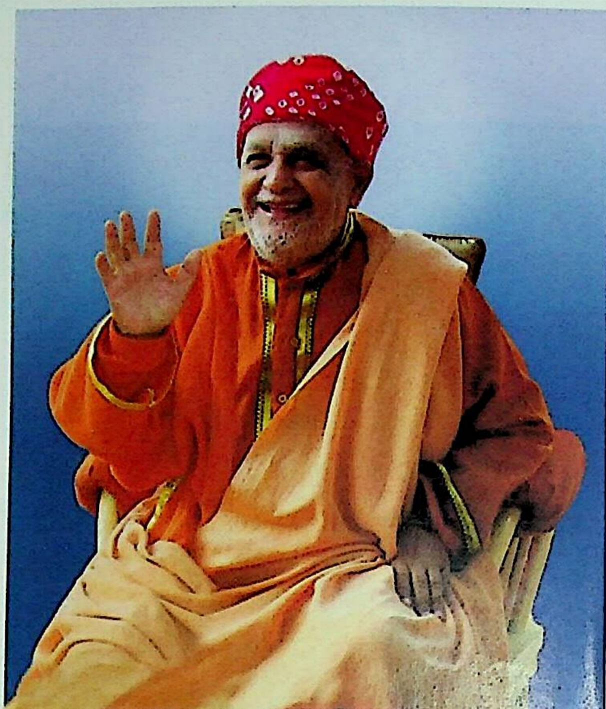
ISBN: 978-81-86336-64-9

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड
नयी दिल्ली



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दु:खी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियाधाम, 2005



अध्याय 1

बच्चे भविष्य की संभावनाएँ हैं। उनको सक्रिय बनाना होगा। केवल एक राष्ट्र के संदर्भ में नहीं, बल्कि विश्व के संदर्भ में बच्चों को तैयार करना है। जो भी पैसा आप कमाते हैं, उसका भरपूर उपयोग बच्चों को अच्छी और आधुनिक शिक्षा देने में होना चाहिए। अर्थात् आय का मुख्य भाग शिक्षा में खर्च होना चाहिए। यह आवश्यक है कि बच्चे पढ़ाई में आगे बढ़ें। अगर पढ़ाई में किसी बच्चे का मन न लगे, तो पढ़ाई छुड़ाकर कोई दूसरा काम नहीं करवाओ। पढ़ाई आजकल कई प्रकार की होती हैं, जैसे, स्पोर्ट्स और मॉडलिंग आदि भी आजकल एक प्रकार की शिक्षा है। खिलाड़ियों की कमाई 8 से 80 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष रहती है।

प्रधानमंत्री को लोग जानें न जानें, पर मॉडल को सब जानते हैं। अच्छी कमाई भी होती है। मॉडलिंग से टेक्सटाईल मार्केट को बढ़ावा मिलता है। मेरे कहने का अर्थ यह है कि शिक्षा का मतलब बच्चों को आज के और आने वाले समाज के अनुरूप बनाना है। जो आने वाला समाज है, वह हॉइटेक समाज है। इन बच्चों के सपने भी करीब-करीब हॉइटेक ही हैं। कभी परिवर्तन के लिए भले ही बैलगाड़ी और हाथी पर सवार होना चाहें, पर इनको चाहिए मर्सिडीज कार ही। अब रायपुर तो छत्तीसगढ़ की राजधानी है। राजधानी के बच्चे अगर सक्रिय न हो सकें, तो फिर और कौन होंगे। इन्जिनीयरिंग है, मेडिकल है, और भी बहुत-से क्षेत्र हैं।

लड़कों के साथ-साथ अब लड़कियों के सामने भी अनेक विकल्प हैं। पहले हर समाज में, चाहे पूर्व हो या पश्चिम, यही एक विकल्प था कि लड़की बढ़ेगी तो शादी करेगी। न पढ़ाई का विकल्प था, न व्यवसाय का विकल्प था,

और न जीवन का अन्य कोई विकल्प था। किन्तु आज विकल्प खुले हैं। आज लड़की राष्ट्रपति, सेनानायक, वैज्ञानिक, अंतरिक्ष यात्री और क्रान्तिकारी बन सकती है। हाथ में बंदूक भी उठा सकती है। सब कुछ कर सकती है। अत: लड़की और लड़के का जो सामाजिक भेद है, उसको जो पैसे वाले लोग हैं, वे ही समाप्त करें तो अच्छा रहेगा। इस काम को गरीब नहीं कर सकता। एक कहावत है–'बिल्ली के गले में घण्टी कौन बाँधे।' बिल्ली के गले में एक बिल्ली ही घण्टी बाँध सकती है, चूहा नहीं। आप लोग इसकी शुरुआत करें।

लड़के और लड़कियों के बीच जो ऐतिहासिक सामाजिक भेद रहा है, उसको दूर करके लड़कियों की शिक्षा में भी उतना ही बजट होना चाहिए जितना लड़कों की शिक्षा का है। शिक्षित होकर लड़कियों के जो सपने हों, वह बनें। व्यापारी बनें, उद्योगपति बनें या सामाजिक कार्यकर्ता बनें, सब कुछ बन सकती हैं। उसके साथ जिनको घर बसाना है, घर बसाएँ, क्या फर्क पड़ता है? यह सवाल समझ का है। अब तक लड़कियों की शादी माँ-बाप कराते हैं, जो बड़ा अतार्किक लगता है। शादी हमको करनी है और कराओगे आप, अजीब बात है! शादी मैंने करनी है, पसंद भी मेरी होनी चाहिए। मजे की बात है कि पसंद मेरे बाप की है। यह जो अयुक्तिसंगत प्रसंग अब तक चल रहा है, उसको समाप्त कर जिस व्यक्ति को शादी करनी है, उसे पसंद का अधिकार मिलना चाहिए।

जिसको खाना है, वह चुनाव करे कि रसगुल्ला खाएगा या चमचम। जिसको कपड़ा पहनना है, वह चुनाव करे कि सलवार पहने या पतलून पहने या साड़ी पहने। अब कपड़ा तुमको पहनना है और पसंद मेरी है, यह बड़ी अजीब बात है। अगर बच्चों की सामाजिक आकांक्षाएँ उन पर नहीं छोड़ी जाएँगी और हम उनका निर्धारण करेंगे, तो सरदर्द हमारा ही होगा। हमको सरदर्द होगा और बच्चों को घुटन भरा जीवन जीना होगा। हमारी माँ या स्त्रियों की जो पिछली पीढ़ियाँ हुई हैं, उनको तो घुटन क्या होती है, यह भी पता नहीं था। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह एक कुण्ठित जाति थी। यही कारण है कि हमारे देश में प्रतिभाशाली लोग होने के बावजूद कोई कुछ बन नहीं पा रहा है। समाज उन लोगों को अवसर नहीं दे रहा है। तुम अपने लड़के-लड़कियों को अवसर नहीं देते हो और पैसा है नहीं ज्यादा।

बच्चों को अवसर देना माता-पिता का काम है। अवसर का मतलब होता है सम्भावना। आपका जूते का व्यापार है या टेक्सटाईल का व्यापार है या कोई

भी ट्रेड है, अब आपका बच्चा भी उसी दुकान पर बैठे, यह आपकी पसंद है, जो गलत है। यह सम्भावना नहीं है। समझ रहे हैं न सम्भावना का मतलब? मान लो हमारी चमड़े, जूते या कम्प्यूटर की दुकान है और हम चाहते हैं कि लड़का भी बड़ा होकर दुकान देखे। यह स्वाभाविक है, हर आदमी अपना एक उत्तराधिकारी खोजता है। परंतु अगर ईमानदारी से देखा जाए कि वह बच्चा केवल मेरी तरह दुकान देख सकता है या कुछ और भी कर सकता है, तो उसको कहते हैं सम्भावना। दुकान देख सकता है, यह सम्भावना नहीं है। सम्भावना उसे कहते हैं कि लड़का आगे जाकर कुछ अनुसंधान करे और अनुसंधान करके कुछ दे। उसका इतिहास में नाम होगा और उसका एक-एक अनुसंधान इतिहास में तो जाएगा ही, बौद्धिक सम्पदा में तो जाएगा ही, साथ-ही उसको करोड़ों रुपयों की रॉयल्टी भी मिलेगीं बैठे-बैठे। आज के युग में नाम और यश काफी नहीं है, पैसा भी चाहिए। आज का युग संतुलन का युग है। यश के साथ-साथ पैसा भी जरूरी है, दोनों एक-दूसरे के साथ चलते हैं।

जिन लोगों के पास पैसा है, वे अपने बच्चों को शिक्षा के मार्ग में लगाएँ। बच्चे जितना हिन्दुस्तान में पढ़ सकते हैं, हिन्दुस्तान में पढ़ें, उसके बाद सम्भावना हो तो बाहर जाकर पढ़ें, क्योंकि यह तो पक्की बात है कि शिक्षा की व्यवस्था बाहर के देशों में यहाँ से ज्यादा अच्छी है। इसमें अब दो मत नहीं है। चीन या रूस नहीं भेजना, वहीं भेजना जहाँ सम्भावनाएँ हैं। हिन्दुस्तान में लोगों के पास सम्भावनाएँ ही नहीं हैं। अगर बच्चों को चीन या रूस भेजोगे, तो वे लोग वहाँ से साम्यवाद लाएँगे। यद्यपि लोग अमेरिका से घृणा करते हैं, फिर भी सब अमेरिका ही भेजते हैं। क्यों? इसलिए कि वहाँ अवसर हैं। वहाँ मनुष्य को उन्नति के, पढ़ने के अवसर मिलते हैं। अपने बच्चों के प्रति आपका इतना दायित्व है। जब बच्चे बड़े हो जाएँगे, तो अपना भविष्य खुद देखेंगे।

परमार्थ

दुनिया में जितने भी जीव हैं, जानवर हैं, सब दूसरों के लिए जीते हैं। जितने भी वनस्पति वर्ग हैं, आम, अमरूद, आँवला, ये सब दूसरों के लिए नहीं जीते हैं क्या? कभी पेड़ को अपना फल खाते देखा है? कभी बादल को पानी पीते देखा है? *'वृक्ष कबहुँ नहीं फल भखैं नदी न संचै नीर, परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर।'* इसको कहते हैं परमार्थ, दूसरों के लिए। मुर्गी किसके लिए जीती

है? मुर्गी अपना अण्डा नहीं खाती, बकरी अपना पाठा नहीं खाती, गाय अपना बछड़ा नहीं खाती। वे सब दूसरों के लिए जीते हैं और देखा जाए तो दुनिया में जितनी भी चीजें भगवान ने बनाई हैं, दूसरों के लिए बनाई हैं। मनुष्य जीवन भी दूसरों के लिए बनाया गया है। ऐसी बात नहीं है कि लोग घर में केवल खाना खाते हैं। बच्चों के लिए जीते हैं, परिवार के लिए जीते हैं, अपने पास-पड़ोस के लोगों के लिए जीते हैं। यह सब है, परंतु मनुष्य में स्वार्थ आ गया है। स्वार्थ ऐसे आया है कि वह बहुत छोटे वर्ग के लिए जीता है। हम और हमारे बच्चे। हम अब केवल अपने बच्चे के लिए जीते हैं, दूसरे से हमको कोई मतलब नहीं है।

जब यह कहा जाता है कि दूसरों के लिए भी कुछ करो, तब उसका मतलब होता है कि हमारे आस-पास के बहुत से लोग, जिनको खाना, कपड़ा, आवास आदि की सुविधा नहीं है, जो हमारे समाज का एक अंग हैं, जो गरीब हैं, बीमार हैं, विकलाँग हैं, उनके लिए व्यक्ति को जीवित रहना चाहिए। इसका इतना ही अर्थ होता है और दूसरा कोई अर्थ नहीं है। जब हमने सन् 1947 में संन्यास लिया तो हमारे गुरुजी ने कहा, 'देखो, संन्यासी का जीवन अपने लिए नहीं होता है। अपने लिए केवल खाना मिल जाए, रहने के लिए जगह मिल जाए, उतना पर्याप्त है, अपने लिए ज्यादा जुगाड़ नहीं करना। और अपनों, अर्थात् जिनको तुम अपना मानते हो, उनके लिए जो भी काम करो तो ऐसे करो कि उनके साथ तुम्हारा कोई मतलब नहीं है।'

हम यहाँ रहते हैं। गाँव के लोगों से हमको क्या मतलब है? ये मरते हैं तो मरने दो, जीते हैं तो जीने दो। हमारा इनसे कोई जाति, धर्म या खून का रिश्ता नहीं है। पर इनको तकलीफ में देख कर हम सोचते हैं कि हमको थोड़ा इनके लिए भी करना चाहिए। बस, इसी को कहते हैं दूसरों के लिए सोचना और दूसरों के लिए जीना।

अगर गुरु के प्रति ऊटपटाँग विचार आने लगें, तो इसका कारण क्या है? और उनको हटाने का उपाय क्या है?

जिसको तुम गुरु मानते हो, वह तुम्हारा गुरु हो ही गया, अब तुम ऊटपटाँग करो या उचित करो। जिस आदमी या औरत से तुम्हारी शादी हो गई, तो हो गई, अब ऊटपटाँग सोचो या सही सोचो, क्या फर्क पड़ता है। सच्चाई जो है, वह रहेगी ही। केवल जो गड़बड़ तुम्हारे अन्दर है, उसको ठीक करना है।

ऊटपटाँग बातें जरूर मन में आती हैं, परन्तु इन विचारों के होते हुए भी सम्बन्धों में कमी नहीं होनी चाहिए।

गुरु-शिष्य का जो सम्बन्ध होता है, वह शारीरिक नहीं होता है, वह सामाजिक या खून का सम्बन्ध नहीं होता है। गुरु शिष्य का कोई सांसारिक सम्बन्धी नहीं है, जैसे, भाई-बहन, बाप-बेटा, पति-पत्नी। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध आध्यात्मिक है। उस आध्यात्मिक सम्बन्ध में गुरु तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन का आधार बनता है। इसलिए वह सम्बन्ध बने रहना चाहिए। अब इसको व्यावहारिक ढंग से कहें कि गुरु के प्रति मन में कोई ऊटपटाँग विचार हो तो हो, दक्षिणा समय पर भेज देना और गुरु पूर्णिमा को उनके दर्शन कर लेना। यदि दर्शन न कर सको, कोई दिक्कत हो जाए, तो घर में ही पूजा कर लेना। उनके बारे में ऊटपटाँग सोचते रहना, ऊटपटाँग सोचने में कोई नुकसान नहीं है। ऊटपटाँग तो मन सोचता है, आत्मा नहीं। आत्मा कभी ऊटपटाँग नहीं सोचती।

मनुष्य के शरीर में इन्द्रियाँ होती हैं, इन्द्रियों के परे मन, मन के परे बुद्धि और बुद्धि के परे आत्मा होती है। यह मन जो सोचता है, वह सात्त्विक, राजसिक या तामसिक है। तुम सोचो, कोई दिक्कत नहीं है, और इसका कोई उपाय भी नहीं है। हमारे देश में जो शास्त्र लिखे गए हैं, उनमें चौबीस प्रकार के गुरुओं का उल्लेख है। कई प्रकार के गुरु होते हैं। जैसे एक गुरुजी थे। वे दूसरे देश में रहते थे, फिर बाद में हिन्दुस्तान आ गए। अच्छे महात्मा थे, साधक थे, भगवान की उन पर कृपा थी। उनके सभी शिष्य, जिन्होंने उनसे दीक्षा ली थी, जप-ध्यान करते थे। गुरुजी की पहली पत्नी मर गई, तो उन्होंने दूसरी शादी कर ली। अब उनके शिष्यों के मन में ऊटपटाँग सवाल आएगा कि नहीं? सबके मन में नहीं आएगा, कुछ लोग समझदार होते हैं। चेलों में भी बहुत से चेले व्यावहारिक बातों को समझते हैं। पहली मर गई, तो गुरु ने दूसरी शादी कर ली। कैसे गुरुजी हैं? दो-दो शादी करके बैठे हुए हैं। परन्तु गुरुजी थे, हम उनको जानते हैं, उनकी आध्यात्मिक प्रतिभा उज्ज्वल थी।

अब सवाल यह उठता है कि गुरुजी शादी करते हैं या वे कैसा कपड़ा पहनते हैं या कैसा खाना खाते हैं, चिलम चढ़ाते हैं या बोतल खोलते हैं; किसी भी कारण से अगर ऐसे ऊटपटाँग विचार तुम्हारे मन में आ रहे हैं, तो वे कारण तुम्हारे व्यक्तिगत हैं, क्योंकि अगर व्यक्तिगत नहीं होते, तो भगवान कृष्ण पर भी अंगुली उठती। जो भी ऊटपटाँग विचार लोगों के मन में आते हैं, लोग

बोलते हैं, किताबों में लिखते हैं, वह व्यक्तिगत है, तुम्हारे अपने मन का विचार है। शिष्य के अपने मन के ऊटपटाँग विचार से गुरु की वास्तविकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और उनका गुरु और शिष्य के सम्बन्ध पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

ऊटपटाँग विचार आएँ, आने दो, बादल गरज रहे हैं, चले जाएँगे। केवल तीन काम जरूर करना। गुरुजी को वार्षिक दक्षिणा, हजार-पाँच सौ रुपये बड़े प्रेम और भक्ति के साथ भेजना। दूसरा, गुरु पूर्णिमा के दिन उनके पास जाओ, पूजा करो और न हो सके तो अपने घर में ही पूजा कर लो। और तीसरा काम, उनका दिया हुआ मंत्र नियमपूर्वक जपना। गुरु से, पति से, माँ से झगड़ा हो जाए, तो खाना नहीं छोड़ना, नहाना नहीं छोड़ना, सोना नहीं छोड़ना, पति को नहीं छोड़ना। झगड़ा तो होता रहता है, उसका मतलब यह नहीं है कि तुम्हारा पूरा जीवन प्रभावित हो जाए।

जब हम बहुत छोटे थे, अठारह-उन्नीस साल के, तब हम छुट्टियों में नैनीताल जाते थे। वहाँ तालाब के किनारे देवी का मंदिर है। वहाँ कभी-कभी साधु लोग आते रहते हैं। देवी के मंदिर के पास वहाँ बड़ी अजीब चट्टान है। एक बार वहाँ हमको एक योगिनी मिल गई। वह बहुत मोटी, काली-कलूटी थी और रात-दिन चिलम चढ़ाती थी। हमको समझ में नहीं आता था कि जब इसको पीना ही था तो इसने घर क्यों छोड़ा? तब हम बच्चे थे, ऐसे ही सोच सकते थे और क्या सोचते।

एक दिन हम वहाँ बैठे थे, उसी समय दो-चार भगत आ गए। उसने बोलना शुरू किया, सुनकर हम स्तब्ध रह गए, क्योंकि हम आर्यसमाजी परिवार के हैं, हमने स्वामी दयानन्द जी का दर्शन पूरा पढ़ा है। फिर हम उस योगिनी के पास रोज जाने लगे, शाम से सुबह तक रहते और रोज हमको उससे जो सुनने को मिलता था, वह हमको हतप्रभ कर देता था। फिर हमारी उस पर इतनी श्रद्धा हो गई कि हमने उससे कहा कि हमको आप शिष्य बना लीजिए। उन्होंने कहा, तुमको शिष्य बना कर क्या करेंगे, कोई दूसरा गुरु खोजो। हमको आज तक उसकी याद आती है। यह सब देखकर लगता है कि गुरु को बाहरी परिवेश से जाँचना उचित नहीं है।

गुरु को अपने पैमाने से नापना भी सही नहीं है। हर एक आदमी का जो पैमाना होता है, वह उसकी अपनी विचारधारा है। वह अपने मापदण्ड से ही नापता है कि गुरु लम्बा है कि चौड़ा है, मोटा है, अच्छा है, उचित है, अनुचित

है, नैतिक है, सही है या गलत है। यह नहीं होना चाहिए, क्योंकि प्रायः जिन गुरु लोगों को कुछ प्राप्ति रहती है, वे हमेशा गुप्त रहते हैं।

गुरु को एक विभूति की प्राप्ति होती है। विभूति का मतलब होता है दिव्य आशीर्वाद, भगवान के अंश का अनुभव। कभी-न-कभी भगवान के अंश का एक अनुभव उनको जरूर होता है। ध्यान में या किसी वक्त रहता है, नहाते वक्त या सोते वक्त या कभी चलते वक्त, कहीं पर भी वह अचानक आता है, झलक आती है। ऐसे महात्मा होते हैं गुरु, जिनको वह प्रकाश मिलता है। यह मैं अलग-अलग नाम दे रहा हूँ, इसको समझाना बहुत कठिन है। गुरु लोग उसको छिपा कर रखते हैं, क्योंकि अगर खोल देंगे तो आप लोग उनको लूट लोगे। आप लोग शिवजी के मंदिर में रोज जाते हैं। रोज शिवलिंग पर हाथ रखते-रखते लिंग ही गायब हो गया! आप लोगों का यह तो हाल है, समझ में आया न? ये जो दुनिया के भक्त लोग होते हैं, भगवान को बहुत परेशान कर देते हैं। इसलिए भगवान छिप गए। परमात्मा क्यों नहीं दिखाई देते? अब समझे न तुम लोग। भगवान निर्गुण, निराकार क्यों हो गए? भगवान परेशान हो गए, इसलिए भाग कर स्वर्गलोक में चले गए, जहाँ तुम लोग सैटेलाईट से भी नहीं जा सकते। अतः बहुत से गुरु होते हैं, जो अपने को छिपा कर रखते हैं। छिपाने का क्या तरीका है? चिलम चढ़ा लिया। लोग बोलेंगे कैसा गुरु है, साथ में उसका चेला भी दिनभर पीता रहता है। जिसने भगवान का दर्शन कर लिया, वह चिलम क्यों पीएगा? तो भाग गए और गुरु बच गए।

गुरु लोग, जिनके पास माल रहता है, वे अपने को बचा कर रखते हैं, अन्यथा आप लोग परेशान करोगे। कोई कंगाल को अगवा करता है क्या? जिसके पास माल है, उसी को अगवा करोगे न? इसलिए गुरु लोग हमेशा गुप्त ही रहते हैं और इसी वजह से तुम लोगों के दिमाग में ऊटपटाँग विचार आते हैं। इससे नुकसान तुमको है। इसलिए थोड़ा सावधान रहना गुरु लोगों से।

भले ही तुमको शिवजी के प्रति कितनी ही श्रद्धा हो, पर अगर सचमुच में शिवजी के यहाँ जाने का मौका मिला, तो उनके चारों ओर का वातावरण देखकर तुम दरवाजे से लौट जाओगे। सबसे पहले तो वह नंदी बैल, फिर अजीब-अजीब ढंग के नौकर-चाकर। किसी के सिर ही नहीं है, किसी के पेट ही नहीं है। अगर ऐसे भगवान के पास जाने का तुमको सचमुच में मौका मिले, तो पक्की बात है, तुम दरवाजे से लौट जाओगे कि हमको शिवजी की जरूरत नहीं है। विष्णु जी के पास जाइए, तो औरत उनका पैर दबा रही है। ब्रह्मा जी

के पास गए, तो बेटी को बगल में बैठाए हैं। तीनों के पास गए, तीनों ऊटपटाँग हुए न। किसी भी मूल्यवान् वस्तु के प्रति मन में ऊटपटाँग विचार रखने से नुकसान अपने को होता है। गुलाब को गाली दोगे तो गुलाब को क्या फर्क पड़ेगा, कमल को गाली दोगे तो कमल को क्या फर्क पड़ेगा, हीरे, सोने, सम्पत्ति या सुंदरता को गाली दोगे तो नुकसान तुम्हारा ही है। अपने फायदे के लिए गुरुजी से समझौता बनाए रखो।

मैं वैष्णव देवी गयी थी, वहाँ से प्रभामण्डल लेकर आई। लेकिन लगता है कुछ महीनों के बाद वह खो गया।

दुनिया में दो प्रकार के साधक होते हैं। एक होते हैं मूर्ख और दूसरे होते हैं दुष्ट। मूर्ख को कहते हैं मूढ़ और दुष्ट को कहते हैं शठ। मूर्ख व्यक्ति जब ऊर्जा क्षेत्र में आता है, तो उस पर कोई असर नहीं पड़ता, जैसे लकड़ी के तार में उच्च वोल्टेज करेंट भी डाल दो, तो पास नहीं होगा, क्योंकि वह कुचालक होता है। जबकि दुष्ट सुचालक होता है। उसको जब सत्संग मिलता है, जब वह ऊर्जा क्षेत्र में आता है, तो उस पर उसका असर होता है। दुष्ट भी दो प्रकार के होते हैं। एक जो उस ऊर्जा क्षेत्र में जाता है और ऊर्जा क्षेत्र से बाहर आने पर फिर अपने दुष्ट स्वरूप में ही वापस आ जाता है। दुष्ट का दूसरा प्रकार होता है—पारस और लोहे का सम्बन्ध। पारस लोहे को सोना बना देता है, किन्तु उसको पारस नहीं बनाता। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में इसी पर लिखा है—

सठ सुधरहीं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।

कुधातु का मतलब होता है लोहा, जो सोना बन जाता है, और यह सच्चाई है। इसीलिए हमारे यहाँ कहा जाता है कि हर व्यक्ति को समय-समय पर आश्रम या तीर्थ यात्राओं में, भगवत् भक्तों के संसर्ग में, कथा वार्त्ता में या सत्संग में जाना चाहिए। यदि यह सम्भव नहीं है, तो अपने घर में ही पन्द्रह मिनट, आधा या एक घण्टे के लिए, माह में एक दिन या साल में कुछ दिन के लिए ऐसा वातावरण बना लेना चाहिए, क्योंकि जिस ऊर्जा मण्डल की तुम बात कर रहे हो, वह वास्तव में तुम्हारे अन्दर है, हर व्यक्ति के अन्दर है।

हमारे अन्दर एक ऊर्जा मण्डल होता है। मैं विज्ञान की बात कर रहा हूँ। तुम लोगों ने नाम सुना होगा—किर्लियन। ये पति-पत्नी रूस के रहने वाले थे।

इन लोगों ने एक अन्वेषण किया कि मनुष्य के शरीर के चारों ओर एक प्रभामण्डल रहता है। राम और कृष्ण आदि के चित्रों में जो प्रभामण्डल देखते हो, यह प्रभामण्डल हर व्यक्ति में रहता है। यह घटता-बढ़ता है, बहुत दिनों तक रहता है और खत्म भी हो जाता है। जिस चीज को व्यक्ति छूता है, उसमें भी रहता है। यह एक लम्बा प्रसंग है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में ऊर्जा क्षेत्र है और उस ऊर्जा क्षेत्र को वह चाहे तो विकसित कर सकता है या संकुचित भी कर सकता है। यदि यह सत्य है, तो फिर दूसरी ऊर्जा की जरूरत ही नहीं। तुम एक गुरुजी या महात्मा के पास, तीर्थ में या वैष्णव देवी गए, तो ऊर्जा क्षेत्र में आ गए। वापस आने के बाद वह ऊर्जा क्षेत्र धीरे-धीरे खत्म हो जाता है। जिस ऊर्जा क्षेत्र में तुम गए थे, वह देवीजी का ऊर्जा क्षेत्र था, प्रकट था और तुम अप्रकट ऊर्जा क्षेत्र हो। तुम्हारे अन्दर जो दिव्य आभा मण्डल है, वह संकुचित है, अब उसको प्रकट करो।

तुम्हारे अन्दर जो ऊर्जा क्षेत्र है, कोई कहता है वह खोपड़ी में है, कोई कहता है हृदय में है, कोई कहता है नीचे मूलाधार में है। उसको देखने में मुश्किल होती है। इस चुम्बकीय ऊर्जा के द्वारा कितने लोगों ने हजारों-लाखों-करोड़ों लोगों को अपने पीछे आने के लिए बाध्य किया। बीन वाले की कहानी आती है, जो चूहों को लेकर पानी में चला जाता है। उसी तरह हिटलर ने पूरे जर्मनी को एकदम अपने ऊर्जा क्षेत्र में ले लिया था। तुमने गाँधीजी को देखा हो या न देखा हो, जहाँ वे जाते थे, आँधी उनके पीछे जाती थी। हमने तो देखा है। गाँधीजी का इतना जबरदस्त प्रभाव था कि गाँव के गाँव उनके पीछे चलते थे। वे एक गुजराती वकील थे, विदेश जाकर आए थे। लोग इसलिए उनके पीछे नहीं चलते थे कि वे आजादी के लिए काम कर रहे थे, बल्कि उनका चुम्बकीय ऊर्जा क्षेत्र इतना ज्यादा हो गया था कि सब उनके पीछे खिंचे चले आते थे।

वह ऊर्जा क्षेत्र हर व्यक्ति के अन्दर होता है, अत: खोने का सवाल ही नहीं उठता। खोने का सवाल तब उठता है, जब तुम अपने ही ऊर्जा क्षेत्र को प्रकट नहीं कर पाते हो। अपने ऊर्जा क्षेत्र को प्रभावित करने के लिए व्यक्ति को सांसारिक जीवन को निमित्त बनाना पड़ेगा। शादी, आराम, भोजन, घर, समाज, और व्यापार निमित्त हैं, मजबूरी हैं, क्योंकि ये आधार हैं। सांसारिक जीवन, सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, भौतिक जीवन और लौकिक जीवन निमित्त हैं। ये लक्ष्य नहीं हैं। रेलगाड़ी निमित्त है, लक्ष्य नहीं। लक्ष्य है

कलकत्ता या रायपुर। जीवन निमित्त, गृहस्थी निमित्त। स्त्री-पुरुष का शरीर, योग, सम्भोग, दु:ख या सुख निमित्त हैं। जो भी इस संसार में है, वह निमित्त है। इस विचार को लेकर चलना है।

जो व्यक्ति इस जीवन को निमित्त मानकर चलता है, उसको कभी कष्ट नहीं होता। कष्ट उसी को होता है, जो इस जीवन को लक्ष्य समझकर चलता है। रामकृष्ण परमहंस और रमण महर्षि ने आत्मा को अपना आधार माना, इसलिए वे भगवान हुए। तुम भी भगवान हो सकते हो। कोई सामान्य व्यक्ति भगवान नहीं होता। सामान्य व्यक्ति का मतलब होता है, जो जीवन को लक्ष्य मानकर चले। तुम जीवन को, पुत्र, पति, पत्नी को लक्ष्य मानो ही मत। तुम देखोगे कभी कुछ नहीं होगा। न शरीर का कष्ट महसूस होगा, न मन का।

जब भगवान की ही इच्छा से सबकुछ होता है, तब पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है?

इस सवाल का जवाब आज तक किसी ने अंतिम रूप से नहीं दिया। हम केवल चर्चा करेंगे। गीता, भागवत आदि शास्त्रों और सब धर्मों में यही चर्चा है। भगवान कहते हैं कि मैं कर्ता हूँ। इस सवाल का तुम अंतिम जवाब जो खोज रहे हो, वह मिलेगा ही नहीं, क्योंकि अंतिम जवाब के लिए दिमाग अभी तैयार नहीं है और जब अंतिम जवाब मिलेगा, तब सवाल करने वाला नहीं रहेगा। *'जानत तुम्हहिं तुम्हई होई जाई।' 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'* हम उतना दावा नहीं करते, परन्तु प्रश्न का जवाब हम देंगे। इस पर हम ज्यादा सोचते नहीं हैं, हमने सोचना भी बंद कर दिया है।

अस्सी साल के जीवन में एक छोटा-सा अनुभव हमको जरूर हुआ है, जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे जीवन में जो कुछ हुआ है, वह हमारे पुरुषार्थ से नहीं हुआ है। अगर वह पुरुषार्थ हम नहीं भी करते, तब भी वह होता। ध्यान से सुनना। परन्तु हमने पुरुषार्थ किया, क्योंकि वह ईश्वर की इच्छा का एक अंग था। ईश्वर ने चाहा कि हम वह प्राप्त करें। अगर हम पुरुषार्थ नहीं करते, तो पागल की तरह राँची में बैठे रहते। पुरुषार्थ नहीं करोगे, तो क्या करोगे? दिन-भर, चौबीस घण्टा कुछ तो करना ही पड़ता है न, उधेड़बुन करनी पड़ती है। हम जीवनभर उधेड़बुन करते रहे और जो हमको प्राप्त हुआ, वह उधेड़बुन की वजह से नहीं, ईश्वर की इच्छा से प्राप्त हुआ। किन्तु ईश्वर ने हमको उधेड़बुन करने की प्रेरणा दी, ऐसी खोपड़ी दी कि उधेड़बुन करते रहे।

यह मैं सवाल का जवाब नहीं दे रहा हूँ, केवल चर्चा कर रहा हूँ। अगर सोचोगे कि स्वामी सत्यानन्द ने अंतिम जवाब दे दिया, तब तो तुम गड़बड़ हो। नहीं, हम अंतिम जवाब कभी नहीं देते हैं, हम चर्चा करते हैं, सत्संग करते हैं।

हमारे यहाँ ईश्वर की कोई परिभाषा नहीं है, ईश्वर परिभाषाओं से परे है। विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों ने ईश्वर का निर्माण किया है, ईश्वर को समझाया है, ईश्वर को साकार रूप दिया है, ईश्वर की परिभाषा दी है, ताकि तुम लोगों को छत पर चढ़ने के लिए कम-से-कम एक सीढ़ी मिल जाए। केवल तुमको मदद करने के लिए अवतार, संत पुरुष, ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अल्ला मियाँ, खुदा मियाँ, गॉड मियाँ की परिभाषा बनायी है, ताकि तुम ऊपर चढ़ सको। पर जिस धर्म में हम जन्मे हैं, जिसको सनातन धर्म, वैदिक धर्म या हिन्दू धर्म कहते हैं, उसमें ईश्वर की अंतिम परिभाषा नहीं है, बल्कि निराकार की परिभाषा हुई है। परन्तु लोगों ने कहा कि ईश्वर साकार भी है, तो साकार की परिभाषा हुई। लोगों ने कहा कि ईश्वर साकार ही नहीं है, वह निराकार भी है। किसी ने कहा कि ईश्वर बैद्यनाथ धाम में रहता है, काशी विश्वनाथ में रहता है और किसी ने कहा, नहीं, वह घट-घट वासी है, याने सब जगह है, यहाँ भी है, वहाँ भी है। मुझमें तुझमें खड्ग खम्भ में जहाँ देखो तहाँ राम। यह हिरण्यकश्यप को प्रह्लाद का वचन है।

जले विष्णुः थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

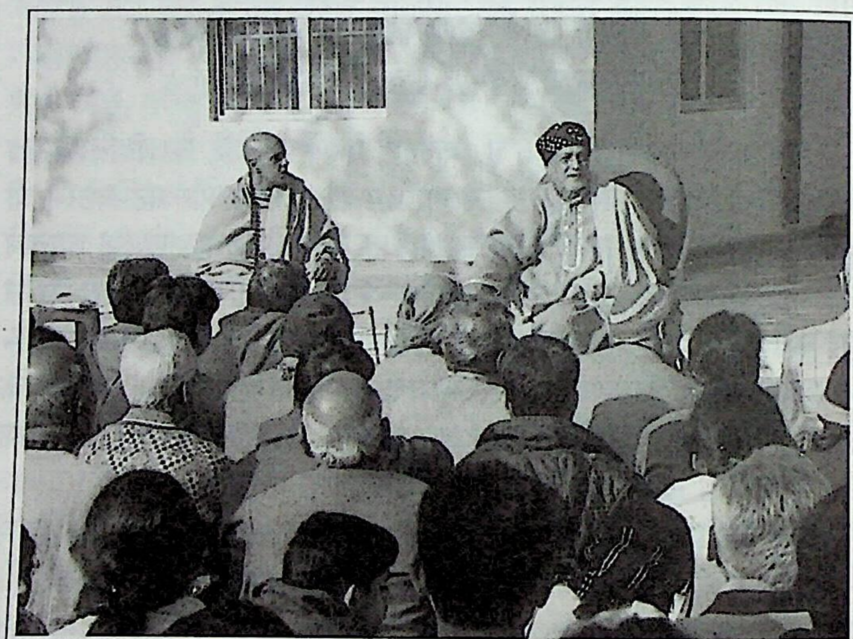
भगवान बैकुण्ठ में भी रहते हैं, कैलाश में भी रहते हैं, काशी विश्वनाथ में भी रहते हैं, तुम्हारे घर की ठाकुर-बाड़ी में भी रहते हैं और घट-घट में भी रहते हैं। हमारे यहाँ भगवान की परिभाषा देते-देते एक दिन बोले कि भगवान के अलावा कुछ है ही नहीं। अहं ब्रह्मास्मि! भगवान की परिभाषा निराकार से शुरू नहीं हुई। हमारे यहाँ भगवान की परिभाषा शुरू हुई है तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं से। इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य, आते-आते हो गया कि भगवान के अलावा तो कुछ है ही नहीं। जब भगवान के अलावा कुछ है ही नहीं, तो दूसरा है कौन? बोले, दूसरा कोई नहीं है।

अतः इन सब चीजों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस घर में तुम रहते हो, उसमें रोज जाला पैदा होता है, धूल होती है, रोज झाड़ते हैं। शरीर में मल होता है, शरीर का धर्म है। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक,

भगवान के बनाए हुए ये तीन गुण हैं। इन तीन गुणों से ही सारी सृष्टि बनी है। यदि ये तीन गुण नष्ट हो जाएँगे, तो धरती नष्ट हो जाएगी। इन चीजों को समझना बहुत मुश्किल है। सबसे बढ़िया चीज यह है कि अपने जीवन को संतुलित ढंग से जीने के लिए जो भी पालन करने योग्य दर्शन है, उसका पालन करो। इस सवाल का कोई जवाब अभी मिलने वाला नहीं है। इस संसार में जितने भी सवाल हैं, उनका कोई जवाब नहीं है। आत्मा का विस्तार करने के लिए जो सबसे बड़ी बाधा है, वह है माया का बंधन।

लालटेन के ऊपर कालिख लगी है, जिससे उसका प्रकाश बाहर नहीं आ रहा है। उसी तरह से हर आदमी अपने को बंधन में रखता है। बंधन-मुक्त रहो और देखो कैसे प्रकाश बाहर नहीं निकलता? चाहे संन्यासी हो अथवा गृहस्थ, बंधन-मुक्त रहना चाहिए। किन्तु हम लोग अपने को बंधन में रखना इसलिए पसंद करते हैं कि कम-से-कम कोई तो अपनी मदद को आएगा। सब के सब जानवर जो हैं, खूँटे से बँधे हुए हैं और खूँटे से बँधा हुआ जानवर जंगल में जाकर घास चरना चाहता है, जो संभव नहीं है। इसके लिए उसको बंधन तोड़ना पड़ेगा। बंधन टूटने का मतलब है, ऊर्जा क्षेत्र का विकास।

– 5 मई 2004





अध्याय 2

पत्थर की पूजा के बिना भी ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। ऐसा हमारे यहाँ किसी ने नहीं कहा कि पत्थर के शिवजी की पूजा करके ही भगवान को पा सकते हो। तुम अगर बिना किसी माध्यम के भगवान को सीधे ही पाना चाहो, तो निश्चित रूप से पा सकते हो। यह हमारे संतों ने कहा है। उन्होंने दो रास्ते बतलाए हैं, एक रास्ता है विहंगम मार्ग–चिड़िया का रास्ता और दूसरा रास्ता है पिपीलिका मार्ग, चींटी की व्यवस्था। अगर तुम चिड़िया हो, तुम्हारे पंख हैं, तो यहाँ से देवघर सीधे उड़कर चले जाओ। टैक्सी वगैरह से नहीं जाना। मुंगेर भी सीधे जा सकते हो उड़ते हुए, बस या कार की जरूरत नहीं है। अगर तुम्हारे पंख हैं, तो सीधे जाओ विहंगम की तरह और निश्चित रूप से उस परमात्मा तक पहुँच सकते हो, उसकी प्राप्ति कर सकते हो। पर जिनके पंख नहीं हैं, उनके लिए उपाय क्या है? चींटी के लिए उपाय क्या है? चींटी को तो पूरा रास्ता तय करना पड़ेगा।

अब तुम्हारे पास तो पंख हैं नहीं और हेलीकॉप्टर भी मिलने वाला नहीं है, क्योंकि अभी तो चुनाव का समय है। तुमको बस से ही जाना पड़ेगा। उसी तरह से जो लोग मोह-माया रहित हैं, जिनको संसार की माया कहीं मन में छू भी नहीं सकती, ऐसे लोग परमात्मा को उसके मुक्त मूल स्वरूप में ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु जो लोग मोह-माया में बंधे हैं, मन के बस में हैं, तीन गुणों के बस़ में हैं, राग-द्वेष के बस में हैं, जहाँ उनको एक चीज खुश करती है तो एक चीज दु:खी करती है, जहाँ वे मृत्यु से दु:खी होते हैं तो जन्म से खुश होते हैं, जहाँ प्राप्ति से प्रसन्न रहते हैं और अप्राप्ति से उनको कष्ट होता है, ऐसे लोगों को परमात्मा को प्राप्त करने के लिए किसी आधार की आवश्यकता पड़ती है।

और वह आधार है उनका अपना मन। अपने मन को आधार बना कर फिर अंदर जाते हैं। जिस परमात्मा को तुम प्राप्त करना चाहते हो, वह भले ही बाहर में है, विश्वभर में है, सारी सृष्टि में है, पर वह तुम्हारे अंदर में भी है। अपने अंदर में जो भगवान या परमात्मा है, जो विश्वभर में है, सृष्टिभर में है, उसको प्राप्त करने के लिए हम लोगों के यहाँ मन को आधार माना है। अब यह आधार कैसा है, इसको भी तुम अच्छी तरह से समझो।

एक गुलाब का फूल है, जिसे तुम बगीचे से तोड़ कर लाते हो। गुलाब का फूल तो तुम से अलग है न? तुम उसको देखते हो, वह तुम से अलग है। जब आँख बंद कर लेते हो, तब भी तुमको गुलाब का फूल दिखाई देता है। वह गुलाब का फूल इस गुलाब के फूल से अलग है। दोनों अलग हैं, एक नहीं हैं। इस बात को ध्यान में रखना, जिस गुलाब के फूल को तुमने अपनी मेज पर रखे देखा और जिस गुलाब के फूल को तुम अपने मन के अंदर आँख बंद करके देख रहे हो, वे दोनों अलग हैं। एक है परा और दूसरा है अंदर में, जो मैं देखता हूँ, वह। मैं अपने में जो देखता हूँ, वह गुलाब का फूल नहीं है, वह मैं गुलाब के प्रतीक को आधार बनाकर अपने आपको ही देख रहा हूँ! जिस राम की या शिव की या देवी की पूजा तुम मंदिर में करते हो, जब तुम आँख बंद करके उसका ध्यान करते हो, तो जिसे तुम अंदर में देखते हो, वह वह नहीं, तुम हो। तुम ही परमात्मा की छवि, परमात्मा की छटा हो। मान लो, आँख बंद करके तुम हमें देखते हो। आँख बंद करके जो मैं तुमको दिखाई दिया, वह मैं नहीं हूँ, तुम हो।

जब तक इस बात को नहीं पकड़ोगे, तब तक अपने प्रश्नों का उत्तर तुमको नहीं मिलेगा। परमात्मा स्वयं-साध्य है। आधार बाहर में रह जाता है, गुरुजी बाहर में रह जाते हैं। अन्दर में चमकने वाला गुरुजी तो मैं खुद हूँ। देवीजी की मूर्ति जो देख रहा हूँ, वह मैं हूँ। शिवजी की मूर्ति जो देख रहा हूँ, वह मैं हूँ। वह वैद्यनाथधाम वाले या विश्वनाथ मंदिर वाले शिवजी नहीं हैं। वह सब वास्तविक है, जो अंदर में है। मन का ज्ञान, चेतना का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान क्या होता है? लोग अपने मन की शक्तियों को गुलाब के रूप में, शिवलिंग के रूप में केन्द्रित करते हैं। धीरे-धीरे मन को अपने अन्दर किसी प्रतीक पर स्थिर करते हैं। और कुछ दिन के बाद वह अनुभव खत्म हो जाता है, वह चला जाता है। वहाँ कुछ नहीं रहता, कोई नहीं रहता है। और उस कुछ में भगवान का रूप है भी और नहीं भी।

भगवान का रूप है कि नहीं, मैं कैसे बतलाऊँ, किसी ने नहीं बताया आज तक। भगवान के बारे में आज तक किसी ने अंतिम शब्द नहीं कहा है कि भगवान पत्थर नहीं होते। किसी ने कहा है? कोई कहे कि भगवान गुड्डा-गुड्डी नहीं होते हैं। प्रमाण क्या है? भगवान साकार हैं, इसका प्रमाण क्या है? भगवान निराकार हैं, इसका प्रमाण क्या है? प्रमाण किसी का नहीं है। कोई भी आज तक प्रमाण नहीं दे सका। न मुसलमान अल्लाह का प्रमाण दे सकते हैं, न ईसा मसीह के ईसाई लोग गॉड का प्रमाण दे सकते हैं और न हम आत्मा का प्रमाण दे सकते हैं। ईश्वर हमारे प्रमाणों से परे हैं, वे अप्रमेय हैं।

कर्म-संन्यास के बारे में कुछ बतलाइए।

गीता कर्म-संन्यास के बारे में कहती है। कर्म-संन्यास की दीक्षा गीता के आधार पर ली जाती है। हम लोगों के यहाँ चार मुख्य आश्रम होते हैं–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। संन्यास के पहले एक आश्रम होता है वानप्रस्थ। इस वानप्रस्थ आश्रम को ही कर्म-संन्यास कहते हैं। अगर मनुष्य गृहस्थ आश्रम जीवन में होते हुए भी संन्यास आश्रम में आना चाहता है, तो उसको वानप्रस्थ आश्रम कहते हैं और वही उसका कर्म-संन्यास हुआ।

हमारे यहाँ जितने धर्मशास्त्र हैं, वे इतने विचित्र हैं, इतने विपुल हैं कि उनमें किसी भी चीज को 'न' तो बोल ही नहीं सकते। अब जितने वैष्णव लोग हैं, सब तो शादी करते हैं। वैष्णवों में शादी होती है, बाल-बच्चे होते हैं। ठाकुरजी की पत्नियाँ थीं कि नहीं? पर शैव लोगों में शादियाँ नहीं होती हैं। उदासीन आचार्यों में विवाह का कोई विधान नहीं है। वैष्णवों में विवाह का विधान है। पर सबसे बड़ी चीज है कि शैव धर्म के प्रवर्त्तक और आचार्य भगवान शंकर ने दूसरा विवाह किया था! वैष्णव सम्प्रदाय के इष्ट, चाहे रामजी हों या कृष्णजी, उनके बारे में आप लोगों को मालूम ही है। इन सबका आधार कर्म-संन्यास से बनता है।

हमारे यहाँ कर्म-संन्यास के बहुत उदाहरण हुए हैं। आखिर रामकृष्ण परमहंस को हम अवतार क्यों मानते हैं? उनको श्रेष्ठ संन्यासी क्यों मानते हैं? उनका तो विवाह हुआ था। परन्तु उनका विवाह हुआ, इसलिये वे महान् पुरुष नहीं थे, ऐसा तो नहीं कह सकते। हमारे यहाँ जो साधु हुए हैं, वे हर युग में, पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने विचारों को थोड़ा-थोड़ा करके नया स्वरूप देते गये हैं। कुछ परिवर्तन असामान्य भी होते हैं। छुआ-छूत आदि की विचारधाराओं को

तो हम लोग मानते नहीं हैं। जब महात्मा लोग छुआ-छूत की बात करते हैं, तो हाथ जोड़कर चुप रह जाना चाहिए, क्योंकि हर एक आदमी को अपनी श्रद्धा के अनुसार फैसला करना पड़ता है।

अब तुम कर्म-संन्यासी हो, क्या तुमको यह विश्वास है कि कर्म-संन्यास से तुमको सुख, आनन्द, रक्षा, आधार और एक नया जीवन दर्शन, एक नई समझ मिल रही है, या तुम कुछ गलती कर रहे हो? तुम गलत रास्ते पर चल रहे हो क्या? तुममें अच्छी आदतें आई हैं कि बुरी आदतें आई हैं? चोरी, डकैती, बदमाशी, बलात्कार, हत्या, ये सब करते हो क्या? अगर सोचते हो कि आदमी अच्छा बने, तो वह रास्ता अच्छा है।

कर्म-संन्यास की शिक्षा भगवान श्रीकृष्ण की शिक्षा है। कर्म-संन्यास योग ही है। योग ही कर्म-संन्यास है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को यह विचार समझाया कि किस तरह से आदमी अपने कर्तव्यों को करते हुए भी योग का अभ्यास कर सकता है। अर्जुन क्षत्रिय था। पाण्डव सेना का सेनापति तो नहीं था, पर महत्त्व उसका बहुत था और उसी पर सारा दारोमदार था। वही लड़ाई से विचलित हो गया, उसके मन में मोह हो गया। तब कृष्णजी ने उसे समझाने की कोशिश की, पर अर्जुन ने भी प्रश्न करने शुरू किये। उसने कहा कि भगवान आप कहते हैं–

अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य:।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रिय: ॥ 6.1 ॥

अर्थात् 'कर्मफल का आश्रय लिए बिना जो मनुष्य विहित कर्म करता है वह संन्यासी है, वह योगी है। जो अग्नि का और समस्त क्रियाओं का त्याग करके बैठ जाता है, वह नहीं।' आप मुझे कर्म-मार्ग में क्यों धकेल रहे हैं? मुझसे दोहरी भाषा क्यों बोल रहे हैं? एक तरफ तो मुझे ज्ञान का मार्ग बता रहे हैं और दूसरी तरफ मुझे कर्म में धकेल रहे हैं। आप मुझे भ्रमित कर रहे हैं। मैं लड़ाई लड़ूँ या छोड़ूँ?

मनुष्य जीवन में तो लड़ना है, लड़ाई छोड़नी तो है नहीं। मगर आध्यात्मिक जीवन भी जीना है। लड़ने का मतलब क्या है? तलवार-बंदूक की बात नहीं है। गृहस्थ जीवन एक लड़ाई है। इसे भी कुरुक्षेत्र कहते हैं, जिसमें कौरव और पाण्डव के बीच लड़ाई हो रही है। कौरव बहुसंख्यक हैं, जबकि पाण्डव अल्पसंख्यक। नहीं हैं क्या? बुरे विचार ज्यादा हैं और अच्छे विचार कम।

अर्जुन भगवान कृष्ण से कहता है कि आप दो बातें क्यों बोल रहे हैं। कभी बोलते हैं लड़ो, कभी कहते हैं छोड़ो। एक बात बताओ, लड़ूँ या छोड़ूँ? तब उन्होंने कहा, छोड़ने का तो सवाल उठता ही नहीं है। तुमको लड़ना है, यह तुम्हारी नियति है। तुमको गृहस्थ आश्रम में रहना ही है, यह तुम्हारी नियति है। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, उनका पालन करना तुम्हारी नियति है। परन्तु आध्यात्मिक जीवन भी जीना है।

कर्म-संन्यासी का मतलब होता है, कर्म करते हुए भी संन्यासी की तरह रहना। जो लड़ाई करते हुए भी योग का अभ्यास करता है, वह योगी है, कथित संन्यासी है।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।

वास्तु के बारे में कुछ बताइये।

मकान बनाने का तरीका, चूल्हा रखने का तरीका, टॉयलेट बनाने का तरीका, यही सब वास्तु के अन्तर्गत आता है।

पर इसे माना जाए या नहीं?

जब तक तुम्हारे पास मकान है, तुम मानो। पर जब मकान ही नहीं है तो? दुनिया में बहुत से लोग बिना मकान के रहते हैं, झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं। गाँवों में ही नहीं, शहरों में भी झोपड़ियाँ हैं। दिल्ली में भी झोपड़ियाँ हैं। अब उनको जिधर खुला मिलता है, बेचारे उधर ही दरवाजा रखते हैं। उनकी पसंद का सवाल तो है नहीं। अस्सी प्रतिशत हिन्दुस्तानियों के पास रसोईघर और टट्टीघर नहीं है। वे क्या वास्तु करेंगे?

तुम गाँव में जाकर देख लो। पता नहीं तुम लोग गाँव-देहात में रहे हो कि नहीं। वे लोग बाहर में दो पत्थर रख लेते हैं और रसोई बना लेते हैं। बरसात में थोड़ा अंदर आ जाते हैं। बरामदे में बना लेते हैं, पर रसोईघर नहीं रहता है। अब जिनके पास रसोईघर ही न हो, उनके लिए रसोईघर उत्तर में हो या दक्षिण में या पूर्व में या पश्चिम में, यह बात कोई मायने रखती है क्या? और जहाँ तक बेडरूम का सवाल है, उनके यहाँ तो बेडरूम और डेथरूम एक ही साथ होते हैं! आम हिन्दुस्तानी के पास बेडरूम, ड्रॉईंगरूम, डाईनिंगरूम और गेस्ट हॉउस नाम की कोई चीज नहीं है। वास्तु की व्यवस्था तब होती है जब तुम्हारे पास बड़ा मकान हो।

उसको देखना चाहिए कि मकान का मुँह सड़क की तरफ बना है। जो दिखना नहीं चाहिए, वह सड़क की तरफ नहीं होना चाहिए। यह नहीं कि सड़क की तरफ निकल कर बाजू वाले लोगों को देख रहे हैं। वास्तु में समझ-बूझ होनी चाहिए। हमारे पास वास्तु की किताब है। स्वामी सत्संगी वास्तु पर बहुत किताब पढ़ती रहती है। हमारे और इनके बीच दंगल भी होता रहता है, क्योंकि ये तो पढ़ने-लिखने वाले हैं। हमने इनको कहा कि इसे तुम यहाँ पर लगाओ, इसका यह प्रयोजन है।

एक घर में, अस्पताल में, स्कूल में, समुदाय में, संयुक्त परिवार में सब चीजें अलग होनी चाहिए। जैसे, स्कूल का गेट कहाँ पर होना चाहिए? वास्तु के अनुसार नहीं, सामान्य समझ के अनुसार। यदि लड़कियों का स्कूल है, तो उसका गेट कहाँ होना चाहिए, अगर लड़कों का स्कूल है तो उसका गेट कहाँ होना चाहिए? अस्पताल का गेट कहाँ पर होना चाहिए? इसमें आदमी को बहुत-सी चीजें यथार्थ को आधार बना कर माननी पड़ती हैं, उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम को आधार बनाकर नहीं। हाँ, वह भी एक आधार है, हम इसको मना नहीं करते हैं। हमसे पूछते हैं कि स्वामीजी गेट वहाँ दे दें, तो हम कहते हैं, 'नहीं, वहाँ नहीं, गेट उधर बनाओ।' वहाँ क्यों बनेगा? हमारा निर्णय यथार्थ को सामने रख कर, सचाई को सामने रखकर होता है। गाड़ी यहाँ से आएगी, वहाँ से जाएगी। सेप्टिक टेंक कहाँ पर बनाना है? सुलभ कहाँ पर बनाना है? वहाँ जहाँ पर गाड़ी बाद में जाकर उसको निकाल सके। आखिर उसको साफ तो करना पड़ता है न आठ-दस साल में। हम लोग गाड़ी नहीं ला पाते, तो मकान ही तोड़ा जा रहा है। ऐसा तो नहीं हो सकता है, सब चीजों को देखना पड़ता है।

वास्तु को भी मानना जरूरी है, मगर आदमी को भगवान ने एक चीज दी है, और वह है सहज बुद्धि। एक बात मैं तुम को बता रहा हूँ। दुनिया में आज भवन निर्माण के मामले में सबसे ज्यादा उन्नति किन देशों ने की है? चीन ने की है क्या? नहीं। इंगलैण्ड और फ्रांस ने। वहाँ वास्तु का कहीं नाम नहीं है। वहाँ तो समितियाँ फैसला करती हैं। इधर घर होना चाहिए या नहीं, पहले निरीक्षण होता है। उसके बाद एक निशान मारते हैं, फिर उस मकान का टैक्स जारी होता है। जब तक पर्यावरण निरीक्षक उस मकान को प्रमाणपत्र नहीं देगा, तब तक वह मकान आगे नहीं बढ़ सकता है। हमने वहाँ आश्रम बना कर देखा।

उनका जो निर्माण होता है, यथार्थ को आधार बनाकर होता है। यथार्थ को आधार बनाकर चलने वाली जाति ही दुनिया में सब पर राज करती है, और भारत के लोगों ने इतना बड़ा साम्राज्य खोया। हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा राष्ट्र था, साम्राज्य था। कोई भी साम्राज्य सहज बुद्धि पर ही आगे बढ़ता है। मकान कैसे बनाना या बच्चों को कैसे पढ़ाना या शादी कैसे करनी, इन सब चीजों में अब हम लोगों को बहुत बड़े परिवर्तन की आवश्यकता को देखना होगा।

हम जिस घर में रहते हैं, उस घर का प्रभाव आता है। वास्तु में यही बताया जाता है। जैसे, इस मकान में यदि कोई रहता है, तो वास्तु जानने वाले बता देते हैं कि इस घर में यह-यह प्रभाव आ रहा है।

हाँ, यही मानते रहो तुम। बहुत लोग मानते हैं। ऐसी बात नहीं कि नहीं मानते हैं। मैं असली बात यह बोल रहा हूँ कि अगर वास्तु सत्य है, तो अस्सी प्रतिशत के लिए वह सत्य क्यों नहीं है? हिन्दुस्तान में एक अरब दस करोड़ के लगभग की आबादी है। इनमें से अस्सी करोड़ लोगों के पास कोई सुविधा नहीं है। दुनिया की आबादी पाँच अरब है। इसमें कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसके गरीबों की आबादी हमारे राष्ट्र से ज्यादा हो। जहाँ अमीरी है, बड़े लोग हैं, वहाँ लोगों ने पर्यावरण को देखा, इंजिनीयरिंग को देखा, जमीन को देखा, उसके आस-पास की जगह को देखा और तब उसके मुताबिक उन लोगों ने मकान बनाना शुरू किया।

जहाँ तक खुशी का सवाल है, वह तो उस मकान में भी आ सकती है, जिसमें हम रहते हैं। मकान के साथ क्या सम्बन्ध है? कोई सम्बन्ध नहीं है। हम बोलते नहीं हैं, पर हमको बहुत मजा आता है। अब किसी घर को मोल ले लिया और बेटा मर गया, ऐसा हुआ है। मतलब पूरी बद्दुआ घर पर चली जाती है। वह बेटा एड्स से पीड़ित था, यह मालूम नहीं हुआ। मैं हिसाब-किताब की बात बोल रहा हूँ, आप लोगों को विश्वास नहीं दिला रहा हूँ। मकान मोल लिया और लड़का मर गया या लड़की मर गयी। मगर यह मालूम नहीं हुआ कि एड्स से पीड़ित थी, इसलिये मर गई। दोष पूरा मकान पर, मकान बेच दिया और अब ससुराल में रह रहा है बड़े आराम से। बड़े सस्ते में मकान मिल गया! वह आराम के साथ रहता है, परन्तु बेटा-बेटी मर गये। ये सब चीजें हमारी समझ में तो नहीं आती हैं और आपको आवश्यक लगती हों तो आप जानिए।

पर क्या यह नहीं कहा जाता है कि इस तरह के मकान में रहने से ये बीमारियाँ होती हैं, दूसरे तरह के मकान में रहने से दूसरी?

हाँ, कहते हैं। मैंने भी वास्तु-शास्त्र के संस्कृत सूत्रों में पढ़ा है। यह गौरी-गणेश भी आश्रम का एक हिस्सा है। अब पूरब-पश्चिम के अनुसार एक-एक कोना खोलकर रखें, उसमें बहुत दिक्कत थी। अंत में फिर मेरे पास आए, तो मैंने कहा कि गेट तुम उधर बनाओगे तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी, इसलिए इधर बनाओ। इसमें यह फायदा है। आखिर में इनको हमारी बात माननी ही पड़ती है, गुरुजी जो हैं न हम। अगर हम न हों, तो ये लोग अपने वास्तु-शास्त्र पर ही चलने वाले हैं।

गृहस्थ आश्रम के लिए कौन-सी साधना उपयुक्त है?

गृहस्थ आश्रम में सबके लिए एक जैसी परिस्थिति नहीं बनती। गृहस्थी तो एक सामान्य नाम है। उसमें मजदूर भी होता है, व्यापारी भी, धर्मात्मा भी और पेन्टर भी। एक आदमी निश्चिन्त प्रवृत्ति वाला होता है, तो दूसरा आदमी हमेशा हर चीज में खोपड़ी लगाता रहता है। इसलिये गृहस्थ आश्रम में अनेक प्रकार के भेद होते हैं। उसके अनुसार जो साधना निश्चित की जाती है, वह क्रमबद्ध साधना होती है।

क्रमबद्ध साधना का मतलब समझाने के लिये हम आपको एक उदाहरण देते हैं। आप अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं, तो उनको सीधे बी. ए. में भर्ती नहीं करते हैं। आप उनको बालवाड़ी में भर्ती करते हैं, किन्डरगार्टन में भर्ती करते हैं। लोअर केजी, अपर केजी, प्रायमरी, मिडिल, मैट्रिक, इनको ग्रेड कहते हैं। कोई भी बच्चा ग्रेड को जब चाहे पार नहीं कर सकता। हाँ, कोई बच्चा तेज हुआ, तो एक-दो साल आगे हो जाता है। कोई बुद्धू हुआ तो एक-दो साल पीछे हो जाता है।

सामान्यत: अगर कोई कहे कि यह लड़का पन्द्रह साल का है, तो हमको अंदाज लगता है कि नौवीं कक्षा में होगा, एक-दो साल का फर्क जरूर हो सकता है। अब यदि वह लड़का चाहे कि मैं सापेक्षता या क्वान्टम का सिद्धान्त सीधे किताब उठा कर सीखूँ, तो यह संभव नहीं। या उसके पिता विज्ञान के प्राध्यापक हों और उनकी बातें सुनकर वह बी.एस.सी. या एम.एस.सी.करना चाहे, तो नहीं कर सकता। उसको पहले दशमलव और एल. सी. एम. वगैरह सीखना पड़ेगा। इस प्रकार हर साधना में ग्रेड का महत्त्व होता है। आम या

जामुन के पेड़ में अथवा पालक के बगीचे में कितना भी पानी दो, पर जब समय आएगा तभी उनमें फल-फूल आता है। ज्यादा पानी देने से हो सकता है उसमें वायरस भी आ जाए।

दो-तीन बातें पहले बता देता हूँ, फिर समझाऊँगा। पपीते में खूब पानी जमा कर दोगे, तो मर जाएगा। धान की ही तरह गेहूँ को भी पैदा करना चाहो, तो गेहूँ पैदा नहीं हो सकेगा। संसार में हर व्यक्ति, हर वस्तु, हर वनस्पति के साथ एक विचित्रता जुड़ी है।

तुम एक गृहस्थ हो और शादी-शुदा हो, बाल-बच्चे हैं। उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा और शिक्षा की चिन्ता है। व्यापार में हमेशा अंदेशा रहता है कि किसी दिन बिक्री अच्छी हो जाती है, तो किसी दिन बोहनी भी नहीं होती। ये सब चीजें तुम्हारे संस्कार में, मन में, व्यक्तित्व में जमा हैं। हमेशा परेशान रहते हो। हमारा तो भविष्य है नहीं। बन गया तो ठीक, नहीं तो आग लगे तो लग जाने दो। क्या फर्क पड़ता है? न बीबी न बच्चा, न आमदनी न गच्चा। तुम लोगों से तो होगा नहीं। जिस सड़क पर यातायात नहीं है, उस पर गाड़ी की गति जरूर बढ़ाई जा सकती है, पर जिस सड़क पर यातायात है, उस पर गाड़ी की गति को संतुलित ही नहीं रखना, बल्कि एक्सीलेटर पर पैर रखने के पहले अगर गाड़ी चल दे तो थोड़ा खींचना। साधना में यही होता है।

सबसे पहले गुरु करना। गुरु से मंत्र ले लेना और मंत्र लेकर उस मंत्र का जितना बोलते हैं, उतना निश्चित रूप से जप करना। उसको बढ़ाना नहीं, घटाना भी नहीं। ज्यादा करने से कुछ होता नहीं, कम करने से कुछ घटता नहीं। और जहाँ तक मन की एकाग्रता का सवाल है, वह तो बी.ए. का कोर्स है। लोगों को इतना भी पता नहीं कि मन की एकाग्रता कितनी मुश्किल है। इतनी मुश्किल है कि इसके बारे में कहा गया है–

मैं तो उन संतन का दास जिन्होंने मन मार लिया।

जिन्होंने मन को बस में कर लिया, वे जूनियर गॉड हो जाते हैं, छोटे भगवान। मन को, चित्त को एकाग्र करना बच्चों का खेल नहीं है। यह राज योग का विषय है। पातंजल योग में कहा गया है–*योगश्चित्तवृत्ति निरोध:।* हर किताब में मन की एकाग्रता पर जोर दिया जाता है। पर यह बी.ए. का कोर्स है, इतना सरल नहीं है। दूसरी चीज यह है कि अर्जुन को, जो भगवान श्रीकृष्ण के सखा थे, गीता में पूछना पड़ा कि भगवान आपको पाना बड़ा

मुश्किल है। *तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्*—हवा को पकड़ने जितना मुश्किल है मन का नियंत्रण। फिर वही बात हम लोग क्यों कर रहे हैं? भगवान ने भी कहा—'*असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्*—अर्जुन, तुम ठीक कहते हो। मन जो है, उसे नियंत्रण में ले आना बहुत मुश्किल है। बहुत चंचल है यह।'

गृहस्थ आश्रम में आध्यात्मिक जीवन के लिए सबसे सरल साधना है—गुरु-मंत्र का जप, भगवान के किसी स्वरूप में श्रद्धा, चाहे जो भी देवी-देवता हों, स्वास्थ्य के लिये आसन-प्राणायाम का अभ्यास और शरीर की नाड़ियों को थोड़ा-सा शान्त करने के लिये योगनिद्रा तथा श्वास पर ध्यान। यह श्वास पर ध्यान एकाग्रता नहीं है, जैसा लोग कहते हैं। यह एक तरह से विश्रान्ति है। थोड़ा-सा मन शान्त हो जाता है। योग, अध्यात्म या भक्ति में बहुत अधिक समय नहीं देना चाहिए। मनुष्य शरीर कर्म प्रधान है। भगवान ने इस संसार को कर्म प्रधान बनाया है। कर्म का मतलब क्या होता है? तन और मन को किसी-न-किसी काम में लगाना। चाहे वह निष्काम कर्म हो, चाहे सकाम। जैसे संन्यासी निष्काम कर्म में दिनभर मन लगाते हैं, वैसे ही तुम लोग सकाम कर्म में मन लगाते हो। सुबह से शाम तक दिनभर तो तुमको काम करना ही पड़ता है ।

सकाम और निष्काम, ये दो प्रकार के कर्म होते हैं। शास्त्र कहता है कि संन्यासी, जिन्होंने घर छोड़ दिया है, जिनका घर-बार नहीं है, वे निष्काम कर्म में रहते हैं। बिना अपेक्षा के कर्म करते रहो। दिनभर पत्ता उठाते रहो, काम करते रहो। गृहस्थ आश्रम में फलाकांक्षा से कर्म किया जाता है। अगर तुम फल की आकांक्षा नहीं करोगे, तो तुम गाड़ी को किस दिशा में ले जाओगे? यहाँ से तुम गाड़ी चलाकर ले जा रहे हो, पर कहाँ ले जा रहे हो पता ही नहीं है। जो सड़क मिल जाएगी, उसी में चले जाओगे। इसका मतलब दिशाहीन हो न?

गृहस्थ आश्रम में फलाकांक्षा से प्रेरित होकर प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता है। यह एक सचाई है। इस सचाई से कभी किसी ने इनकार नहीं किया। जो कर्म तुम करते हो, फलाकांक्षा रहित है क्या? रात को सोते हो, सुबह उठने के लिए; सुबह उठते हो, दिनभर काम करने के लिए। हर चीज में हल्की आकांक्षा है। कभी-कभी अंतर पता नहीं लगता है। भोजन, निद्रा, सुरक्षा, स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध, धन-सम्पत्ति, यश, सत्ता, ये सब आकांक्षाएँ हैं। क्या कोई व्यक्ति आकांक्षाओं से रहित है? अगर है, तब तो वह कुछ और ही है।

जब तक आकांक्षाओं से रहित नहीं हो जाते, तब तक उग्र साधना नहीं करनी है। उग्र साधना किसलिए करनी होती है? मोक्ष के लिए। पर जब मोक्ष के लिए ही साधना करनी है, तो फिर ये आकांक्षाएँ किस चीज के लिए कर रहे हो तुम? घर-बार किसलिए है? सब छोड़कर भाग जाओ। तुम्हारे अंदर आकांक्षाएँ अंतर्निहित हैं। अंतर्निहित का मतलब होता है स्वाभाविक। जब तक तुम्हारे अंदर इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, योजनाएँ और सपने हैं, तब तक जो भी साधना की जाए, उससे उसी की प्राप्ति की जाती है।

किसी भी प्रकार की प्राप्ति के लिए गृहस्थ को सबसे पहले स्वस्थ रहना चाहिए। स्वस्थ का मतलब मोटा-ताजा होना नहीं होता है, स्वस्थ माने कोई बीमारी, जैसे, मधुमेह वगैरह नहीं होना। अब देखो, मधुमेह वाला बीस-चालीस हजार, डेढ़-दो लाख उसी में खर्च किये जा रहा है। बीमारी के लिए ही पैसा कमा रहे हो, बाल-बच्चों के लिए नहीं। डॉक्टर की फीस देने के लिए, अपनी जिन्दगी बचाने के लिए कमा रहे हो। स्वास्थ्य ऐसा नहीं होना चाहिए। अब कभी बुखार आ जाए, सर्दी-खाँसी हो जाए, तो समझ में आता है। पर मधुमेह में क्या है, घूमना-फिरना कम कर दिया जाता है, हर चीज कम कर दी जाती है। अगर पेप्टिक अल्सर पकड़ लिया, फिर रात-दिन वही डॉक्टर के चक्कर लगाओ।

दूसरी चीज, मन की उस गति पर, विचारधारा पर नियंत्रण करना, जिसकी वजह से दुर्घटना होती है। गाड़ी की गति पर नियंत्रण करते हो न? गियर बदल कर उसकी गति थोड़ी नीचे ले आते हो। कभी-कभी मन में थोड़ा ब्रेक लगाना ही चाहिए। मन की उस गति पर नियंत्रण करना चाहिए, जिसकी वजह से जीवन में दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। वह गति क्या है? उस गति का नाम है वासना। मनुष्य के मन में जो वासनाएँ होती हैं, चाहे काम-वासना हो, क्रोध-वासना हो या लोभ-वासना हो, इन पर थोड़ा-सा नियंत्रण करने के लिए कभी-कभी सत्संग में जाना चाहिए। महात्माओं के सत्संग में जाने से थोड़ी प्रेरणा मिलती है। अब घर में तुम्हारा और बीबी का रोज झगड़ा हो रहा है। कोई उपाय नहीं मिल रहा है, तुम समझते हो वह गलत है, वह समझती है तुम गलत हो। न तुम सही, न वह सही, न वह गलत, न तुम गलत। मगर दोनों में झगड़ा हो रहा है। किसी महात्मा के यहाँ गए, उनसे पता लग गया कि गुस्सा करने से अपना ही नुकसान होता है। यह दिमाग में आ गया, उस दिन से गुस्सा ही करना छोड़ दिया। चलो परिवर्तन हो गया। माने अपना गियर बदलना सीख लिया।

वासनाएँ हर व्यक्ति में बीज रूप में होती हैं, जैसे मिट्टी में बीज रूप में घास रहती है। जब पानी पड़ता है, गर्मी लगती है, तो वह घास निकलती है। कहाँ से निकलती है? मिट्टी से निकलती है। पर मिट्टी में आपने घास डाली तो नहीं थी? तो वह किस अवस्था में थी? सुप्त अवस्था में थी। वासना का मतलब यही है। जो दिखता नहीं, मगर है। बीज में वृक्ष छिपा है। मिट्टी में घास छिपी है। पानी में जीवन छिपा है। नहीं है क्या?

वासना तुम्हारे अंदर छिपा हुआ संस्कार है, चाहे पूर्वजन्म का हो या इस जन्म का। यह कैसे जाएगी? बैठ कर सोचने से नहीं जाएगी। इसके दो ही उपाय हैं—आत्म-विचार और योग। आत्म-विचार घर बैठने से नहीं होता, उसके दो तरीके हैं। एक है स्वाध्याय, किसी महात्मा की जीवनी को पढ़ लिया या उनके सत्संग में जाकर प्रवचन सुन लिया। भय की स्थिति क्या है, लोभ, काम, ईर्ष्या, ब्रह्मचर्य, त्याग, कर्म, वैराग्य क्या हैं—ये सब बातें सत्संग में बतलाते हैं। जैसे दुकान में बतलाते हैं कि यह सम्बलपुरी साड़ी है या लखनवी साड़ी है, तब फिर तुम अपने मुताबिक लेते हो। अपने को तो दाम पता नहीं है, दुकानदार को बतलाना पड़ता है। इसी प्रकार अपने बारे में जानने के लिए सत्संग, स्वाध्याय और योग जरूरी हैं।

चित्त को बहुत ज्यादा एकाग्र भी नहीं करना। अभी दूसरी बात पर जा रहा हूँ। बहुत से लोग पद्मासन लगाकर, आँख बंद करके पूरा जोर मारते हैं। चित्त को एकाग्र करने से मस्तिष्क के अंदर जो रासायनिक और विद्युत-चुम्बकीय क्रियाएँ होती हैं, वे बदलती हैं, क्योंकि मस्तिष्क एक पदार्थ है। यह शरीर एक पदार्थ है। जैसे तुम्हारा इंजन एक पदार्थ है। उसमें तेल डालते हो, चलाते हो तो चलने लगता है, बिजली उत्पन्न होने लगती है, एक क्रिया होने लगती है।

मस्तिष्क के अंदर भी विद्युत-चुम्बकीय क्रिया होती है। किताबों में विद्युत के बारे में सब लिख दिया गया है। मस्तिष्क में लाखों तार हैं, जिन्हें नाड़ी कहते हैं। आप लोग ये खून वाली नाड़ी नहीं समझना। मैं नस के बारे में बोल रहा हूँ। उन नाड़ियों में विद्युत बहती है। जब तुम्हारे अंदर गुस्सा आता है, तो उनमें परिवर्तन होता है; जब तुम किसी चीज के बारे में बहुत सोचते हो, फिक्र करते हो, तो उनमें परिवर्तन आता है और यह परिवर्तन शरीर में प्रतिलक्षित होता है। पूरे शरीर में उसका प्रभाव प्रतिलक्षित होता है। जब तुम बहुत खुश हो जाते हो, सारे शरीर में प्रतिलक्षित होता है। कोई घबराहट की बात सुनने में आती है, कान से सुना, मस्तिष्क ने उसे गहराई से लिया।

उसका असर कहाँ पड़ता है? हृदय पर पड़ता है। बेचैनी होने लगती है, पूरे शरीर में प्रतिलक्षित होने लगता है।

जब तुम बहुत जोर से ध्यान करते हो और ये विद्युत-चुम्बकीय क्रियाएँ सक्रिय होती हैं, तब मस्तिष्क की तरंगें बदलती हैं। विज्ञान में इनको कहते हैं–अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा तरंगें। उसमें कभी-कभी एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि आदमी विषाद में चला जाता है। पूरा-का-पूरा विद्युत-चुम्बकीय सर्किट अल्फा आवृत्ति में काम करने लगता है, थीटा और बीटा में नहीं। राजयोग की साधना चित्त की वृत्ति को एकाग्र करने की साधना है, उसके लिए सबसे पहले जीवन की परिस्थिति को बदलो। तब कोई अच्छा गुरु ढूँढो। जीवन की परिस्थिति को बदले बिना, गुरु खोजे बिना यह विद्या प्राप्त होने की नहीं है। केवल सुन लिया कि चित्त की वृत्ति को नियंत्रित कर लेने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, कुण्डलिनी जागरण होता है, इससे कुछ होने का नहीं है।

हमारे वेदों में भगवान पर श्रद्धा रखने, भगवान पर विश्वास करने को ब्रह्म नीति कहा जाता है। अब भगवान ऊपर में रहता है कि सारे विश्व में रहता है कि तुम्हारे अंदर में रहता कि तुम्हारे पवित्र स्थान में रहता है कि किसी तीर्थ स्थान में रहता है, उसके बारे में मेरे को बोलने की जरूरत नहीं है। लेकिन भक्ति जरूरी है। जैसे शादी हर एक दुर्बल आदमी की जरूरत है, भोजन हर बच्चे की जरूरत है, निद्रा हर आदमी की जरूरत है, उसी तरह भक्ति हर आदमी की जरूरत है। भक्ति का एक ही मतलब होता है, भगवान के प्रति अटूट विश्वास। वह किसी से पूछने का नहीं है, स्वाभाविक होना चाहिए। जैसे तुमको सूरज पर विश्वास है कि कल सवेरे आएगा, जैसे तुमको अपने पर विश्वास है कि कल सवेरे तुम बिस्तर से उठने वाले हो, मरने वाले नहीं हो। यह सोच कर कोई नहीं सोता है कि कल सवेरे नहीं उठूँगा। तुमको विश्वास है कि कल सवेरे मैं उठने वाला हूँ, मेरे को यह करना है, वह करना है। यह विचार नहीं रहता कि सवेरे उठूँगा कि नहीं।

विश्वास का मतलब होता है, जहाँ पर आदमी को शंका न हो। इसलिए उसके बारे में कुछ सोचता नहीं। भगवान साकार है या निराकार, राम जी ने किस दिन जन्म लिया या कृष्ण जी ने किस क्षेत्र में जन्म लिया? भगवान के बारे में ये सब शंकायें करने का तुमको कोई हक है ही नहीं। तुम्हारे पास उतना दिमाग ही नहीं है कि तुम साबित कर सको कि भगवान नहीं हैं। न ही तुम साबित कर सकते हो कि भगवान हैं। तुम्हारी उतनी खोपड़ी नहीं है, न साबित

करने की, न नकारने की। जब वहाँ पहुँचने की ताकत ही नहीं है, तो बेकार में सिर क्यों चलाते हो, चुप बैठो। जितना भगवान ने तुमको दे दिया, जितना तुम्हारे माता-पिता ने तुमको बतला दिया, जितना तुम्हारे धर्म ने तुमको सिखा दिया, उतना ही लेकर बैठो।

इन्सान जब गृहस्थ जीवन में दुःख में फँस जाए और चारों तरफ अंधकार ही अंधकार नजर आने लगे, अनेक प्रयासों के बावजूद वह बाहर न निकल पाए और लक्ष्य बहुत दूर प्रतीत हो, जब अनेक कार्य अधूरे हों, जब इन्सान अपने आपको विवश महसूस करने लगे, तब उसे क्या करना चाहिए?

एक बार हम ऋषिकेश में गंगाजी पार कर रहे थे। वहाँ गंगाजी बहुत बड़ी हैं। इस पार से उस पार जा रहे थे। बीच में किसी जगह पर हमें भँवर ने घेर लिया। मतलब अब हम न तो अपने हाथ हिला पाएँ और न पैर। पहले तो प्रयास किया, उसके बाद हमने जोर से आवाज दी, 'बचाओ'। किनारे में तो बहुत लोग रहते थे, हमने अपने आपको छोड़ दिया। हाथ-पैर चलाना छोड़ दिया, क्योंकि चला ही नहीं पा रहे थे। बहते गए, बहते गए, बहते गए। एक हाथ थोड़ा हिला रहे थे, ताकि डूबें नहीं। नीचे पर जहाँ गंगा मझधार में जाती है, वहाँ पर एक पत्थर मिल गया। वही पकड़कर बैठ गए। पर दिमाग ठिकाने था।

जब दिमाग भी थोड़ा व्याकुल होने लग जाए कि हमें कोई रास्ता नहीं मिल रहा है?

अगर दिमाग को ही ठीक रखोगे, तो रास्ता जरूर मिलेगा।

अगर लगने लगे कि मेरा आत्म-विश्वास खत्म होता जा रहा है?

मनुष्य के जीवन में जो परिस्थितियाँ आती हैं, वह एक चीज है और उन परिस्थितियों से प्रभावित होने वाला मन दूसरी चीज है। जब दोनों का गठबंधन हो जाता है, परिस्थितियों का मन के साथ और मन का परिस्थितियों के साथ, तब मन कुछ नहीं कर सकता। तब परिस्थितियाँ तुम्हें किधर बहा ले जाएँ, इसका कुछ पता नहीं। इसलिए मन को परिस्थितियों से अलग रखना पड़ता है और इसके लिए बहुत-से उपाय हैं। कठिन नहीं है, पर इसका रास्ता थोड़ा पीछे से है।

परिस्थितियों में रहकर तुम कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि परिस्थितियाँ मन को निश्चित रूप से प्रभावित करती हैं। इसके लिए परिस्थितियों से बाहर निकलना पड़ता है और एक ऐसी जगह, ऐसे स्थान, ऐसे वातावरण में जाना पड़ता है जहाँ वे परिस्थितियाँ न हों। वहाँ पर मन को आराम मिलता है। आराम मिलने के बाद फिर मन अपने अंदर खोजबीन करता है और कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेता है। हम इसके साक्षी रहे हैं। हमको इस रास्ते में करीब-करीब साठ साल हो चुके हैं। जिस आश्रम में हम रहते थे, वह ऋषिकेश में था। वहाँ तुम लोगों की तरह अनेक लोग आते थे और गुरुजी से कहते थे कि स्वामीजी हम आश्रम में रहेंगे, आप हमको संन्यास दे दीजिए। वे लोग छः महीने, सालभर या डेढ़ साल तक रहते थे। इसके बाद उनके मन में थोड़ा-सा विसर्जन होता था, मन से वे सब चीजें बाहर आ जाती थीं। कई तो खाते-खाते चले गए। कोई तीन महीने में, कोई छः महीने में, तो कोई सालभर बाद वापस चला जाता था।

यहाँ आश्रम में हजारों की संख्या में लोग आते हैं। रोज चिट्ठियाँ और फोन आते हैं कि हम आना चाहते हैं। हिन्दुस्तान में आश्रम ऐसे स्थान हैं जहाँ लोग परेशान होकर जाते हैं। उनके मन में क्षणिक वैराग्य की भावना आती है। किसी के घर में कोई मर जाता है, किसी के घर में झगड़ा हो जाता है, किसी के घर में धन की हानि हो जाती है, किसी के घर में पत्नी या पति या बड़े या छोटे की मौत हो जाती है, कहीं-कहीं बहुत बड़ी अप्रत्याशित दुर्घटनाएँ हो जाती हैं, कहीं पर व्यभिचार होता है, कहीं पर दगाबाजी होती है, ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, एक हो तो गिनाऊँ। वह तो तुम भी उस परिस्थिति में रहते हुए गिन नहीं पाओगे। इस दुनिया में कितनी परिस्थितियाँ हैं, जो मनुष्य को परेशान कर सकती हैं, पर उन परेशानियों को दूर करने के लिए परेशानियों में रहने की जरूरत नहीं है। वहाँ रास्ता नहीं है। कीचड़ में रहते हुए जितनी भी उछल-कूद मचाओगे, उस दलदल में ही तुम्हारे पैर फँसते जाएँगे। उसमें से निकलना पड़ता है।

हम लोगों के यहाँ, भारतवर्ष में प्राचीन काल से एक बहुत अच्छी प्रथा है। लोग आश्रम में चले जाते हैं और वहाँ दस-पन्द्रह दिन, एक महीना, साल-दो साल या उससे अधिक भी रहते हैं। बारह साल तक की आश्रम प्रवास की अवधि हम लोगों के यहाँ होती है। वहाँ सिर मुड़ाकर और गेरु कपड़े पहनकर एकदम विरक्त की तरह रहते हैं। लाखों लोग आते हैं और

उनमें से लाखों लोग साल-छ: महीने में चले जाते हैं। कुछ लोग बारह साल भी रहते हैं, और उसके बाद वे उन परिस्थितियों का पुनर्निर्माण करते हैं, जिनसे वे भागे थे। आप ध्यान से सुनना, उन परिस्थितियों का पुनर्निर्माण करते हैं। एक नया गृहस्थ-जीवन शुरू करते हैं, प्रवृत्तिमय जीवन बसाते हैं। आश्रम, मंदिर, अनाथालय, अस्पताल आदि खोलते हैं, चेला-चेली बनाते हैं, पैसा जमा करते हैं, खर्चा करते हैं, यहाँ-वहाँ भागते हैं। वह गृहस्थी नहीं है क्या? वह परिस्थिति नहीं है क्या? पर उस परिस्थिति में वे लोग एक नए ढंग से जीते हैं। यह वही परिस्थिति है, जिस परिस्थिति में वे लोग परेशान थे। पर इस परिस्थिति में उनका पूरा रवैया ही बदल गया। मेरा कहने का मतलब यह है कि जीवन में जब मनुष्य का अपनी परिस्थितियों पर नियंत्रण न हो, तो उसे परिस्थितियों का त्याग करना चाहिए। परिस्थितियों में रहना एक प्रकार की आत्महत्या है। जानबूझकर अपना जीवन वहाँ पर खत्म कर लेना है। जब तुमको मालूम है कि तुम परिस्थितियों को नहीं बदल सकते हो, तो फिर वहाँ रहने से फायदा क्या है?

मैं यह नहीं कहता कि आदमी को संन्यास लेना चाहिए या कर्म का त्याग करना चाहिए। मैं यह भी नहीं कहता कि मनुष्य को आकांक्षाओं का, वासनाओं का त्याग करना चाहिए। मगर जितनी देर तुमको अपनी मोटर की गैरेज में मरम्मत करानी है, उतनी देर मोटर को बन्द रखना पड़ेगा। चलती मोटर की मरम्मत नहीं हो सकती। मोटर को बंद करना पड़ता है। मरम्मत करानी है, तो कर्म का यह जितना व्यापार है, व्यक्ति को थोड़े दिन के लिए रोकना पड़ता है। और मरम्मत नहीं करानी हो, तो चलाते रहो, एक दिन गाड़ी का कार्बोरेटर फ्यूज हो जाएगा या उसका आर्मेचर खराब हो जाएगा। बहुतों का होता है। परिस्थितियों के बीच रहकर परिस्थितियों को बदलना अगर सम्भव न हो, तो उन परिस्थितियों के बीच रहना आत्महत्या के समान होता है। हमारे यहाँ के लोगों ने इस बात को बिल्कुल निश्चित करके रखा है। इसीलिए हमारे यहाँ हजारों आश्रम हैं, एक नहीं।

हिन्दुस्तान में हिमालय से कन्याकुमारी तक ऋषि-मुनियों के छोटे-बड़े आश्रमों में लाखों-करोड़ों गृहस्थ जाते हैं और वहाँ जाकर उनको एक नवीन दृष्टि मिलती है। वह नवीन दृष्टि उनको इसलिए मिलती है कि वे परिस्थितियों से अपने को अलग करके देखते हैं। आप परिस्थितियों के अंग नहीं, बल्कि उनसे अलग, उनके द्रष्टा हैं।

आश्रम में रहने के बाद किस तरह का काम करना चाहिए?

देखो जी, दुनिया में रहने के लिए कमाई तो करनी पड़ती है और कमाई के लिए काम करना पड़ता है। चाहे मजदूर का काम हो या खेती का काम हो या बनिये का काम हो या चोरी-डकैती का काम हो, कुछ तो करना ही पड़ता है। पर जो भी काम हो, उस काम में आदमी का हुनर होना चाहिए। अगर हुनर नहीं होगा, तो चोर पकड़ा जाएगा! कोई भी आदमी अगर अपराध करता है, तो अपराध करने से पहले वह उन सारी चीजों को नष्ट करता है, जो सबूत के रूप में आ सकती हैं। वह जो अपराध करता है, वह तो दूसरे नम्बर पर आता है। पहले नम्बर पर क्या आता है? अपराध से जुड़े जितने भी सबूत होते हैं, उनको मिटाने का प्रयत्न वह पहले करता है। जब देख लिया कि पूरे सबूत मिट गए हैं, न उसके अंगूठे का निशान लगेगा, न ही उसकी किसी और चीज का पता चलेगा, तब ही वह अपराध करता है। उसी प्रकार जब आदमी कमाई के लिए जाता है, तब कमाई करने के लिए उसके अंदर में कुछ गुण होने चाहिए।

बच्चों के प्रति हम लोगों का क्या रवैया रहे, क्योंकि बच्चे सुनते नहीं हैं। हम लोग घर में चिल्लाते हैं, डाँटते हैं, तो भी नहीं सुनते। उनके प्रति हम लोगों को कैसा व्यवहार करना चाहिए? प्यार से भी आजकल बच्चे मानते नहीं हैं।

बहुत ध्यान से सुनना। यह मकान एक मुसलमान ने बनाया है, पर इसमें मुसलमान नहीं रहता है। रहने वाला साधु है, पक्का हिन्दू। क्या कहोगे? बेटा हो बनिये या ब्राह्मण का, पर उसके अन्दर में वैश्य या ब्राह्मण नहीं, और कोई भी हो सकता है। हो सकता है विलायत के किसी राजपरिवार के लड़के की आत्मा वहाँ आ गई हो। आत्मा एक जन्म से दूसरे जन्म में जाती है, मूल तत्त्व यह है। बेटे या बेटी का जो शरीर है, उसका मूल बीज मर्द का वीर्य होता है और उसका कच्चा माल माँ के शरीर में दो सौ सत्तर दिन उसको मिलता है। तुमने उसको कच्चा माल दिया है। उसका डिजाइन दिया है तुम्हारे पति ने। वीर्य की एक बूँद में ढाई अरब कोशिकाएँ होती हैं। ढाई अरब में से एक कोशिका से तुम्हारा-मेरा जन्म हुआ है। कच्चा माल तुमने उपलब्ध कराया, उत्पादन करने के लिए तुम कारखाना बनीं। नौ महीने में तैयार माल निकल गया, डिजाइन फलाना मिस्टर का और कारखाना फलाना मिसेज़ का। परन्तु माल के अंदर जो जीव है, वह कौन है? वह न तो मिस्टर है, न मिसेज़। वह

तो किसी मुसलमान, अंग्रेज, शूद्र, ब्राह्मण, राजा या किसी बड़े नेता की आत्मा हो सकती है।

कोई भी जीवात्मा हो, उसका एक नियम होता है। ऐसा नहीं कि कोई भी आकर तुम्हारे अंदर में घुस जाएगा। माँ के पेट में कोई भी जीव आकर प्रवेश कर जाए, ऐसा नहीं हो सकता। कर्म का एक नियम होता है। जैसे, जब संसद बैठती है तब शपथ होती है। वहाँ सब नहीं जा सकते। जिसको बुलाया जाता है, वही प्रवेश कर सकता है। हर जगह एक नियम होता है। सेना में एक नियम होता है, अस्पताल में एक नियम होता है, न्यायपालिका में एक नियम होता है। वैसे ही प्रकृति के नियम हैं। कौन जीवात्मा किसके अंदर और क्यों जाएगा।

कोई जीवात्मा तुम्हारे अंदर में आ गई है, यह पहली बात तुम याद रखो। अब अगर वह ऐसा जीव निकला, जो कि पूर्व जन्म में कोई साधु-महात्मा था, पर कहीं पर कुछ विचलित हो गया था, तब तो उसको फिर बुद्ध बनने से तुम रोक नहीं सकते। और न विवेकानन्द बनने से रोक सकते हो, न क्राइस्ट बनने से रोक सकते हो, न सत्यानन्द बनने से रोक सकते हो। चाहे तुम उसको मारो-पीटो, चूमो, चाटो। वह तो अपने कर्म को लेकर ही जाएगा। चाहे तुम रोओ, चाहे चिल्लाओ। और यदि उसको चोर-डाकू बनना है, लम्पट बनना है, तो तुम कितना ही उसको साधु-संतों की संगत में डालो, आश्रम में ले जाओ, दीक्षा दिलाओ, उसको तो रावण ही बनना है। उसको तुम रोक नहीं सकोगे, क्योंकि वह उस संस्कार को लेकर आया है और उसको पूरा करेगा। इसका मतलब यह है कि तुमको चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। वह आ तो गया है। जो भी आया, वह तुम्हारे सामर्थ्य के बाहर था, तुम कुछ नहीं कर सकीं।

अब वह बाहर में आ गया है, तो वह जिस तरह से जीना चाहेगा, जिएगा, तुम कुछ नहीं कर सकते हो। अभी चूँकि वह इतना छोटा है कि दौड़-भाग नहीं कर सकता, इधर से उधर जा नहीं सकता, कमा नहीं सकता, इसलिए तुम्हारे अधीन है। पर वह तुम्हारे नियंत्रण में नहीं है। एक बहुत बड़े कवि, खलील जिब्रान ने एक पुस्तक लिखी है, 'प्रोफेट'। कभी समय मिले तो पढ़ लेना। उसकी अंतिम कविता है बच्चों पर। माना कि यह बच्चा तुमने पैदा किया है, मगर यह तुम्हारा नहीं है। यह एक दूसरी आत्मा है, जो तुम्हारे इस घर में आई है। एक मुसलमान ने इस घर को बनाया है, मगर मुसलमान इस घर में नहीं रहता। किसी ईसाई ने उस घर को बनाया होगा, मगर वहाँ ईसाई नहीं रहता।

माता-पिता का यह कर्तव्य होता है कि जब तक बच्चा छोटा है, उसको ठीक से खाना खिलाओ और आज की परिस्थितियों के अनुसार समाज तुमसे जैसा चाहता है, उस तरह से उसको रखो। अगर समाज कहता है कि छोटे बच्चे को नंगा मत रखो, तो उसको निकर पहना दो, बाल बना दो। उतना तुमको करना पड़ेगा। मगर जहाँ तक चिन्ता की बात है, तुमको एकदम निश्चिन्त होकर रहना चाहिए। बच्चे को अपने जीवन की दिशा खुद तय करनी है। बच्चे को खिलाओ, पिलाओ, कपड़ा पहनाओ, दस-पन्द्रह साल उसकी रक्षा करो। उसके बाद बच्चा खेलना चाहे, खेलने दो; नाचना चाहे, नाचने दो; मॉडल बनना चाहे, मॉडल बनने दो। केवल पढ़ेगा और आई. पी. एस., आई. ए. एस. बनेगा, यह गलत धारणा है। केवल व्यापार करेगा, इण्डियन स्कूल ऑफ मेनेजमेंट में नब्बे प्रतिशत लेकर, पाँच लाख रुपया देकर किसी बहुत बड़ी कम्पनी का एक्सीक्युटिव बनेगा, यह गलत विचार है।

एक साधारण व्यक्ति भी अस्सी साल की जिन्दगी में क्या चाहता है? यश और सम्पत्ति चाहता है। तुम जानते हो क्रिकेट खेलने वाले सचिन तेंदुलकर के पास कितना पैसा है? अस्सी करोड़। हमारे जमाने में माँ-बाप बोलते थे—पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे-कूदोगे बनोगे खराब। क्या उल्टी बात सिखाई? हम तो सिखाते हैं—खेलोगे-कूदोगे बनोगे नवाब, पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे खराब! बच्चों के बारे में बहुत ज्यादा चिन्ता मत करो। हमारे समय में भी बच्चे ऐसे ही थे, किन्तु उनको सिर उठाने का मौका नहीं मिलता था, क्योंकि वे घर के बाहर नहीं निकल पाते थे। और लड़कियों के लिए बड़ा मुश्किल था। अब तो लड़कियाँ भी खट्-खट् बात करती हैं। और ऐसा होना भी चाहिए।

माँ-बाप बहुत बिगड़ गए हैं। इतने बिगड़ गए हैं कि अपने बच्चे को अपनी कार्बन कॉपी बनाना चाहते हैं। जबकि तुम्हारी खोपड़ी, तुम्हारा चेहरा क्या है? मेरा बेटा मेरे जैसा नहीं होना चाहिए, मेरा शिष्य मेरे से अलग होना चाहिए। अगर बेटा तुम्हारी कार्बन कॉपी बनेगा, तो भूतकाल के भूत को भविष्य में ले जायेगा। अब जितने माँ-बाप हैं, ध्यान से सुनना, अगर तुम्हारा बेटा तुम्हारे माफिक बनेगा, तो क्या बनेगा? भविष्यकाल में भूतकाल के भूत को ले जाएगा। बच्चों को भूतकाल के साथ जोड़ो ही मत। भविष्य की, आने वाले युग की एक संस्कृति है। जिसको कल तक गलत कहा जा रहा था, परसों बहुत खराब कहा जाता था, नरसों तो उसको बिल्कुल कुछ और ही कहा जा रहा था, आज लोग कहते हैं, 'लगता है अच्छा है।'

कुछ देश दुनिया में ऐसे हैं, जिन्होंने उदाहरण प्रस्तुत किए हैं कि बच्चों को, खास तौर से लड़कियों को कैसा होना चाहिए। मैं लड़के नहीं बोल रहा हूँ, लड़कियाँ शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। यद्यपि बोलना चाहिए बच्चे, क्योंकि बच्चे दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं, पर मेरे को अब यह शब्द भारत में इस्तेमाल करना पड़ता है, क्योंकि यहाँ लड़के और लड़कियाँ, दो अलग सामाजिक वर्ग हैं। दोनों के अधिकार क्षेत्र अलग हैं। दोनों के कानूनी क्षेत्र अलग हैं। दोनों के सम्पत्ति के अधिकार अलग हैं। दोनों के सामाजिक-धार्मिक मूल्य अलग-अलग हैं। और यह इस देश का दुर्भाग्य है। इसी वजह से हमारे देश में गरीबी है। इसी वजह से हमारा देश दुनिया में बहुत पिछड़ा हुआ गिना जाता है। इसी वजह से हमारे देश में माता-पिता समय के पहले अपने बच्चों की चिन्ता में वृद्ध हो जाते हैं।

लालयेत् पंचवर्षाणि, दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्तेषु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रमिवाचरेत् ॥

बच्चों के माता-पिता को चौदह साल के बाद उनके बारे में चिन्ता करनी ही नहीं चाहिए। ऐसा समाज बनाओ। लड़की की चिन्ता में बाप दूसरे आदमी के सामने अपनी पगड़ी उतार कर रख देता है कि डेढ़ लाख रुपये ले लो, इसको ले जाओ। यह कोई समाज है? मैं पगड़ी तुम्हारे पैर पर रखकर कहता हूँ, 'ले जाओ इसे किसी भी तरह से, यह मेरा सरदर्द है, मेरी अमानत है।' यह कौन-सा सामाजिक दर्शन है! क्या समाज को बनाने वाला और कर्त्ता-धर्त्ता केवल मर्द होता है? नहीं, गलत बात है। यह तभी बदल सकता है जब इन बच्चों को तुम्हारा अंकुश न लगे। इनको स्वतंत्र जीवन जीने दो।

तुम इन्हें क्या बनाना चाहते हो? वही बनाना चाहते हो, जिसको तुम ठीक समझते हो। किन्तु जो तुम समझते हो, वह ठीक नहीं भी हो सकता है। आज से बीस-तीस साल पहले हमारे बच्चों में जिस चीज को हम लोग बहुत बड़ा समझते थे, आज तो उसको कोई कुछ समझता ही नहीं है। आजकल पढ़े-लिखे घर के लोग, बड़े-बड़े घर के लोग अपनी लड़कियों को मॉडल बना कर भेजते हैं, जिसको आज से बीस साल पहले महागलत माना जाता था। बड़े-बड़े लोगों से मेरा मतलब है, वे लोग जो समाज में कुछ रुतबा, कुछ प्रतिष्ठा रखते हैं। और आज वे लोग मीडिया में पैसा देकर अपनी लड़कियों को मॉडलिंग में भेजते हैं, फिल्म लाइन में भेजते हैं, म्यूजिक लाइन में रखते हैं।

यह जिन्दगी एक स्वतंत्र व्यक्ति के लिए खुला हुआ मैदान है। आजाद लड़का जो चाहे वह करे। चौदह साल के बाद अपने लड़के-लड़कियों से बोलो, 'बेटा, अब तुम्हारे पास चार साल और बचे हैं। इस बीच में तुम अपने खाने, पीने, रहने और नौकरी का इंतजाम कर लो। अट्ठारह साल के बाद हम तुमको पैसा नहीं देंगे। उसके बाद बी.ए., एम.ए., एल.एल.बी., सब तुम अपने-आप करो।' चार साल पहले, याने चौदह साल में लड़के को नोटिस मिल जाना चाहिए कि माँ-बाप अट्ठारह साल के बाद मेरे को आर्थिक सहारा नहीं देने वाले हैं। और जिन देशों में यह प्रथा आई है, वे देश तुम पर राज कर रहे हैं। क्यों? जो संस्कृति विकसित होती है, वह दूसरों पर राज करती है। उनकी लड़कियाँ कहीं भी चली जाती हैं।

तुम्हारे यहाँ कोई लड़की है क्या ऐसी? उसको तो कुछ मालूम ही नहीं है। उसके लिए तो रसोईघर के बाहर की दुनिया एकदम अंधकारमय है। उसको तो मर्दों के सामने जवाब देने में डर लगता है। इसलिए तुम बच्चों के साथ बहुत होशियारी से व्यवहार करो। ज्यादा चिन्ता मत करो। अपना ज्यादा समय कुछ अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ने में लगाओ, बच्चों को भी किताबें पढ़ाओ। हम यह नहीं कहते कि बच्चों की सेवा मत करो। पर बच्चों को हर समय यह न कहो, 'यह मत करो, वह नहीं करो।' रोज सवेरे उठकर माँ पूछती है, ब्रश कर लिया क्या? छः साल से रोज बोल रही है। नाश्ते का समय हो गया है, जल्दी आओ। अरे! उसको नाश्ता करना है, तो वह खुद आएगा। गलत बात है कि सही?

सही है, लेकिन नहीं सुनते हैं। कहते हैं, 'नहीं करना।'

वे सुनते हैं कि नहीं सुनते, पहले तो तुम सुनो। जो बच्चे छः साल याने करीब दो हजार दिन से कहने पर भी नहीं करते हैं, तो इसका मतलब है कि उनके दिमाग में तुम्हारी बात घुसी ही नहीं है। तुम छोड़ दो। जो बीज उगे ही नहीं, उसको बोते क्यों हो? हम तो जानते ही हैं माता-पिता क्या करते हैं। 'अब समय हो गया, सो जाओ, टी.वी. बंद करो।' रोज वही होता है। बच्चों को थोड़ी आजादी दो।

तब तो वे ब्रश करेंगे ही नहीं। नहायेंगे ही नहीं।

करेंगे, तुम कहते हो, इसलिए नहीं करते। तुम नहीं कहोगे, तो करेंगे। तुमको एक छोटी-सी कहानी बतलाते हैं। स्वामी सत्संगी इसी उम्र की थी, हम

इसको बचपन से जानते हैं। यह परेशान हो गई, रोज इसी बात से। रोज माँ बोलती, टूथपेस्ट का ढकना ही बंद करना नहीं आता अभी तक। यह खोलकर छोड़ देती थी। यह आश्रम में आती थी। हम इससे कभी कुछ पूछते ही नहीं थे। कभी नहीं। इसको बहुत अच्छा लग गया आश्रम। कम-से-कम यहाँ तो परेशानी नहीं है। इसने आश्रम में ज्यादा आना चालू कर दिया। और पढ़ाई भी अच्छी हुई। इसने बी.ए. पास किया। और उसके बाद बहुत अच्छी नौकरी की।

इसको एक ही साथ ग्यारह जगह से नियुक्ति पत्र आए। मेरे से पूछा, मैं क्या करूँ? मैंने कहा, सबसे बड़ी चीज है कि तुम कोई ऐसा काम करो, जिससे सारी दुनिया घूम सको। तकदीर देखो। इसने एक नौकरी ली और सारी दुनिया घूमी। दुनिया में कोई जगह नहीं है, जहाँ यह रही नहीं है। आइसलैण्ड से अलास्का, जापान, और चीन, सब जगहें देखीं। हमने उस नौकरी का चुनाव किया था। हमने कहा—दुनिया देखो, अकेले रहो। माँ-बाप तो निमित्त हैं। माँ-बाप सचाई नहीं हैं। सचाई तो केवल मैं हूँ। तुम अपने को सचाई समझकर रहो, सबके साथ रहो। एक छोटी-सी बात है।

यहाँ भी हम यही कहते हैं कि किसी को ज्यादा बोलने की जरूरत नहीं है। अगर ये स्वयं अपने जिम्मेदार नहीं बनते हैं, तो हम इनको 'जिम्मेदार बनो, जिम्मेदार बनो' कहकर जिम्मेदार नहीं बना सकते। बच्चे बड़े बनने का सपना लेकर अपने आप महान् बनें। हाँ, उसके लिए अगर वे मदद माँगें कि 'मम्मी! मेरे को वहाँ जाना है, पैसे की जरूरत है', तो बहुत अच्छा है। पैसे दे दो। तुमको मना नहीं करना है। परन्तु अब तुम चाहो कि वे बड़े बनें और पूरे का पूरा डिजाइन भी तुम ही तैयार करो, नहीं। माँ-बाप बच्चे के जीवन का डिजाइन तैयार नहीं कर सकते हैं। बच्चे का कर्म उसके जीवन का डिजाइन तैयार करेगा। यह जमाना आने वाला है, लड़के-लड़कियों, दोनों के लिए।

बच्चे पढ़ना ही नहीं चाहते, पढ़ने में एकदम मन नहीं लगता।

अगर पढ़ने में उसका मन नहीं लगे, तो उसको संगीत सिखलाओ, नृत्य सिखाओ, अभिनय की क्लास में भेजो। ऐसा तो नहीं हो सकता कि उसका कहीं मन नहीं लगेगा। पता लगाओ कि तुम्हारी बच्ची के लिए क्या उपयुक्त है। उसका मूल संस्कार क्या है? हो सकता है उसका मूल संस्कार नर्तकी का हो या संगीतज्ञ का हो या चित्रकारी करने का हो। समझो कि उसका मूल

संस्कार कुछ भी हो सकता है। यह बात समझना बहुत जरूरी है। हर व्यक्ति के अंदर एक अलग स्वतंत्र प्रतिभा होती है। वह उसका मूल गुण है। उस प्रतिभा को खोजना पड़ता है। वह प्रतिभा उस बच्चे में गुप्त होती है। जैसे हर बीज में एक वृक्ष होता है। वह वृक्ष क्या है, कब लगता है, कितना पानी चाहिए, कौन-सी खाद चाहिए, कौन-सी जमीन चाहिए, यह सब जानना होता है। इसलिए बच्चों को केवल ए, बी, सी, डी और मिडिल तथा मैट्रिक के भरोसे नहीं ले जाना चाहिए। वह तो मात्र साक्षरता है।

हमने भी पढ़ा कि औरंगजेब की कितनी बेटियाँ थीं। आज तो मेरे काम में कुछ भी नहीं आ रहा है, न चन्द्रगुप्त, न विक्रमादित्य, न अशोक, न औरंगजेब। आज मेरे काम एक ही चीज आ रही है और वह है कि अपने स्तर और अवस्था के अनुरूप मुझे कैसे जीना है। मैं संन्यासी हूँ, मेरे को कैसे रहना है? मेरा आश्रम है, कैसे चलाना है? मैं अस्सी साल का हूँ, मेरे को क्या करना है, क्या नहीं, यही काम आया। साक्षरता से मुझे कोई मदद नहीं मिली। उसी तरह से तुम अपने बच्चे की प्रतिभा को देखो। उसके साथ हस्तक्षेप मत करो। अगर बच्चों का पढ़ने में मन नहीं लगता है, तो नहीं लगता है। पता लगाओ, उसको संगीत की कक्षा में भेज दो। और अगर उसका आश्रम में आने को मन करता है, तो आश्रम में आयेगी। अगर खिलौना खेलना है, तो खेलेगी। बच्चों की तो उमर ही होती है खेलने और खाने की।

बच्चों के साथ सही व्यवहार करना और उनके विकास में मददगार होना, यह बहुत कठिन क्रिया है। माँ बनना बहुत सरल है, पर बच्चे का शिल्पी बनना बहुत मुश्किल। उसके लिए तुम्हें बच्चों को अपने से अलग समझना पड़ेगा और आसक्ति नहीं होनी चाहिए बच्चों के प्रति। बच्चे जितना दूर रहें, उतना अच्छा है। माता-पिता की छाया बच्चों पर ज्यादा न पड़े तो अच्छा है, क्योंकि तुम लोग जिस समय के हो, वह अब पुराना हो गया है। यह पीढ़ी अब दूसरी है। और जिस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व ये करते हैं, वह अभी दस साल में बहुत बदलेगी। पिछले बीस सालों में इस पीढ़ी में जो परिवर्तन आ रहा है, एकदम जबर्दस्त है; कुछ कह नहीं सकते किस ओर ले जाएगा। और हिन्दुस्तान तो सोया हुआ देश था, उसने अभी करवट ली है।

अगर हिन्दुस्तान उठेगा, तो यह न तो चीन के रास्ते पर जाएगा और न ही मध्य एशिया के रास्ते पर। यह पश्चिम के रास्ते जाएगा। आजकल तुम लोग अलग-अलग धर्म, अलग-अलग जात मानते हो, मगर तुम लोगों का

जो मूल है, वह एक ऐसी संस्कृति में है जो पश्चिम से अधिक निकट है। तुम लोग हिन्दी बाएँ से दाएँ लिखते हो। अंग्रेजी और फ्रेंच भी बाएँ से दाएँ लिखी जाती हैं। पर चीनी तो बाएँ से दाएँ नहीं लिखी जाती। फारसी, अरबी और हिब्रू भी बाएँ से दाएँ नहीं लिखी जाती हैं। और संस्कृत भाषा सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी है। हजारों शब्द वहाँ तुमको मिलेंगे, जो यहाँ से आए हैं। संस्कृति के प्रति भारत के लोगों का सहज झुकाव रहा है। और यह झुकाव बतलाता है कि अगले दस-बीस साल में भारत के बच्चे और बच्चियाँ उसी तरफ जाएँगे, जिस तरफ आज अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्राँस, जर्मनी आदि गए हुए हैं। यही रास्ता इन सबके सामने है। चीन, अरब या फारस उदाहरण नहीं हैं।

यह सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सगापन जो इनके मन में है, उसका एक कारण है। इनकी जो भाषाएँ हैं, वे सब संस्कृत से मिलती हैं। संस्कृत इनकी मातृ-भाषा रही है और विचारधाराओं में भी बहुत साम्य है। हिन्दुस्तान में बद्रीनाथ से कन्याकुमारी तक जितने भी आश्रम हैं, उनमें जितने पाश्चात्य लोग आते हैं, उतने अन्य लोग नहीं आते। क्यों? अपनापन महसूस होता है विचारों में। यद्यपि उनका धर्म दूसरा है, फिर भी हमारे आध्यात्मिक विचारों को वे सहज स्वीकार लेते हैं।

दुनिया में तीन धर्म–यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम, एक मूल के हैं, जिनमें परमात्मा, संसार और जीवात्मा की परिभाषा करीब-करीब एक है। ईश्वर, जीव और जगत्, यह कल्पना स्वामी दयानन्दजी ने की थी अपने आर्य समाज में। अमेरिका, इंगलैण्ड और जर्मनी के जो लोग हैं, ईसाई होते हुए भी उन लोगों को यह आध्यात्मिक विचारधारा ज्यादा भा गई है। और यह विचारधारा क्या है–अहं ब्रह्मास्मि। सत्य मेरे अंदर है, मैं सत्य हूँ। तत्त्वमसि। तुम भी वही सत्य हो।

हमारा धर्म इतना साधारण नहीं है कि संस्कृति, समाज या सरकार के बदल जाने से बदल जाएगा। यह बहुत लचीला है। आदमी मोटा भी हो जाए, वही कपड़ा काम करता है; पतला भी रहे, तब भी वही काम करता है। आपके धर्म में जो लचीलापन है, उसकी वजह से कल ये लोग एकदम अमेरिकन भी बन जाएँ, तो भी फिट रहेंगे। हम लोगों के धर्म पर समाज और संस्कृति का असर बिल्कुल नहीं होता है। हजारों साल से हमने देखा है, बिल्कुल असर नहीं हो सकता है।

हम बोलते हैं, धर्म तो भगवान की चीज है। उसका शादी-ब्याह से क्या मतलब है। तुम्हारा लड़का या लड़की शादी करके तलाक देती है, करने दो। इससे हमारा सनातन धर्म बदलने वाला नहीं है। इसलिए उनको आराम के साथ, जैसे पढ़ना चाहें, पढ़ने दो। जमाना इनके लिए खुला है। बस, तुम लोगों को इनके लिए ज्यादा चुनाव या निर्णय नहीं करना चाहिए, केवल मदद करनी चाहिए।

मैं शिष्यत्व ग्रहण करना चाहता हूँ।

उसके लिए स्वामी निरंजन हैं, इनसे बात कर लो और समय निश्चित कर लो। मैं दीक्षा नहीं देता। दीक्षा लेना अच्छा है, जैसे कि भौतिक जीवन और सांसारिक सुख के लिए गृहस्थ आश्रम जरूरी है, विवाह जरूरी है, पति-पत्नी का सम्बन्ध जरूरी है, वैसे ही आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए गुरु-शिष्य का सम्बन्ध भी आवश्यक होता है। साधक में जैसा भी भाव हो, चाहे वात्सल्य-भाव हो, माधुर्य-भाव हो या पूजा का भाव हो, इन भावनाओं के लिए गुरु-शिष्य का सम्बन्ध जरूरी है। और यह बहुत सरल चीज है। मंत्र लिया और रोज अपना पाँच-दस मिनट जप किया।

भगवान को पाने के लिए बहुत ज्यादा उछल-कूद करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि भगवान एक ऐसा सत्य है, जो तुमसे दूर नहीं है। वह इतना नजदीक है कि वह तुमको देख रहा है, पर तुम उसको नहीं देख रहे हो। और यह कहना कि भगवान मेरे अंदर है, एक प्रकार की धृष्टता है, अहंकार है। भगवान मेरे अंदर नहीं, बल्कि मैं भगवान के अंदर हूँ। नदी घड़े में नहीं, बल्कि घड़ा नदी में है, ऐसा भाव होना चाहिए। परमात्मा तो एक तत्त्व है, उसको किसी ने देखा तक नहीं है। केवल विश्वास के आधार पर हम इस बात को कहते और मानते हैं। तो उस भगवान के बारे में ज्यादा खोपड़ी लगाने से काम चलेगा नहीं। दीक्षा लेकर रोज सुबह और शाम, पाँच मिनट जप कर लिया, बस।

यदि कोई इन्सान जिन्दगी में हारा हुआ महसूस करे, फिर भी नयी जिन्दगी जीना चाहे, तो उसे किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

हमने बचपन में एक कविता पढ़ी थी—बार-बार प्रयास करो, अन्त में सफलता अवश्य मिलेगी। हारा हुआ महसूस करना अलग है। कहते हैं कि चींटी अपने

से दस गुना बड़े चावल के दाने को ऊपर चढ़ाती है। फिर गिर जाती है और दाना गिर जाता है। पर फिर वह नीचे आती है, फिर उस दाने को उठाती है, फिर ऊपर दीवाल पर चढ़ती है। दूसरी जगह पर फिर गिर जाती है। पर वह छोड़ती नहीं है उसको। वह दाना उसके बिल में जाएगा ही, आज नहीं तो कल। ऐसा ही प्रयास मनुष्य का होना चाहिए।

मनुष्य को जो सीमित कर देता है, वह उसका मन है, न कि उसका कर्म। चींटी की सीमा नहीं है, क्योंकि उसका मन नहीं होता, उसका केवल कर्म होता है। उसे उस दाने को चढ़ाना है, बाकी चीजों से उसको कोई मतलब नहीं, उसका कोई दिमाग ही नहीं होता। लेकिन मनुष्य का दिमाग होता है और दिमाग की वजह से वह सीमित हो जाता है। यदि वह अपने दिमाग को हल्का कर ले, तो वह सीमित नहीं रहेगा। प्रयत्न करने वाले आदमी को जीवन में निश्चित रूप से सफलता मिलती है। इसमें कोई संदेह की बात नहीं है।

अपने को हारा या परास्त हुआ महसूस करना कोई गलत चीज नहीं है, क्योंकि यह यथार्थ है। परास्त हो गए हो, इस सचाई को स्वीकार तो करना पड़ेगा। परन्तु इस सचाई को स्वीकार करते हुए भी आदमी को हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। और एक चीज–थोड़े दिन अपनी वर्तमान परिस्थितियों से अलग होकर ऐसी जगह पर रहो, जहाँ वैसी परिस्थितियाँ न हों। यह विच्छेद काल है। उस समय में क्या होगा? हार तो जीत में नहीं बदलेगी, परन्तु यह मन, जो अपने को हारा हुआ महसूस करता है, थोड़ा तंदुरुस्त और तगड़ा हो जाएगा।

जब मनुष्य अपने को हारा हुआ, परास्त या विफल महसूस करता है, तब उसके मन में एक प्रकार की निराशा आती है। यह निराशा उसके मन की कमजोरी को दिखाती है। जब मन कमजोर होता है, तो निराशा आती है। जब शरीर कमजोर होता है, तब आदमी थक जाता है। जब तक शरीर कमजोर नहीं होगा, वह थकेगा नहीं। वह थक गया, माने कि उसका शरीर कमजोर हो गया। इसी तरह अगर किसी को निराशा है, तो इसका मतलब है कि उसका मन बीमार हो गया। अब इस बीमार या थके हुए मन को पहले आराम तो दें, जैसे शरीर को तुम आराम देते हो। बोझा लेकर पहाड़ पर चढ़ते हुए जब थक जाते हो, तो क्या करते हो? आराम करते हो, फिर चढ़ते हो। आखिर तुमको बोझा तो चढ़ाना है न। उसी तरह से मन को आराम देने के लिए उसको वर्तमान परिस्थितियों से बाहर ले जाना चाहिए।

मन को कहीं भी ले जाओ, कई उपाय हैं—भौतिक और आध्यात्मिक। कई लोग भिक्षाटन में चले जाते हैं। बहुत-से लोग साईकल लेकर लम्बी यात्रा पर चले जाते हैं। बहुत-से लोग पर्वतारोहण के लिए चले जाते हैं। याने कई प्रकार के उपाय हैं। कुछ लोग आश्रमों में जाकर जीवन बिताते हैं। कुछ लोग गुरुजी के यहाँ जाकर सेवा करते हैं। वहाँ कोई ईंटा-पत्थर उठाने का काम कर देता है, तो कोई कुछ और। जो भी काम उनसे बन पड़ता है, उसके मुताबिक कुछ सेवा कर लेते हैं। बहुत-से लोग सामाजिक सेवा संस्थानों, जैसे कि अनाथालय वगैरह में चले जाते हैं और वहाँ पर निःस्वार्थ सेवा देते हैं। इस प्रकार थोड़े दिन उन परिस्थितियों से बाहर चले जाओ, जिन परिस्थितियों से तुम हारे हो। उसके बाद तुम्हारा यह मन अपने आप को ठीक कर लेगा। तुम्हारा मस्तिष्क ठीक ढंग से काम करने लग जाएगा और तुम्हारे मन की निराशा दूर हो जाएगी।

निराशा की अवस्था में मस्तिष्क की ऊर्जा बहुत कम हो जाती है। उस ऊर्जा को फिर से लाने के लिए मस्तिष्क को सम्पूर्ण रूप से विश्राम की आवश्यकता होती है और अगर ऐसा करना है, तो कुछ दिनों के लिए मस्तिष्क पर जो तनाव पड़ रहा है, उससे उसको दूर ले जाओ, ताकि उस पर असर ही न पड़े। मस्तिष्क को तनावों से दूर कर दो। जो भी तुम कर सकते हो, जो भी अवसर तुम्हें प्राप्त है, वैसा करो। पर्वतारोहण के लिए जा सकते हो, फोटोग्राफी या पेन्टिंग का शौक है, तो वह भी कर सकते हो। साल-दो साल बिता कर तुम देखोगे कि तुम्हारे मस्तिष्क में ऊर्जा काम कर रही है। फिर अपना जो संघर्ष है, उसको पुनः आरम्भ करो। यह सभी को करना ही पड़ेगा। सबके लिए वही नियम है।

तुम सब लोगों को भगवद्गीता अच्छी तरह से पढ़नी चाहिए। वह भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच का संवाद है। यह हर गृहस्थ, हर आध्यात्मिक पुरुष, हर संन्यासी के लिए जरूरी है। संसार में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए जरूरी है। यह धार्मिक ग्रंथ नहीं है। यह जीवन सम्बन्धी ग्रंथ है। निराशा की परिस्थितियों में क्या करना है, जब तुम धर्मसंकट में पड़ जाओ, जब तुमको कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान न हो, तो क्या करना है; यह ग्रंथ हर व्यक्ति को इसका ज्ञान कराता है। अर्जुन को भी तो यही समस्या हुई थी। श्रीकृष्ण ने उसका समाधान किया। गीता को थोड़ी गंभीरता से पढ़ोगे, तो तुमको समझ में आ जाएगा कि श्रीमद्भगवद्गीता केवल अर्जुन और कृष्ण के बीच का संवाद नहीं है, यह एक अंधे और दूरदर्शी व्यक्ति के बीच का संवाद

है। अंधा कौन था? धृतराष्ट्र। और संजय दूरदर्शी था, दिव्यदर्शी था। मूल संवाद तो दोनों के बीच का है। हम लोग भी तो करीब-करीब सभी अंधे ही हैं।

जीवन के प्रति जो अंधा है, वह अंधा है। रास्ता तो मालूम है ही नहीं हम लोगों को। कभी इधर गिरते हैं, तो कभी उधर। जिसको रास्ता नहीं सूझता, वह अंधा होता है। जो आँखें संसार की वस्तुओं को देखती हैं, वे आँखें तो सामान्य हैं। लेकिन जो आँखें जीवन को देख सकती हैं, वे आँखें दूसरी हैं। जो चर्मचक्षु हैं, वे वस्तु और पदार्थ को देख सकते हैं, वे बाहरी चीज को देख सकते हैं। मगर अंदर की चीज को ये आँखें नहीं देख सकती हैं। देख सकती हैं क्या? इसलिये धृतराष्ट्र अंधा था, हम भी अंधे हैं, क्योंकि हम लोग रास्ता नहीं देख पा रहे हैं। हाँ, कभी मौका लगने पर अंधे के हाथ बटेर लग जाती है, वह बात दूसरी है। मगर ज्यादातर हम लोगों को कुछ नहीं सूझता है। कभी रास्ता मिल गया तो सोचते हैं कि चलो नौकरी मिल गई, जिन्दगी का लक्ष्य मिल गया, हो गया सफर वहीं पर खत्म। ऐसा नहीं है। न तो सम्पत्ति जीवन का लक्ष्य है, न ही परिवार और न ही भोग। जीवन का केवल एक लक्ष्य है कि मनुष्य अपने तक पहुँच सके।

हम अपने तक कभी पहुँचे ही नहीं हैं। हम तो अपने से बहुत दूर हैं। अगर मैं तुमसे पूछूँ कि तुम कौन हो, तो किताब में पढ़ा है, इसलिए बोलते हो कि मैं आत्मा हूँ। मगर तुमको पता तो है नहीं कि तुम कौन हो। कोई अपने को उड़िया बोलेगा, कोई बंगाली, कोई बिहारी। हम सब अंधे हैं। गीता में इस बात को बहुत अच्छी तरह से समझाया गया है कि मनुष्य को किस प्रकार से सोचना चाहिए और सम्पत्ति-विपत्ति, जन्म-मृत्यु, अंधकार-प्रकाश, हर्ष-विषाद तथा सुख-दुःख में कैसे उसको जीवन जीना चाहिए। गीता से बहुत-से लोगों को प्रकाश मिला है। महात्मा गाँधी को रास्ता मिला। उन्होंने खुद कहा है—मुझे गीता से प्रकाश मिला। विनोबा भावे, अरविन्द घोष और अन्य कई महापुरुषों को भी गीता से ही प्रकाश मिला है, प्रेरणा मिली है।

– 9 मई 2004



अध्याय 3

मनुष्य जीवन की बुनियाद

पाश्चात्य संस्कृति में पैसे वालों के लड़कों को, अरबपतियों के बच्चों को, राजा-रानी के बेटों को जबरदस्ती मजूरी करवाई जाती है। आज भी उनकी संस्कृति की मौलिकता है 'श्रम'। बहुत कठिन श्रम और माता-पिता पर निर्भर न होना—यह पाश्चात्य संस्कृति का मूल आधार है। पाश्चात्य संस्कृति अपने यांत्रिक प्रभाव और तकनीकी श्रेष्ठता के कारण आज दुनिया में फैल गयी है। इसके साथ-साथ उनके 'हाई-फाई टेक्नीशियन' टाई वगैरह पहन कर दुनियाभर में घूमते और पाँच सितारा होटलों में ठहरते हैं। इनके देश में तो हर घर में हीटर रहना अनिवार्य है। इसके बिना घर बनाने की अनुमति ही नहीं रहती है। इनका घर बने, उसके पहले सरकार जाँच करवाती है। गर्म देश है, तो वातानुकूलन लगाती है, ठण्ढा देश हो तो फिर हीटर का होना जरूरी है, पम्प का होना जरूरी है, नहीं तो मकान बनता ही नहीं है।

कठिन श्रम का मतलब होता है—मनुष्य जीवन की बुनियाद। कोई भी भवन तुम देख लो, चाहे वह एक मंजिला हो, चाहे बहुमंजिला, उसकी जो बुनियाद होती है, उसमें जाली होती है, कांक्रीट भरी जाती है, फिर कॉलम खड़ा होता है। दीवाल में कुछ नहीं है, दीवाल मिट्टी की बनी हो सकती है, पर बुनियाद में ऐसा नहीं कर सकते। मनुष्य के जीवन की बुनियाद परिश्रम है, और उस परिश्रम में पैसा नहीं लगता। इसमें फोकट का श्रम करना पड़ता है, बल्कि कुछ खोना पड़ता है। क्या? वजन और पसीना। वजन कम हो जाता है और पसीना बहुत निकलता है। और तीसरा जो क्षय होता है कठिन परिश्रम में, वह कार्बन डाई ऑक्साइड का होता है। कार्बन एक ऐसा तत्त्व

है, जो शरीर के लिये आवश्यक है। परन्तु कार्बन डाई ऑक्साइड जब अधिक हो जाती है, तब फिर वह शरीर पर घातक असर करती है। आश्रम में कठिन परिश्रम के लिए ही आना चाहिए। इसलिए हमारे पूर्वजों ने इसका नाम रखा है आश्रम। जहाँ आराम नहीं, वह आश्रम है।

ब्रह्मचर्य को आश्रम ही कहते हैं और गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी को भी। हमारे भारतीय समाज में केवल एक आश्रम है, जो आश्रम नहीं माना जाता। इसको कहते हैं परमहंस, अति-वर्णाश्रमी। इसके बारे में तुम लोग ज्यादा नहीं जानते हो। संन्यास के बाद एक ऐसी अवस्था आती है साधु की, जब उसको किसी वर्ण में नहीं मानते हैं, किसी आश्रम में नहीं मानते हैं। वह जैसा चाहे रह सकता है, कोई काम करे, न करे, मगर वह अवस्था आती है जब वह इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। तब उसको कोई विचार नहीं आता है। कुछ पाना नहीं है, कुछ खोना नहीं है। कुछ नहीं, पड़े हुए हैं आराम के साथ। *'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काज'*, जब यह अवस्था उसकी आ जाती है, तब उसको बोलते हैं अति-वर्णाश्रमी। उसको फिर वर्ण से कोई मतलब नहीं है, न बनिया, न शूद्र, न ब्राह्मण, कुछ नहीं।

संन्यासी हो तो श्रम, गृहस्थ हो तो श्रम। श्रम माने—मजूरी। और यह प्रेरणा जीवनभर रहनी चाहिए। स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन और आरोग्य के लिए सबसे श्रेष्ठ श्रम होता है शारीरिक परिश्रम। बढ़िया खाना है तो श्रम करो, पच जाएगा। शाकाहार, निराहार, मिताहार—जो भी करना है, परिश्रम करो, सब पच जाएगा। परिश्रम नहीं करो तो जम जाएगा, बीमारी पैदा करेगा। श्रम करने वाले को नींद अच्छी आती है, भूख भी अच्छी लगती है। उसका विचार निम्न श्रेणी का नहीं होता, हमेशा उत्तम होता है। गाँव में जो लोग रहते हैं, कितने सीधे रहते हैं! क्योंकि उन्हें दिनभर हल उठाना पड़ता है, शौच या स्नान के लिए एक मील दूर जाना पड़ता है, बाजार के लिए दो मील जाना पड़ता है। पेट पिचका रहता है सबका। जबकि शहरों में पैंतालीस साल के बाद स्त्री-पुरुष मोटे होने लगते हैं। गाँव में ऐसा नहीं हो पाएगा, क्योंकि जो लोग परिश्रम करते हैं, उनकी चयापचय दर तेज रहती है। और जो आदमी आराम ज्यादा करता है, उसकी चयापचय दर निम्न रहती है।

लड़के और लड़कियों के लिए सबसे बढ़िया परिश्रम मैं तुमको बतलाऊँ? झाड़ू और पोंछा। कमर कभी मोटी हो ही नहीं सकती! आसन करने की जरूरत नहीं है। जॉगिंग की जरूरत नहीं है। खेल-कूद की जरूरत नहीं है। अपने पूरे

घर में काकासन में बैठ कर झाड़ू-पोंछा कर दो। हम लोग जो दो टाँगों पर उकड़ू बैठते हैं, उसको काकासन बोलते हैं–कौआ आसन। अब ये सब चीजें नौकर पर क्यों छोड़ेगा आदमी। नौकर पर छोड़ने से नुकसान अपना होता है। पैसा उसको मिलता है और चर्बी अपने को मिलती है!

लड़कियों की शिक्षा

लड़कियों का केवल ग्रेजुएशन से काम नहीं चलता है। उच्च शैक्षणिक योग्यता प्राप्त करनी चाहिए, चाहे मेडिकल में हो, चाहे प्रशासनिक सेवा में हो, चाहे बैंकिंग में हो या नर्सिंग में हो, और नौकरी में जाना चाहिए। शादी तो सबकी होती है, पर शादी अब लड़की का पहला सपना नहीं होना चाहिए। शादी एक रिवाज है, जीवन की आवश्यकता है, समाज की जरूरत है, इसलिए होनी चाहिए। परन्तु शादी अब सपना नहीं रहना चाहिए। सपना लड़की का वही होना चाहिए, जो लड़कों का होता है। और उसी को ध्यान में रखते हुए शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ऐसा नहीं कि ग्रेजुएशन करने के बाद लटक रहे हैं, कहीं नौकरी नहीं मिल रही है। नौकरी अवश्य मिलती है। नौकरी की कोई कमी नहीं है। मैं तुमको साफ-साफ बोल रहा हूँ, लड़कों को भी और लड़कियों को भी।

जरूरत है तो योग्यता की। ग्रेजुएशन योग्यता नहीं है। यह तो मात्र साक्षरता की पूर्णता है। आदमी साक्षर हो जाए, बी.ए.पढ़ जाए। शिक्षा के क्षेत्र में तुमको इस युग के मुताबिक होना होगा। हम लोगों का समय दूसरा था। आज के युग में प्रशासनिक सेवाएँ हैं, बैंकिंग सेवाएँ हैं, कम्प्यूटर भी आ गया है। कम्प्यूटर बहुत बड़ी चीज है, आगे जाकर यह हर जगह आएगा। हर जगह कलम, पेंसिल के बदले कम्प्यूटर आने वाला है। कम्प्यूटर से काम करेगा आदमी। अब इस देश में भी कम्प्यूटर का प्रवेश हो गया है।

मैं केवल लड़कियों को बोल रहा हूँ कि तुम लोगों को अपने जीवन में कैरियर पर ध्यान देना चाहिए। माता-पिता तो अब पुराने हो गए। अब हम लोग भी पुराने जमाने के ही हैं। हम लोगों का विचार तो अपने जमाने का होगा। हमारी पीढ़ी दूसरी थी। हमारी पीढ़ी में शादी बहुत महत्त्वपूर्ण थी। शायद एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज। हमारे जमाने में पैदा होने के बाद जो सबसे बड़ा काम होता था, वह होता था शादी। और फिर दूसरा काम होता था–राम नाम सत्य है। पर आज के जमाने में ऐसा नहीं है। आज के जमाने में पढ़ाई

के बाद कैरियर, और कैरियर के बाद फिर चयन। मर्जी हो तो शादी करे, नहीं तो और आगे भी बढ़ सकती है, क्योंकि आजकल जो व्यक्ति उड़ना चाहता है, जो उड़ सकता है, उसकी अंतिम सीमा आसमान है। बंधन अब नहीं रह गए हैं। पर आगे निर्भर करता है तुम लोगों पर।

जो लड़की ऊँची शिक्षा प्राप्त करना चाहती है और ऊँचे पद पर स्थापित होना चाहती है, उसको अपने जीवन के आचार-विचार और गुणवत्ता को भी बदलना होगा। साधारण विचार नहीं, अच्छी पुस्तकें पढ़ो। और आध्यात्मिक जीवन में जो तुम आए हो, यहाँ आश्रम में जो आए हो, चाहे जिस किसी आश्रम में भी जाओगे, हर जगह तुम्हें यही सुनने को मिलेगा, जो मैं बोल रहा हूँ कि कुछ करो। जीवन में अब व्यक्ति को कुछ करना चाहिए।

हम लोगों की मातृ-भाषा संस्कृत है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी है। प्रान्त-भाषा मराठी या तमिल या जो भी हो, परन्तु आज जो व्यवसाय की, शिक्षा की, विज्ञान की और टेक्नालॉजी की भाषा है, वह अंग्रेजी है। अब तुम चाहो तो हिन्दी को टेक्नालॉजी में श्रेष्ठ भाषा बनाओ। पचास-सौ साल लगेंगे। तब तक दुनिया कहाँ पहुँच जाएगी। इसलिए जो गाड़ी अभी तुमको मिल रही है, इसी गाड़ी में जाओ। जो ट्रेन प्लेटफॉर्म पर खड़ी है, उसी में बैठ जाओ। किसी के लिए इंतजार करने की जरूरत नहीं है।

तुम लोगों को बस इसी का ख्याल रखना चाहिए कि संस्कृत सब भाषाओं की माँ है और माँ के बेटा-बेटी, कोई कहीं चला जाता है, कोई कहीं चली जाती है। संस्कृत के साथ यही हुआ है। संस्कृत मूल की जितनी भाषाएँ हैं, सब बाएँ से दाएँ लिखी जाती हैं। अरबी मूल की जितनी भाषाएँ होती हैं, वे दाहिने से बाएँ लिखी जाती हैं और मंगोलियन मूल की जितनी भाषाएँ होती हैं, वे ऊपर से नीचे लिखी जाती हैं। अब इसी से तुम भाषाओं के परिवार के बारे में समझ सकते हो।

अंग्रेजी का अगर अच्छी तरह से तुम अध्ययन करो, वह संस्कृत नहीं है, लेकिन दोनों में समानता है। वे 'नियर' कहते हैं, अपने यहाँ नियरे होता है। वे 'अंडर' कहते हैं, अपने यहाँ अंतर बोलते हैं। वे 'अपर' बोलते हैं, अपने यहाँ 'ऊपर' कहते हैं। वे 'थ्री' बोलते हैं, अपने यहाँ 'त्री' बोलते हैं। वे 'टू' बोलते हैं, अपने यहाँ 'द्वौ' बोलते हैं। वह बोलता है 'काउ', अपने यहाँ गऊ बोलते हैं। थोड़ा-सा ढंग से अगर इसको समझो, भाषा कहाँ से कहाँ चली जाती है। हिन्दी भाषा को ही देखो, बिहार में कुछ बोलते हैं और मथुरा में कुछ बोलते हैं।

अगर तुम लोगों को अँग्रेजी सीखनी है, तो व्यक्तिगत रूप से सीखनी चाहिए। यहाँ पाँच-छ: सौ कन्याएँ आती हैं। जब हम शुरू में आए थे, तो हमने उनको कहा था कि संस्कृत और गीता सिखाएँगे। लेकिन कोई नहीं आता था सीखने के लिए। चीनी डालोगे तो चींटी आएगी ही, मना नहीं कर सकते उसको। मगर चीनी नहीं मिली, तो चींटी नहीं आएगी। जब अँग्रेजी सिखाना शुरू किया, तो घर-घर से सब आ गए। बकरी चराने वाली इतनी छोटी-छोटी बच्चियाँ चली आती हैं। ये सब शूद्र जाति की कन्याएँ हैं, एकलव्य परिवार की कन्याएँ हैं। परन्तु सब अँग्रेजी सीखने के लिए आती हैं और ज्यादा नहीं तो घर में जाकर 'पापा गुड मॉर्निंग' या 'बाय-बाय' तो बोल ही देती हैं। जीन्स भी पहनने लगी हैं।

जहाँ पानी बहता है, शुद्ध रहता है। लेकिन जब पानी रुकता है, वह जम जाता है। *'बहता पानी निर्मला, बंधा गंधीला होय।'* इसी तरह से हमारी परम्परा, धर्म और विचार बदलते रहने चाहिए। यहाँ जो क्लास खुली है, उसमें सब अँग्रेजी सीखती हैं। जो लड़कियाँ मेरे आने के बाद पैदा हुई थीं, अब वे भी पढ़ने के लिए आती हैं और उसमें कुछ लड़कियाँ तो ऐसी हैं जो कम्प्यूटर सीख रही हैं। हम तो यहाँ लड़कियों को कम्प्यूटर सिखला रहे हैं। ग्रामीण कम्प्यूटर सीख रहे हैं और हम भी धीरे-धीरे व्यवस्था बढ़ा रहे हैं। इन्हें अँग्रेजी सीखना जरूरी है, क्योंकि लड़कियों को अब उस घोंसले से निकलना चाहिए, जिसमें पहले मजबूरी से रहना पड़ता था।

पहले के जमाने में लड़की के लिए शादी के अलावा कोई विकल्प था ही नहीं। कौन उसको सहारा देगा? कौन उसको दिनभर खिलाएगा-पिलाएगा? होता था कि नहीं, अरे कहाँ रहेगी? कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं थी। उस वक्त एकमात्र सामाजिक सुरक्षा था पति। हम उसकी शादी को नकार नहीं रहे हैं। शादी तो समाज के लिए, स्वास्थ्य के लिए, जीवन के लिए, सब चीजों के लिए जरूरी है। विवाह जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना शरीर के लिए भोजन। परन्तु वह अब नम्बर दो या नम्बर तीन में आएगा, प्राथमिकताओं में नहीं। चाहे जहाँ भी रहो, अच्छी तरह से पढ़ो, नौकरी पर जाओ, पैसा कमाओ और दहेज में देना है तो दहेज में दो, क्या फर्क पड़ता है? माँ-बाप के पल्ले नहीं न पड़ेगा। चार हजार रुपया महीना कमाओगे तो एक-दो साल में दहेज निकल जाएगा। कौन लड़का शादी नहीं करेगा पाँच लाख रुपये वाली से?

मेडिकल लाइन में लड़कियों का बहुत स्कोप है और आमदनी भी वहाँ अच्छी होती है। वैसे लड़कियों के लिए आजकल और विकल्प भी बहुत अच्छे हैं। वे प्रशासनिक सेवाओं में भी जा सकती हैं। वैसे तो आदमी के अपने सपने कुछ भी हो सकते हैं, पर उसमें किसी जानकार आदमी से मार्गदर्शन लेना जरूरी है कि वह किस लायक है, माने किस रास्ते में ठीक चल सकती है। मेडिकल लाइन में चल सकती है, तो उसको उधर जाना चाहिए।

आजकल तो लड़कियाँ व्यापार-क्षेत्र में भी जा सकती हैं। आजकल का व्यापार किराना दुकान तो है नहीं। आजकल का व्यापार तो बढ़िया कमरे में बैठ कर, कम्प्यूटर सामने रख कर, मोबाइल वगैरह रख कर किया जाता है। अब कलियुग के जो बनिये हैं, वे तुम लोगों के माफिक थोड़े हैं। व्यापार का स्वरूप तो बहुत बदल गया है न। आदमी रहता है लंदन में, व्यापार है हाँगकाँग में। व्यापार प्रबंधन की यह कला सीखी जा सकती है। पर पहले यह तय करना होगा कि लड़की किस लायक है, लड़की के विचार पर नहीं जाना है। बहुत से जानकार आदमी सलाह दे सकते हैं कि लड़की को किसमें जाना चाहिए।

यहाँ दो महीने से कन्याओं के लिए रोज एक घण्टा कम्प्यूटर की कक्षा हो रही है। फिर प्रोग्रामिंग में जाएँगे। इस साल के अंत में इन लोगों को कहीं किसी मान्यता प्राप्त कम्प्यूटर केन्द्र में डाल कर सर्टिफिकेट दिलवा देंगे। आजकल कम्प्यूटर का दाम बहुत कम है। अब तो कम्प्यूटर बहुत सस्ते हो गए हैं। अभी हम लोगों ने तीन कम्प्यूटर रखे हैं। धीरे-धीरे उन सब कन्याओं को लेंगे, जो गाँव से आती हैं। सबको कम्प्यूटर सिखाएँगे और फिर वे सब एन. आई. आई. टी. का कोर्स पास कर जाएँगी। उनको सर्टिफिकेट मिल जाएगा। बाद में उनका बाप चाहे तो उनकी शादी करके गोबर इकट्ठा करवाए या फिर पढ़ाई कराए या नौकरी कराए, यह उन पर निर्भर है। हमारा धर्म होता है कि हम उन लोगों को जीवन का एक नया दर्शन कराएँ। और जीवन बिना संघर्ष के मिलता नहीं है। आराम के साथ बाप ने शादी कर दी और राम-राम के साथ में मर्द ने बेटा पाल दिया, वह आराम की जिन्दगी नहीं! आदमी को संघर्ष करना पड़ेगा, मेहनत करनी पड़ेगी।

तुम लोगों ने संघर्ष नहीं किया क्या? परेशानी होती है न? दिमाग लगाना पड़ता है न? आशा और निराशा के बीच में झूलना पड़ता है न? जिन्दगी तो वही है। जिन्दगी संघर्ष का परिणाम है, और संघर्ष रहित जीवन मृत्यु है। जिस जाति ने संघर्ष किया है, वह हमेशा ऊँची रही है। मारवाड़ी लोगों ने संघर्ष

किया है, राजस्थानी लोगों ने संघर्ष किया है, सरदार लोगों ने संघर्ष किया है, बहुत आगे बढ़े हैं। अमेरिकन लोगों ने संघर्ष किया है, अपना देश छोड़ कर परदेश गए हैं, वहाँ लड़ाइयाँ लड़ीं, मरे, मारे गए, उनके घरों में आग लगी, मालूम है न क्या-क्या कहानियाँ हुईं। आज वे राज करते हैं दुनिया में। संघर्ष तो करना ही पड़ता है, और बच्चों को नया जीवन देना तुम लोगों का काम है।

जिस युग में तुम जीते थे, उस युग की प्राथमिकताएँ दूसरी थीं। उस वक्त की मजबूरियाँ दूसरी थीं, सामाजिक चर्चाएँ दूसरी थीं। आज जब हम बूढ़े हो गए हैं, हमारे विचार तो वही हैं जिनको लेकर हम आए हैं, मगर चर्चाएँ बदल चुकी हैं। आज लड़कियाँ साड़ी के बदले जीन्स पहनना पसंद करती हैं। लड़के लोग निकर पहनना पसंद करते हैं। लड़के लोग बाल बढ़ाते हैं, लड़कियाँ सिर मुड़ाती हैं। युग बदल चुका है। लड़के लोग कान में बाली पहनते हैं, लड़कियाँ नहीं पहनती हैं। इसलिए युग के मुताबिक आज एक चीज भारत के लोगों को जरूर करनी चाहिए, अपनी लड़कियों को समाज में ऊँचे ओहदे पर लाकर छोड़ देना चाहिए अगले दस-पन्द्रह साल। उसके बाद पीढ़ी बदलेगी, हम लोग चले जाएँगे, फिर अगली पीढ़ी निर्णय करेगी क्या करना है।

जीवन का दर्शन

जब हम देवघर क्षेत्र में आए थे, तब यहाँ टी.बी. का बहुत प्रकोप था। अब तो काफी नियंत्रण हो गया है। एक तो खाना नहीं है, ऊपर से शराब पीता है, इसलिए बीमार पड़ता है। टी.बी. के इलाज की एक योजना बम्बई के लोगों ने प्रायोजित की है और अच्छा परिणाम भी मिला है। दुनिया में भूख और बीमारी, ये महामारी हैं। भूख सबको लगती है। वैसे ही बीमारी भी शत-प्रतिशत है। कोई भी आदमी इस दुनिया में ऐसा नहीं है जो बीमार न पड़ता हो। इसलिए डॉक्टरों की सूची बहुत लम्बी है–होमियोपैथी, एक्यूपंक्चर, योग, मैगनेट थेरेपी, सोलर थेरेपी इत्यादि।

बीमारी जीवन का एक संस्कार है, स्वभाव है, गुण है। गीता कहती है कि जरा, व्याधि और दुःख, यह मुनष्य के जीवन का दर्शन है। जरा माने जीर्ण होना, जिसका अंत बुढ़ापा होता है। व्याधि माने शारीरिक बीमारी और दुःख, मानसिक तथा सामाजिक दोनों। इनको जीवन का दर्शन इसलिए बोलते हैं कि ये तीन चीजें अगर नहीं होतीं तो इन्सान जानवर से भी बदतर होता। इन तीन चीजों के कारण ही मानव चेतना का विकास होता है। वह चेतना फूल की

पंखुड़ियों की तरह खुलती है और आदमी को अपनी तरफ देखने के लिए मजबूर करती है। नहीं तो आदमी हमेशा बाहर ही देखता रहता, नहीं क्या? अगर जरा-व्याधि नहीं होती, अगर मनुष्य को दु:ख नहीं होता, तो वह बाहर ही देखता रहता। इन चीजों की वजह से वह सोचने को मजबूर होता है, उसका मानसिक और बैद्धिक विकास होता है।

भगवान दु:ख क्यों देता है? दु:ख जीवन का एक दर्शन है। दु:ख के बिना आदमी जीवन को देख ही नहीं सकता है और जब तक जीवन को नहीं देखेगा, उसकी विचारधारा बदल नहीं सकती है। गीता कहती है कि दु:ख या बुढ़ापा, ये अकारण नहीं हैं। प्रकृति ने इन तीन चीजों को मनुष्य के जीवन के विकास के लिए ही एक तत्त्व के रूप में बनाया है। अगर ये चीजें नहीं होतीं, तो आदमी का विकास जस का तस रह जाता।

बच्चों का विकास

बच्चों को खाना, कपड़ा और सुरक्षा–ये तीन चीजें देना माता-पिता का कर्त्तव्य होता है। इसके अलावा बच्चों को जितना ज्यादा तुम खेलने दोगे और जितना ज्यादा वे मनोरंजन के खेल वगैरह में रहेंगे, उतना बच्चों के मस्तिष्क का विकास होता है। और बच्चों को बहुत अच्छा भी लगता है, उनका व्यक्तित्व खुल जाता है। पढ़ाई तो केवल आधार है साक्षरता का, जैसे तुमने कोई सड़क बना दी। पर अगर गाड़ी ही नहीं है, तो सड़क बनाने से काम नहीं चलेगा। पढ़ाई तो आवश्यक है, परन्तु बच्चों के मस्तिष्क के विकास के लिए, उनके सामान्य ज्ञान के विकास के लिए, उनको इसी प्रकार की और भी चीजें उपलब्ध करानी चाहिए।

क्या वजह है कि विदेशों में दो-तीन-चार साल के बच्चे इतने ज्यादा मेधावी होते हैं? इसलिए कि उनको बचपन से ही खेलों से परिचित कराया जाता है। भले ही वह मैदान या स्टेडियम में खेला जाने वाला खेल न हो, हो सकता है कि अंदर खेला जाने वाला खेल ही हो। मस्तिष्क का विकास होना जरूरी है। केवल डिग्री लेना बच्चों के लिए जरूरी नहीं है। यह एक नयी विचारधारा आई है और मनोवैज्ञानिकों ने इस पर अपना विचार भी प्रकट किया है। इस पर किताबें भी बहुत हैं। अभी एक फिल्म भी निकली है, हैरी पॉटर की। उसमें जो कुछ दिखाया है, वह सम्भव नहीं है। मगर वह बच्चों के दिमाग को इतना ज्यादा उड़ाती है, इतना कुदाती है, इतना ज्यादा उनके मन

को बाहर खींचती है। गलत बोल रहा हूँ क्या? बच्चों के दिमाग को खींचती है। बच्चों के दिमाग को खींचने के लिए कुछ होना चाहिए।

अब हम लोगों के यहाँ स्कूल की किताब में पढ़ाते हैं, औरंगजेब की बेटी का क्या नाम था, शाहजहाँ के बेटे का नाम क्या था, वह कैसे शराब पीता था। ये फालतू की चीजें हैं, इनसे दिमाग भागता है। इधर से सुनते हैं, उधर से निकाल देते हैं। पर कोई चीज बच्चों के लिए ऐसी होती है, जिससे उनका दिमाग पूरा का पूरा बाहर खिंचता है। मन का विस्तार होना चाहिए, उनका मन बाहर खिंचना चाहिए। तब जाकर उनके मस्तिष्क का विकास होता है। और आगे जाकर लड़का होनहार भी होता है।

आश्रम-जीवन

आश्रम किसी का घर नहीं है। यह एक ऐसी प्रणाली हमारे पूर्वजों ने बना कर दे दी है, जो बेहद अजीब है। ऐसी प्रणाली किसी धर्म में नहीं है। जितने दिन चाहो, आराम के साथ रहो। दस बार आओ, बीस बार आओ। हाँ, यहूदी धर्म में ऐसी प्रणाली है। उनके यहाँ उसको कहते हैं किबूत्ज़। मगर उसका स्वरूप ऐसा आध्यात्मिक नहीं है, वह ज्यादा सामाजिक है। उनके किबूत्ज़ में कोई भी यहूदी लड़का स्कूल पास करके या शादी के पहले या शादी के बाद चला जाता है और वहाँ रह जाता है। उसको कमरा वगैरह मिल जाता है। वे सब थ्री-टायर में रह जाते हैं। वहाँ डेढ़-दो एकड़ जमीन होती है।

इस्राइल तो रेतीली जगह है, उनके यहाँ मिट्‌टी नहीं होती है। इसलिए दूसरे देशों से हेलीकॉप्टर से मिट्‌टी लाकर भरते हैं और सेम जैसे कई तरह के पेड़ लगाते हैं। ये लोग उसी की सेवा करते रहते हैं। वहाँ जो खाना बनाते हैं, वह बिल्कुल शुद्ध रहता है। रोटी में चिपका दिया, खा लिया और कॉफी पी ली। हम लोगों के माफिक दाल-भात, पकौड़ी वगैरह तो उनके यहाँ है नहीं। सब का सब कच्चा होता है, बस उबाल कर थोड़ा नमक और काली मिर्च डाल देते हैं। और वे सब ऐसे ही रहते हैं, उनके यहाँ यही प्रणाली है। ईसाइयों में ऐसी कोई प्रणाली नहीं है।

अपने यहाँ तो बहुत आश्रम हैं। बद्रीनाथ से कन्याकुमारी तक और बंगलादेश से कराची तक आश्रम हैं। उन आश्रमों मे सभी जगह एक ही चीज़ है। जीवन बहुत सरल रहता है। उसे गरीब तो नहीं कहना चाहिए, पर अमीरी नहीं है। किसी भी आश्रम में हमने अमीरी के ढंग से रहते नहीं देखा

है, चाहे रामकृष्ण मिशन हो या चिन्मय मिशन या स्वामी शिवानन्दजी का आश्रम या भारत सेवाश्रम। एक कमरा दे देते हैं और उसमें रहो आराम के साथ। बिजली, पंखा वगैरह है तो ठीक, नहीं तो चलेगा। और यहाँ तो हमने पंखा ही हटा दिया है। गाँव में तो पंखा किसी के यहाँ है ही नहीं, तो फिर हम पंखा रख कर बुर्ज़ुआ क्यों बनें?

आजकल तो लोग बड़े समाजवादी विचारधारा के हैं न! इसलिए पंखा ही गायब कर दिया है हम लोगों ने। बिजली भी हम लोग रात को आठ-नौ बजे काट देते हैं। सुबह तीन बजे फिर चालू कर देते हैं। यह तरीका हमने ईसाई मठों से लिया है। वहाँ भी रात को आठ बजे सब जगह लाइन काट दी जाती है और सवेरे पाँच-छः बजे वे बिजली देते हैं। उन मठों में हमने देखा है कि बाथरूम या टायलेट कमरे से जुड़े नहीं रहते हैं, एकदम दूर रहते हैं।

हमने सोचा कि यह सिस्टम बहुत अच्छा है, क्योंकि इससे दो फायदे हैं। टॉयलेट जाने के पहले कम-से-कम थोड़ा चलना पड़ेगा और चलना पड़ेगा तो बढ़िया होगा। अब आज का आदमी टॉयलेट जाता है, पर उसका पेट चलता ही नहीं है। वहाँ आधा घण्टा बैठता है, बीड़ी-सिगरेट पीता है, खैनी खाता है, तब जाकर पेट हल्का होता है। उन लोगों का सिस्टम अच्छा है, नहाने का अलग, टॉयलेट का अलग और कपड़ा सुखाने का अलग। एक चीज़ अभी तक नहीं की है और वह है टायर प्रणाली, वन-टायर, टू-टायर, थ्री-टायर। लगता है अभी उसकी भी जरूरत पड़ेगी।

पानी की समस्या

दुनिया भर में पानी का स्तर गिर रहा है, क्योंकि अब लोग दो-तीन सौ फुट नीचे से, विदेशों में कई जगह तो दो हजार फुट नीचे से मोटा पम्प लगाकर पानी निकाल रहे हैं। लेकिन नदियाँ तो बहुत सूख गई हैं। पानी का स्तर बरसात पर निर्भर रहता है। आजकल सब लोग गहरी खुदाई करके पानी निकाल देते हैं। अब दूसरी चीज जो समझ में आ रही है, वह है 'वॉटर हारवेस्टिंग', पानी को एकत्र करना। जो पानी बरसात में तुम्हारे घर में, तुम्हारी छत पर गिरे, उसको बाहर मत जाने देना। उसको इकट्ठा कर लो और एक हौदे में डाल दो। उससे टॉयलेट सफाई, सिंचाई जैसा छोटा-मोटा काम हो जाएगा। केवल पीने का पानी कुएँ से निकालो। बाकी सब उससे हो सकता है। पानी का एकत्रीकरण अब करना पड़ेगा। वैसे लोगों को विचार आया है, मगर कर नहीं रहे हैं।

प्रतीकात्मक भविष्यवाणियाँ

हमारे यहाँ अट्ठारह पुराण हैं। तुम लोगों ने शायद कभी उनका अध्ययन नहीं किया होगा, क्योंकि तुम लोग ज्यादातर रामायण और महाभारत पढ़ते हो और ध्रुव, प्रह्लाद आदि की कहानियाँ अलग से पढ़ लेते हो। पुराणों में जो बातें लिखी गई हैं, उनमें आगे आने वाले मनुष्य के सामने, खासकर भारत के सम्बन्ध में, जम्बू द्वीप के सम्बन्ध में, जो समस्याएँ आ सकती हैं, उनके बारे में बहुत अच्छी तरह से कथाओं के माध्यम से बतलाया गया है। जब हम उन कहानियों को पढ़ते हैं, तब हमको ऐसा लगता है जैसे वे पहले के बारे में लिखी गई हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण या पद्म पुराण की कहानियों को पढ़ो, तो ऐसा लगता है कि वे कहानियाँ किसी पहले के जमाने की लिखी गई हैं। परन्तु अच्छी तरह से पढ़ो, तो ऐसा लगता है कि वे कहानियाँ नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक भविष्यवाणियाँ हैं।

उदाहरण के लिए, एक छोटी-सी कहानी है। कश्यप मुनि की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम था दिति, दूसरी का नाम था अदिति। दिति बड़ी थी, अदिति छोटी। दोनों के बच्चे पैदा हुए। दिति के बच्चे दैत्य कहलाए। अदिति के बेटे देवता कहलाए। दोनों का बाप एक और माँ अलग। सत्ता और प्रभुत्व के लिए वे हमेशा लड़ते रहे। उनमें कभी मेल-मिलाप नहीं हुआ, केवल एक समय छोड़ कर। जब प्रह्लाद दैत्यों का राजा हुआ था और उसका पोता बलि राजा बना। महाराजा बलि को विष्णुजी ने वामन बन कर ठगा, तीन पैर में धरती नापी, उसके बाद फिर झगड़ा किया उन्होंने। केवल प्रह्लाद से बलि के समय तक उन लोगों में आपस में मेल था, क्योंकि प्रह्लाद विष्णु समर्थक था और बलि भी बड़ा भगत था। मगर जब बलि को ठगा गया और उसको पृथ्वी लोक से निकाल कर पाताल में भेज दिया गया, तब फिर उन लोगों के बीच झगड़ा शुरू हुआ।

अब यह झगड़ा बहुत पुराना है या जो झगड़ा आज चल रहा है वही है? क्या यह ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म के बीच होने वाले झगड़े का प्रतीक नहीं है? बिल्कुल वही चीज है। यहूदी धर्म से दोनों का जन्म हुआ है। यहूदियों के अब्राहम साहब की पत्नी थी, उससे संतान नहीं होती थी, यह बाइबल की कहानी बोल रहा हूँ। तो उसने उनसे कहा कि संतान मेरे से तो होती नहीं है, इस नौकरानी हाजरा से बच्चा पैदा कर लो। नौकरानी से संतान पैदा हो गई, उसका नाम हुआ इस्माइल। बाद में उसकी औरत से भी संतान पैदा हो गई।

उसका नाम हुआ ईशाख। बस यही मूल है। सो आज तक चला आ रहा है। उनके बीच जो लड़ाई हो रही है, वह तो अब इसी आधार को लेकर हो रही है। देवता-दानव के युद्ध का जो प्रतीकात्मक वर्णन है, यह क्या कोई इतिहास है या एक भविष्यवाणी?

अभी बात हो रही थी पानी के बारे में। आने वाले समय में जल के लिए युद्ध होगा, भूमि के लिए नहीं। दूसरा मौनी राज के विरुद्ध। हम लोगों के यहाँ प्रजातंत्र को मौनी राज कहा जाता है। मौनी राज का अंत में क्या होगा, यह सब लिखा हुआ है। कारण बिल्कुल स्पष्ट है। समाज का स्वरूप देख लो तुम अपनी आँखों से। भारतीय समाज का स्वरूप क्या है? समाज माने परिवार। व्यक्ति से परिवार होता है, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र। तुम्हारे समाज का स्वरूप मौनी है कि एकतांत्रिक? सीधी बात पूछ रहा हूँ। बाप ने कह दिया, तो सब करना पड़ेगा। समाज का स्वरूप हम लोगों के यहाँ प्रजातांत्रिक है या नहीं, पहले यह जवाब दो मेरे को। तो फिर राजनीति का स्वरूप प्रजातांत्रिक कैसे हो सकता है? यह तो एक गोल छेद में चौकोर खूँटी फिट करने के बराबर हुआ। समस्या वही है।

यह पुराणों के आधार पर कह रहा हूँ कि मौनी राज चलेगा नहीं ज्यादा देर। इसे भूल जाओ। उस लड़के का उस लड़की से मन लग रहा है, शादी करना चाहता है। दादाजी बोल रहे हैं, भाड़ में जाए उसका मन। उसको इससे शादी करनी होगी, उससे नहीं। उस समय कहाँ रहा प्रजातंत्र? प्रजातंत्र माने स्वतंत्र। पर घरों में क्या बोलते हैं? स्वतंत्र रहना है तो निकल जाओ घर से बाहर, तुमको अपने को चलाना है या घर को? तो समाज का स्वरूप तुम्हारे लिए क्या है? प्रजातंत्र तो है नहीं, यहाँ एकतंत्र है। उसको चाहे अधिनायकवाद कहो, निरंकुशवाद कहो, सरदारी कहो, राजवंश कहो या दादागिरी कहो। अब इस सामाजिक माहौल में हम लोग प्रजातंत्र लाएँगे? पश्चिम के देशों में समाज का ही स्वरूप प्रजातांत्रिक है। बचपन से लड़का अपने ढंग से रहता है। माँ उसको कुछ नहीं बोलती है, बाप उसको कुछ नहीं बोलता है। वह माँ-बाप के पैर नहीं छूता है, बाप से 'डैड' भी नहीं बोलता है, 'हलो टॉम' बोलता है। इसलिए वहाँ प्रजातंत्र चल रहा है।

बात चल रही थी पुराणों की। पानी की समस्या और राजतंत्र की समस्या अभी आने वाली है। अभी माने कल-परसों की बात थोड़े बोल रहा हूँ। पचास-सौ साल की बात बोल रहा हूँ। तुम लोग बदलोगे नहीं, तो यह राजनैतिक तंत्र बदलेगा नहीं।

मेरे बेटे को भगवान के दर्शन होते हैं और बातें भी होती हैं।

रामकृष्ण परमहंस को आध्यात्मिक अनुभव होते थे। उनकी शादी कर दी गई। किन्तु वे उसे स्वीकार नहीं कर सके। जीवनभर शारदा को माँ के रूप में देखा, पत्नी के रूप में नहीं। उन्होंने तो अपनी समस्या हल कर ली। अनुकूलचंद ठाकुर थे। वे रहते थे पूर्वी बंगाल में, आज जो बंगलादेश है, वहाँ पवना में। उनको भी बचपन से अ़नुभव होते थे और समाधि में भी चले जाते थें। उनकी शादी हो गई। एक नहीं, बाद में फिर और शादियाँ भी हुईं। उनको बंगलादेश छोड़ना पड़ा। वे यहीं देवघर में आकर टिके। अनेक लोगों के जीवन में ऐसी घटनाएँ होती हैं, बचपन से उनको अनुभव होते हैं, किन्तु उनके माता-पिता उसको गम्भीरता से नहीं लेते और उसको गृहस्थ आश्रम में डाल देते हैं। गृहस्थ आश्रम में जाने में नुकसान नहीं है। पर होता क्या है, उसकी वह अवस्था गृहस्थ आश्रम में थोड़ा-सा व्यवधान डाल देती है।

हम इसे परेशान नहीं करते हैं, हम इसका पूरा साथ देते हैं।

नहीं, साथ देने का सवाल नहीं है। सहारे या स्वीकृति की बात नहीं बोल रहा हूँ। अब मान लो पत्नी तीन-तीन महीने नहीं सो रही है, दो-दो घण्टा बैठ कर भजन कर रही है या कभी बैठ कर ध्यान लगा रही है, देवीजी के दर्शन हो रहे हैं। ये सब चीजें गृहस्थ आश्रम में ठीक नहीं बैठती हैं, मेरे कहने का यह मतलब है। ऐसे लोगों को, जिनको आध्यात्मिक अनुभव होते हैं, गृहस्थ आश्रम से मुक्त रहना चाहिए। यह है पहला नियम, जो हम लोगों के यहाँ बना हुआ है। केवल भगवान में भक्ति हो गई, इसलिए गृहस्थ आश्रम छोड़ दिया, वह बात नहीं बोल रहा हूँ मैं। अगर पूजा-पाठ में मन लगता है, सत्संग में मन लगता है, मंदिर जाने में मन लगता है, उसके लिए गृहस्थी छोड़ने की जरूरत नहीं, वह एक अलग चीज है, वह धर्म है। तुम घर में रहते हो, तुम्हारे यहाँ पूजा-पाठ होता है, कभी सवेरे से राम जी की पूजा चल रही है, कभी कृष्ण जी की पूजा चल रही है, तो कभी नवरात का जोत जगा है, वह धर्म है और वह गृहस्थ के लिए ठीक है।

आजकल तो वह भी चलना बड़ा मुश्किल हो रहा है। कई-कई परिवारों में बोलते हैं कि हमको ऐसा आदमी नहीं चाहिए, ऐसी औरत नहीं चाहिए, क्या दिन भर पूजा-पाठ करती रहती है। हमने ऐसे भी घर देखे हैं। मगर एक बात और है, जिसको बोलते हैं अनुभव। आध्यात्मिक अनुभव का मतलब

होता है कि आँखों से कुछ नहीं दिखता, कान से कुछ सुनाई नहीं देता, मगर अंदर में दिखता है। कैसे दिखता है? जैसे सपने में दिखता है। पर वह सपने में नहीं, सपने में जैसा दिखता है, वास्तव में वैसा जागृति में दिखता है। सपने में तो देखते होगे तुम लोग, जानवर दिखता है, आदमी, नदी, मोटरगाड़ी, सब चीजें दिखती हैं, पर वह सपने में दिखता है। ठीक वही चीज जब जागृति में दिखने लगे, उसको कहते हैं आध्यात्मिक अनुभव, और वह बहुत कम लोगों को होता है। अब क्यों होता है, यह तो बहुत लम्बी-चौड़ी बात है, उसको कहने से कोई फायदा नहीं है। ऐसे लोगों को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उनको भी परेशानी होती है।

अब जब गृहस्थ आश्रम में आ गए, तो इस अवस्था को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। एक तरफ तो भगवान का, गुरुजी का दर्शन हो रहा है, इसलिए मन में खुशी हो रही है, दूसरी तरफ गृहस्थ आश्रम में हैं, तो परेशानी भी हो रही है। ये दो मनःस्थितियाँ हो जाती हैं तुम लोगों की। पर एक साथ दो मनःस्थितियों में नहीं रह सकते। एक तरफ जाना होगा, इधर या उधर। अगर गृहस्थ आश्रम में जैसा चल रहा है, वैसा ठीक है, तो फिर उसका उपाय मत खोजो, किसी से पूछो मत। लेकिन अगर उपाय पूछना है, तो इसको रोकना चाहिए। और इसको रोकने का उपाय है।

माँ से दूर नहीं होना चाहता है।

अब माँ से दूर नहीं होना चाहता, तो फिर पूछो ही मत, चुप रहो। किसी से मत बोलो। हमसे भी नहीं पूछना, किसी से पूछना नहीं चाहिए, क्योंकि हम लोग तो मनुष्य हैं। देवीजी तो मनुष्य नहीं हैं, वे तो एक अलौकिक शक्ति हैं। अब उस अलौकिक शक्ति और तुम्हारे बीच में हम दाल-भात में मूसलचन्द क्यों बनें?

कहते हैं अपने गुरु से कुछ नहीं छिपाना चाहिए।

गुरु से नहीं छिपाना चाहिए का मतलब कुछ और होता है। उसको ईसाई मत में कबूल करना बोलते हैं। जब हम इससे भी छोटी उम्र के थे, हमको अनुभव हुआ एक दिन। हम जीवित थे, हमको सब दिख रहा था, मगर हमको शरीर का अनुभव नहीं हो रहा था। शरीर का अनुभव सबको मालूम है। सब लोगों को लगता है कि शरीर है, हमको ऐसा नहीं लग रहा था। लेकिन शरीर की

गतिविधियों का अनुभव हो रहा था और ऊपर से घबराहट! हमारे पिता तो आर्यसमाजी थे, वे पहले आर्य समाजियों के पास ले गए। अब आर्यसमाजी तो इस चीज को मानते हैं नहीं। बोले, ये फालतू चीजें हैं, दवाई वगैरह दिला दो, कुछ करवा दो। उसके बाद अल्मोड़ा के रामकृष्ण मिशन में ले गए, मगर वे भी कुछ नहीं बोले। आनन्दमयी माँ भी थीं उस वक्त। उनके पास ले गए, वे बोलीं कि भजन-कीर्तन कराओ, ठीक हो जाएगा।

उसके बाद वह अनुभव दो-तीन बार और हुआ, विदेह अनुभव जिसको बोलते हैं। बड़ा घबराने वाला था वह अनुभव, उस वक्त बहुत डर लगता था, बहुत घबराहट होती थी। फिर नैनीताल में हमें एक तांत्रिक योगिनी मिली, मोटी-ताजी, काली-कलूटी, बैंगन की तरह। वह दिनभर गाँजा फूँकती, चिलम चढ़ाती और बोतल मारती थी। कहती थी, गोश्त लाओ। हम फँस गए उससे। उसने हमको कहा, 'ऐ, कुत्तों को कुत्तों के बीच में रहना चाहिए, गधों के बीच में नहीं। शेर को शेर के बीच में रहना चाहिए, खरगोश के बीच में नहीं। तू तो साधु है, साधुओं के बीच में रह।'

उसके बाद वह अनुभव खतम हो गया और हमको वह अनुभव फिर कभी नहीं हुआ। और हम उस अनुभव को लाना भी नहीं चाहते हैं। बहुत डरावना अनुभव था। उसने हमको बोल दिया कि शेर को शेर के बीच में रहना चाहिए, मतलब तुम्हारा स्वभाव दूसरा है, फिर तुम घर-गृहस्थी में माँ-बाप के साथ कैसे हो? संसार से तुमको क्या मतलब है? उसका मतलब था, घर छोड़ दो। हम समझ गए, उसने बोला शेर को शेर के साथ रहना है, खरगोश के साथ कहाँ रहेगा। कुत्ते को कुत्ते के साथ रहना है, गधे के साथ क्यों रहेगा। कुत्ता गधे के साथ रहेगा, तो दोनों एक-दूसरे को लात मारते रहेंगे और भूँकते रहेंगे। और शेर खरगोश के बीच में रहेगा, तो खरगोश भागता रहेगा और शेर उसका पीछा करता रहेगा। शेर को शेर के बीच में रहना है।

हमने घर छोड़ दिया। हम एक दूसरे अनुभव में आ गए। जिस वातावरण में यह चाहिए, वह चाहिए, यह कष्ट है, वह बीमारी है, यह है तो वह लाओ, ऐसा मत करो, हम उस वातावरण से एकदम हट गए। एक ऐसे वातावरण में चले गए जहाँ जंगल था, साँप-बिच्छू रहते थे, रात को शेर दहाड़ता रहता था, नहाने-टट्टी के लिए टॉयलेट नहीं था और न ही पानी का कोई इंतजाम था। डेढ़ मील नीचे जाकर नहाओ, वहाँ से पानी लाओ। मेरे को एक बार वहाँ दस्त हो गया। मैं बाल्टी लेकर जाता था, पानी लेकर आता था, टट्टी होती थी,

फिर वापस जाता था। पानी लाने में ही मेरा दस्त खत्म हो गया! इतनी मुश्किल हो जाती थी। वह जीवन ही कठिन होता है। अब उस कठिन जीवन में कहाँ समाधि, कहाँ भगवान। कुछ ख्याल नहीं आता था।

हमारे गुरुजी बहुत सीधे आदमी थे। बहुत गाय आदमी थे, वे चंट नहीं थे। पढ़े-लिखे डॉक्टर थे, एम.बी.बी.एस. थे। वे बहुत अच्छे आदमी थे। हमको उन्होंने दीक्षा के वक्त एक ही बात कही, "देखो हाथी हो या कबूतर हो या शेर, गोली एक ही मारी जाती है और निशाना लगा तो मर जाता है। तुम बीस से चौंतीस गोली बेनिशाने मारो, कोई फर्क नहीं पड़ता है। पाँच माला 'ॐ नमः शिवाय' का जप सवेरे बिस्तर से उठकर कर लेना। रात को भी सोने के पहले पाँच माला 'ॐ नमः शिवाय' का जप कर लेना। मन में विचार आते हैं या नहीं आते हैं, अच्छे विचार आते हैं या बुरे विचार आते हैं, मंत्र पर यकीन होता है या नहीं होता है, कोई फर्क नहीं पड़ता।" यह पाँच माला आज तक हमारी चल रही है। हमने पूछा, 'पाँच के ऊपर?' वे बोले, 'नहीं, सच्चा शिकारी एक ही गोली मारता है। और मारने के बाद फिर वह बंदूक को कन्धे पर रख लेता है।'

श्रद्धा और विश्वास भगवान को प्राप्त करने के साधन हैं। भगवान को पाने का कोई दूसरा साधन नहीं है। न शास्त्र पढ़ने से वे मिलते हैं, न तीर्थ करने से, न मंदिर जाने से, न सिर मुड़ाने से, न ध्यान करने से, न ब्रह्मचर्य से और न दान-धर्म से। भगवान मिलते हैं केवल श्रद्धा और विश्वास पर। और वह श्रद्धा-विश्वास, चाहे किसी कसाई में हो, वेश्या में हो या संत-महात्मा में हो, भगवान के दर्शन का रास्ता है। श्रद्धा-विश्वास जब है, तब फिर पाँच माला की भी जरूरत नहीं। सवेरे उठे, श्रद्धा के साथ एक बार भगवान को याद कर लिया। जैसे प्रेमिका प्रेमी को याद करती है या प्रेमी प्रेमिका को याद करता है। नहीं, यह गलत उदाहरण हुआ। जैसे तुम अपने दुश्मन को याद करते हो। जिससे तुम घृणा करते हो उसके प्रति तीव्र अनुभूति होती है न? इतनी तीव्र अनुभूति होनी चाहिए दो मिनट तक। बस, उसी को हमने लगाया, और उम्र कम थी तो उम्र काटने के लिए बहुत कुछ किया। तीरथ भी किया, घूमे भी, मगर जीवन की साधना का मूल रूप भगवान का उतना ही नाम जितना गुरुजी ने हमको मंत्र दिया, न एक माला कम, न एक माला ज्यादा। न अपने मन के साथ हमने जीवन में झगड़ा किया और न अपने मन के साथ कभी हमने जीवन में अपने को ही प्रकट किया।

मन तो दस-बीस होते नहीं। एक ही मन होता है न? उसको दो क्यों बनाते हो? एक मन कहता है चोरी करो, व्यभिचार करो और दूसरा मन कहता है ब्रह्मचर्य का पालन करो। अब दो मन तो तुमने बना ही लिए। मैं खण्डित मानसिकता नहीं चाहता। जो है सो ठीक है। भगवान ने मेरे को जैसा बनाया ठीक है। 'कारे दाओ माँ ब्रह्मपद कारे करो अधोगामी, सकली तोमार इच्छा।' पाँच फुट दो इंच का आदमी और कितने अहंकार के साथ हम लोग जी रहे हैं! लगता है कि हम ही तीसमारखाँ हैं। हमारा तो इस सृष्टि में कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं है। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड, उसमें तुम्हारा सौरमण्ल, उसमें तुम्हारी पृथ्वी, उसमें तुम्हारा महाद्वीप, उसमें तुम्हारा देश, उसमें तुम्हारा प्रान्त और उसमें तुम्हारा शहर और उस शहर में तुम्हारा घर, उस घर में एक तुम। अब इस गणित के आधार पर अपनी पहचान निर्धारित करो न। तुम कहीं नहीं हो। एक अणु के बराबर भी नहीं हो।

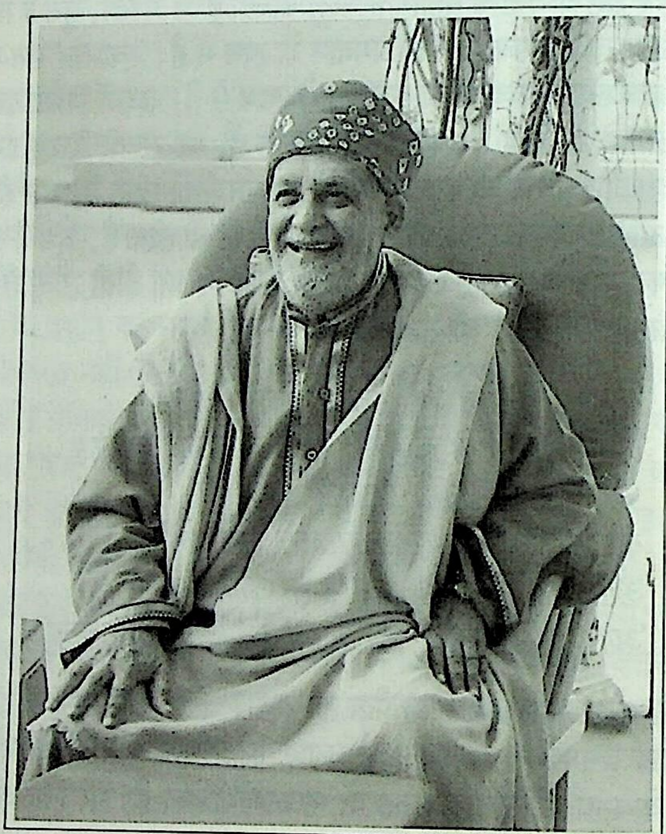
भगवान जो है, एक ऐसी शक्ति है जिसने हमारी सब योजना बना कर रखी है। हम उस योजना के मुताबिक चलें, अच्छा है तो अच्छा, बुरा है तो बुरा, क्या फर्क पड़ता है। सब कुछ तो भगवान के हाथ में है। एक संत संत है और एक वेश्या वेश्या, पर दोनों ही भगवान के हाथ में हैं। सच्ची शिक्षा इतनी ही है। मन लगाने के लिए हम बहुत बातें बोलते हैं, पर सच्ची शिक्षा इतनी ही है। तुम इसको भगवान की इच्छा समझो, अच्छा है तो ठीक है, बुरा है तो भी ठीक है, अनिष्टकारी है तो ठीक है, इंष्टकारी है तो भी ठीक है, शुभ है तो ठीक है, अशुभ है तो भी ठीक है। इससे तुमको मोक्ष मिलता है तो ठीक है, इससे तुम्हारा पतन होता है तो भी ठीक है।

सकली तोमार इच्छा, इच्छामयी तारा तुमि।
तोमार करम तुमि करो माँ! लोके बोले करे आमि॥
पंके बद्ध करे राखो, पंगुरे लंघाओ गिरि।
कारे दाओ माँ ब्रह्मपद कारे करो अधोगामी॥
आमि जंत्र तुमि जंत्री, आमि घर तुमि घरणी।
आमि रथ तुमि रथी माँ, जेमनी चलाओ तेमनी चली॥

आखिर तुम अपनी मर्जी से पैदा हुए क्या? कोई प्लान बना कर आए थे क्या? कोई प्लान बना कर जाना है क्या? आदमी जो सीमेन देता है, किसी प्लानिंग के साथ नहीं देता है। वह तो भावनावश देता है। मेरे पिताजी मेरे को

बोलते थे, 'माता-पिता के कर्तव्य की बात मत करो, तुम तो हमारी एक जैविक दुर्घटना का परिणाम हो। मैंने तुम्हारे लिए कभी योजना नहीं बनाई थी!' सच्ची बात इतनी ही है। अब आदमी सौ बात कर उन चीजों को बोलता है। भगवान ही एकमात्र सत्य है और उस सत्य के लिए न ध्यान की जरूरत है, न पूजा की। लेकिन क्या करोगे दिन भर बैठ कर, मन तो लगाना पड़ेगा न, कुछ तो करना पड़ेगा। परन्तु असली चीज यह है कि यदि तुम्हें भगवान पर पूर्ण विश्वास है, पूर्ण समर्पण है, तब *'आमि जंत्र तुमि जंत्री। आमि रथ तुमि रथी। कारे दाओ माँ ब्रह्मपद कारे करो अधोगामी।'* हमको ब्रह्मपद दो ठीक है, अधोगामी करो ठीक है, सकल तुम्हारी इच्छा। तेरी इच्छा पूर्ण हो भगवान, बस सत्य इतना ही है और कुछ नहीं है। बाकी हम लोग मन बहलावनी सब बातें बोलते हैं, क्योंकि तुम लोग सुनने के लिए तैयार रहते हो।

– 23 मई 2004





अध्याय 4

मन को स्थिर करने के लिए आसन और प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। आसन और प्राणायाम को हठ योग कहते हैं। प्राणायाम बिना आसन के नहीं करना चाहिए। आसन पहले, प्राणायाम बाद में। आसन-प्राणायाम गुरु से सीखना पड़ता है। जैसे बच्चा पति से लेना पड़ता है, कानून है, वैसे ही यहाँ भी एक कानून है। गुरु के बिना ज्ञान सफल नहीं होता। पति के बिना बच्चा जायज नहीं होता है। मैं एक ऐसा सीधा-सादा उदाहरण दे रहा हूँ, जिसे आपको समझना पड़ेगा। बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो। चाहे रसायन विज्ञान हो, जीवविज्ञान हो या अन्य कोई विषय हो। अगर ऐसा नहीं है, तो अपने बच्चों को बोलो कि घर में बैठ कर किताब से पढ़ लें। क्यों स्कूल-कॉलेज जाते हैं? नहीं, गुरु सब क्षेत्रों में जरूरी है। परमात्मा भी जब अवतार लेंगे, तो उनको गुरु बनाना पड़ेगा। भगवान को भी गुरु के चरणों में सिर झुकाना पड़ेगा और उनसे दीक्षा लेनी पड़ेगी।

आसन का मतलब होता है शरीर की एक स्थिति, व्यायाम को आसन नहीं कहा जाता है। तुम्हारा शरीर किसी एक स्थिति में आता है, कभी मछली, कभी साँप, कभी टिड्डी, कभी बाघ, तो कभी कमल की स्थिति में। कहा जाता है कि चौरासी आसन होते हैं और इन चौरासी स्थितियों में जब आते हैं, उस समय तुम्हारे शरीर के अन्दर जो रास्ते हैं, वे साफ हो जाते हैं। तुम जो प्राणायाम करते हो, वह शारीरिक क्रिया नहीं है। शरीर के अन्दर जो इलेक्ट्रॉन होते हैं, उनको अलग करने की क्रिया प्राणायाम में होती है। वायुमण्डल में धनात्मक और ऋणात्मक आयन होते हैं। यह श्वास प्राण नहीं है, यह वायु

है, यह तो ऑक्सीजन है। प्राण तो शरीर के अन्दर में पहले से ही हैं। शरीर के अन्दर पाँच प्राण होते हैं–प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान–जो शरीर की हर क्रिया को, तुम्हारी जानकारी के बिना सन्तुलित करते हैं। खाने को पचाते हैं, टट्टी-पेशाब करवाते हैं, पसीना निकालते हैं, बालों को बढ़ाते हैं, बूढ़ा-जवान बनाते हैं।

प्राण तो विशुद्ध माँ के पेट में ही आए। जब मनुष्य माँ के पेट में भ्रूण रूप में प्रकट हुआ, तब तीसरे महीने में प्राण अन्दर में आया। चौथे महीने में जीव अन्दर में आता है और उसके बाद वह भ्रूण एक अलग व्यक्ति हो जाता है। तीसरे महीने में जीवन आता है और चौथे महीने में जीव। उसके बाद उसका मारा जाना, उसका गर्भपात करना गलत मानते हैं, क्योंकि वह एक जीवित व्यक्ति है। माँ के शरीर से ही उसके गर्भ में प्राण का एक केन्द्र बना। प्राण का जो केन्द्र है, वह है नाभि।

श्वास शरीर में ऑक्सीजन के रूप में जाता है और हृदय तथा मस्तिष्क को सक्रिय बनाता है, ऑक्सीकरण की क्रिया को पूरी करता है, पर इससे ज्यादा शरीर के अन्दर प्राणों में विद्युत को अलग करता है। इसलिए प्राणायाम को केवल श्वसन-अभ्यास के रूप में न मानकर, उसको थोड़ा और ज्यादा मानो। पहले आसन करो, फिर प्राणायाम। और यदि कब्ज, दस्त, सर्दी या खाँसी की बीमारी है, तो पहले उसका उपाय करो। तब फिर हठयोग की छः क्रियाएँ आती हैं–नेति, धौति, बस्ती, कपालभाति, त्राटक और नौलि। इन छः क्रियाओं को षट्कर्म बोलते हैं। प्रातःकाल पन्द्रह-बीस मिनट आसन करो और पन्द्रह-बीस मिनट प्राणायाम। आसन-प्राणायाम के बाद फिर करो मुद्रा। और फिर सीखो बन्ध। आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध। इसके बाद तुम देखोगे कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व जीवन की विषमताओं के साथ समझौता करेगा।

दुःख, परेशानी और विषाद उसी आदमी को होता है, जो जीवन की विषमताओं के साथ समझौता नहीं कर पाता। जो व्यक्ति जीवन की विषमताओं से समझौता कर लेता है, उसके लिए–

हर आन हँसी, हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।

जीवन की विषमताएँ क्या हैं? मन में विचार आते हैं, विषाद होता है। और हम मानते भी नहीं हैं कि जीवन की विषमता को आदमी दूर कर सकता

है। जीवन की विषमताओं के बीच में रहना पड़ता है, यह हमको कमल सिखाता है। कमल हमेशा कीचड़ में पैदा होता है, सूखी जगह या साफ सरोवर में नहीं। देवता भी कमल से ही पैदा हुए हैं। जीवन की विषमता मनुष्य के विकास के लिए लाजिमी है। अगर मनुष्य सात्त्विक अवस्था में पहुँच जाता है, अगर उसके मन में दु:ख के कोई विचार न हों, कोई विषाद न हो, तो उसका विकास रुक जाता है।

कभी-कभी मुझे विषाद होता है। क्या वह आत्मविश्वास की कमी की वजह से होता है?

कभी-कभी बिजली को देखते होगे, ओवरलोड की वजह से कट जाती है। वह लाइन जितना लोड ले सकती थी, उससे अधिक लोड हो जाने से फ्यूज़ बिगड़ जाता है। उसी तरह विषाद मन पर ज्यादा लोड या दबाव डालता है। यह जो हम लोगों का दिमाग है, उसकी बुनियाद विद्युत-चुम्बकीय प्रक्रिया है। हमारे यहाँ योगशास्त्र में इसको कहते हैं—इड़ा और पिंगला का खेल। सूर्य नाड़ी और चन्द्र नाड़ी का खेल। अब आधुनिक भाषा में बोलते हैं कि मस्तिष्क में विद्युत क्रिया रहती है। उसको सब मानते हैं और उसे मापा भी गया है।

अल्फा, बीटा, डेल्टा और थीटा तरंगों के रूप में बिजली तुम्हारे दिमाग में काम करती है। अल्फा तरंग के आते-आते विषाद शुरू होता है। थीटा और बीटा तरंग में विषाद नहीं होगा। बीटा तरंग में आदमी का दिमाग बन्दर की तरह कूदता है, एकदम बवाल करता है। अल्फा तरंग में आते-आते धीरे-धीरे विद्युत क्रियाएँ कम हो जाती हैं और उसकी वजह से विचार बहुत धीमे हो जाते हैं। यह दो अवस्थाओं में होता है। एक तो उस अवस्था में होता है जब कोई योग का साधक ध्यान लगाकर अपने मन को एकाग्र करता जाता है। तब उसके मस्तिष्क में जो तरंगें हैं, वे घटते-घटते अल्फा में आ जाती हैं। उसको तो साधना करनी है, दिमाग को रोकना है। लेकिन अब साधारण रूप से घर में कोई महिला है या कोई आदमी नौकरी कर रहा है या दुकान कर रहा है, और अचानक उसका दिमाग फ्यूज़ हो जाए, वह तो घबरा जाएगा।

विषाद तो योग की अवस्था में भी होता है और वैसे भी होता है। योग में चित्त की वृत्ति को एकाग्र करके विषाद को लाया जाता है और जो विषाद

तुमको होता है, वह होता है दिमाग के बहुत ज्यादा उछल-कूद करने के बाद, डर होने के कारण। मस्तिष्क में फ्यूज़ उड़ता है, शॉर्ट सर्किट भी होता है। बहुत से लोग पागल हो जाते हैं, वे ठीक नहीं हो सकते, उनका तार ही उड़ जाता है। मस्तिष्क में बहुत से सर्किट हैं, योग में तो माना ही गया है, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, आदि। और वैज्ञानिक भी अब इस बात को मानते हैं कि मस्तिष्क में जेली की तरह जो 'ग्रे मैटर' होता है, उसके अन्दर तारें होती हैं, जो विद्युत-चुम्बकीय बिजली को ले जाती हैं।

जब दिनभर काम करते-करते धीरे-धीरे शरीर थक जाता है और रात में तुम नौ-दस बजे थककर बिस्तर में पड़ जाते हो, तब मस्तिष्क की तरंगों की आवृत्ति शून्य पर आ जाती है, उसको हम लोग डेल्टा तरंग कहते हैं। डेल्टा कहा तो मतलब सो जाओ। उस अवस्था को कहते हैं कि मस्तिष्क काम नहीं कर रहा है, डेल्टा तरंग में है। उस समय मस्तिष्क का कोई हिस्सा काम नहीं करेगा, किसी भी हालत में काम नहीं करेगा। तो मस्तिष्क की विद्युत-सक्रियता जब एक बिन्दु तक कम हो जाती है, तब आम आदमी उसको विषाद के रूप में अनुभव करता है और योग साधक एकाग्रता के रूप में। और कोई फर्क नहीं है। इसलिए कहते हैं कि चित्त की वृत्ति को एकाग्र करने से पहले उसको थोड़ा और सुधार लो।

हमारे लड़के का पढ़ाई में मन नहीं लगता, मन में बहुत उथल-पुथल है, मतलब मन स्थिर नहीं है। वैसे दिमाग बहुत तेज है, लेकिन उसका दिमाग पढ़ाई में नहीं जाता है। आप उसको कुछ सिखा दीजिए, बहुत जल्दी ग्रहण करता है। अन्य चीजों में भी बहुत तेज, बस पढ़ाई में मन नहीं लगता है। उसका क्या करना चाहिए?

हमने सुना है कि गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की खोज करने वाला न्यूटन, जो एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था, अपनी क्लास में महा फिसड्डी था और लड़कियाँ उसको बहुत तंग करती थीं। लेकिन उस फिसड्डी आदमी का ऐसा भविष्य हुआ कि तुम सबको भूल जाओगे, मगर न्यूटन को नहीं भूलोगे, क्योंकि उसने दुनिया को, पृथ्वी को, सूरज को, समुद्रों को नापने का सिद्धान्त निकाल दिया। इतना बड़ा आदमी, उसने समुद्र और पृथ्वी को तौलने का सिद्धान्त भी निकाल दिया! तो बात केवल इतनी है कि आप अपने असंतोष को अपने बच्चे के ऊपर थोपिए मत।

खलील जिब्रान ने कहा है, बच्चे तुमने पैदा किए हैं, तुम उनको अपना मान सकती हो, पर वे तुमसे अलग हैं। उनके अन्दर जो आत्मा है, वह कहीं और से आई है। यह शरीर रूपी घर तुमने उसको बना कर दिया है, जिसका कच्चा माल तुमने दिया है और डिज़ाइन तुम्हारे पति ने। तुम्हारे कारखाने में वह मकान पैदा हुआ, मगर उस मकान में रहने वाले न तुम हो, न तुम्हारा पति। इस मकान में हम रहते हैं, मगर यह मकान हमने नहीं बनाया है। यह किसी मुसलमान मिस्त्री ने बनाया है, मगर मैं मुसलमान नहीं हूँ। उसी तरह से यह शरीर रूपी मकान तुमने बनाया है, मगर यह तुम्हारा नहीं है। इसलिए बच्चे को पढ़ाओ-लिखाओ, खेलने-कूदने दो, जो मस्ती करता है, करने दो।

आखिर क्या करना है, दो रोटी खानी है, मजा करना है, किसी दिन कुछ बन गया, तो फिर उसका नाम लेकर बोलोगे कि मैं उसकी माँ हूँ! और थोड़े दिन उसको किसी आश्रम में छोड़ दिया करो, जहाँ भी तुम्हारी श्रद्धा हो। ऐसा जीवन जहाँ वह अजनबियों के बीच रह सके। घर में तो उसके लिए कोई रोक है नहीं, न बाप अजनबी है, न माँ। न भाई अजनबी है, न बहन, न ताऊजी न ताईजी, कोई अजनबी नहीं है। आश्रम में आकर सब अजनबी हो जाते हैं। और अजनबियों, अपरिचितों के बीच रहना बहुत आवश्यक है।

आज का जमाना ऐसा ही है। पहले के जमाने में रामजी को अपनों के बीच रखा गया, जबकि कृष्णजी को अजनबियों के बीच छोड़ा गया। कृष्णजी ऋषि संदीपनी के आश्रम में जाकर रहे। रामजी बिल्कुल काम के लायक नहीं थे। किन्तु ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में जाकर वे बहुत विद्वान् और पहलवान बन गए, ऐतिहासिक महापुरुष बन गए।

हमारे देश में आश्रमों में प्राचीनकाल से आज तक लोग रहे हैं और अभी भी बहुत लोग रहते हैं। हिन्दुस्तान में आश्रमों की कमी नहीं है, छोटे-बड़े, अच्छे आश्रम हैं। कुछ वैष्णव होते हैं, कुछ शैव या शाक्त होते हैं, कुछ ईसाइयों के हैं, सबके आश्रम हैं। हिन्दुस्तान के आश्रमों में हजारों लोग आते हैं, पन्द्रह-बीस दिन, एक-आध महीना रहते हैं और क्या करते हैं यहाँ? कुछ नहीं। उनसे पढ़ाई-लिखाई, गाना-बजाना कुछ नहीं होता। शाम को कीर्तन होता है, बस। और दिन में खाने के बाद तुमको जो करना हो करो, लेकिन गेट के बाहर नहीं जा सकते। थोड़ा नियंत्रण रहता है।

लेकिन जब वह बात नहीं सुनता तो मेरे को गुस्सा आता है। मैं दिनभर बोलती हूँ, परेशानी मोल लेती हूँ। उसको कैसे समझाऊँ, बस यह समझा दीजिए।

यह तो आपकी समस्या है, उसकी समस्या थोड़े ही है। उसको तो कुछ बताने की जरूरत नहीं है, आपको खुद सोचना होगा कि मैं कैसे रहूँ। हमारे हिन्दुस्तान की सभ्यता में आजकल बच्चों को अपने से हीन माना जाता है। यद्यपि यहाँ की विचारधारा दूसरी है, परन्तु फिर भी हम लोग उसको व्यावहारिक रूप से देखते नहीं हैं। हमारा बच्चा कोई दूसरा व्यक्ति हो सकता है, कोई आत्मा उसमें आई हो, अच्छी आत्मा है कि बुरी आत्मा, क्या मालूम? ऐसे तो हम लोग नहीं सोचते हैं, हम समझते हैं कि हमारा बच्चा है। इसलिए हम उसको अपनी कार्बन-कॉपी बनाना चाहते हैं। बच्चों को अपनी कार्बन-कॉपी बनाने का जमाना अब चला गया। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक यह सम्भव था। अब इक्कीसवीं शताब्दी में यह सम्भव नहीं होना चाहिए।

आज बच्चों के लिए बहुत बड़ा मैदान है। लड़कियों के लिए भी बहुत बड़ा मैदान है। यह देश न तो चीन के रास्ते जाएगा, न रूस के और न ही पश्चिम एशिया के रास्ते जाएगा। यह देश पाश्चात्य सभ्यता के रास्ते जाएगा, क्योंकि पाश्चात्य लोगों की नस्ल और हम लोगों के पूर्वजों की नस्ल में कहीं पर समानता है। हम लोगों का वही रुख है, हम लोग वैसे ही आदमी बनना चाहते हैं। लेकिन हम लोगों को एक तरह से बंद कमरे में रखा गया, लपेटकर रखा गया, पर्दे में रखा गया, क्योंकि हमारे राजा ऐसे ही थे, मुगल साम्राज्य में और उसके पहले दूसरे साम्राज्यों में भी। हम लोग कई हजार साल से गुलामी में रहे हैं। हम लोगों ने स्वतंत्र जीवन कभी बिताया नहीं है। स्वतंत्र जीवन का मतलब होता है कि हम लोग अपनी पसंद से रहें।

हम आपको शुरू से बोलते आए हैं, आज भी बोल रहे हैं कि भूतकाल के बारे में गर्व करने का आज कोई विकल्प हमारे सामने नहीं है। हम भूतकाल को छोड़ना चाहते हैं। भूतकाल को छोड़ना और भविष्य में पैर रखना, यह निरंतरता कहलाती है। और यदि हम भूतकाल को नहीं छोड़ेंगे तो रुकावट आ जाएगी, सनातनता नहीं रहेगी। सनातन धर्म में भूतकाल को छोड़ना पड़ेगा और भविष्य को जोड़ना पड़ेगा। और यदि भूतकाल में ही जाना चाहते हो, तो यह कोट-पतलून उतारो, लंगोटी पहनकर आओ। अपने बीबी-बच्चों को डिब्बा लेकर बाहर भेजो, कुएँ में स्नान करने को बोलो। बाहर ही में दो ईंट

लगाकर एक छोटा-सा चूल्हा बनाओ और उसमें खाना पकाओ। उनसे सुबह-सुबह पत्ते इकट्ठे करवाओ। नहीं, हमको उस तरफ जाना ही नहीं है, हमें उस भारत को नष्ट करना है। हमको उस भारत की आवश्यकता नहीं है। बहुत हो चुका। और ये बच्चे भी नहीं चाहते उसे। भले ही तुम चाहो, साधु चाहे, ब्राह्मण चाहे, बड़े लोग चाहें, पर ये बच्चे बिल्कुल नहीं चाहते।

भारत का भविष्य ये बच्चे हैं, तुम या हम नहीं। हम भारत के भूत हैं, अतीत हैं। भारत के बच्चे शिक्षा के बारे में क्या चाहते हैं, अन्य विषयों के बारे में क्या चाहते हैं, यह हम लोगों को स्पष्ट होना चाहिए। बच्चों के ऊपर किसी तरह का नियंत्रण नहीं होना चाहिए। आखिर क्या सही है और क्या गलत? धर्म-अधर्म की परिभाषा कौन करेगा? लाल टीका लगा कर रहें, तो धार्मिक हो गए! नहीं, मनुष्य को अपने अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को उजागर करना होगा, चाहे वह काव्य प्रतिभा हो, क्रीड़ा की प्रतिभा हो, विज्ञान की प्रतिभा हो या अपराध की प्रतिभा हो। आखिर ठग विद्या भी तो एक प्रतिभा है, नहीं है क्या?

बच्चों को पढ़ो-पढ़ो नहीं कहना है। और कितना पढ़ेंगे, थोड़ा खेलना भी चाहिए, क्योंकि खेल बच्चों के मन और स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। तुम्हारा दवाइयों का बिल गिर जाएगा, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो जाएगा, उनको जमकर नींद आएगी और तुम्हारे साथ तो कभी झगड़ा होगा ही नहीं। ये माँ और बेटियाँ दिनभर उलझेंगे नहीं। कोई भी सभ्यता सम्पूर्ण नहीं है। किसी को हम अंतिम सभ्यता नहीं कहते हैं। परन्तु आज जो सन् 2003, 2004 और 2005 हम अपनी आँखों से देख रहे हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य एक नए युग में प्रवेश कर रहा है।

यह युग है यंत्र का और यंत्र की संभावना इतनी अधिक हो गई है कि कल तुम घर बैठे माल मँगाओ, घर बैठे पढ़ो, पुस्तकालय में जाने की जरूरत ही नहीं है। इसके अलावा विद्या के द्वारा आगे जाकर युद्ध का स्वरूप भी बदलने वाला है। हो सकता है कि सेना में किसी को भर्ती ही न करना पड़े। टैंक में रोबोट को बिठला दें और यंत्र के द्वारा उसको संकेत भेजें। मरता है तो मरने दो, रोबोट ही तो मर रहा है। ये सब चीजें आ रही हैं। युद्ध में सेना का जाना जरूरी नहीं है और यह भी कोई जरूरी नहीं है कि युद्ध देश को जीतने के लिए हो। युद्ध मार्केट को जीतने के लिए होगा। पहले जमाने में जमीन या औरत के लिए युद्ध होते थे। अब मार्केट के लिए युद्ध होंगे और आगे जाकर के पानी के लिए भी लड़ाई हो सकती है।

बच्चों को एकदम तेज-तर्रार और हाजिरजवाब होना चाहिए, जो तुमको जवाब दे सकें। जो बच्चा माँ-बाप को जवाब नहीं दे सकता, वह बच्चा कैसा? माँ-बाप एकदम सदाचार के परम अवतार हैं क्या? क्या वे हमेशा सही होते हैं? बच्चा बोलता है, 'पापा, आप क्या कर रहे हैं? दिन-भर तो आप सिगरेट पीते रहते हैं और हमको बोलते हैं मत पीयो। शाम को आप क्लब में जाते हैं, घर में क्यों नहीं आते? उस औरत से आप क्या बात करते हैं?' बच्चों में इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि जो उनके मन में है, वह अपने माता-पिता को बोल सकें। बच्चों को अब कमजोर मत करना। बच्चों को कमजोर बनाना, माने हिन्दुस्तान को कमजोर करना।

एक चीज और है। कॉलेज में पढ़ी-लिखी लड़कियाँ, जो फिल्म वगैरह देखती हैं और जिनको सारी दुनिया की जानकारी होती है, जब वे गृहस्थ आश्रम में जाती हैं, तो घर में दिनभर रहती हैं और उसकी वजह से एक तरह की बोरियत और निराशा उनको होती है। उनको पता नहीं चलता है। अब कोई घरेलू लड़की है, मिडिल पास है, बस दस्तखत करना जानती है, उसके लिए घर-गृहस्थी अच्छी है, क्योंकि कम-से-कम उसको एक सहारा रहता है, उसको बाहर की दुनिया का तो कुछ पता नहीं। पर पढ़ी-लिखी लड़कियों को गृहस्थ आश्रम में जाकर दिनभर घर देखना, चाबी, नौकर, बिल और टेलिफोन ही देखना, यह काफी नहीं है। अब मैं गलत कह रहा हूँ या सही, यह तुम लोग जानो।

आप सही कह रहे हैं, लेकिन मान लीजिए यदि हम लोग भी इस तरह से बाहर जाएँ, कुछ नौकरी करें तो इन बच्चों को कौन देखेगा, घर कौन देखेगा? यह समस्या सामने आ जाती है। इसलिए संभव नहीं है।

वह तो शादी के पहले सोचना चाहिए। हम लोगों के समय, हमारे बाप-दादाओं के समय, लड़की का एक ही भविष्य था, शादी। अब लड़की के सामने कई विकल्प हैं। पहला विकल्प है शिक्षा, दूसरा विकल्प है नौकरी-पेशा। तीसरा विकल्प उसकी पसंद पर निर्भर है, वह मजबूरी नहीं होनी चाहिए। शादी करनी है कि नहीं, इसका निर्णय वह करेगी, क्योंकि विज्ञान के अनुसार कुछ लड़िकयाँ ऐसी भी होती हैं जो शादी को सम्भाल नहीं सकती हैं।

यह एक चिकित्सा विज्ञान पर आधारित बात बोल रहा हूँ। शरीर में जो हॉर्मोन्स होते हैं, उनके सन्तुलन में रहने से गृहस्थी की भावना बहुत क्षीण रहती

है। जैसे किसी को बहुत कम भूख लगती है, तो किसी को ज्यादा। किसी को ज्यादा नींद आती है, तो किसी को कम। उसी तरह गृहस्थ आश्रम की धारणा या वासना कुछ लोगों को होती ही नहीं है, उसकी जरूरत ही नहीं होती है। न बच्चे की जरूरत पड़ती है, न आदमी की। यह हॉर्मोन्स की व्यवस्था है। ऐसे लोगों को जबरदस्ती गृहस्थ आश्रम में नहीं डालना चाहिए।

यह चीज अब हम लोगों के सामने स्पष्ट हो रही है। यहाँ बहुत लड़कियाँ आती हैं, वे शादी करना नहीं चाहती हैं। यह हम स्पष्ट बात बोल रहे हैं, इन बातों को स्पष्ट बोलना पड़ेगा। इस संसार में एक प्रकृति के लोग रहते ही नहीं है। संत भी रहते हैं, जो नामदेव की तरह चोरी करते हुए चोर को बोलते हैं, 'यह बाकी सामान भी लेते जाओ' और ऐसे महाबदमाश भी रहते हैं, जो गोली मारकर अपने भाई-बहन का भी पैसा उठा लेते हैं। उसी तरह से त्यागी भी रहते हैं, जिनके मन में वासना नहीं रहती और भोगी भी रहते हैं, जिनको गृहस्थ आश्रम के अलावा कुछ सूझता नहीं है, वे प्यार और रोमांस की बातें ही करते हैं। इसलिए लड़कियों के सामने तीसरा विकल्प होना चाहिए, शादी करनी है या नहीं, इसका निर्णय वे स्वयं करें।

एक और चीज है, आजकल हिन्दुस्तान में पहली बार लड़कियाँ संस्थागत जीवन में आ गई हैं, जैसे अरविन्द आश्रम में रहने वाली साध्वियाँ, जैसे निर्मला माता जी, आनन्दमयी माँ, इत्यादि। ऐसी बहुत-सी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आ गई हैं, स्नातक ही नहीं, इंग्लैण्ड से पढ़कर वापस आयी हुई लड़कियाँ भी। केवल भारत में नहीं, विदेशों में जितने योग शिक्षक हैं, उनमें से अस्सी प्रतिशत औरते हैं। वे बहुत बड़े-बड़े संस्थान चलाती हैं, व्याख्यान देने भी जाती हैं। आखिर यह भी तो एक कैरियर है। लड़की या लड़के का कैरियर माँ-बाप की इच्छा के मुताबिक नहीं, बल्कि अपनी योग्यता और इच्छा के मुताबिक होना चाहिए। उसको निर्णय करने के लिए सबसे पहले शिक्षा मिलनी चाहिए, शिक्षा के बाद कैरियर, कैरियर के बाद चयन।

स्वामी सत्संगी तो छोटी उमर से बोलती थी कि हम आपके साथ रहेंगे। हमने कहा, बेटा पहले तुम पढ़ो। तो इसने दिल्ली से पढ़ाई की, उसके बाद एयर-इण्डिया में दस-बारह साल नौकरी की, तब हमारे पास आई। कोई लड़की दस-बारह साल नौकरी करे, उसके दिमाग में शादी का विचार नहीं आए, तो उसके लिए यही रास्ता ठीक है। आदमी को रास्ता जरूर मिलना चाहिए। आज के जमाने में लोग तो नाच-गाकर भी अपनी जिन्दगी गुजार सकते हैं, नहीं क्या?

नाचना, गाना, वीणा या तबला ही बजाना, यह भी तो एक योग्यता है, जिसको सांस्कृतिक कला कहते हैं। और उसकी आज बहुत माँग है।

तुम माँ हो इसलिए मैं एक बात और तुमको बतला दूँ, इस दुनिया में कोई बच्चा, कोई चीज बिना हुनर के पैदा नहीं होती है। पत्थर उठाओ तो उसमें से भी अभ्रक या सोना या ताम्बा निकलता है। हर चीज में कोई-न-कोई योग्यता छिपी है। उसको अंग्रेजी में 'टेलेन्ट' कहते हैं और गीता उसको कहती है विभूति।

पैसा कमाना जरूरी नहीं है, पैसा कमाने के लिए जिन्दगी पड़ी है। असली जिन्दगी वह है कि मनुष्य इस जीवन में कुछ कर सके। जो भी हो, कुछ कर सके। वह योग्यता तुम्हारे लड़के में भी है, तुम्हारी लड़की में भी है, सबमें है। कोई व्यक्ति दरिद्र पैदा नहीं हुआ। बिना योग्यता के किसी ने जन्म नहीं लिया। इस बात को हमेशा याद रखिए। अब केवल ढूँढना है कि उसकी योग्यता क्या है।

पर अब तुम उसको इंजीनियर या डॉक्टर या वकील या मिनिस्टर बनाना चाहोगे, तो उसकी योग्यता प्रकट कैसे होगी? अवसर तो बच्चा खोजेगा। माता-पिता उसको नहीं खोजते। हाँ, गुरु खोज सकता है। कालिदास किस स्कूल में पढ़ा था? कहानी तो सब जानते हैं, गालिब की कहानी भी सबको मालूम है। महात्मा गाँधी तो एक साधारण वकील थे न? साधारण-से-साधारण व्यक्ति के अंदर भी एक हुनर छिपा रहता है, जो कभी-कभी बिना इस्तेमाल किए व्यर्थ ही चला जाता है। क्यों चला जाता है? इसलिए कि हम लोग हाथी से हल चलवाना चाहते हैं और गधे से खेती करवाना चाहते हैं।

बच्चों को हमने उचित शिक्षा दे दी, वे लाइन पर आ गये, लेकिन आगे समाज के लिए, अपनों की बेहतरी के लिए क्या कर सकता है आदमी?

महात्मा गाँधी कहा करते थे कि समाज की बुनियाद गरीब आदमी है और समाज का गुम्बद अमीर आदमी। लोग गुम्बद को देखते हैं, पर बुनियाद को नहीं। और बुनियाद को देख भी नहीं सकते। आवश्यकता यह है कि इस देश में गरीब आदमी की वकालत की जाए। राजनैतिक स्तर पर नहीं। राजनैतिक स्तर पर गरीबों की जो वकालत की जाती है, उसका कोई मूल्य नहीं है। गरीबों की वकालत करके सत्ता बटोरना ही उसका लक्ष्य है। भारत में गरीबी मूलतः गाँवों में है। शहरों में भी है, पर शहरों में जो गरीबी है, वह गाँवों से ही खिसकी

हुई है। हिन्दुस्तान में सत्तर से अस्सी प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं या गाँवों से जुड़े हैं। बहुत गरीबी है वहाँ। किसी लेखक, वक्ता या सामाजिक कार्यकर्ता का दायित्व यही होता है कि वह समाज को इस ओर देखने के लिए मजबूर करे। गरीबों की वकालत करने का मतलब यही होता है।

तुम्हारे घर में भोजन का इन्तजाम नहीं है, दवा-दारू का इन्तजाम नहीं है और तुम्हारा एक बेटा कम्पनी खोलना चाहता है। तुम्हारी बीबी अपना सोना बेचकर, उसको पाँच-दस हजार रुपये देकर बोलती है, 'बेटा कम्पनी खोल ले।' यह सही है कि गलत? मैं यह नहीं कहता कि कम्पनी खोलना गलत है। गलत नहीं है। यह किसी भी राष्ट्र के लिए आवश्यक है। देश के मार्केट की व्यवस्था में उसका बहुत बड़ा स्थान है। लेकिन व्यक्ति को उठाना है तो एक स्तर तक, और वह भी दान देकर नहीं। ऐसा नहीं कि सबको मुफ्त में चावल या लालटेन या साड़ियाँ दी जा रही हैं। यह विपरीत परिस्थिति में ठीक है, जैसे बाढ़ आ गई या महामारी आ गई। पर आदमी को इस कदर योग्य बनाना होगा कि वह संघर्ष करने के साधनों से सम्पन्न हो सके। जिसके पास हल और बैल ही नहीं है, वह क्या खेती करेगा? जिसके पास हल नहीं, खेत नहीं, कुआँ नहीं, पम्प नहीं और पानी भी नहीं, वह दस एकड़ में क्या पैदा करेगा? दो बीघा खेत में और दो एकड़ खेत में समान सुविधा होनी चाहिए।

सबसे पहले हिन्दुस्तान में आवश्यकता यह है कि गाँवों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाए। और आपको ही लक्ष्य करके मैं बोल रहा हूँ, क्योंकि आप सम्पादक हैं। एक नर्तकी के नाच को या सचिन तेंदुलकर के छक्के को जैसे तुम दिन-प्रतिदिन मुख्य समाचार बनाते हो, वैसे ही इस विषय को भी मुख्य समाचार की श्रेणी में लाना होगा। यहाँ हम विफल हो जाते हैं। जब मैं यहाँ आया था, यह सब नहीं था जो आप देख रहे हैं। हमने सबसे पहली चीज, शिक्षा पर जोर दिया। फिर दूसरी चीज, हमने कहा छोटा-मोटा कमाओ, चालीस-पचास रुपया। आश्रम में यह जो बड़ी-बड़ी चाहरदिवारी है, हमने कहा चाहरदिवारी बनवाओ और मिट्टी की जुड़ाई करवाओ। सीमेंट तो यहाँ है नहीं। इन्हीं मजदूरों से कड़ी लगवाओ, सीमेंट के बदले और जो भी मिले, लगाओ। हम चार-पाँच सौ आदमियों को काम देते रहे हैं, अभी भी देते हैं। आश्रम की ओर से जो मकान और बिल्डिंग बनती हैं, उसका मुख्य उद्देश्य यही है। आदमी को अपने पैरों पर खड़ा करना हमारा उद्देश्य है, उसको पालना हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिए। उनको दान पर निर्भर नहीं बनाना है, कपड़ा बाँटना, उनकी

शादी वगैरह कराना, यह गलत है। हाँ, एक जगह तक ठीक है, अकाल होता है तो खाना दो, चांवल दो, दूध दो। मगर आदमी को पैरों पर खड़ा रहना होगा और जहाँ तक रोज़गारी का सवाल है, यह भी उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। उसके बिना काम नहीं चलेगा। यह सब हम लोगों को, खासकर जो लेखक हैं, उन्हें उजागर और प्रकाशित करना होगा।

कोई भी साम्राज्य, कोई भी देश या कोई भी राजा, अपनी प्रजा के कल्याण के बिना अपने दायित्व को निभा नहीं सकता है। कुछ करने का उत्साह और आत्मबल होना चाहिए। कुछ करना है, कुछ आगे बढ़ना है। आखिर हम गरीबी में रहेंगे क्यों? डिब्बा लेकर मैदान जा रहे हैं, बरसात हो रही है, ठण्ढ पड़ रही है, सौ मच्छर हैं, खटमल हैं, सब काट रहे हैं और लोगों की पत्तल से जूठा खाना खा रहे हैं। गरीबी, गरीब आदमी की जिन्दगी है। ईसाई धर्म में उसको कहते हैं, अपने पर आरोपित गरीबी। इसलिए साधु लोगों को बोलते हैं कि गरीबी के साथ रहना चाहिए। जब एक बाहरी आदमी गरीबों के बीच में रहेगा, दुःखियों के बीच में रहेगा, तो उसमें दुःख की चेतना जागृत होगी। जब तक तुम गरीबी, भूख, बीमारी और अन्याय को अपने सामने नहीं देखोगे, तब तक दुःख की चेतना तुम्हारे अंदर जागृत नहीं हो सकती।

एक किस्म का भय आदमी के साथ हमेशा लगा रहता है, सुरक्षा का या भविष्य का। इसे कैसे हटा सकते हैं?

आहार, निद्रा, भय और मैथुन–ये चार मनुष्य के पैदा होने के दिन से मरने के दिन तक चलेंगे। आहार, निद्रा और भय, जिसे हम कहते हैं सुरक्षा; और मैथुन, जिस दिन से बच्चा पैदा होता है, जीने से लेकर मरने तक वह कामुकता से प्रभावित रहता है। तो ये चार चीजें मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ हैं। इनसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, इनको बस थोड़ा ढोना पड़ता है। डर लगता है, तो हनुमान जी से थोड़ी प्रार्थना कर लो और वह दिमाग से निकल जाता है।

जीवन में भाग्य और पुरुषार्थ के महत्त्व के बारे में सुनना चाहूँगा मैं आपसे।

पुरुषार्थ तो हर व्यक्ति को करना पड़ेगा, भाग्य हो या न हो। गाड़ी तो अपने समय पर स्टेशन आएगी, वह पहले तो आएगी नहीं। अब तुम रेलवे स्टेशन

दो घण्टा पहले पहुँच गए, तो चहलकदमी तो करोगे ही। उसी तरह से नियति ने हमारे लिए जो तय किया है, वह तो हमको मिलेगा ही। लेकिन प्रश्न उठता है कि नियति ने हमारे लिए जो तय किया है, जब वह हमें मिलने ही वाला है, तब हम कुछ करें ही क्यों। इसलिए कि बिना किए करोगे क्या? पैसा मिल जाएगा, मकान मिल जाएगा, तब तुम करोगे क्या? कुछ तो करोगे ही न? मनुष्य अहंकार से प्रेरित होकर कर्म करता है, जीवन को बिताने के लिए कर्म करता है और कर्म उसके जीवन का एक अभिन्न अंग है।

भाग्य और पुरुषार्थ, ये दो अलग-अलग चीजें हैं, एकदम अलग-अलग। हमने तो अपने जीवन में यही देखा है। आखिर हम अपने अनुभव से ही कह सकते हैं। हमको जो भी मिला, हमने उसकी चाह नहीं की। और कभी यकीन भी नहीं था कि ऐसा हो सकता है। हम ऋषिकेश में बारह साल रहे गुरु आश्रम में, खूब मेहनत करते थे। उसके बाद हम भिक्षुक बन गए, भिक्षुक का मतलब है भिखारी बनना। मेला वगैरह लगता था, कुछ बिछा लिया, सामने डिब्बा रख दिया, पैसा आता था, अपना खा-पी लेते थे, फिर धर्मशाला में सो जाते थे। बस घूमते रहते थे। हमको कभी कल्पना भी नहीं थी कि दुनिया के हर कोने में हम योग का प्रचार कर सकेंगे। जबकि योग मेरा विषय है ही नहीं। मैंने वेदान्त और संस्कृत का अध्ययन किया। योग का अध्ययन तो मैंने किया ही नहीं है। हमें तो समझ में ही नहीं आता है। अब आप ही बताइये कि यह अपने आप होता है कि नहीं।

एक दिन ऐसा आता था कि मैं टिकट लेता और सामान लेकर चला जाता था और मैं आगे की सोचता भी नहीं था। जो होगा, देखा जाएगा। आखिर में मैंने अपने मन में सोचा, 'यह सब कैसे हुआ? तुमने सोचा नहीं, तुमने किया नहीं, तुम्हारे अंदर में योग्यता नहीं, तुम्हारे अंदर में हिम्मत भी नहीं है।' तब फिर हमने बहुत लोगों के जीवन का अध्ययन किया, विचार किया। अंत में हमने सोचा कि यही बात है, जो तुमको भाग्य से मिलना है, वह तुमको मिलेगा ही। और जो कर्म करते हो, चाहे जो भी हो, वह अपने अहंकार का प्रयोजन है। और यदि कर्म के बिना रह सकते हो, तो कोई दिक्कत नहीं है। हम जब तक कर्म के बिना नहीं रह सकते थे, हमने कर्म किया। पिछले कई सालों से हम कर्म के बिना रहते हैं। हम दिनभर बैठे रहते हैं, हमको कोई समस्या नहीं रहती। आराम के साथ बैठे रहते हैं, कोई विचार नहीं आता है, कोई चिन्ता नहीं होती है, कोई दायित्व नहीं लगता है, कोई इच्छा नहीं होती है, बस बैठे रहते

हैं। अब जब आदमी ऐसी व्यवस्था में आ जाए, तब कर्म के त्याग के साथ रह सकता है।

आपने अपने जीवन में इतने बड़े काम किए और बिल्कुल निर्लिप्त भाव से।

निर्लिप्त भाव तो हम नहीं कह सकते हैं, हमारे लिए सब चीजें अपने आप होती हैं। हम सोचकर कुछ कर नहीं पाते हैं, अपने आप होता है। इसलिए हम सबसे कहते भी हैं, तुम काम करते रहो, फिक्र करने की जरूरत नहीं है। हमने अपनी सीमाओं को हमेशा पहचाना है। हमने कभी यह नहीं सोचा कि हम बहुत प्रतिभावान हैं या हम यह कर सकते हैं, वह कर सकते हैं। नहीं। परन्तु एक चीज जरूर है, जो हम कह सकते हैं। हमको हमेशा ऐसा लगा है कि अगर हम बोलेंगे तो भगवान सुन लेंगे, इसमें हमारा विश्वास पक्का है। यद्यपि हम ज्यादा उनके पास जाते नहीं हैं, उन्हें तो सब मालूम है। पर अगर हम उनसे कुछ बोलें तो वे सुनेंगे, इतना हमारा पक्का भरोसा है। मुझे इस बात पर विश्वास है कि भगवान मेरे लिए एक ऐसे सत्य हैं, जिनको मेरा ख्याल रहता है। हम सीधे ईश्वर से जुड़े हैं। लेकिन हमने कभी उसका उपयोग नहीं किया है, और उपयोग करने वाले भी नहीं हैं। हाँ, एक बार जरूर किया था।

भारत में संत-महात्माओं की बड़ी इज्जत है और आप उनमें से बड़े दुर्लभ हैं।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। संत की जो परिभाषा हमारे देश में है, वह बहुत ऊँची है। कभी साधारण लोगों को भी संत की पदवी दे दी जाती है, हमको भी दी जा सकती है, इनको भी दी जा सकती है। लेकिन संत का पद केवल उसी व्यक्ति को दिया जा सकता है, जो प्रकृति के परिणामों पर नियंत्रण कर सके। प्रकृति पर जिनका नियंत्रण हो, ऐसे संत हमारे युग में रामकृष्ण परमहंस हुए हैं और जिनको हमने देखा है, उनमें रमण महर्षि, श्री अरविन्द, स्वामी शिवानन्द, आनन्दमयी माँ, ये सब संत लोग हैं।

संत एकदम साफ-सुथरे रहते हैं, प्रकृति उनको छू नहीं सकती है। जल कमल को छूता नहीं है, कमल का पत्ता निकालो तो सूखा होता है। इसी तरह संत प्रकृति से बहुत दूर रहते हैं। संतों के पास रहने में हमको अच्छा तो लगता है, मगर उचित नहीं है। हाँ, जनम-जनम के अभ्यास के बाद कभी हो गया

तो हो गया। हो सकता है इसी जनम में हो जाए, मालूम नहीं। संत बनने की प्रक्रिया किसी को मालूम तो है नहीं। परमात्मा जिसको निर्धारित कर देते हैं, उसको ही यह स्थिति प्राप्त होती है। और इन संतों का व्यक्तित्व कायम रहता है। ईसाई धर्म में भी संत की यही परिभाषा है।

अत: सबको संत नहीं कह सकते हैं। जो अच्छा काम करने वाला हो, बहुत बढ़िया आदमी हो, बहुत चरित्रवान् हो, बहुत धार्मिक हो, बहुत परोपकारी हो, वह संत तो नहीं, वह महात्मा है। वह एक अच्छा आदमी है, संन्यासी है, त्यागी है। परन्तु संत वही होता है जो प्रकृति को नियंत्रित करता है। संत तो 'जूनियर गॉड' होता है, छोटा भगवान।

भारत का भविष्य आप कैसा देखते हैं?

लोग तो सोचते हैं कि 'सुपर-पावर' बनेगा, परन्तु ध्यान से समझने की बात है। लोकतंत्र के वर्तमान स्वरूप के रहते तो भारत 'सुपर-पावर' नहीं बन सकता। लोकतंत्र में संशोधन की आवश्यकता है। भारत का सामाजिक परिवेश प्रजातांत्रिक नहीं है। सामाजिक परिवेश की छोटी इकाई होती है पारिवारिक परिवेश। आपके यहाँ का पारिवारिक परिवेश प्रजातांत्रिक नहीं है। भारतवर्ष के उदय में सबसे बड़ी बाधा है उसकी राजनैतिक प्रक्रिया। यह प्रक्रिया हम लोगों के लिए नहीं है। मैं आलोचना नहीं, समालोचना कर रहा हूँ।

पाश्चात्य देशों का पारिवारिक परिवेश प्रजातांत्रिक रहा है। बच्चे का बोलना या औरत का बोलना उसका हक है। इसलिए वहाँ प्रजातंत्र चला और अभी भी चल रहा है। हर घर में बेटा अपनी बात रखता है, पत्नी अपनी बात रखती है, तो सुनना पड़ता है। पति वहाँ सर्वेसर्वा नहीं है, पिता वहाँ सर्वेसर्वा नहीं है। माँ, बाप और बच्चों के अलावा वे किसी सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते। पाश्चात्य पारिवारिक परम्परा में पति, पत्नी और बच्चे के अलावा और कोई सम्बन्ध नहीं है। बाकी सम्बन्ध 'इन-लॉ' में आते हैं। 'इन-लॉ' का मतलब होता है मानित। जैसे, मेरी 'सिस्टर-इन-लॉ' मेरी बहन नहीं है, पर बहन मान ली जाती है। और पति-पत्नी का सम्बन्ध भी उन्होंने निर्धारित कर दिया है, वहाँ इस समय यह मात्र एक कान्ट्रेक्ट है।

प्रजातंत्र वहाँ चला, एक बात। अब दूसरी बात यह कि अर्थ-शास्त्र, अर्थ-व्यवस्था, आर्थिक सुधार, ये सब गरीबी मिटाने के तरीके नहीं हैं।

आर्थिक सुधार समृद्धि और सम्पत्ति का रास्ता है, गरीबी हटाने का नहीं। यहाँ किसी गाँव को देख लो और बैंगलोर, चेन्नई या दिल्ली के साथ तुलना करो। और एक इधर ही नहीं, जितना दूर जाना है जा सकते हो। झारखण्ड, कुमाँउ, गढ़वाल, कश्मीर या नागालैण्ड में देहात में जहाँ जाना है, जाओ, यही हाल मिलेगा।

चीन ने एक बहुत अच्छा काम किया है, उसने अपनी राजनीति को एकतंत्र ही रखा है और मार्केट को संघटित कर दिया है। और यह संकेत है चीन के 'सुपर-पावर' होने का। चीन महाशक्ति के रूप में केवल इसी आधार पर आएगा। राजनीति को अपने नियंत्रण में रखो, भले ही कुछ लोगों पर अन्याय हो। अन्याय तो प्रजातंत्र में भी होता है, नहीं होता क्या? उन लोगों ने राजनीति को एकतंत्र ही रखा है। ऐसा नहीं कि उनकी कम्युनिस्ट पार्टी में गुटबाजी नहीं है, लेकिन फिर भी उनका एक झण्डा, एक पार्टी और एक कार्यक्रम है। वहाँ कोई सांझा न्यूनतम कार्यक्रम नहीं है, वहाँ केवल एक कार्यक्रम है। इंग्लैण्ड और अमेरिका में दो पार्टियाँ हैं, और यहाँ तो जानते ही हो! लेकिन वास्तव में देखा जाए, तो यहाँ एकतंत्र ही होना चाहिए। पूरे एशिया की जो राजनैतिक प्रणाली है, वह यूरोप की राजनैतिक प्रणाली से अलग होनी चाहिए।

पश्चिम एशिया में जो झंझट हो रहा है, वह क्या है? वे लोग प्रजातंत्र को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, क्योंकि उनकी प्रणाली प्रजातंत्र की है ही नहीं। वे उसमें विश्वास ही नहीं करते। उनके धर्म में प्रजातंत्र नहीं है। इसलिए प्रजातंत्र की परिभाषा बदलनी होगी। उसे चाहे एकतंत्रवाद कहो या कुछ और नाम दो, लेकिन अब इस देश के लिए एकतंत्रवाद जरूरी हो गया है। लेकिन मेरे कहने मात्र से तो ऐसा होगा नहीं। पर जो भी उभरेगा, भारत खुद उसका अनुसरण करेगा। जैसे आज अमेरिका का अनुसरण कर रहा है, सब कसम खाते हैं प्रजातंत्र के नाम पर। जब देखेंगे कि चीन उभर रहा है, यह जाने वाला है, तब चीन का अनुसरण करेंगे।

भारत का भविष्य बतला रहा हूँ आपको। लेकिन किसी व्यक्ति में यह शक्ति है ही नहीं कि वह एकतंत्रवाद को समझा सके। प्रजातंत्र के रहते तो एकतंत्र नहीं आ सकता है। मानव अधिकार क्या है? जब कर्तव्यों से पलायन करते हो, तब तुम अधिकार की बात कैसे कर सकते हो? तुम्हारा बेटा पढ़ता है नहीं, पर अपना अधिकार मांगता है! स्वीकार करोगे क्या? कर्तव्य से परामुख होना और अधिकार की मांग करना, यह परस्पर विरोधी विचारधारा

है। यह तो आपने यहाँ देखा ही है। राजनैतिक स्वास्थ्य के बिना राष्ट्र का स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सकता है। और आज तक हमको जो भी राजनैतिक विचारधारा मिली है, वह उस समाज से मिली है, जो हमारे समाज और हमारे परिवार से एकदम अलग है। पाश्चात्य परिवार और समाज, भारतीय परिवार और समाज के एकदम विपरीत है। यहाँ तो अगर दादाजी ने कह दिया कि इस साल लड़की की शादी होगी ही, तो चाहे कुछ हो जाए, शादी होती ही है! आम घरों में ऐसा ही होता है न।

जब परिवार में दादा का एकतंत्र चलता है, तब राष्ट्र में बहुतंत्र कैसे चलेगा? गोल छेद में चौकोर खूँटी तो फिट बैठेगी नहीं। आपका पारिवारिक परिवेश प्रजातांत्रिक है कि एकतांत्रिक? अगर दस करोड़ लोगों की पारिवारिक मानसिकता एकतंत्र पर आधारित है, तब राजनैतिक स्तर पर प्रजातंत्र कैसे लागू होगा? प्रजातंत्र का सहारा तुम लोग इसलिए लेते हो कि प्रजातंत्र में तुम आराम के साथ बचकर निकल जाते हो, प्रजातंत्र की कसम खाकर। पर एकतंत्र में बच नहीं सकोगे तुम। बहु-पार्टी-प्रणाली को हटाना ही होगा। हाँ, विचार बहुत हैं। हर एक का अपना-अपना विचार है, हम मानने के लिए तैयार हैं। पर अब आपकी सारी पार्टियाँ एक ही तो बात कहती हैं, गरीबी हटाओ। क्या उनके दो अलग-अलग कार्यक्रम हैं? सबका एक ही तो कार्यक्रम है, तो फिर झण्डा अलग क्यों? झण्डा एक रहे, दुरंगा, तिरंगा, चौरंगा, हमको उससे कोई मतलब नहीं है। पर तंत्र एक होना चाहिए। उसी झण्डे के नीचे सब लोग रहें।

राजनैतिक स्वास्थ्य राष्ट्र के उत्थान के लिए जरूरी है। वह 2020 का सपना बहुत अच्छी बात है, बहुत सुखद सपना है। पर आज है 2004, सोलह साल बाकी हैं। सोलह साल किसी भी राष्ट्र के इतिहास में बहुत बड़ा समय होता है, पर हमारा जो कहना है वह यह कि प्रजातंत्र को इस देश में चुनौती मिलने वाली है। हम नहीं तो कोई और सही, लेकिन इस पर विचार करने के लिए बैठना तो होगा। एकतांत्रिक पारिवारिक पद्धति से शासित देश में प्रजातंत्र कहाँ तक जायज है, इस पर खुली बहस होनी चाहिए। सारा समाज एकतंत्र ही है, सारा परिवार एकतंत्र ही है, तो फिर 'यथा प्रजा तथा राजा' कैसे हुआ? हम नहीं मानते कि आजकल ऐसा है।

इस राष्ट्र को उठाने के लिए यहाँ की राजनैतिक प्रणाली को बदलने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। और दूसरी बात, गाँव के लोगों को बहुत तेजी के

साथ उठाने का समय आ गया है। गाँव तो छोटे हैं, छोटे रहेंगे। फ्रांस में हम गाँव में जाकर जो सेमिनार करते थे, वहाँ कम्प्यूटर से अपना आरक्षण करते थे, तीन सितारा होटल में रहते थे। गाँव में भी होटलों में रहते थे। यूरोप में किसी के घर में रह ही नहीं सकते, उनके घर छोटे-छोटे होते हैं। तो गाँवों को उठाना है, चाहे कुछ भी हो, उसके बिना काम नहीं चलेगा। और ये गाँव के लोग जरूर उठेंगे, अगर इनको हमारी मदद मिली तो। उसका उपाय क्या है, यह आपको सोचना है।

आपने यंत्रों की बात की, किस तरह यंत्र का दौर आ रहा है, किस तरह से टेक्नालॉजी बढ़ रही है? क्या ऐसा नहीं लगता कि यह जो प्रजातांत्रिक समाज रहा है, उसी ने यह सब फैलाया?

बहुत लोग कहते हैं कि कलियुग का मतलब होता है कल का युग। कल का मतलब होता है यंत्र। और बहुत से लोग कल का मतलब लगाते हैं आज के बाद वाले कल से। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा ही सच है, पर ये यंत्र किसलिए हैं? अब पढ़ा-लिखा आदमी है, अँग्रेजी में ग्रेजुएट है, दुनियाभर में घूमता है, आखिर उसके रोजगार का उपाय क्या होगा? वह क्या करेगा? हल तो चलाएगा नहीं, झाड़ू तो लगाएगा नहीं, धोबी घाट पर तो कपड़ा धोएगा नहीं। पढ़े-लिखे आदमी की बात बोल रहा हूँ। ऐसा समय आएगा जब धोबी के यहाँ अपनी बीस-पच्चीस वाशिंग मशीनें होंगी। आप सुबह आइए, अठन्नी देकर अपना कपड़ा दोपहर तक ले जाइए। जापान में वे गाड़ी चलाकर सड़क साफ करते हैं, नीचे से उठाकर ले जाते हैं। खेती में भी आपने देखा होगा, स्प्रिन्क्लर से पानी देते हैं।

जब आदमी पढ़-लिख जाता है, तब उसके काम का स्वरूप बदल जाता है। अब हमारा लड़का अगर सौ एकड़ में खेती करता है, वह हल थोड़े चलाएगा। वह ट्रैक्टर चलाएगा, वहाँ मशीनें होंगी। करोड़ों की संख्या में जो इतने पढ़े-लिखे लोग हैं, उन लोगों को आमदनी देने के लिए यंत्र तो लाना ही पड़ेगा, क्योंकि यंत्र का खाका तैयार करना, उसका उत्पादन करना, उसकी बिक्री करना, उससे सम्बन्धित बाकी चीजों को देखना, यह इन पढ़े-लिखे लोगों को रोजगार देगा। ये जो तेज-तर्रार छोकरा-छोकरी लोग आज दुनिया में पैदा हो रहे हैं, इन लोगों को रोजगार देने के लिए मशीन के युग में रहना पड़ेगा।

मैं गाँधी जी के दृष्टिकोण से नहीं बोल रहा हूँ। मैं अपने ही दृष्टिकोण से देख रहा हूँ, क्योंकि हमारे यहाँ बहुत बड़ी तादाद में विदेशी आते हैं। मेरा उनके साथ चालीस-पचास साल से सम्बन्ध है। वे पत्थर तोड़ने का काम करते हैं, होटल में काम करते हैं, बहुत-सा काम करते हैं। जब उनका वीसा खतम हो जाएगा, वे वापस जाएँगे, वहाँ छः महीना काम करेंगे, उसके बाद पैसा कमाकर, अपना वीसा और टिकट लेकर फिर वापस आएँगे। वे सफाई झाड़ू और पोंछे से नहीं, वैक्यूम क्लीनर से करेंगे। वह मशीन किसी ने बनायी है। किसी पढ़े-लिखे वैज्ञानिक ने, जो केमिकल, मैकेनिकल और इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियरिंग जानता था, उसने डिजाइन किया, डिजाइन करके पेटेंट किया, फिर उसको बेचा और किसी कम्पनी ने उसका उत्पादन किया। आने वाले दशकों में इस देश के पढ़े-लिखे युवाओं के रोजगार के लिए ऐसे ही आयाम होंगे। हम इस दृष्टिकोण से देख रहे हैं।

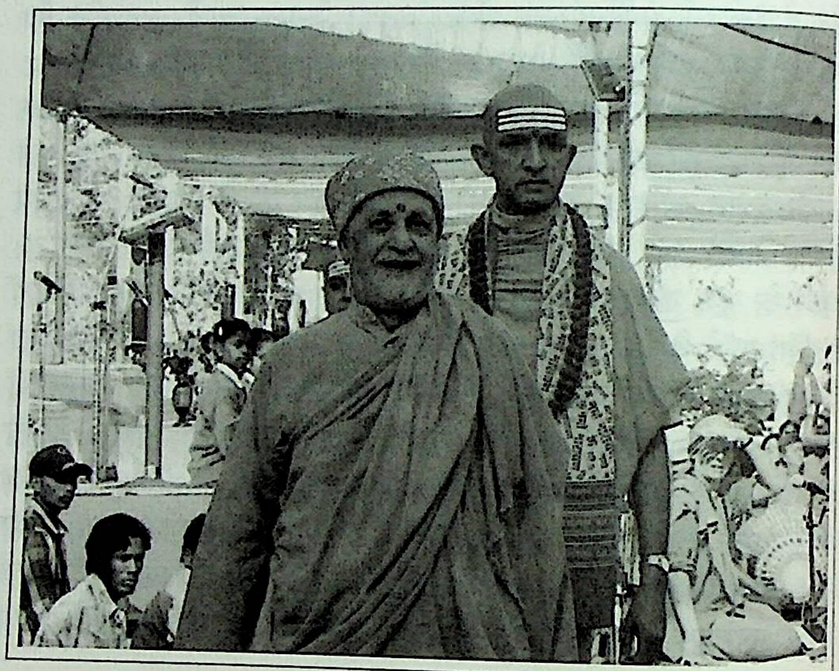
दूसरा दृष्टिकोण यह कि आदमी दिनभर खटने के अलावा और कुछ करना चाहता है। केवल पैसा कमाने के लिए जिन्दगी नहीं है। हाँ, पैसा जरूरी है, पर दिनभर पैसे के लिए आदमी खटता रहे, यह अच्छा नहीं है। थोड़ा शाम को घूमने के लिए जाए, महीने में एक बार कहीं पर्वतारोहण या राफ्टिंग के लिए जाए, या किसी आश्रम में चला जाए। आखिर हर आदमी का एक शौक होता है। आदमी इंजीनियर या डॉक्टर बनकर पैसा बनाता है, वह ठीक है। पर वह उसका शौक नहीं, पेशा है। पेशे और शौक में अन्तर होता है।

आदमी के अपने शौक हैं। पर अगर पैसा ही नहीं है, तो वह अपने शौक कैसे पूरे करेगा? उसको समय ही नहीं मिलता है, सुबह-सुबह चार बजे उठकर दफ्तर जाता है, रविवार को भी आधे दिन की ही छुट्टी, यह काम तो वह काम! नहीं, हम छः महीने काम करेंगे, जमकर पैसा लेंगे और छः महीने के बाद काम छोड़ देंगे आपकी कम्पनी में। हम पैसे के लिए वहाँ टाइपिंग करते थे, अब काम छोड़ देंगे। स्थायी नौकरी नाम की तो कोई चीज होनी ही नहीं चाहिए, बहुत नीरस है। जिन्दगीभर वही रोज आठ से पाँच की नौकरी, नौकरी में तबादला होना, कभी यहाँ तो कभी वहाँ, वही ग्रैच्युइटी और पेंशन, ये सब क्या है? ये सब अब पुराना हो चुका है। जमकर बीस हजार रुपया हफ्ता, अस्सी हजार रुपया महीना, नौ लाख साठ हजार रुपया साल का कमाओ, फिर एक साल छुट्टी! बाली द्वीप में जाएँगे और वहाँ जाकर नारियल के बारे में कुछ सीखेंगे, भांग के बारे में कुछ सीखेंगे या

कोयल के बारे में कुछ सीखेंगे, क्योंकि हमारी रुचि है। ऐसी कितनी चीजें हैं दुनिया में सीखने के लिए।

मेरे को संन्यासी बनने का सबसे ज्यादा फायदा यही हुआ। दुनिया के सब पुस्तकालयों में घूमा, सारे संग्रहालयों में घूमा, सारी नदियाँ देखीं, सब चीजें देखीं। आप मेरे से किसी चीज के बारे में पूछिए, सब बता दूँगा, कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ मैं नहीं गया हूँ। लोग बुलाकर ले जाते थे, हमारी रुचि थी, अब साधु हैं तो यह मतलब थोड़े ही है कि अच्छी-अच्छी चीज नहीं सीखना। मैं -वहाँ उत्तर ध्रुव गया था, जहाँ मध्यरात्रि में सूर्य उदय होता है। लाखों लोग आए थे मध्यरात्रि में सूर्योदय देखने के लिए। एक बार हम वेनिस गए थे, जहाँ समुद्र में मकान हैं। समुद्र के बीच में शहर, मकान, दुकान, दूतावास, बाजार, सबकुछ है। सड़क नहीं है, तब एक मकान से दूसरे मकान कैसे जाओगे? एक जगह से दूसरी जगह नाव से जाना पड़ता है, उसको कहते हैं टैक्सी।

– 26 मई 2004





अध्याय 5

बच्चों की शिक्षा

जब शुरू-शुरू में बच्चे आश्रम में सीखने के लिए आए तो हमने उनसे पूछा, 'क्या सीखोगे?' तो वे बोले, 'हम अँग्रेजी सीखेंगे।' हमने सोचा, 'अँग्रेजी सिखाने के लिए थोड़े ही आश्रम खोला है। ये संस्कृत सीखते तो मानते कि आश्रम ने कुछ काम किया।' लेकिन उन्होंने कहा, 'नहीं, हम अँग्रेजी सीखेंगे।' ठीक है, अँग्रेजी सिखाना शुरू किया। अभी छः सौ के करीब कन्याएँ हैं, और भी आ रही थीं, लेकिन हमें उन्हें मना करना पड़ा। छोटी कन्याएँ बारह साल के नीचे हैं, उसके ऊपर नहीं। लड़कियों के बाद लड़कों का नम्बर आ रहा है, क्योंकि अब उनको ईर्ष्या हो गई है। उनकी संख्या भी हजार-डेढ़ हजार हो गई है। पढ़ाने के लिए शिक्षक भी अपने पास हो गए हैं, सब इन्तजाम हो गया है।

हमने सोचा कि जो बच्चा दवाई नहीं खा रहा हो, तो जिस तरह से उसको दूध में दवाई मिला कर पिला देते हैं, उसी प्रकार चुपचाप हमने भी दवाई डालनी शुरू कर दी। अब ये जितनी कन्याएँ हैं, सब कीर्तन जानती हैं और कीर्तन कराती हैं। पूरे रामचरितमानस का इन्होंने तीन साल नवाह्न पारायण और मास पारायण भी किया है। जितने भी लोकप्रिय स्तोत्र हैं, सब इन्हें कंठस्थ हो गए हैं। जहाँ तक इनकी अँग्रेजी का सवाल है, वह इतनी अच्छी हो गई है कि अब ये स्वयं भी सिखाने लग गई हैं। और अन्त में हमने इनके लिए कम्प्यूटर सेन्टर खोल दिया है। यहाँ कम्प्यूटर सेन्टर चलता है, अभी उनकी संख्या बढ़ा रहे हैं। दो महीने हुए हैं और वे स्वयं सिखाने लग गई हैं। इन लोगों का दिमाग बहुत तेज है, एकदम ताजा माल है। तुम लोगों की तरह

थका-माँदा दिमाग नहीं है। तुम लोगों के दिमाग में जो ग्रे-मैटर है, कुछ तुम्हारे माँ-बाप ने खत्म कर दिया, कुछ तुम्हारे दादा-दादी ने और कुछ तुम्हारे परदादा-परदादी ने। इन लोगों के माता-पिता ने तो उपयोग किया ही नहीं, इसलिये इनका दिमाग एकदम ताजा है। एक बारह-तेरह साल की लड़की है, वह कम्प्यूटर सिखाने लग गई है। वह सब जानती है, बहुत प्रतिभाशाली है। जिसको हमारे यहाँ हमेशा से चतुर्थ वर्ण कहा गया है, वह उसी वर्ण की है।

ब्राह्मण को विद्वान्, क्षत्रिय को लड़ाकू, वैश्य को चोर और शूद्र को बेवकूफ कहते हैं। यह एक प्रकार के वर्गीकरण की मानसिकता है, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए। यह जाति-पाँति की मानसिकता सही नहीं है। यह राजनैतिक कारणों से, राजनैतिक परिवेश में, राजनैतिक गतिविधियों की वजह से बनी है। राजनैतिक मजबूरियाँ वास्तविकता को निर्धारित करें, यह अच्छी चीज नहीं है। वास्तविकता जाति नहीं है। भगवान ने या प्रकृति ने मनुष्य को एक ही जगह से पैदा किया है। न लड़के को दूसरी जगह से पैदा किया है, न लड़की को और न ही ब्राह्मण को। ब्राह्मण मुँह से निकले, तो ठाकुर हाथ से निकले और शूद्र पैर से पैदा हुए, किसी ने देखा है क्या? सब तो एक ही जगह से निकले हैं। तो निश्चित रूप से उनकी जाति एक होनी चाहिए।

अल्लाह ने तो सबको इन्सान बनाया।
हमने ही उन्हें हिन्दू मुसलमान बनाया॥

ये बच्चे यहाँ आए, इनको योग के बारे में सब कुछ मालूम पड़ गया- आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान। अभी ये बारह-तेरह साल की हैं। जब ये बड़ी हो जाएँगी, इनकी शादी हो जाएगी और थोड़े दिन बाद फिर माँ बनेंगी, तो इनकी सन्तान का जो स्वरूप होगा, वह एक अलग प्रकार का होगा, वह पैदाइश ही दूसरे प्रकार की होगी।

आश्रम जीवन

जैसे नमक का मुख्य तत्त्व है नमकीन, मधु का मुख्य तत्त्व है मीठा और मिर्ची का मुख्य तत्त्व है तीखा, वैसे आश्रम का मुख्य तत्त्व है 'श्रम'। 'श्रम' का मतलब होता है, श्रमिक की तरह रहना। श्रमिक शब्द को सभी लोग जानते हैं, समाजवाद से जुड़ा हुआ शब्द है। आश्रम भी पूँजीवादी समाज नहीं है। आदिकाल से आज तक आश्रम की जितनी परम्पराएँ हैं, वे

पूँजीवादी नहीं हैं। आश्रम की परम्परा समाजवादी ही थी। वैसे तो आप लोगों की पारिवारिक प्रथा भी समाजवादी ही थी, परन्तु आप लोग उसे तोड़ते जा रहे हैं, 'हम दो हमारे दो' करके।

आज से साठ साल पहले गुरुजी के जिस आश्रम में हम रहते थे, जिस आश्रम में त्रेता युग में श्रीरामचन्द्र रहते थे और जिस आश्रम में द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण रहते थे, वहाँ 'श्रम' करना पड़ता था। कहानी है कि भगवान श्रीकृष्ण सुदामा को लेकर लकड़ी काटने के लिए गए थे, रात में आँधी-तूफान आने से वहाँ फँस गए, जहाँ फिर सुदामा ने खाया था चिवड़ा, चना। श्रीराम वशिष्ठ जी के यहाँ गाय को पानी पिलाते थे, पेड़-पौधे लगाते थे, उनमें खुरपी लगाते थे। उसके साथ-साथ उन्होंने शास्त्रों का ज्ञान भी प्राप्त किया।

पढ़ाई-लिखाई करना, हिसाब-किताब करना, ये सब जीवन जीने के लिए आवश्यक हैं। लेकिन हर मनुष्य को, हर बच्चे को जो ज्ञान होता है, वह उसके जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। तुम रसायन-शास्त्र पढ़ लेते हो, भौतिक-शास्त्र भी पढ़ लेते हो, पर अपने दिमाग को तुम काबू में नहीं रख पाते हो। भौतिक-शास्त्र पढ़कर पंचानवे प्रतिशत नम्बर मिल गए, परन्तु जिन्दगी में तुम फिसड्डी ही रहे या विफल ही हुए, तो पढ़ने से क्या फायदा? मैं यह नहीं कहता कि वह जरूरी नहीं है। जीवन जीने के लिए वह भी जरूरी है। मगर मनुष्य को जीवन के बारे में ज्यादा जानकारियाँ होनी चाहिए, जीवन माने अपने शरीर और मन के बारे में। सबसे बड़ी चीज, अपने बारे में किसी को पता ही नहीं है कि मैं कौन हूँ। ज्यादातर देखने में आता है, लड़के-लड़कियाँ बैठकर गपशप लगाते हैं। गपशप में नहीं रहना। गपशप का मतलब है फालतू बातचीत, इधर की बातें उधर और उधर की बातें इधर। फालतू चीजों में नहीं जाना।

सबसे पहली बात यह है कि शिष्य को, साधक को ग्रहणशील होना चाहिए। प्लास्टिक में पानी डालो, पीता ही नहीं है, लेकिन स्पंज में पानी डालो, सब पी लेता है। उसको कहते हैं अवशोषक, वह स्याही-सोख की तरह सब कुछ सोख लेता है। साधक को भी स्याही-सोख की तरह किसी भी चीज को सीखने हेतु ग्रहणशील होना चाहिए। ग्रहणशील होने के लिए आश्रम में शारीरिक श्रम करना पड़ता है। 'श्रम' उसको कहते हैं, जिसमें सिर से पैर तक हर एक अंग का संचालन होता है। जैसे कि मशीनों की पूरी तरह से मरम्मत होती है, एक-एक हिस्से को लेकर सफाई करते हैं, वैसे ही पूरे शरीर की जितनी नाड़ियाँ, ग्रन्थियाँ और मांसपेशियाँ हैं, उन सबकी सफाई हो जाती है।

तुम लोग जो रोटी, दाल, सब्जी, टमाटर, पालक वगैरह खाते हो, उसमें विटामिन 'ए' होता है, विटामिन 'बी' होता है, विटामिन 'सी' होता है, आयरन होता है, फिर भी बीमार पड़ते हो। बीमार नहीं पड़ते तो इतने सारे डॉक्टर कैसे बढ़े? डॉक्टर कंगाल हैं कि लखपति? वे लखपति इसलिए हैं कि तुम लोग बहुत ज्यादा ताकत वाला माल खाते हो। यह आवश्यक नहीं कि ताकत वाला आहार स्वास्थ्य प्रदायी भी हो। भोजन करने की अपेक्षा उसका शरीर में चयापचय अधिक आवश्यक है। इसका मतलब भोजन के हर हिस्से को सही जगह पर पहुँचाना। कैल्शियम, विटामिन आदि तत्त्वों को सही जगह पर पहुँचाना, यह श्रम की महत्ता है।

गाँव में सबेरे चार बजे लोग उठ जाते हैं और डिब्बा या लोटा लेकर शौच के लिए दूर मैदान में जाते हैं। फिर तलैया में नहाते हैं, घर में झाड़ू लगाते हैं। और उनका भोजन क्या है? नमक और भात। मैं यहाँ की बात बोल रहा हूँ, पंजाब में रोटी खाते हैं। इनमें दिन भर ईंटा ढोने, हल चलाने, खाद डालने, बोझा ढोने की शक्ति है। ये भरी दोपहरी में हल चलाते हैं। इनमें कर्म करने की शक्ति है और इनकी बीमारी के बारे में हम गवाह हैं।

हमारे यहाँ बहुत अच्छा दवाखाना है, वहाँ ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, मुम्बई, दिल्ली और कई अन्य जगहों से दवाइयाँ आती हैं। लेकिन बहुत-सी दवाइयाँ हमको देवघर में दे देनी पड़ती हैं, क्योंकि खर्च ही नहीं होती हैं। यहाँ के लोगों को बीमारियाँ हैं ही नहीं। मधुमेह की सारी दवाइयाँ हम दान में दे देते हैं। मधुमेह यहाँ है ही नहीं। कभी किसी को हो गया तो हो गया। केवल टी.बी. की बीमारी होती है। इनको बुखार, दस्त, सर्दी-खाँसी और चर्मरोग वगैरह की ही बीमारियाँ होती हैं। ये कोई बड़ी बीमारियाँ नहीं हैं। दवाई से, कुनैन से और इंजेक्शन से भी ठीक हो जाती हैं। इनको बहुत छोटी-मोटी बीमारियाँ ही होती हैं। और ये विटामिन 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' नहीं खाते। जो मिल गया वही खाते हैं।

आश्रम में जितने दिन रहो, सुबह जल्दी उठ जाना, जितना हो सके मदद करना, कीर्तन सीखना। और जब छुट्टी मिले, फिर आना। आश्रम किसी का नहीं होता। आश्रम एक ही चीज सिखलाता है–मर्यादाओं का पालन करना। ध्यान से सुनना–मर्यादाओं का पालन आश्रम में ही नहीं, घर में भी करना चाहिए। मर्यादा का मतलब होता है तुम इस सीमा तक जा सकते हो, इसके बाहर नहीं। आश्रम में यही सिखाते हैं। टॉयलेट में कोई खाना नहीं खाता है,

बेडरूम में कोई टट्टी नहीं करता है। इसको मर्यादा कहते हैं। मर्यादा का मतलब होता है जो चीज जहाँ करनी चाहिए, वहीं करो, दूसरी जगह पर मत करो। अब आश्रम में बीड़ी पी रहे हैं। अरे, बीड़ी पीयो तुम कहीं और, तुमको कौन रोकता है। आश्रम में बीड़ी पी रहे हो, यह मर्यादा नहीं है। आजकल तो बहुत लोग पीते हैं आश्रम के बाहर। हम कोई रोकने वाले हैं नहीं, क्योंकि हमारा खुला हुआ समाज है।

आश्रम में क्या करना चाहिए और क्या नहीं, तुम सबको इसकी जानकारी होनी चाहिए। मर्यादा अनुशासन का आधार है और अनुशासन जीवन का आधार है। जिस दिन यह अनुशासन टूट जाएगा, बिल्डिंग गिर जाएगी, समाज टूट जायेगा। अनुशासन तो जीवन का आधार-स्तम्भ है। अनुशासन का मतलब होता है स्वयं पर शासन करना। उसको मैं आत्म-नियंत्रण नहीं बोल रहा हूँ। यह बात तुमको हमेशा जाननी चाहिए। अनुशासन के बिना न मैं आदमी को चला पाऊँगा, न तुम परिवार को चला पाओगे और न तुम्हारा देश चल पाएगा। अनुशासन मर्यादाओं को निश्चित करता है, इसकी सरल परिभाषा मर्यादा ही है।

जीवन में चार आश्रम होते हैं, पहला ब्रह्मचर्य आश्रम, दूसरा गृहस्थ आश्रम, तीसरा वानप्रस्थ आश्रम और चौथा संन्यास आश्रम। यह संन्यास आश्रम है। यहाँ संन्यासी लोग ही रहें कोई जरूरी नहीं है, फिर भी यह संन्यास आश्रम है, गृहस्थ आश्रम नहीं। गृहस्थ आश्रम में लोग अपनी-अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुसार रहते हैं। किसी के घर में मुर्गी बनती है, तो किसी के घर में ऑमलेट बनता है, किसी के घर में सीधे-सादे लोग रहते हैं, किसी के घर में लड़कियाँ हवन करती हैं, चारा लाती हैं, किसी के घर में लड़ाई-झगड़ा होता है, किसी के घर में कोई बीमार होता है, किसी के घर में खून होता है, यह सब गृहस्थ आश्रम में चलता है। लेकिन संन्यास आश्रम में हमने कह रखा है कि ठीक से रहो, वरना चले जाओ। जब तुमको तैरना नहीं आता है, तो गहरे पानी में मत उतरो।

संन्यास आश्रम में व्यक्ति चाहे स्वास्थ्य-रक्षा सत्र के लिए आए, चाहे संन्यास-सत्र में आए, चाहे अतिथि के रूप में आए, चाहे जासूसी करने के लिए आए, चाहे चोरी के लक्ष्य से आए, किसी भी लक्ष्य को लेकर आए, उसे आश्रम की मर्यादाओं का पालन करना ही पड़ेगा। अगर मर्यादा का पालन नहीं करेगा, तो स्वामी सत्संगी उसे गेट से बाहर कर देगी। यदि नहीं करेगी, तो बाकी लोग इसके पीछे पड़ जाएँगे और कहेंगे यह यहाँ क्यों है?

भारतवर्ष में आश्रम की जो परम्परा है, वह बहुत प्राचीन है। ब्रह्मचर्य आश्रम और गृहस्थ आश्रम तो आप सब जानते हैं, मगर संन्यासियों की आश्रम परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आई है। इस शताब्दी में, जब हम आप से बात कर रहे हैं, भारतवर्ष में करोड़ों लड़के-लड़कियाँ किसी-न-किसी आश्रम से जुड़े हुए हैं। चाहे ब्रह्मकुमारियों का आश्रम हो या रामकृष्ण मिशन का हो, या रजनीश आश्रम हो या कोई अन्य आश्रम हो। लड़के-लड़कियाँ, प्रौढ़ और वृद्ध आश्रमों में जाते हैं और वहाँ तब तक रहते हैं, जब तक उनको कोई राह या मार्ग नहीं मिल जाता। बहुत लोग व्यापार छोड़कर आते हैं, बहुत लोग घर छोड़कर आते हैं, बहुत लोग माता-पिता को छोड़कर आते हैं। ये जो करोड़ों लोग हिन्दुस्तान के आश्रमों में आकर टिकते हैं, जिनकी बात मैं बोल रहा हूँ, वे देर-सबेर कहीं न कहीं चले जाते हैं। हमारे जैसा कोई रह गया तो रह गया। टिकने वालों की संख्या एक प्रतिशत भी नहीं है, जो संन्यासी बन कर, सिर मुड़ा कर जीवनभर वहाँ टिक सकें।

आज करोड़ों नवयुवक, नवयुवतियाँ, प्रौढ़ और वृद्ध लोग हिन्दुस्तान के आश्रमों में रहते हैं और मजे की बात यह है कि सब मुफ्त में रहते हैं। कमरे का किराया नहीं देते, आश्रम का किराया नहीं देते, कभी पूड़ी-सब्जी मिल जाती है तो उसका खर्च भी नहीं देते। हम जब आश्रम में रहे, तो दवाइयों का भी पैसा नहीं दिया। बीमारी हमको ज्यादा हुई नहीं, कभी एक-आध बार हुई थी। लोग सालों तक आश्रम में रहते हैं। कोई दस साल, कोई छः साल, कोई चार साल रहते हैं। कोई तीन महीने ही रहते हैं। तीन महीने के बाद वापस चले जाते हैं, क्योंकि उनको रास्ता मिल जाता है।

नैराश्य या विषाद की अवस्था में, इस देश के करोड़ों नवयुवकों और नवयुवतियों के लिए आश्रम शरणस्थली की तरह है। इस बात का ध्यान रखना। यह भारत के समाज का बहुत प्रबल अंग है। आज अगर सारे आश्रमों को कानून द्वारा बन्द करा दिया जाए, तो बदमाशों की संख्या और बढ़ जाएगी। कोई कहीं चोरी करेगा, कोई बदमाशी करेगा और बाद में सब जेल भरेंगे। इसलिए आश्रम में रहना किसी भी उम्र के व्यक्ति के लिए अच्छा है। परन्तु आश्रमों में कुछ नियम हैं। संन्यास आश्रम में नियम हैं।

सर्वप्रथम नियम है मेहनत करना। वहाँ सबेरे-शाम जो सत्संग होता है, उसमें जाना। जब तक आदमी गृहस्थ आश्रम में है, तब तक उसको अपनी साधना नियम के अनुसार करनी चाहिए। मास-पारायण हो या नवाह्न-

पारायण, उसका एक समय होता है। मान लो चैत्र का महीना है, उस समय नवाह्न पारायण या मास पारायण कर लिया। अब अच्छा लगता है इसलिए उसे वैशाख में करते जा रहे हैं, जेठ में भी करते जा रहे हैं! नहीं, यह गृहस्थ के लिए नहीं है। गृहस्थ को साधना में एक्सेलेरेटर ही नहीं, बल्कि क्लच और ब्रेक का इस्तेमाल भी करना चाहिए। गृहस्थ आश्रम में साधना का स्वरूप दूसरा होता है। संन्यास आश्रम में तो घर छोड़ दिया, कोई आगे न पीछे, केवल हम हैं, इसलिए वहाँ पर साधना का स्वरूप एक अलग तरीके का होता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता में इसके बारे में बहुत अच्छी तरह से समझाया है। हर आदमी को इसके बारे में चिन्तन करना चाहिए। गृहस्थ के लिए साधना का स्वरूप केवल ध्यान, जप या पूजा नहीं होता है। गृहस्थ को इसके साथ कर्म भी करना पड़ता है। कर्म जीवित रहने के लिए नहीं, साधना के लिए होना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने का जो उपदेश दिया, वह जीवित रहने के लिए भी दिया और साधना में ऊपर उठने के लिए भी दिया है। उन्होंने कहा, 'तुम लड़ोगे नहीं, तो करोगे क्या? कोई दूसरा व्यक्ति तुम्हारी जगह लड़ेगा। धृष्टद्युम्न को बोल देंगे कि तुम लड़ाई करो। लड़ाई तो रुकने की नहीं, वह तो होगी ही। तुमने पूछा है कि तुम्हारा भला किसमें है, तो मैं कहता हूँ कि कर्म में ही तुम्हारा आध्यात्मिक श्रेय है।' तब अर्जुन कहता है, 'कभी तो आप योग की प्रशंसा करते हैं और कभी कर्म की प्रशंसा करते हैं, निश्चित रूप से बोलिए कि मैं क्या करूँ?'

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥3.2॥

तब भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि दुनिया में दो प्रकार की निष्ठाएँ होती हैं। एक निष्ठा वह है कि मास-पारायण आदि किया, फिर मन में आया कि कब करें। दूसरी निष्ठा है कर्म की। कर्म के प्रति निष्ठा और आस्था।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥3.3॥

एक कर्मयोगी है और दूसरा ज्ञानयोगी है। गृहस्थ को ज्ञान योग और कर्म योग, दोनों के बीच तालमेल बैठाना पड़ेगा। केवल सब्जी डालने से सब्जी नहीं बनती, उसमें नमक भी डालना पड़ता है। केवल चावल और दूध

डालने से खीर नहीं बनती, उसमें चीनी डालनी पड़ती है। कर्मयोग गृहस्थ आश्रम का प्रमुख तत्त्व है, जैसे, परवल, आलू, कद्दू या लौकी, सब्जी का प्रमुख तत्त्व है। नमक यहाँ पर प्रमुख तत्त्व नहीं है, पर महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसलिए एक टन सब्जी के लिए एक किलो नमक की आवश्यकता होती है। यदि आठ-नौ घण्टे कर्म करते हो, तो एक घण्टा साधना करो, आठ-आठ घण्टा नहीं। सबेरे चार बजे से दस बजे तक घण्टी हिला रहे हैं। दस बजे नाश्ता करके ऑफिस जा रहे हैं। शाम को पाँच बजे आए और फिर से रामायण पढ़ना शुरू कर दिया। क्यों? मोक्ष प्राप्त करना है, सिद्धि प्राप्त करनी है, भगवान को पाना है। यह गलत बात है। इसे उमंग कहते हैं। उमंग में नहीं रहना। उमंग वास्तविकता नहीं है। यह एक खोज है। जैसे प्रारम्भ में एक खोज होती है, वैसे उमंग एक खोज है।

गीता में उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि महाभारत की लड़ाई जहाँ पर हो रही है, उसके दो नाम हैं–एक है धर्मक्षेत्र और दूसरा कुरुक्षेत्र। कुरु माने कर्म, कुरु माने करो। यह कर्मक्षेत्र है। नहीं है क्या? जब तुम्हारे पास चालीस-पचास लाख रुपये हों, बहुत बड़ा मकान हो, *'शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं, यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्'*, तब भी तुमको सुख नहीं मिलेगा, क्योंकि तुम कर्म न करके कुरुक्षेत्र का अपमान कर रहे हो।

इस शरीर में रह कर संन्यासी और त्यागी को भी कर्म करना चाहिए। ऐसा गुरुजनों का उपदेश है। जिसको पैसा, धन, यश, मान्यता, कुछ नहीं चाहिए, जिनके लिए संसार असत्य है, उनको भी कर्म करना पड़ता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में लिखा है कि मैं यदि कर्म नहीं करूँगा, तो मुझको कौन कहेगा कि तुम कर्म नहीं करते हो। कर्म मेरी आवश्यकता नहीं है। मेरे यहाँ बहुत पैसा है, मेरे पास बहुत नौकर-चाकर हैं। फिर भी मैं कर्म करता हूँ। और हम लोग सपना देखते हैं कि सचिन तेंदुलकर या कल्पना चावला बन जाएँगे। आखिर सपना देखना छोड़ो। वास्तविकता जीवन है। वास्तविकता कुरुक्षेत्र है। और दूसरा है धर्मक्षेत्र। जितने भी अच्छे काम किए जाते हैं, उसे धर्म कहते हैं और जितने भी बुरे काम किए जाते हैं, उसे अधर्म कहते हैं। धर्मक्षेत्र का मतलब हुआ जहाँ अच्छे काम किए जाते हैं।

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में भगवान श्रीराम ने अपनी जनता से यही कहा था कि यह शरीर तमाम सत्कर्मों का आश्रय है। अब धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में लड़ाई हो रही है। एक व्यक्ति लड़ रहा है। 'मैं' लड़ रहा हूँ। मेरे अन्दर में दो

व्यक्ति हैं। फ्रॉयड या कार्ल युंग के मनोविज्ञान में देखो या अध्यात्म प्रेमियों या सन्त-महात्माओं से पूछ लो, अपने अन्दर में दो व्यक्ति हैं। एक देवता है, दूसरा असुर है। मनोविज्ञान में उसको खण्डित व्यक्तित्व कहते हैं। उनके बीच लड़ाई चल रही है। अब उसी लड़ाई में तुम सब फँसे हुए हो। तुम्हारे अन्दर लड़ाई नहीं चल रही, यह तुम नहीं कह सकते, क्योंकि तुम देख नहीं रहे हो। तुम्हारे अंदर में जो इतना बड़ा द्वन्द्व युद्ध हो रहा है दो व्यक्तियों का, उसके बारे में कुछ पता है? नहीं। तुम्हें ईराक युद्ध की चिन्ता है, अफगानिस्तान युद्ध की चिन्ता है। पर तुम्हारे अन्दर भी लड़ाई हो रही है और उस लड़ाई में कौन पिट रहा है? 'मैं' पिट रहा हूँ।

इसलिए आवश्यकता यह है कि गीता के कथन के अनुसार सब लोग कर्म को जीवन का मुख्य तत्त्व और साधना को जीवन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानें। एक किलो सब्जी में एक चम्मच नमक। एक किलो सब्जी में एक ही किलो तेल, एक किलो जीरा, एक किलो नमक और एक किलो मिर्ची डाल देना उमंग है। उमंग पर जीवन नहीं चलता है। जीवन चलता है विवेक से और विवेक का मतलब होता है सही विचारधारा।

पुराण

सारे भारतवर्ष में अट्ठारह पुराण हैं। इन पुराणों में इतिहास को दन्त-कथा का रूप देकर रखा गया है। पुराण का मतलब अँग्रेजी में तो मिथोलॉजी है, परन्तु संस्कृत में पुराण का मतलब होता है एक समय की जानकारी। संस्कृत में 'पुरा' माने बीता हुआ समय और जो 'ण्' होता है वह ज्ञान के लिए इस्तेमाल होता है। परन्तु उस इतिहास को उन्होंने एक दन्त-कथा के रूप में बहुत अच्छी तरह से लिखा है, जो भी वास्तविक पात्र हैं, उनकी पहचान को छिपा दिया गया है। उन पुराणों में लिखा है कि सतयुग हुआ, फिर त्रेता युग आया, फिर द्वापर युग आया और अब कलियुग है। सतयुग में धर्म के चार चरण थे। धर्म का मतलब जिसके अधीन आप चलते हैं। त्रेता में धर्म के तीन चरण थे, द्वापर में दो चरण थे और कलियुग में लंगड़ा गया है, जिसे एक चरण कहा गया है। इसमें सब लोगों के बारे में बतलाया गया है। जातियों, वर्णों, राजाओं, राजनीति, आचार, सदाचार, व्यभिचार, सभी के बारे में बतलाया गया है।

भारतवर्ष के बारे में यह कहा गया है कि यहाँ एक सौ वर्ष तक मौनी राज रहेगा। प्रजातंत्र शब्द नहीं लिखा है, न लोकतंत्र और न ही जनतंत्र, पर मौनी

राज का यही मतलब निकलता है। मौनी राजा का मतलब होता है वह राजा जो चुप रहे। जब राजा चुप रहेगा, तब कौन बोलेगा और क्या होगा, आप खुद अन्दाज लगाइए। तो सौ साल तक मौनी राज लिखा है और उसके बाद मौनी राज नष्ट हो जाएगा। दो सौ साल भी हो सकता है। वह हम तो नहीं जानते, मगर दुनिया में जो लक्षण आज दिख रहे हैं, उसमें प्रजातंत्र का विद्यमान रहना संदिग्ध है। अगर आप प्रजातंत्र के अन्ध भक्त हैं, तब तो आपसे बातें करना ही बेकार है। लेकिन अगर आप एक विवेकी व्यक्ति हैं, विचारक हैं, विश्लेषक हैं, तब आपको पता चलेगा कि प्रजातंत्र में वायरस लग चुका है, जैसे राजतंत्र, धर्मतंत्र या प्रशासनतंत्र में वायरस लगता है। उस वायरस का नाम है अराजकता। तुम पैसा बनाओ डकैती से, मैं पैसा बनाऊँ डकैती से, भले लोग भूखे मरें।

वायरस कैसे लगा, यह प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि यह हुआ क्यों? राजा मौन क्यों है? इसलिए कि उसके पास चार डण्डे वाले खड़े हैं। बोलते हैं, 'चुप, बात मत करो, हमको जो करना होगा करेंगे।' चार डण्डे वाले उसके सामने खड़े हैं। राजा बेचारा क्या करेगा। ताज पहने बैठा है, चुप है और सिर हिला देता है। प्रजातंत्र में हम देखते हैं कि रोज एक मूर्ख पैदा होता है, जिसे शुरू से यह सिखाया जाता है कि प्रजातंत्र क्या है और जब तक वह प्रजातंत्र को जानने-समझने लगता है, तब तक उसकी मृत्यु हो जाती है और दूसरा मूर्ख पैदा हो जाता है। बहुत से विचारक हैं, जिन्होंने बहुत-सी चीजें लिखी हैं। ऐसे बहुत सारे विचार मैं आपको दे सकता हूँ। वे पाश्चात्य विचारक या समाजवादी या कम्युनिस्ट नहीं थे। वे विचारक थे। विचारक उसको कहते हैं, जो किसी का अनुगमन नहीं करता। वे चिन्तन करते हैं। प्रजातंत्र पर अभी चिन्तन किया जा रहा है, इसका अवलोकन और निरीक्षण किया जा रहा है। इसमें कमियाँ निकल रही हैं। यह पद्धति अब ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगी।

पुराणों में इसका उल्लेख है। पुराणों में अराजकता और कलियुग का भी उल्लेख है। हमारे पुराणों में लिखा है कि कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम था दिति और दूसरी का नाम था अदिति। दिति थी बड़ी और अदिति थी छोटी। दिति से जो पैदा हुए, वे दैत्य हुए और अदिति से जो पैदा हुए, वे देवता हुए। दोनों सौतेले भाई हैं। बाप एक है और माँ अलग-अलग। इनमें हमेशा से ईर्ष्या, द्वेष, युद्ध, विजय, पराजय का सिलसिला रहा है। भारत के

लोग न देवता हैं, न दैत्य। पुराणों के अनुसार हम लोगों को मानव कोटि में रखा हुआ है और इसलिए भारत को 'नर-लोक' बोला जाता है।

सोने की चिड़िया

भारत सोने की चिड़िया है या चाँदी की? अगर तुम हिन्दुस्तान में हर घर में जाओगे तो कम-से-कम तुमको औसतन आधा किलो सोना मिलेगा, चाहे वह मेहतर का घर हो या किसान का। भले ही खाना नहीं मिले, टॉयलेट नहीं मिले, एल्यूमीनियम के ही बर्तन और हंडिया मिलें, पर सोना जरूर मिलेगा। मैं अंदाज से नहीं बोल रहा हूँ, क्योंकि मैं जिस वर्ग से आया हूँ, वह शहरी वर्ग नहीं है। मैं एकदम देहाती वर्ग में जन्मा और रहा हूँ। ठेठ देहाती की तरह मैंने कपड़े-जूते पहने हैं, स्कूल में पढ़ा हूँ और जब ऋषिकेश में भी रहा तो ग्रामीण परिवेश के अंदर ही रहा। मुंगेर में जब गया, तब उस वक्त मुंगेर भी छोटा गाँव ही था। और जब मैं यहाँ आया, तब सड़क-वगैरह तो कुछ नहीं थी। यह जगह तो एकदम श्मशान की तरह थी। इन पन्द्रह सालों में सब कुछ हो गया है। इस प्रकार मैं हमेशा देहाती समाज में ही रहा हूँ।

हमारे भारतवर्ष में हर परिवार में कुछ-न-कुछ सोना होना चाहिए। चिड़िया तो दस ही ग्राम की होती है, एक किलोग्राम की नहीं। सोने की चिड़िया तो हम लोग जरूर हैं, अब हमारी सरकार सोने की चिड़िया है कि नहीं, यह मैं नहीं जानता। 'सोने की चिड़िया' जो शब्द मैंने इस्तेमाल किया था, उसी शब्द पर मैं चोट कर रहा हूँ। हमारे हर घर में सोना शुभ लक्षण माना जाता है। अब गरीबी की वजह से या पति महाराज के शराब पीने की वजह से या रंडीबाजी की वजह से सोने की बिक्री करनी पड़े, तो औरत का दिल मानता है क्या? बहुत तकलीफ होती है उसे। यह सोना हम लोगों के यहाँ किसी-किसी परिवार में पुश्तों से चला आ रहा है। और गाँवों में भी है। उसको ये लोग कहीं पर रख देते हैं। मर्द नौकरी के लिए चला जाता है, औरत खेत में चली जाती है, बुढ़िया बैठी रहती है। नाग साँप की तरह दिन भर वेदान्ती होकर। इसीलिए हम लोगों के यहाँ माता-पिता को प्रणाम करते हैं कि माई कम-से-कम ख्याल रखियेगा हमारी सोने की चिड़िया का। गाँव में ऐसा ही होता है, क्योंकि उनके घर बहुत छोटे होते हैं।

भारतवर्ष अभी भी सोने की चिड़िया है। इसमें दो मत नहीं हैं। एक और बात तुमको बतला दूँ। यह राजनीति की बात बोल रहा हूँ और अगर अच्छी

तरह से सोचोगे तो एक विचारधारा भी साथ ही में समझ में आ जाएगी तुमको। अगर तुम अमेरिका, इंग्लैण्ड या जापान को अपना प्रतीक, अपना इष्ट देव न मानो तो तुमको मेरी बात जरूर समझ में आ जाएगी। हमारे यहाँ साधु लोग कितने मालदार होते हैं! लेकिन पहनते हैं फटा कपड़ा और सोते हैं जमीन पर मोटा कम्बल लगाकर। स्नान करने के लिए तालाब जाएँगे और तीरथ में पैदल जाएँगे, क्यों? इसलिए कि इस देश का लाखों साल का एक बड़ा अनुभव है। राज बदलते हैं, राजा बदलता है, समाज बदलता है, धर्म बदलता है, जगह छोड़नी पड़ती है। ऐसे में क्या करें? हम लोगों के यहाँ न्यूनतम आवश्यकता के साथ रहने की एक प्रथा है। उसके मुताबिक रहो, कभी किसी हालत में तुमको कष्ट नहीं होगा। इस प्रथा की एक इकाई है झोपड़ी, दूसरी ईकाई है डिब्बा और मैदान, तीसरी ईकाई है कुआँ और चौथी ईकाई है हल से खेती करना। और स्त्री को कहा जाता है, अपने मायके की मर्यादाओं को भूल जाओ, हमारी मर्यादाओं में रहो।

न्यूनतम आवश्यकता के साथ रहने की यह प्रथा हमारे समाज में लाखों सालों से, दु:ख-सुख, परेशानियों और तकलीफों के बावजूद बरकरार रही। राजाओं को बदलते हुए देखा, रजवाड़ों को बदलते हुए देखा और प्रधानमंत्री को हवेली बनाते हुए भी देखा। इसलिए हिन्दुस्तान तो अमेरिका बनने वाला है नहीं। एकदम पक्की बात है। यह स्वामी सत्यानन्द कहता है। ज्यादा-से-ज्यादा हम लोग एक टॉयलेट बना लेंगे सुलभ वाला, औरतें वहाँ जाएँ। मगर तालाब, नदी या शिव गंगा में जाकर नहाना, वह हम लोग छोड़ने वाले नहीं हैं।

कल दुनिया में प्रलय हो जाए या उल्का गिर जाए, तब सब मकान खत्म, सब बिजली खत्म, सब कुछ खत्म। क्या करोगे? कहाँ रहोगे? तुमको तो बिना पंखे, बिना एयर-कण्डीशनर के रहना आता ही नहीं। तुमको तो बिना ए.टी.एम. के बैंक से पैसा निकालना ही नहीं आता है। बैंक में ही पैसा रखना है, घर में तो रखना है नहीं। तुमको तो घर में पैसा रखना आता ही नहीं है। तुमको नल खोलकर पानी पीना आता है, बिसलेरी का पानी पीना आता है, लेकिन नदी का पानी पीना आता ही नहीं है। तुम कैसे जीवित रहोगे इस अवस्था में, जब जल-प्रलय या भूकम्प-प्रलय या राज्य-प्रलय हो जायेगी? कहीं उल्का टकरा जाएगी तो क्या होगा? डाइनोसौर मिट गए, सभ्यताएँ मिट गईं, कुछ तो स्थायी नहीं रहता है।

इसलिए हमारे हिन्दुस्तान के ऋषि-मुनियों ने जीवन का एक न्यूनतम कार्यक्रम लिखा है। उसमें यह लिखा है कि राजा रहो या साधारण जीव, अपना सोना-चाँदी होना चाहिए। चाहे वह दहेज के बहाने हो, चाहे स्त्री-धन के बहाने, चाहे पूजा-पाठ के बहाने, पर होना जरूर चाहिए। राजा पर अटल विश्वास नहीं करना है, क्योंकि राजा राज्य के लिए झूठ बोलता है। सन् सैंतालीस से आज दो हजार चार तक रोजगार का वादा किया, घर-घर बिजली का वादा किया, गाँव-गाँव सड़क का वादा किया। लेकिन पूरा किया क्या? चीन बदल गया, लेकिन हिन्दुस्तान नहीं बदला। राजा झूठ बहुत बोलता है। किसी को बोलता है तुम ब्राह्मण हो, किसी को बोलता है तुम जौहरी हो, किसी को बोलता है तुम कच्छी हो, किसी को बोलता है तुम दलित हो, इस प्रकार अपना काम निकालता है। इसलिए हर व्यक्ति को अपने भरोसे जीवित रहना चाहिए।

एक बात और कहनी है, तुम हिन्दुस्तान के आश्रमों में जाओ और देखो आश्रम कैसे चलाते हैं। समाजवादी व्यवस्था के अनुसार एक मालिक होता है। आश्रमों में सत्ता का एक केन्द्र होता है, दो नहीं। हम इसीलिए सत्ता से हट गए। परिवार को कैसे चलाएँ? परिवार में भी सत्ता का एक ही केन्द्र होना चाहिए। तब गृहस्थी चलेगी। और पैसा जो घर में आता है, वह परिवार का है, तुम्हारा नहीं। यह परम्परा हम लोगों में आनी चाहिए। चाहे लड़का इंग्लैण्ड में रहे या अमेरिका में, अपना खर्चा करे और बाकी पैसा हिन्दुस्तान में भेजे। उसका सोना इकट्ठा करके, शादी के वक्त अपनी लड़की को दे दो, अपनी बहू को दे दो। इंग्लैण्ड और अमेरिका में रखने की क्या जरूरत है? यहाँ भेजो। यहाँ सोना इकट्ठा करो, गहने बनाओ। कुछ हम लोगों को भी दे दो, क्योंकि हम तो तुम लोगों के अभिभावक हैं! अभिभावक को भी तो कुछ देना चाहिए। पर हम लोग तुम लोगों पर निर्भर नहीं रहते हैं, आश्रमों की ऐसी सुन्दर व्यवस्था है।

हमारे यहाँ संन्यास-सत्र चलता है। डेढ़ सौ लोग रहते हैं फोकट में। साल-साल भर रहते हैं। तीन सौ दिन का एक हजार रुपया देते हैं। प्रतिदिन का तीन रुपया होता है। तीन रुपये में घर चलता है क्या? लेकिन यहाँ चलता है, सिर्फ यहीं नहीं, सब जगह के आश्रमों में चलता है। आश्रम में बहुत लोग रहते हैं। हम लोग कहते हैं कि यहाँ जितने दिन तुमको रहना है रहो, पर मर्यादा पालन करके रहो। अगर मर्यादा पालन नहीं कर सकते हो, तो फिर तुम अपना

बोरिया-बिस्तर बाँधो और दूसरी ट्रेन से घर वापस जाओ, क्योंकि आश्रम में जो मर्यादाएँ हैं, उनको कोई तोड़ नहीं सकता। न गुरु तोड़ सकता है, न चेला। अपने परिवार की मर्यादा को आप तोड़ने देते हैं क्या? आखिर आश्रम भी तो आपके समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

मर्यादा पालन को हम लोग अनुशासन कहते हैं। अनुशासन का मतलब होता है, हर एक काम जैसे करना चाहिए वैसे ही करना। सूरज किसी दिन पश्चिम से उदय हो जाएगा तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। अगर एक दिन सूरज बोले कि हमको नींद आ रही है और उदय ही न हो या चँद्रमा अपना नियम छोड़ दे या बरसात आषाढ़-सावन के बदले वैशाख-जेठ में आने लग जाए। नहीं, ऐसा नहीं होता। एक अनुशासन होता है। अनुशासन का मतलब होता है नियमबद्धता। नियमबद्धता के अनुसार रेलगाड़ियाँ चल रही हैं। अगर अनुशासन नहीं होगा, तो क्या होगा? बस, इतना समझ जाओ, तो कोई सवाल ही नहीं उठेगा। अनुशासन किसी भी घर, जीवन, संस्था, राज्य या विभाग को चलाने का उत्तम साधन है।

भगवान भी एक बहुत बड़ा प्रशासक है। उसके प्रशासन में सूरज और चँद्रमा अलग-अलग रहते हैं और जो दिया हुआ नियम है उसके मुताबिक अपनी धुरी पर घूमते हैं। नदियाँ गुरुत्वाकर्षण के नियमों का पालन करके ऊपर से नीचे बहती हैं, नीचे से ऊपर नहीं। पानी धूप से भाप बनकर फिर बरसता है। सूर्य के चारों ओर नौ ग्रह हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो। और इन ग्रहों के बीच-बीच में कुछ बड़े-बड़े पत्थर हैं, जो पृथ्वी के बराबर बड़े हैं। वे गुण्डों या लोफर की तरह आसमान में घूमते ही रहते हैं। उन्हें क्षुद्रग्रह कहते हैं। पर जब वे पृथ्वी की तरफ आते हैं, तब बृहस्पति उनको खींच लेता है और हम बच जाते हैं। भगवान की क्या माया है पृथ्वी लोक के निवासियों को बचाने के लिए कि उसने बृहस्पति को बगल में रख दिया! बृहस्पति हमारे सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह है और गुरु भी। वह सबका ख्याल रखता है। देवताओं के गुरु बृहस्पति थे। अगर बृहस्पति न हो, तो सारे क्षुद्रग्रह यहाँ गिर जाएँ। पहले के जमाने में ऐसा हुआ भी है।

सृष्टि के स्तर पर भी नियम हैं, विश्व, परिवार, विद्यालय और घर के स्तर पर भी नियम हैं। अब उसी तरह से व्यक्तिगत जीवन में भी नियम होने चाहिए। अनुशासन सृष्टि का आधार-स्तम्भ है। उसके बिना न तुम्हारा राष्ट्र

खड़ा होगा, न तुम्हारा परिवार, न तुम्हारा विद्यालय, न तुम्हारा घर और न ही तुम। अपने जीवन से मर्यादा और अनुशासन शुरू करो। अगर तुम विद्यार्थी हो, कम उम्र के हो, तुम्हारी मर्यादाएँ दूसरी रहेंगी। जो ज्यादा उम्र के हैं, उनकी मर्यादाएँ दूसरी रहेंगी। बालक का धर्म, संन्यासी का धर्म, स्त्री का धर्म, पिता का धर्म, पुत्र का धर्म, राजा का धर्म, प्रिया का धर्म, सब अलग होते हैं। जिसको हम मर्यादा या अनुशासन बोलते हैं, उसकी सबसे अच्छी व्याख्या है धर्म शब्द में। तुम जिस उम्र के हो, तुमको उसी उम्र के धर्म का पालन करना चाहिए। दूसरे के धर्म का नहीं, अपने धर्म का। वह धर्म क्या है? विद्यार्थी का धर्म क्या है? *'काक चेष्टा बको ध्यानम् श्वान निद्रा तथैव च, ब्रह्मचारी गृहत्यागी विद्यार्थी पंचलक्षणम्।'* यह तो बच्चों को पढ़ाते ही हैं, जिस धर्म का उन्हें पालन करना है, ये उसके लक्षण हैं।

जो बड़े लोग हैं, दुकान चलाते या नौकरी करते हैं, उन लोगों के यहाँ विद्यार्थी की कोई मर्यादा नहीं होती है। हम संन्यासी लोगों को तो परिस्थिति से, उम्र से कोई फर्क नहीं पड़ता है। समाजवादी सरकार हो या पूँजीवादी या साम्यवादी, कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ता है बड़े लोगों को। विद्यार्थियों को भी फर्क नहीं पड़ता। विद्यार्थी का मतलब है, वह जो विद्या-अर्जन के लिए गुरु के यहाँ गया हुआ है। आजकल के जमाने में उसको विद्यार्थी कहते हैं जो विद्यालय में जाता है, वहाँ सबेरे-शाम घण्टों किताबें पढ़ता है। उसको मैट्रिक, बी.ए. और एम.ए. वैगरह पढ़ना पड़ता है। पहले के जमाने में वेद थे, आयुर्वेद था, धनुर्वेद था, अथर्ववेद था। पहले दूसरे प्रकार की विद्यायें थी, अब दूसरे प्रकार की विद्यायें हैं।

विद्यार्थी का धर्म एक बहुत बड़ा विषय है। विद्यार्थी को अपने शरीर का ख्याल रखने के लिए आसन-प्राणायाम का थोड़ा अभ्यास रोज करना चाहिए। अपने मन के विकास के लिए उसको पाठ करना चाहिए, चाहे गीता हो या रामायण हो या और कोई पाठ हो। बहुत ज्यादा नहीं, थोड़ा कुछ नियम बनाना चाहिए। और कुसंग से, बुरी संगत से बचना चाहिए। यह विद्यार्थी का धर्म है। लेकिन बहुत मुश्किल है यह, अच्छे-अच्छे लड़के फँस जाते हैं। बुरी संगत में फँसने से झंझट बहुत होता है। कुसंग से बचने के तरीके क्या हैं? यह कैसे हो कि कोई बुरी आदत, बुरे स्वभाव या बुरे आचरण वाला लड़का विद्यार्थी के व्यक्तित्व को पराभूत न कर सके? ऐसा व्यक्तित्व उसमें कैसे पैदा होगा? उसके लिए स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी और श्री अरविन्द जैसे

महापुरुष या कबीरदास, तुलसीदास और मीराबाई जैसे संतों की जीवनियों को देखना चाहिए। बहुत से संत प्राचीन हैं, जिनके बारे में लोक कथा में ही सुनते हैं। बहुत से संत अर्वाचीन हैं, जो अभी हमारे युग में पैदा हुए हैं। अपने युग में जो संत-महात्मा पैदा हुए हैं, उनके विचारों से अपने को प्रभावित रखना होगा। तब क्या होगा कि जो बुरी संगत वाले छोकरे हैं, वे विद्यार्थी को पराभूत नहीं कर सकेंगे। नहीं तो वे जरूर उन्हें प्रभावित कर देंगे। इस पर विचार करना चाहिए कि विद्यार्थी के धर्म क्या होते हैं और फिर जब वह गृहस्थ आश्रम में जाएगा, तब उसे सोचना होगा कि गृहस्थ आश्रम के धर्म क्या होते हैं। दोनों अलग-अलग हैं।

संन्यास

संन्यास बहुत सरल है। संन्यास की कोई शिक्षा नहीं होती। प्राचीन काल में, वेदों के समय संन्यास की उम्र थी पचहत्तर साल और उसके ऊपर। उस वक्त तुम्हारे या हमारे जैसे लोग घर छोड़कर निकल जाते थे। राजा-महाराजा सब निकल जाते थे। उन्होंने संसार देख लिया था। वैराग्य उनमें स्वाभाविक था, भक्ति उनमें स्वाभाविक थी। पचहत्तर साल में तो आदमी का मन बदल जाता है। परन्तु संन्यास की जो प्रथा वेदों में थी, वह ज्यादा दिन चली नहीं, क्योंकि यथार्थ यह है कि संन्यास एक ऐसी वृत्ति है, जो किसी व्यक्ति में किसी भी उम्र में पैदा हो सकती है। जरूरी नहीं कि पचहत्तर साल तक इंतजार किया जाए।

लोगों ने देखा कि शुकदेवजी में पैदा होते ही संन्यास का भाव जाग गया। ऐसे और भी महापुरुष हुए हैं, जैसे, सनत कुमार आदि, जिनको पैदा होते ही मन में संन्यास का भाव जाग गया। शंकराचार्य को आठ साल की उम्र में संन्यास का भाव आ गया। भगवान बुद्ध को छत्तीस साल की उम्र में संन्यास का भाव आया। भगवान महावीर तो शादी के मण्डप से भाग गए! ऐसा औरों के बारे में भी सुनने को आता है। तब हमारे समाज के चिन्तकों ने कहा कि संन्यास अब हर एक व्यक्ति के लिए खुला होना चाहिए।

परन्तु, कम उम्र में जब कोई संन्यास लेता है, तो उसको बहुत-सी चीजों से निपटना पड़ता है, जिनसे बुजुर्ग होने पर नहीं निपटना पड़ता। जैसे, हमको अपनी वासनाओं, अपनी आसक्तियों के साथ नहीं निपटना पड़ता। परन्तु दस, पन्द्रह या अट्ठारह साल का लड़का या लड़की अगर संन्यास में आए, तो उसको बहुत-सी चीजों को सुलझाना पड़ता है। उन चीजों को सुलझाने के

लिए बौद्ध-काल, जैन-काल, शंकराचार्य के काल या अन्य कालों में जो आश्रम बने हैं, उनमें कहा गया कि संन्यास लेने का पहला नियम—पहले सारे बंधन काटो। पहली चीज, तन और मन से, याने कि बाहर और भीतर के बंधन अगर तुम काट सकते हो, तो आओ और अगर नहीं काट सकते तो मत आओ, फिर वही ठीक है। यह पहला नियम हो गया।

एक लड़का या लड़की है, तेरह-चौदह, अट्ठारह-बीस या पचीस साल की है, संन्यास आश्रम में आना चाहती है। उसको यहाँ आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, गीता, कुछ नहीं सिखायेंगे। उसको पहले बोलेंगे, 'तुम अपने बंधन काटकर आओ।' उसके बाद तुम्हारा माँ, बाप, मौसा, जाति, धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, न अंतरंग और न बहिरंग। तुम शुद्ध सच्चिदानन्द आत्मा हो, शरीर नहीं हो। उस आत्मा को तुम समाज और वासना के बंधनों से अगर मुक्त कर सकते हो, तो स्वागत है। यह पहली शर्त है, और इसी शर्त में 99.99% छँट जाते हैं। यह फिल्टर है। जैसे आटा छानते हैं, वैसे इसमें सब छन जाते हैं।

हम यहाँ संन्यास भी लेंगे और पापा को बोलेंगे, 'पापा, हम बहुत अच्छे हैं। आजकल यहाँ ऑफिस में एकाउन्ट्स का काम देखते हैं।' सब फालतू चीज है। संन्यास कोई नौकरी तो है नहीं। संन्यास तो एक प्रकार से आत्महत्या है। सीधे बोलता हूँ। जब तक तुम अपना सिर नहीं काट सकते हो, तुमको दूसरा सिर नहीं मिल सकता है। 'सिर काटे, सिर मिले। सिर राखे सिर जाए।' अगर तुमको अपना पुराना ढंग बचाना है, तब तो यह सिर भी चला जाएगा, सब खत्म। और अगर तुमको नया सिर चाहिए, तब तो यह सिर काटना पड़ेगा, यह खोपड़ी निकालनी पड़ेगी।

संन्यास की पहली सीढ़ी में यह छँटाई होती है। उसके बाद लोग आश्रम में रहते और आश्रम चलाते हैं। किसी आश्रम में ऐसा होता है कि दिनभर लोगों को खाना खिलाते हैं। उसमें सब संन्यासी लोग काम करेंगे, कोई बर्तन माँजेगा, कोई चावल चुनेगा, कोई कुछ और करेगा, दिनभर वही काम। ऋषिकेश में बहुत-से आश्रम ऐसे हैं, हम रहे हैं वहाँ। बहुत से आश्रम हैं जहाँ अस्पताल चलते हैं, स्कूल चलते हैं, संस्कृत पाठशालाएँ चलती हैं। कहीं रामकृष्ण मिशन की संस्थाएँ चलती हैं। कहीं विश्वविद्यालय भी हैं। गुजरात में स्वामीनारायण सम्प्रदाय है, वहाँ कॉलेज हैं। वहाँ पर संन्यासियों को ड्यूटी दी जाती है, जिसे वे अच्छी तरह से पूरा करते हैं, क्योंकि उनके सब बंधन कट

चुके हैं। उनका मन अब एक जगह पर है। न मम्मी को फोन कर रहे हैं, न पापा को। और यह जबरदस्ती नहीं होता।

दुनिया का, माया का, मन का बंधन जबरदस्ती नहीं कटता है। एक प्रकाश के उदय के समय उन लोगों को यह मालूम पड़ता है कि 'मैं स्वामी सत्यानन्द हूँ।' स्वामी सत्यानन्द कौन है? यह शरीर थोड़े ही स्वामी सत्यानन्द है। यह तो कब्रिस्तान चला जाएगा। यह तो हृदय, फेफड़ा, लीवर और किडनी है। कौन है स्वामी सत्यानन्द? मैं कौन हूँ?

उनको मालूम पड़ जाता है कि संसार में रहकर हम उन्नति नहीं कर सकते। संसार में रहकर हम केवल पैसा कमा सकते हैं, पुरुष और स्त्री का भोग कर सकते हैं, अपनी वासनाओं को तृप्त कर सकते हैं, अपनी असुरक्षा का ख्याल रख सकते हैं। पर अपने को हम नहीं जान सकते। और संसार में रहकर अगर कोई आदमी अपने को जानना चाहे, तो फिर उसको एक विशेष आदमी, जनक महाराज के समान होना चाहिए। या फिर रामकृष्ण परमहंस की तरह होना चाहिए, जो अपनी पत्नी को माँ कहते थे। ऐसा सब नहीं कर सकते, यह विशेष लोगों का काम है। संसार में रहकर यह संभव नहीं है। दो टूक बोलता हूँ।

संसार में रहकर भी भगवान का दर्शन हो सकता है। परन्तु यह एक सिद्धान्त है, वास्तविकता नहीं। मन पत्नी के पीछे भाग रहा है, बच्चे के पीछे भाग रहा है, प्रमोशन के पीछे भाग रहा है, मुकदमे के पीछे भाग रहा है। कौन-सा मन भगवान को देने वाले हो? मन तो एक है न? या दो हैं? नहीं, मन दो होता तो काम बन जाता, एक यहाँ, दूसरा वहाँ। सूरदास ने बड़े मजे में लिखा है–

उधो मन नाहीं दस-बीस,
एक हूँ तो गयो श्याम संग, कौन अराधे ईश।

मन तो एक है, या तो भगवान में लगाओ या यहाँ लगाओ। संसार में रहकर तुम एक दिन की ऐसी तैयारी करो कि किसी तरह तुम्हारे मन में वैराग्य जाग जाए और तुमको भगवान के दर्शन हो जाएँ। पचीस साल में शादी की, साठ साल में सेवानिवृत्त हुए, उसके बाद इधर-उधर चक्कर लगाया। भगवान कहाँ। भगवान को प्राप्त करने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता, केवल अपने को जानना पड़ता है। और भगवान अपने अंदर में हैं। सच्ची बात, इतना जान लो। हाँ, गुड्डा-गुड़िया तुम जो करते हो, सो ठीक है। वह तो करना पड़ता

है, मन के लिए। करते हैं, हमारा वैदिक धर्म बोलता है। मंदिर में जाओ, पूजा-पाठ करो, वह सब ठीक है।

सर्व निवासी सदा अलेपा तुहे संग समाई।
पुहुप मध्य ज्यों वास वसत है, मुकुर मध्य जस छाई।
वैसे ही हरि वसै निरन्तर, घटहि खोजहु भाई।

भगवान मेरे अंदर में ही हैं। भगवान बाहर भी हैं। 'जित देखूँ तित राम।' जब अपने अंदर हैं, तो बाहर खोजने की जरूरत ही क्या है? परमात्मा का जो तत्त्व है, वह सूक्ष्म रूप है जो इन्द्रियों, मन और बुद्धि के परे है, जो निद्रा, स्वप्न और जागृति के परे है, जो मृत्यु के परे है। वह ज्योतिर्मय भगवान हमारे अंदर में है। यह गृहस्थ आश्रम उसके लिए तैयारी है और संन्यास आश्रम में तुम स्नातकोत्तर में आ जाते हो। इसलिए संन्यास आश्रम में कुछ नहीं होता है।

अब हमारे आश्रम में क्या होता है? इमारत बनाओ, खाना बनाओ, और जो कन्याएँ आती हैं, उनको पढ़ाओ, बस यही काम करते हैं। आगे चलकर कुछ और भी हो सकता है। संन्यासी को जब कर्म करना पड़ता है, तो इस भाव से करना पड़ता है कि मैं अपने परमात्मा की सेवा कर रहा हूँ। हम वहाँ पर एकाउन्टेन्ट हैं या प्रभारी हैं, वह भावना नहीं रहती है।

हमारे भारत वर्ष में बहुत-से ऐसे पंथ हैं, जिनमें संन्यासियों का पंथ, दशनामी परम्परा जिसको कहते हैं, बहुत ही शक्तिशाली परम्परा है। ये स्वच्छंद रूप से, स्वतंत्र रूप से रहते हैं। सरकार से कोई मदद लेकर, या उसकी आर्थिक सहायता से, या उसके समर्थन पर हम जीवित नहीं रहते। चाहते भी नहीं। हम अपनी जिन्दगी खुद बनाते हैं। हमको उनसे कोई मतलब नहीं है। आयकर दे देते हैं। बड़ी संस्था है, तो ऑडिट करवा लेते हैं। बाकी हमको कोई मतलब नहीं है। संन्यासी सदैव स्वावलम्बी रहता है। दशनामी के अलावा हैं वैष्णव संन्यासी, वे लोग जो जगन्नाथपुरी में हैं, अयोध्या, मथुरा में हैं। उनको साधु कहते हैं। और तीसरे हैं उदासी। गुरु नानकजी के पुत्र थे श्रीचंद्रजी। गुरु नानक सिक्ख नहीं थे। श्रीचंद्र को बचपन से ही वैराग्य हो गया। उन्होंने उदासी सम्प्रदाय की स्थापना की।

भारत में संन्यासियों का जो सम्प्रदाय है, काश्मीर से कन्याकुमारी तक, वे एकदम बिन धोबी के गधे की तरह रहते हैं। उन पर कोई नियंत्रण नहीं है। आश्रम में वह पेशे से तो है नहीं। वह संन्यासी कैसा जिसको कोई नियंत्रित

करे। और जिसको नियंत्रित किया जाता है, वह संन्यासी नहीं हो सकता। संन्यासी स्वयं को नियंत्रित करता है। हमको जहर नहीं पीना चाहिए, हम निर्णय लेंगे। हमको बीड़ी-सिगरेट नहीं पीना चाहिए, हम निर्णय लेंगे। हमको लड़का-लड़की से कोई मतलब नहीं है, हम निर्णय लेंगे। तुम कौन होते हो कहने वाले? समाज संन्यासी को नहीं बता सकता कि वह क्या करे और क्या नहीं, यह निर्णय उसे खुद लेना है। तब वह संन्यासी है।

संन्यास इस देश की बहुत बड़ी परम्परा है और रहेगी। क्यों? इसलिए कि यह सरकार से समर्थन नहीं माँगती है। बिल्कुल नहीं। हम लोग किसी की तुष्टि में नहीं रहना चाहते। कोई हमको खुश करे, नहीं। हमको किसी से कुछ नहीं चाहिए। हम कोई धार्मिक पंथ नहीं हैं। और हमको धर्म प्रचार में भी कोई रुचि नहीं है। हम इंग्लैण्ड, अमेरिका जाते थे, लेकिन हमने किसी को हिन्दू नहीं बनाया। हमारे यहाँ लाखों लोग हैं। किसी के धर्म को बदलना क्यों?

संन्यासी को एकदम स्वतंत्र रहना चाहिए। पसन्द नहीं आए, झोला-झण्डा उठाया और चले।

मन लागो मेरो यार फकीरी में।
जो सुख पावों राम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में।
भला बुरा सबकी सुन लीजै, करि गुजरान गरीबी में।
प्रेमनगर में रहनि हमारी, भली बनि आई सबूरी में।
हाथ में कुँडी बगल में सोंटा, चारो दिसि जागीरी में।
आखिर तन यह खाक मिलेगा, कहा फिरत मगरूरी में।

संन्यासी महल में रहे, कहीं भी रहे, उसको फकीर की तरह ही रहना चाहिए। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, आनन्दमयी माँ की जीवनी तुमने पढ़ी होगी। उनका जीवन देखो। ऐसे बहुत-से लोग हैं। हमारे गुरु स्वामी शिवानन्दजी कितने बड़े डॉक्टर थे। कितना बड़ा आश्रम हो गया उनका। फिर भी वे कैसी सादगी से रहते थे। हम तो उनको देखते हैं। अपने गुरु के अलावा और भी बहुत लोगों को देखते हैं। एक और पंथ है ब्रह्मकुमारी का। ये भी बहुत ज़बरदस्त और सच्चे लोग हैं, याने खोखले नहीं हैं। इस प्रकार से बहुत से लोग अपना काम कर रहे हैं।

— 13 जून 2004



अध्याय 6

कर्म का दर्शन

अस्पताल आदमी के हमेशा रहने के लिए नहीं बनाया गया है। वह जब थोड़े दिन के लिए बीमार पड़े, तब उसको अस्पताल जाना चाहिए। दुनिया में ऐसी और भी बहुत सी जगहें हैं, जहाँ हर आदमी थोड़े समय के लिए जाता है, जैसे कॉलेज है, नौकरी है। पर उसको रहना वहीं पड़ता है जहाँ उसका कर्म है, जहाँ उसका प्रारब्ध है। इसी तरह से आश्रम भी प्रत्येक गृहस्थ के लिए एक ऐसी जगह है, जहाँ उसको जाना चाहिए। पर आश्रम हमेशा रहने की जगह नहीं है, जैसे अस्पताल, कॉलेज, स्कूल, बैंक या पोस्ट ऑफिस, कोई भी हमेशा रहने की जगह नहीं है। भले ही छः घण्टे रहो, मगर फिर घर आना पड़ता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को इतना ही समझाया कि कर्म तो हर एक आदमी को करना है, किन्तु कर्म करने का ढंग बदल दो, दर्शन बदल दो। कर्म का दर्शन होता है। गृहस्थ आश्रम, शादी-ब्याह, रिश्तों, सभी का एक दर्शन होता है। जानवरों का कोई दर्शन नहीं होता, इनका सब काम स्वाभाविक होता है। इनके यहाँ भी बच्चे पैदा होते हैं, प्रजनन होता है, चाटना वगैरह होता है। किसी के बच्चे को कोई पकड़ेगा तो वह काटने के लिए भी दौड़ेगा, उसको असुरक्षा भी है, किन्तु अपना कोई दर्शन नहीं है। लेकिन इंसान का अपना एक दर्शन होता है, अगर नहीं है, तो वह जानवर के समान है।

दर्शन का मतलब होता है, एक प्रश्न 'क्यों?' तुम शादी क्यों करते हो? जो तुम्हें शादी से मिलता है, वह उसके बिना भी मिल सकता है। जब तुम घर के बगैर भी रह सकते हो, तब तुम्हारा घर क्यों है? जो कुछ भी तुम करते हो, उसका एक दर्शन होना चाहिए। जब हम सोचते हैं, तो क्यों सोचते हैं? चोरी

क्यों करते हैं, पाप क्यों करते हैं, पुण्य क्यों करते हैं, मंदिर क्यों जाते हैं, पत्थर को क्यों मानते हैं, निराकार को क्यों मानते हैं? इसको कहते हैं दर्शन। दर्शन का मतलब होता है, प्रत्येक कर्म के अंदर में जो तत्त्व है, उसको देखना। वह जानवर लोग नहीं देख पाते हैं। प्रकृति माता ने उनका वह दरवाजा बंद करके रखा हुआ है।

श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को यही तो बतलाया है। नहीं तो क्या है, लड़ाई लड़ो, बंदूक उठाओ, 'ठाँय, ठाँय' मार दो। मगर श्रीकृष्ण ने उसका एक दर्शन प्रस्तुत किया–लड़ाई क्यों लड़ी जाए? संघर्ष का एक दर्शन है, युद्ध का एक दर्शन है। युद्ध का मतलब भिड़ना होता है। तुम लोग तो रोज भिड़ते हो दुनिया में, नहीं भिड़ते हो क्या? आखिर हर परिस्थिति का सामना करते हो कि नहीं, औरत-मर्द का एक-दूसरे से सामना होता है कि नहीं? पर सबसे बड़ा सामना इन्सान अपने आपका करता है। जितना भी संघर्ष तुम्हारे घर-गृहस्थी में है, वह आदमी-आदमी के बीच नहीं, आत्मा और आत्मा के बीच है। मेरे और मेरे बीच में संघर्ष है, और वह तुमको अभी पता नहीं चलेगा, जब तक तुम दुनिया में हो। जब तक मेरी तरह एकदम एकान्त में नहीं रहोगे, तब तक तुमको पता नहीं चलेगा।

आदमी को अपने से भिड़ना पड़ता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, हिंसा, प्यार, घृणा, वैराग्य, ये सब अपने अंदर हैं। कुण्ठा अपने अंदर है, सुख अपने अंदर है, दुःख अपने अंदर है, बाहर कुछ नहीं है, यह एकान्त में आने के बाद पता चलता है। और कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी एकान्त को सहन नहीं कर सकता। इसलिए सहन नहीं कर सकता कि एकान्त में उसको कोई विषयान्तर ही नहीं मिलता, मनबहलाव का कोई साधन नहीं मिलता। यहाँ तो पति, पत्नी, बेटा, बेटी, किताब, पैसा, नौकरी, बहुत-से मनबहलाव के साधन हो जाते हैं। अकेले में केवल अपना बदमाश रूप दिखाई पड़ता है और कभी-कभी आदमी अपने से एकदम परेशान हो जाता है, एकदम भयभीत हो जाता है।

अंग्रेजी में एलेक्ज़ेंडर की एक कविता है। एलेक्ज़ेंडर को देशनिकाला दिया गया था, वहाँ वनवास में उसने यह कविता लिखी है–'समाज, मित्रता और प्यार, ये दिव्य उपहार हैं। अगर मेरे कबूतर से पंख होते, तो मैं कब का उड़ जाता।'

एकान्त कभी-कभी इतना कष्टदायक हो जाता है, क्योंकि एकान्त में आदमी अपने को देखता है। इसका मतलब यह है कि तुमको आज जितनी

भी समस्याएँ हैं, वे तुम्हारे अंदर हैं। न औरत समस्या है, न मर्द, न रुपया और न ही व्यापार। परन्तु यह तुमको पता नहीं चलेगा, क्योंकि तुम अपनी समस्याओं को दूसरों के ऊपर आरोपित कर देते हो। हर इंसान अपनी समस्या को दूसरे पर आरोपित कर देता है।

हम लोग कैलाश-मानसरोवर की यात्रा करके आए हैं।

कैलाशे गिरिशिखरे, कल्पद्रुमविपिने।
गुंजति मधुकरपुंजे कुंजवने गहने।
कोकिल-कूजितखेलत, हंसावनललिता।
रचयति कलाकलापं, नृत्यति मुदसहिता।
ॐ हर हर हर महादेव॥

यह संस्कृत में हम लोगों की आरती है। कोई जमाना था जब कैलाश पर्वत पर भौंरे गूंजते थे, फूल निकलते थे और वहाँ एक पेड़ होता था, उसका नाम था कल्पद्रुम। वहाँ तिब्बत में विपिन था, जंगल। बहुत पुरानी बात है। तिब्बत जिसका नाम है, शिव का मूल निवास वही है। उस समय तिब्बत में खुरासान से लोग आते थे। खुरासान अफगानिस्तान का पुराना, ऐतिहासिक नाम है, जिसे आज भुला दिया गया है। वहाँ से लुटेरे लोग बंदूक लेकर आते थे और तिब्बत को लूटते थे। वे खुरासान से अपने साथ भेड़ें ले आए।

तिब्बत में भेड़ों का आयात खुरासान से हुआ। और भेड़ ऐसा काम करती है कि कोई भी चीज जमने नहीं देती। पहाड़ों को चर देती है, पौधों को बिल्कुल नीचे तक काट देती है वह जड़ से। यूरोप में तो बहुत समस्या हो रही है, उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करें। ऑस्ट्रेलिया के लोगों को भी बड़ी समस्या हो रही है। ऑस्ट्रेलिया में बोलते हैं कि भेड़ तो कहीं पेड़-पौधों को रहने ही नहीं देती, पूरा का पूरा पहाड़ चट कर जाती हैं।

तब से आज तक धीरे-धीरे, कई हजार सालों में तिब्बत में हजारों भेड़ें हो गयी हैं। भेड़ और याक ही वहाँ का व्यवसाय है। भेड़ पर लादकर ही वे लोग सामान ले जाते हैं। कुमाँऊ से ज्यादा ले जाते हैं, वहाँ से रास्ता है। हम तिब्बत गए हैं, ल्हासा भी गए हैं। वहाँ उस वक्त जो परिक्रमा थी, उसमें गोम्पा में ठहरते थे। उन लोगों के आश्रम को गोम्पा कहते हैं। हम तो वहाँ पैदल भी गए हैं।

तिब्बत का यह इतिहास है। बौद्ध धर्म के आने के बाद तिब्बत ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया और मंगोलिया के साथ उसके बहुत अच्छे सम्बन्ध हुए। चीन के साथ भी उसके बहुत अच्छे सम्बन्ध हुए। चीन में पाँच महान् जातियाँ हैं। चीन का मतलब होता है पाँच जातियाँ। जैसे हिन्दुस्तान में द्रविड़, आर्य, इण्डो-यूरोपियन, ये तीन-चार जातियाँ हैं, वैसे ही वहाँ पाँच जातियाँ हैं। मंगोलिया ने तिब्बत को सुरक्षा की गारंटी दी थी। तिब्बत में सेना नहीं रहती थी। दलाई लामा वहाँ के आचार्य, वहाँ के प्रमुख गुरु होते थे। वही उसका शासन करते थे और वहाँ के लोग गाँव में भेड़ वगैरह चराकर जैसे-तैसे अपनी जिन्दगी बिताते थे, भीख माँगकर रहते थे। और अपने परिवारं से एक संतान वे सेना को नहीं, लामा को दे देते थे, मठ को दे देते थे। वह अनिवार्य था। तिब्बत में लामा लाखों की संख्या में थे। पीली टोपी, लाल टोपी, ये उनके अलग-अलग नाम हैं।

कई बार तिब्बत पर चीन की जातियों ने हमला किया, क्योंकि तिब्बत के लोग तो अहिंसक थे। उनका पूरा दर्शन, उनकी पूरी राजनीति अहिंसा पर आधारित थी। कोई फौज नहीं। भारत में भी ऐसा प्रयास किया गया। पर यहाँ इसका असर बुरा हुआ। भारत में पूर्ण निरस्त्रीकरण अशोक के बाद हुआ है। अशोक ने कलिंग में जो महान् लड़ाई लड़ी, उसमें लाखों बिहारी मारे गए। कलिंग वाले उड़िया भी मारे गए। लाखों बिहारी लोगों के मरने से बिहार में मातम हो गया। कोई विधवा हो गई, कोई निःसन्तान हो गई। तब यहाँ विपक्ष का बहुत बड़ा विरोध शुरू हुआ। विपक्ष तो सब जगह रहता है, विपक्ष के बिना तो कोई सरकार हो नहीं सकती।

अशोक ने तुरन्त बौद्ध धर्म अपना लिया, क्योंकि उस वक्त बौद्ध संघ इस देश का शक्तिशाली राजनैतिक संगठन था। विद्रोह दब गया। पर उसके बाद अशोक ने पूर्ण निरस्त्रीकरण कर दिया। दस नियम बना दिए। जहर का व्यापार, शस्त्र का व्यापार, तलवार बनाना, भाले बनाना, ढाल बनाना, यह सब बन्द हो गया। मगर यहाँ उसका उलटा असर पड़ा। बाहर से जो आए, उन्होंने हिन्दुस्तान को रौंद दिया, यह तुम इतिहास में जानते ही हो, क्योंकि इसकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। तिब्बत को सुरक्षा दी थी मंगोलिया ने। जैसे ही मंचुरिया वगैरह से लोग आते थे तिब्बत पर हमला करने के लिए, मंगोलिया से सेना आ जाती थी। मंगोलिया की सेना तिब्बत की रक्षा के लिए हमेशा तैयार रहती थी।

बौद्ध धर्म आस्तिक धर्म नहीं है, ईश्वर पर विश्वास रखने वाला धर्म नहीं है। दुनिया में दो ही ऐसे धर्म हैं, जो बिना ईश्वर के चलते हैं, बौद्ध धर्म और जैन धर्म। इनके अलावा जितने धर्म दुनिया में आए, सब में ईश्वर एक अनिवार्य अंग है। बौद्ध और जैन धर्म में ईश्वर की अवधारणा नहीं है, क्योंकि इन दोनों धर्मों का जो मूल सूत्र है, वह यूनान है। ईसा के सात सौ वर्ष पहले, जब भारत में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ, उसी समय यूनान में ओलिम्पिक खेल शुरू हुए। ओलिम्पिक खेलों का उद्देश्य यही था कि चार साल में एक बार ही सही, पर उस दौरान आपस में लड़ने वाली सेनाओं के बीच युद्ध-विराम हो। जितने भी राज्य आपस में लड़ते रहते थे, उन सबके शस्त्र गिर जाते थे, केवल जैतून की शाखा हाथ में रहती थी। लड़ाई को बन्द कराने के लिए ही वहाँ ऐसा हुआ था। यूनान की विचारधारा और दर्शन का बुद्ध पर और जैन मत पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

तो उस वक्त तिब्बत की रक्षा के लिए मंगोलिया की सेना आती थी। फिर मंगोलिया में इस्लाम आया, चँगेज़ खान आया। चँगेज़ खान तो मुसलमान था। मंगोलिया से ही मुगल शब्द निकला है। ये अकबर वगैरह सब मुगल खानदान के थे। ये वहीं से आए हुए थे, जाति तो इनकी वही थी जो मंगोलिया के बौद्धों की थी। जब मंगोलिया में मुगल साम्राज्य आया, उसके बाद मंगोलिया के खान का बेटा दलाई लामा बना। एक मुसलमान तिब्बत का दलाई लामा बना! क्योंकि बौद्ध विचारधारा तो धर्म से मतलब रखती ही नहीं है, कोई भी ज्ञानी बन सकता है। तो एक दलाई लामा ऐसा था, जो जन्म से मुसलमान था और मंगोलिया के खान का बेटा था। यह इतिहास है।

क्या आपने मानसरोवर देखी थी?

हम तो एक ही बात मानते हैं कि बाहर कुछ नहीं है, हम बाहर में जो भी चीजें देखते हैं, चाहे मानसरोवर, चाहे शिवजी, ये अंदर में हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य बोल रहा हूँ। अगर आपने दृष्टि विज्ञान पढ़ा है, तो इस बात को समझेंगे कि आप जो मेरे को यहाँ बैठा हुआ देख रहे हैं, जो बोध अभी आपको मेरा हो रहा है, वास्तव में वह बोध मस्तिष्क के भीतर हो रहा है, आप मेरे को अपने अन्दर देख रहे हैं। दृश्य का बोध दृश्य में नहीं, द्रष्टा में हो रहा है। आप मेरे को वहाँ देख रहे हैं, मगर मैं अभी यहाँ बैठा हुआ हूँ, मेरी आवाज़ यहाँ से जा रही है, यह बड़ी विचित्र चीज है।

बौद्धों के चार दर्शन होते हैं—माध्यमिक, नागार्जुन का सौत्रांतिक, वैभाषिक और योगाचार। जैसे हमारे षड्दर्शन होते हैं, वैसे उनके चार दर्शन होते हैं। योगाचार दर्शन कहता है कि जो कुछ मनुष्य देख रहा है, वह पदार्थ पर अवलम्बित नहीं है, बल्कि द्रष्टा पर अवलम्बित है। द्रष्टा तुम हो, देखने वाले। पदार्थ मैं हूँ, दृश्य। मगर दर्शन कहाँ हो रहा है, यहाँ कि वहाँ? दर्शन द्रष्टा के अन्दर होता है, दृश्य में नहीं। ऐसा योगाचार दर्शन कहता है और ठीक यही आज का विज्ञान भी कहता है। सब प्रकार के बोध, अनुभव या जो कुछ भी हो रहा है, तुम्हारे अंदर हो रहा है, लेकिन तुम उसे बाहर प्रक्षेपित करते हो। पर यह समझ में नहीं आता है। हम तो यही कहते हैं—

उस शिला का देव भी क्या, सत्य जो है वह मैं ही हूँ।
वो पत्थर है, वो मूरत है, सत्य मैं हूँ।

हमारी गंगाजी मानसरोवर से निकलती हैं। पौराणिक कथा तो है कि वे शिवजी की जटाओं से निकलीं। बहुत पहले की बात है, स्वामी प्रणवानन्द जी कैलाश-मानसरोवर जाते थे। हम तब बच्चे थे। उन्होंने कैलाश-मानसरोवर के जल का और गंगा-जल का वैज्ञानिक परीक्षण किया और दोनों में समानता पायी। अर्थात् कैलाश-मानसरोवर का जल गोमुख में आकर निकलता है। और उसके बगल में राक्षस ताल है, जिसका जल सिन्धु में जाता है। सिन्धु नदी तिब्बत से ही निकलती है। सतलज नदी भी वहीं से निकलती है। पर जिधर से ये नदियाँ निकलती हैं, उसको लोग राक्षसों का इलाका बोलते हैं। इधर देवताओं का इलाका बोलते हैं। अभी तो वहाँ जाना सरल हो गया है। जिनके पास थोड़ा पैसा है, अच्छी सेहत है, वे जा सकते हैं।

तिब्बत एक अलग देश है। कुमाँऊ से तिब्बत का सीधा रास्ता है। कभी भी बारिश हो जाती है वहाँ। रास्ते तो बहुत जगहों से हैं, आप कहीं से भी जा सकते हैं। किसी के लिए कोई रास्ता सरल है, किसी के लिए कोई। उसमें जो कुमाँऊ वाला पैदल रास्ता है, वह ज्यादा चालू है, क्योंकि उस रास्ते में मण्डियाँ हैं। तिब्बत और हिन्दुस्तान के माल की यहीं अदला-बदली होती है। चाहे सरकार की जानकारी में हो, चाहे ब्लैक में तस्करी होती हो, वह बहुत बड़ी मण्डी है। वहाँ घोड़े, याक और दूसरे पशु बहुत रहते हैं। काठमाण्डू के रास्ते से पैदल चलने वाले लोगों की ज्यादा नहीं चलती, क्योंकि वहाँ टैक्सियाँ हैं। और जिस रास्ते में टैक्सियाँ जाती हैं, उस रास्ते में

पैदल लोगों के लिए कोई सुविधा नहीं रहती है। पैदल आदमी को तो हर पाँच मील में चाय की दुकान चाहिए।

एक होता है पर्यटन और एक होता है तीर्थाटन। दोनों में मौलिक अंतर भावना का है, लक्ष्य का है। पर्यटन में आदमी कुछ देखने के लिए जाता है, कुछ मौज के लिए जाता है। तीर्थ में आदमी कोई लक्ष्य लेकर जाता है। या तो तपस्या के भाव से जाता है या कोई मनौती लेकर जाता है या आध्यात्मिक भाव लेकर जाता है। इसमें अभी सुविधाओं के कारण बहुत बड़ा अन्तर आ गया है। जितनी ज्यादा सुविधा होती है, मनुष्य उतना ज्यादा अपने लक्ष्य से हटता जाता है। अब आप गए, किसलिए गए? हो सकता है कि आप कैलाश दर्शन के लिए गए। बहुत से लोग दर्शन के लिए नहीं, मौज के लिए गए हैं। हो सकता है बहुत से लोग फोटो खींचने के लिए गए हों, टी.वी. के लिए गए हों। इस प्रकार सुविधाओं से आदमी का लक्ष्य बदल जाता है। जब सुविधाएँ कम होती हैं, तब केवल वही लोग जाते हैं, जो सच्चे श्रद्धालु होते हैं।

आधुनिकता पर

तुम लोगों का सारा जीवन आज आधुनिक है। तुम्हारी कोई चीज ऐसी नहीं है, जिसमें पुरानी भारतीयता है। तुम शौच कहाँ जाते हो, मैदान में जाते हो क्या? तालाब में नहाते हो क्या? नहीं। इसलिए बाल-बच्चे पैदा करना, गर्भावस्था में उसका ख्याल रखना, पैदा होने के बाद उसका ख्याल रखना, इत्यादि, जो भी काम हैं, उनके लिए भी आधुनिक तरीके अपनाओ। पुरानी हिन्दुस्तानी औरत की तरह रहने से काम नहीं चलेगा, मैं साफ-साफ बोलता हूँ। पुरानी हिन्दुस्तानी औरत ने हिन्दुस्तान को दिया क्या? हिन्दुस्तान गरीब है। यहाँ अस्सी प्रतिशत जनता आज भी मूलभूत सुविधाओं के बिना ही रहती है। इसको बदलना है कि नहीं? आज की इक्कीसवीं शताब्दी में यह बैलगाड़ी क्यों इस देश में? मजबूरी है, नहीं है क्या? इक्कीसवीं शताब्दी में मिट्टी तेल की ढिबरी जलती है घरों में। अपने को थोड़ा भी नहीं बदल पाए। क्यों? इसलिए कि तुम पुराना और नया, दोनों को लेकर चलना चाहते हो। कार और बैलगाड़ी, दोनों चाहिए तुमको।

हम तो इस पक्ष में हैं कि पढ़ी-लिखी लड़कियों को काम करना चाहिए और काम करते-करते ही घर बसा लेना चाहिए। और शादी का रूप ऐसा होना चाहिए कि पति-पत्नी पार्टनर की तरह हों। जैसे एक कम्पनी में बराबर के दो

पार्टनर होते हैं। हमारे यहाँ भगवान शंकर और पार्वती जी भी तो बराबर के पार्टनर ही थे न, जिसे अर्द्धनारीश्वर बोलते हैं—अर्द्धनारी और अर्द्धईश्वर। तो गृहस्थ आश्रम का आज ऐसा ही स्वरूप होना चाहिए, कम्पनी के पार्टनर की तरह, न कोई छोटा न कोई बड़ा।

ऋषिकेश

ऋषिकेश जो अभी तुम लोग देखते हो, यह तो एक दूसरा ऋषिकेश है। और इसको ऋषिकेश नहीं, मुनि की रेती कहते हैं। ऋषिकेश एक छोटा-सा शहर है, ज़िसके बाद एक छोटी-सी, सूखी हुई नदी है चंद्रभागा। उसके बाद कैलाश आश्रम से शुरू होता है मुनि की रेती। सन् 1944-45 में जब हम शुरू-शुरू में गए, तब वहाँ रेती ही रेती थी और वहाँ मुनि लोग ही रहते थे, दुकानदार नहीं। चाय, बीड़ी या पान की दुकान नहीं थी। और ऋषिकेश से पैदल आना पड़ता था। अभी तो पुल बन गया है। बरसात में चंद्रभागा में इतनी बाढ़ आ जाती थी कि उसको पार करना हाथी के लिए भी संभव नहीं था। उस समय वहाँ कैलाश आश्रम में कुछ महात्मा रहते थे, शिवानन्द आश्रम में दस-पन्द्रह संन्यासी रहते थे, मंगलनाथ आश्रम में दो-चार और ब्रह्मानन्द आश्रम में भी एक-दो रहते थे।

काली कम्बलीवाला नाम से एक महात्मा थे मणिराम जी। वे वहाँ हमसे बहुत पहले से रहते थे। उन दिनों ऋषिकेश में सिवाय साधु के कोई नहीं रहता था। और साधु लोगों को भोजन की बहुत दिक्कत होती थी, उनको बाहर जाकर, पैसा इकट्ठा करके, हरिद्वार से राशन लाकर खाना बनाना पड़ता था। तो उन्होंने ऋषिकेश में, जहाँ अभी बड़ा बाज़ार है, वहाँ एक क्षेत्र खोला। क्षेत्र का मतलब होता है जहाँ साधु को अन्न मिलता है। क्षेत्र के लिए उन्होंने काली कम्बलीवाला नाम से एक संस्था बनाई और उसमें काफी लोगों ने पैसा दिया। मारवाड़ी, राजस्थानी और यू.पी. वालों ने बहुत पैसा दिया। और उन दिनों पैसे का मूल्य क्या था, एक रुपये का बारह-चौदह सेर आटा मिलता था। अब तो एक रुपये का कोई मतलब ही नहीं है।

जब क्षेत्र खोला, तो जो भी साधु ऋषिकेश में आता था, उसे वहाँ तीन दिन बिना पूछे दस बजे खाना मिलता था। चार बड़ी-बड़ी रोटियाँ और एक बड़ा कटोरा तड़का। फिर तीसरे दिन ऑफिस में पंजीकरण करना पड़ता था। जो सौ-पचास महात्मा वहाँ बसे हुए थे, उन लोगों में जो वरिष्ठ लोग थे, जैसे

हमारे गुरुजी, उनको हर पन्द्रह दिन में राशन भेजा जाता था। उसमें आटा, आलू, नमक और घी, ये चार चीजें मिलती थीं। और हमारे जैसे जो जवान लोग होते थे, वे सवेरे नौ बजे जाते थे और खाकर आ जाते थे।

बाद में काली कम्बलीवाले के एक शिष्य ने शिवानन्द आश्रम के उस पार, जहाँ गंगा जी हैं, जिसे आज स्वर्गाश्रम कहते हैं, वहाँ सौ-डेढ़ सौ एकड़ की बहुत बड़ी जमीन ले ली। तब तो जमीन का कोई मोल नहीं था और टेहरी महाराज ऐसे ही देते थे। शिवानन्द आश्रम की जमीन भी तो टेहरी महाराज की दी हुई है, मोल ली हुई नहीं है, महाराज ने दान में ही दे दी। पूरा ऋषिकेश टेहरी महाराज के राज में आता है। साधुओं को दे दिया, भारत मंदिर को दे दिया, लक्ष्मण झूला को दे दिया, उन्होंने बहुत दिया था। तो स्वर्गाश्रम जिन्होंने खोला, आत्मा रामजी उनका नाम था। वहाँ स्वर्गाश्रम की तरफ जो महात्मा रहते थे, उनको रोज सवेरे भिक्षा मिल जाती थी। यह बहुत साल तक चला।

यह काली कम्बलीवाला क्षेत्र तो मारवाड़ी, गुजराती और यू.पी. वालों का था। उसके बाद पंजाब और सिंध के लोगों ने मिलकर क्षेत्र खोला, पंजाब सिंध क्षेत्र। यह सन् 1947 की बात बोल रहा हूँ। वहाँ भी मिलने लगा खाना, वहाँ दो रोटी, चावल और दाल मिलती थी। तो हम लोग क्या करते थे, काली कम्बलीवाले से चार रोटी और दाल ले लेते थे, फिर वहाँ से पंजाब सिंध क्षेत्र जाकर वहाँ से भी दो रोटी और चावल ले लेते थे। उसके बाद मालदार लोगों के, बनिया लोगों के कई क्षेत्र खुल गए थे। हम लोग आठ-आठ, नौ-नौ क्षेत्रों में हो आते थे। तुमको विश्वास नहीं होगा, मैं तीस-तीस, चालीस-चालीस रोटियाँ खा जाता था! वैसे अभी भी ठीक से खाता हूँ।

हम अपनी उमर के मुताबिक खाना नहीं खाते हैं, इन जवान लोगों की उमर के मुताबिक खाना खाते हैं। उस वक्त तीस-चालीस रोटियाँ तो ऐसी लगती थीं, जैसे ऊँट के मुँह में जीरा। फिर कभी-कभी कोई सेठ हलवा दे देता था, तो हलवा हो जाता था। एक जिमड़ी माई थी, उसके यहाँ मट्ठा मिलता था। तो हम उसके यहाँ मट्ठा लेने के लिए चले जाते थे। माने हम लोगों का नौ से ग्यारह बजे तक चक्कर रहता था, क्योंकि एक ही बार तो खाना था। और तब से जो एक ही बार खाने की आदत लगी है, आज तक वही आदत है। अब दो बार खाया ही नहीं जाता है। भूख नहीं लगती। हम तो सोचते हैं, एक ही बार खाना बनाओ, एक ही बार जमकर खाओ, एक ही बार जाओ।

दो बार समय क्यों बरबाद करेगा आदमी। मैं अपने लिए नहीं, हर किसी के लिए कह रहा हूँ।

उन दिनों ऋषिकेश में साधुओं का टिकना बहुत मुश्किल था। ये योग सिखाने वाले ब्रैन्ड साधु उस वक्त नहीं थे। उन दिनों घर से भाग-भाग कर लोग आते थे वहाँ। त्याग और वैराग्य के साथ आते थे कि मोक्ष प्राप्त करेंगे, कुण्डलिनी जगाएँगे, गुरुजी की सेवा करेंगे। लेकिन दो दिन के बाद टाँय-टाँय-फिस्स हो जाता था। मुनि की रेती से काली कम्बलीवाला क्षेत्र तीन मील दूर है और वहाँ से घुमा-फिराकर हो जाता है पाँच मील। फिर पाँच मील वापस, इस प्रकार कुल मिलाकर दस मील। खाकर इतना पैदल चलते सब लोग, गर्म हवा में। कई लोग तो खाने के बाद वहीं पड़े रहते थे, शाम को ही आते थे।

बुड्ढों का तो वहाँ कोई सवाल ही नहीं उठता था। जो आदमी चालीस के ऊपर हुआ, वह बोलता था, 'अरे बाप रे, इससे तो बीमारी अच्छी है।' एक आदमी बोलता था, 'स्वामीजी, इससे तो बीबी और बच्चों की मार बेहतर है! यहाँ तो बड़ी मुश्किल है, कोई किसी को पूछता ही नहीं है। हम कब से बीमार पड़े हुए हैं।' 'क्या हुआ?' 'दस्त लग रहे हैं।' हमने कहा, 'घर चले जाओ वापस।' 'महाराज जी, कुछ दवाई वगैरह तो दीजिए।' 'दवाई लेनी हो तो अपने घर में बैठे रहते, हम यहाँ दवाई देने के लिए आए हैं?' तो उसने कहा, 'स्वामीजी, बहुत परेशान हैं। हमारी दो लड़कियों की शादी नहीं हो रही है।' हमने कहा, 'पहले तो तुमने शादी करके गलती की और दूसरी गलती की बच्चे पैदा किए और तीसरी गलती अपनी गलती को दुगनी गलती के रूप में बदलकर कर रहे हो। अब शादी करोगे, छोड़ो, मारो गोली।' हम लोग इतना टेढ़ा बोलते थे कि तुम करो गलती और हम भरें तुम्हारा पाप! शराब तुम पीयो, ताश तुम खेलो, सब कुछ करो और हमको कहो हमारी लड़की की शादी में थोड़ा-सा दान दीजिए! इसलिए ऐसे लोगों के टिकने का कोई सवाल ही नहीं उठता था, उनको बड़ी मुश्किल होती थी।

लेकिन हम टिक गए। हम तो बहुत ताकतवर शरीर वाले हैं, पर एक आध बार हमको भी परेशानी हो गई। एक बार हमको पीलिया हो गया। अब हमको पता ही नहीं कि पीलिया क्या होता है और किसी ने बताया ही नहीं कि तुमको पीलिया है। हम ऋषिकेश जा रहे थे, तो एक महात्मा बोले, 'अरे! तुमको कमला हो गया।' हमने स्वामीजी से जाकर कहा, 'यह कमला क्या होता है? बोलते हैं, हमको कमला हो गया है।' उन्होंने कहा, 'हाँ,

तुम्हारी आँखें पीली हो गई हैं। जिन्दा रहोगे तो अच्छा है, कौन इसकी परवाह करता है।' यह दुनिया किसी की परवाह न करे, तो यह जिन्दगी बेहतर रहेगी। परवाह करते-करते दुनिया कमजोर हो गई है। खैर, हम ठीक हो गए। एक बार हमको टायफॉयड हो गया। हम लाहौर, पाकिस्तान में थे। वहाँ हम फँस गए थे। हमने सब देखा। सत्रह अगस्त को फौज ने हमें वहाँ से निकाला। हम आश्रम आए, उसके बाद हमारा दिमाग बहुत कड़वा हो गया। आज तक हमारा दिमाग बहुत कड़वा है। हमको धर्म पर श्रद्धा नहीं है। हम समझते हैं धर्मों ने बहुत नरसंहार किया है। हमने सोच लिया कि हम आश्रम से चले जाएँगे। हमने सब तैयारी भी कर ली थी। लेकिन स्वामीजी ने हमको समझाया तो हम रुक गए।

क्या संन्यास लेना चाहिए?

यह तो शादी के पहले सोचना चाहिए कि संन्यास लेना चाहिए या नहीं। गृहस्थ आश्रम में आने के बाद क्या पूछना।

क्या यह अनिवार्य है?

नहीं। गृहस्थ आश्रम में चले जाने के बाद तो बाल-बच्चे हों, पति-पत्नी हो। भले ही तुम्हारा संन्यास न्यायसंगत हो, भले ही तुम्हारी पत्नी, बेटा-बेटी और माता-पिता कहें कि तुम जा सकते हो, फिर भी एक विवाहित जीवन प्राप्त करने के बाद संन्यास बहुत विघ्नकारी हो जाता है। आम आदमी के लिए साठ-पैंसठ साल की उमर में संन्यास संभव नहीं है। किसी एक आध व्यक्ति के लिए ठीक है। साठ साल के बाद आदमी जीर्ण-शीर्ण हो जाता है, मशीन पुरानी हो जाती है। कभी यहाँ दर्द है, कभी वहाँ दर्द है, कभी टट्टी नहीं हो रही है, कभी पेशाब रुक गया, कभी सरदर्द है, कभी दिखाई नहीं दे रहा है, कभी मोतियाबिंद है, कभी ग्लूकोमा है। ऐसे में संन्यास आश्रम में रहना बहुत मुश्किल है।

क्या वैवाहिक जीवन एक बँधन है?

नहीं, बिल्कुल नहीं। लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट, प्यार-दुलार, ईर्ष्या-द्वेष, जो तुम दुनिया में देखते हो, एक तरह के परिणाम हैं, जो जीव के विकास के साथ चलते हैं। जैसे, जब बच्चा बड़ा होता है, तो उसके अन्दर हॉर्मोन में परिवर्तन होते हैं। लड़के की आवाज फटती है और मूँछ निकलती है, लड़की

को छाती फूटती है। ये विकास के पार्श्व-प्रभाव होते हैं। गृहस्थ आश्रम में एक ही दिक्कत है कि तुम लोग अपनी जीवन-शैली को हीनता के भाव से देखते हो, उसकी कद्र नहीं करते। हम लोग अपनी जीवन-शैली का आदर करते हैं, क्योंकि हमारी संन्यास जीवन-शैली बहुत अच्छी है। अपनी जीवन-शैली के बारे में तुम लोगों को बहुत निम्न विचार है। वह गलत है, जबकि लोग गीता पढ़ते हैं।

गृहस्थ आश्रम भी एक रास्ता है। उसको कहते हैं महायान, बड़ा रास्ता। संन्यास आश्रम भी एक रास्ता है, उसको कहते हैं हीनयान, छोटा मार्ग। एक रास्ते में कम लोग जाते हैं, दूसरे रास्ते में ज्यादा लोग जाते हैं। परन्तु गृहस्थ आश्रम में जो भी होता है, जो भी भावनाएँ, बीमारियाँ, संकट या विडम्बनाएँ हैं, वे गृहस्थ आश्रम की अयोग्यताएँ नहीं हैं।

शादी का मतलब क्या होता है? आदमी का औरत के साथ रहना, औरत का आदमी के साथ रहना। शादी का कोई दूसरा मतलब तो होता नहीं है। शादी पति-पत्नी के रूप में सामाजिक पहचान का एक तरीका है। लड़का-लड़की तो बिना शादी के भी साथ रह सकते हैं, पार्टनर की तरह। स्कैंडेनेवियन देशों में तो सभी लोग ऐसे ही रहते हैं। ऑस्ट्रेलिया में तो आधे ऑस्ट्रेलियन अविवाहित हैं। वहाँ तो अविवाहित माताएँ हजारों की संख्या में हैं। उनका समाज और उनकी सरकार उनको मान्यता देती है। यहाँ बिना शादी किये साथ रहने को मान्यता नहीं मिलती है। यहाँ शादी को ही मान्यता दी जाती है। शादी एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जो हर एक देश में स्वीकार्य है।

एशियन संस्कृति में शादी एकमात्र मानित संस्था है। स्कैंडेनेवियन देशों में शादी ही मान्य संस्था नहीं है, उसके बिना भी मान्यता हो सकती है। वहाँ लोग शादी के बिना साथ में रहते हैं, उनके बच्चे भी होते हैं। कहने का मतलब यह कि शादी कभी आध्यात्मिक जीवन में विघ्न नहीं बनती है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को हम लोगों ने जिस दृष्टि से देखा है, वह दृष्टि गलत है। स्त्री-पुरुष के बीच शारीरिक सम्बन्ध अपवित्र नहीं है। हाँ, सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार उसे संयत करना पड़ता है।

तुरीयावस्था में कैसा अनुभव होता है?

तुरीयावस्था के जो अनुभव होते हैं, वे देवलोक के अनुभव माने जाते हैं। जैसे कि अमुक ऋषि-मुनि स्वर्गलोक पहुँच गए, वहाँ विष्णुजी से उनका साक्षात्कार

हुआ, फिर लक्ष्मीजी या शिवजी से साक्षात्कार हुआ। किताबों में ऐसा पढ़ने को आता है। ये तुरीया के अनुभव हुए। तुरीयावस्था शून्यावस्था नहीं है। तुरीयावस्था एक ऐसे जगत् की अनुभूति है, जो सत्य है, अविनाशी है, जहाँ जीवन है। यह एक नई दुनिया है, जहाँ तुम पलक झपकते ही पहुँच जाते हो। हमने एक बार सीताराम ओंकारदास से यह प्रश्न पूछा था, अब तो वे नहीं रहे। वे नर्मदा किनारे एकदम पागल की तरह रहते थे, माने किसी काम के लायक नहीं थे। परन्तु जब वे लिखते थे, तो कल्याण पत्रिका में उनके लेख छपते थे। एकदम लाजवाब लेख, लगता है मानो वे सब कुछ देख रहे हैं।

चित्त के शुद्धिकरण में काम-शक्ति का ऊर्ध्वीकरण किस प्रकार सहायक होता है? कहा जाता है कि सब कुछ मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों में संचित होता है और काम-शक्ति का ऊर्ध्वीकरण मस्तिष्क के क्षेत्रों पर सीधा प्रभाव डालता है।

इस सवाल को समझाने के लिए मुझे बहुत घूमकर जाना पड़ेगा। सीधे इसका उत्तर तो बनेगा नहीं। पहली बात, ऊर्ध्वरेता बनना सबके लिए संभव नहीं है। यह कोई सामान्य बात नहीं है। यह वास्तविक नहीं है। यह प्राकृतिक नियमों का विरोध है। भूख लगना और भोजन करना, थकना और सो जाना, डरना और मैथुन—ये चार प्रकृति के बनाए हुए नियम हैं और इनके पीछे उसका कोई प्रयोजन है। वह प्रयोजन केवल बच्चा पैदा करना नहीं है। जो भी उसका प्रयोजन है, उसको दिशान्तरित और नियंत्रित किया जा सकता है। माने उसका निग्रह कर सकते हैं, उसे सम्हाला जा सकता है। और सम्हालने की जो उम्र है, वह है पच्चीस साल। बाद में उसको सम्हालने का कोई प्रयत्न न हो तो अच्छा है, क्योंकि शरीर में कुछ ऐसी ग्रंथियाँ हैं, हॉर्मोन्स हैं कि अगर बाद में कोशिश की जाए, तो इन पर चोट लगती है और शरीर के अंदर विषाक्त तत्त्व जमा होने लगते हैं। पचास साल के बाद फिर आदमी को निग्रह की बात सोचनी चाहिए।

यह मैं आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि शारीरिक दृष्टि से भी बोल रहा हूँ। जैसे कि स्त्री के लिए संतान का होना जरूरी है। अगर स्त्री की संतान नहीं होती है, तो लोग डरते हैं, सोचते हैं कि उसे कोई रोग है। वैसे ही शरीर में हॉर्मोन्स की गतिविधियों का अच्छी तरह से होना बहुत जरूरी है, जिसमें एक प्रक्रिया मैथुन की भी है। और पचास साल तक उसकी आवश्यकता है।

पचास के बाद आदमी को काम शक्ति के ऊर्ध्वगमन के लिए कोशिश करनी चाहिए।

लेकिन क्या इससे चित्त-शुद्धि की दिशा में लाभ होगा?

आदमी के जितने भी प्रजननांग हैं, उनका मनुष्य के दिमाग के साथ सीधा सम्बन्ध है, हॉटलाइन है। वे एक-दूसरे को तुरंत प्रभावित करते हैं। इसलिए पचास के बाद आदमी को ऊर्ध्वीकरण की बात सोचनी चाहिए। यह चित्त-शुद्धि में सहायक नहीं होता है। दिमाग में जो रासायनिक और विद्युत-चुम्बकीय गतिविधियाँ होती हैं, उनको सम्हालता है। ऊर्ध्वीकरण से इतनी ही सहायता मिलती है। चित्त शुद्ध नहीं होगा, लेकिन मस्तिष्क में जो हलचल होती है, वह शान्त हो जायेगी।

जो प्रसुप्त चीजे हैं मस्तिष्क में, क्या यह उन्हें सतह पर ला सकता है? क्या यह मस्तिष्क के निष्क्रिय हिस्सों को जाग्रत कर सकता है?

नहीं। यह केवल मस्तिष्क को शान्त कर देता है। मस्तिष्क की रासायनिक और विद्युतीय गतिविधियों में कम उम्र में जो उपद्रव होते हैं, वे शान्त हो जाते हैं। मस्तिष्क के सुषुप्त भागों का इससे कोई मतलब नहीं है।

जीवन में अर्थ और काम की प्राप्ति प्रारब्ध से होती है या पुरुषार्थ से?

अर्थ और काम के बारे में अनेक लोगों के अनेक विचार हैं। लोग कहते हैं कि सब प्रारब्ध से मिलता है। प्रभु की कृपा से अनायास मिल जाता है छप्पर फाड़ कर। परन्तु आज जो दुनिया में देखने को मिलता है, जो आँखों से दिख रहा है, उससे लगता है कि सम्पत्ति का आधार पुरुषार्थ और उद्योग है। आज दुनिया का अग्रिम औद्योगिक देश अमेरिका है, सुपर-पावर जिसको बोलते हैं। और दुनिया की दूसरे नम्बर की अर्थ-व्यवस्था जापान की है। अब इन दोनों को देख लो तुम। इन लोगों का व्यवहार कैसा है, ये कैसे जीते हैं, कैसे पढ़ते हैं, कैसे अपने बच्चों को पालते हैं, कैसे अपने माता-पिता को रखते हैं, किस प्रकार की इनकी न्याय और दण्ड व्यवस्था है। इन सब चीजों को देखकर तो ऐसा लगता है कि सम्पत्ति का आधार प्रारब्ध नहीं, बल्कि पुरुषार्थ है।

पुरुषार्थ या उद्योग किसको कहते हैं? उद्योगी पुरुष किसको कहते हैं? दुकानदार को उद्योगी नहीं कहते हैं। किसान केवल हल चला रहा है, उसको

उद्योगी नहीं कहते हैं। मेहनत करने वाले को भी उद्योगी नहीं कहते हैं। उद्योग एक बहुत पेचीदा शब्द है। इसमें कई चीजें आ जाती हैं। जैसे, जीवन है, जीवन की क्या परिभाषा है? यह केवल दिल और फेफड़ों की गतिविधि तो नहीं है। उसी तरह से उद्योग की जो परिभाषा चलती है, उसमें बचपन से बुढ़ापे तक सब चीजें आ जाती हैं। उद्योग का सबसे बड़ा उदाहरण इस समय अमेरिका है। विशेषकर एंग्लो-सैक्सन जाति बहुत उद्योगी है। जो सम्पत्ति और सुविधा उनके पास है, वह हम लोगों के पास नहीं है। उनकी तुलना में कुछ नहीं है। जितना यहाँ आदमी जिंदगी में कमाता है, वहाँ वे एक महीने में कमा लेते हैं!

अर्थ और काम, ये दो शब्द आते हैं। अर्थ का मतलब होता है सम्पत्ति। लेकिन काम का मतलब काम-वासना नहीं होता है। काम का मतलब होता है इच्छा। परिवार की कामना होती है, स्त्री या पुरुष की कामना होती है, बाल-बच्चों की कामना होती है। ये कामनाओं के अलग-अलग रूप हैं। जहाँ मनुष्य कामना करे और वह पूरी न हो, कामनाएँ सपना बनकर रह जाएँ, ऐसे देश भी तो हैं न! आखिर हमारे यहाँ गाँव में रहने वाले बहुत-से लड़के हैं, जो कुछ बनना चाहते हैं, लेकिन बन पाते हैं क्या? क्यों नहीं बन पाते? सुविधा ही नहीं है। अभी हमारे यहाँ का एक लड़का है, उसने लखनऊ में इम्तहान दिया और मेरठ में जाकर उसका दाखिला होता है। पैंतालिस हजार रुपया उसकी भरती की फीस है। जब भरती के लिए जाता है, तब वहाँ का बाबू साठ हजार रुपया माँगता है! एक गाँव का आदमी कहाँ से देगा पन्द्रह हजार रुपया? एक उदाहरण दे रहा हूँ कि सुविधा ही नहीं है।

किसी भी व्यक्ति के बड़ा बनने के लिए, उन्नति के लिए शिक्षा की सुविधा का होना अत्यन्त आवश्यक है। और वह शिक्षा युग के अनुकूल होनी चाहिए। हमारे देश में शिक्षा युग के अनुकूल नहीं है। बी.ए. पास लड़का कुछ नहीं कर सकता, वह तो आवेदन लिखना तक नहीं जानता। वह लड़का भाग्यवान् है जिसकी सही लोगों से टक्कर लग जाए और अच्छी तरह से जम जाए। नहीं तो बहुत मुश्किल है, क्योंकि बी.ए. के बाद नौकरी ही नहीं लगती। तुम लोग तो सच्चाई जानते हो। यहाँ होना यह चाहिए कि आठवीं कक्षा के बाद उसको डिप्लोमा या डिग्री में डाल देना चाहिए, ताकि अट्ठारह साल होते-होते वह नौकरी के लायक हो जाए।

ऐसा नहीं कि नौकरी के लायक कोई है ही नहीं। हमारे देश के विकास या शासन की जो पद्धति है, वह इसके लिए जिम्मेदार है। जिस देश की शासन

पद्धति ठीक रहती है, उस देश में पढ़ाई भी अच्छी होती है। पढ़ाई अच्छी होगी, तो नौकरी लगेगी। नौकरी लगेगी, तो पैसा आएगा। पैसा आएगा, तो बाजार से सामान खरीदेगा। बाजार से सामान खरीदेगा, तो दुकानदार की आमदनी होगी और उसके बाद कारखाने के लोग ज्यादा उत्पादन करेंगे, माँग और आपूर्ति बढ़ेगी। अब यहाँ गाँव की औरत एक साड़ी छः साल रखती है। इसका मतलब कि छः साल तक दूसरी साड़ी बिकती नहीं है। माँग ही नहीं है, माँग के लिए पैसा जरूरी है। खर्च करने के लिए कमाने की क्षमता होनी चाहिए। कमाने की क्षमता के लिए कमाने लायक योग्यता होनी चाहिए और कमाने की योग्यता के लिए सही शिक्षा होनी चाहिए। है क्या आपके यहाँ? तब आप प्रारब्ध की बात क्यों करते हो।

प्रारब्ध का आखिर जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्रारब्ध शब्द तो केवल अपने को संतोष देने के लिए है। आदमी को थोड़ी देर के लिए प्रारब्ध की शराब पिला दो, ताकि वह कहे कि 'हाँ भगवान, मेरी तकदीर में इतना ही था।' यह केवल मानसिक नशा है। आप नहीं, लेकिन आपकी अगली पीढ़ियाँ इसका जबाब देंगी। हम आपको एक बात बताते हैं, जब हम ऋषिकेश आए, हम कुछ नहीं जानते थे। स्वामी सत्संगी जब यहाँ देवघर में आई थी, कुछ नहीं जानती थी, केवल बी.ए. पास थी। इसको यह भी नहीं मालूम था कि बैल और गाय में क्या अंतर होता है, दूध कौन देता है। आज-कल के विश्वविद्यालयों की जो लड़कियाँ हैं, उनको कुछ मालूम नहीं रहता है। इसको भी कुछ नहीं मालूम था। एक दिन यहाँ बगल के किसी घर में गई, उस दिन तो इसका पूरा माथा घूम गया। आकर बोली, 'आदमी कैसे रहता है ऐसे घर में, न खिड़की है न दरवाजा!' मैंने कहा कि यहाँ अस्सी प्रतिशत हिन्दुस्तानी ऐसे ही रहते हैं।

ऋषिकेश में आने से पहले हम भी कुछ नहीं जानते थे। पर वहाँ हमारा प्रशिक्षण हुआ है। सिविल इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रीकल इंजीनियरिंग, एकाउन्टेंसी, बैंकिंग, पूजा-पाठ, गाड़ी चलाना, सबका इतना प्रशिक्षण मिला कि आज हमको कहीं पर भी बिठला दीजिए, हम काम करा देंगे। हमको किसी कम्पनी का एम.डी. बना दीजिए, हम उसको चला देंगे, क्योंकि हमको मालूम है कि प्रबन्धन क्या है और कैसे किया जाता है। हमने बारह साल तक जमकर आश्रम जीवन व्यतीत किया और बहुत कठिन अवस्था में जीवन व्यतीत किया।

पीलिया हो गया, टायफॉयड हो गया। एक बार मैं बद्रीनाथ जा रहा था तो मेरे को दस्त लग गए। मैं सवेरे उठा, नीचे गंगाजी में गया, शौच किया, वापस आया, फिर टट्टी लग गई। जब दस्त बहुत ज्यादा हो गया, तो मैंने शौच करना ही छोड़ दिया। हम लेट गए वहाँ सड़क के किनारे और कहा मरो अब तुम।

वहाँ एक मेहतर था, उसने कहा, 'तुम जाओ वापस, नहीं तो मर जाओगे।' मैंने कहा, 'वापस जाऊँ तो कैसे!' तब वह मेरे को अपनी झोपड़ी में ले गया। उसकी झोपड़ी का मतलब सुअर के रहने की जगह। उसने काली चाय बनाई और मेरे को पिला दी। मेरे को नींद आ गई। मेहतर की दवा से मैं ठीक हो गया। दो-तीन दिन मैं वहाँ रहा। अब वहाँ से ऋषिकेश पैदल जाना सम्भव नहीं था। देव प्रयाग सामने में गंगा पार था, वहाँ उसका घर था, जहाँ से वह आता था। वह हमको वहाँ ले गया। हम उसके घर गए, दो दिन रहे। एक दिन मैं देव प्रयाग घाट पर नहाने के लिए गया था। वहाँ एक पण्डित जी मिले, वे मेरे को पहचान गए और बोले, 'महाराज, आप यहाँ कैसे पहुँचे।' मैंने कहा, 'बद्रीनाथ जा रहे थे, बीमार पड़ गए, फिर यहाँ एक मेहतर के पास रुक गए।' 'आप मेहतर के यहाँ ठहरे हैं महाराज! आपने तो धर्म चौपट कर दिया।' हमने कहा, 'महाराज, धर्म चौपट हुआ कि नहीं हुआ, जिन्दगी तो बच गई!' ऐसा हाल था।

इन हालातों के बावजूद बारह साल तक हम वहाँ रहे और जितना हमने अपने गुरुजी के आश्रम में सीखा, वही हमको आज काम आया है। जो हमने घर में पढ़ा, बिल्कुल काम नहीं आया। हमने क्या सीखा? औरंगजेब की बेटी का नाम, अकबर की बेटी का नाम, उन्होंने कितने साल तक राज किया, अशोक के कितने भाई थे, चंद्रगुप्त की बीबी कौन थी। अब इससे नौकरी मिलती है क्या? नौकरी मिलती है उद्यम से। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि प्रारब्ध नाम की कोई चीज नहीं है। हम लोग तो वैदिक मत को मानते हैं, पर हर चीज को प्रारब्ध की भाषा में व्यक्त करना, ऐसा तो हमारे पुरखों ने भी नहीं कहा है। वेदान्त में संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म, आगामी कर्म इत्यादि जो कहा जाता है, जो कर्म का सिद्धान्त है, उसमें कार्य और कारण के बारे में बहुत अच्छी तरह से समझाते हैं। हम उसको पूरी तरह नकार नहीं रहे हैं। लेकिन यह जो अमेरिकन लोगों की बात कही जा रही है, इन लोगों ने सचमुच मेहनत की है। अपना घर छोड़कर वहाँ से गए वे लोग अमेरिका। वहाँ के मूल निवासियों के साथ उन लोगों ने लड़ाई लड़ी। बहुत हिंसक जाति रही है।

लेकिन ऐसा भी कहा गया है कि 'प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा शरीर। तुलसी चिन्ता कम करे, भज ले श्री रघुवीर।' और रामचरितमानस में वशिष्ठ जी भी कहते हैं कि 'हानि लाभु, जीवन मरणु, जसु अपजसु बिधि हाथ।'

प्रारब्ध की शुरुआत कहाँ से होती है? प्रारब्ध के बाप का नाम क्या है? प्रारब्ध के बाप का नाम है कर्म। और कर्म के बाप का नाम है प्रारब्ध! अण्डे का बाप मुर्गी, मुर्गी का बाप अण्डा। इस चीज को जब समझोगे तब तुमको दोनों में संतुलन मिलेगा। दोनों में संतुलन की आवश्यकता है। कर्म के बिना कारण नहीं होता, कारण के बिना कर्म नहीं होता। आखिर प्रारब्ध पैदा हुआ कहाँ से? अण्डा कारण है कि मुर्गी कारण है? कर्म कारण है कि प्रारब्ध कारण है?

संत लोग कहते हैं कि कर्म कारण है, कारण प्रारब्ध नहीं है। कर्म क्यों कारण है? उपनिषद् में कहते हैं कि पहले वह एक था, फिर उसके मन में इच्छा हुई कि मैं अनेक होऊँ। तब उसने सारे ब्रह्माण्ड की सृष्टि कर ली। अतः कर्म तो पहले भगवान ने किया। प्रजापति या ब्रह्मा जी या जिसने भी सृष्टि पैदा की है, वहाँ पहला कर्म हुआ। निराकार, निर्गुण ब्रह्म से सृष्टि पैदा होती है। निराकार वस्तु कैसे साकार बन गई? निराकार वस्तु साकार बनी है, क्योंकि इसमें ईश्वर का कर्म था। ईश्वर से ही कर्म का प्रादुर्भाव हुआ है और कर्म से फिर प्रारब्ध शुरू हुआ।

प्रारब्ध तो होगा ही। जब आम के पेड़ से फल निकला, तो बीज पैदा होगा ही। जब बीज निकला तो फिर पेड़ पैदा होगा, जब पेड़ पैदा हुआ तो फल पैदा हुआ और जब फल पैदा हुआ तो फिर बीज पैदा होगा। यह परम्परा चलती रहती है। उसी तरह से परमात्मा से कर्म का उदय हुआ। आदि कर्म के बाप का नाम प्रारब्ध नहीं है। आदि कर्म के बाप का नाम है परम् पुरुष। परम् पुरुष से कर्म पैदा हुआ और वह कर्म क्या था? विष्णुजी पैदा हुए, सृष्टि के चीफ एक्सीक्यूटीव ऑफिसर! और शिवजी पैदा हुए, सृष्टि के संहारक। ये दो कर्म हैं। इनसे फिर प्रारब्ध पैदा हुआ, देवी-देवता पैदा हुए, प्रकृति पैदा हुई, माया पैदा हुई, इस प्रकार लम्बी-चौड़ी सूची है।

उसी तरह से जिस भी जाति ने कर्म किया, उसको उस कर्म का परिणाम मिला है। भारतवर्ष कितने सौ सालों से गुलाम था। गाँधी जी ने कर्म किया। उसके पहले तो मंगल पाण्डे, झांसी की रानी, तात्या टोपे, धुंधु पंत जैसे बहुत

से लोगों ने भी कर्म किया था न! तो गाँधी जी क्यों सफल हो गए? इसलिए कि भारत की गुलामी का जो प्रारब्ध था, उस प्रारब्ध के साथ उनका कर्म मेल खाता था। अगर वे भी तलवार उठाते, तो शायद सफल नहीं होते। उन्होंने प्रारब्ध को काटने के लिए ऐसा तीर निकाला, जो सही निशाने पर लगा और भारत का प्रारब्ध कट गया। महात्मा गाँधी हमारे देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में अगर शरीक नहीं होते, तो भारत आज तक फिलिस्तीन की तरह मरता रहता। महात्मा गाँधी ने अपने ज्ञान से यह जान लिया था कि अस्त्र, शस्त्र और हिंसा के बल पर स्वतंत्रता नहीं लायी जा सकती, क्योंकि अंग्रेजी राष्ट्र बहुत ताकतवर था।

हम गृहस्थों के लिए क्या साधना है?

गृहस्थ के लिए कोई मुख्य साधना नहीं होती। साधना व्यक्तिमूलक होती है, आश्रम मूलक नहीं। अब जैसे कौन-सी शिक्षा अच्छी है, यह कहा नहीं जा सकता। शिक्षा तो व्यक्तिमूलक होती है। उसी तरह हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग प्रकार की साधनाएँ होती हैं और एक ही साधना को अलग-अलग ढंग से लेना पड़ता है। फिर उस साधना को भी उम्र के मुताबिक थोड़ा कम-ज्यादा करना पड़ता है। किसी-किसी को प्राणायाम अस्सी सालों तक चलता है। फिर उसको प्राणायाम छोड़ना पड़ता है, आसन छोड़ने पड़ते हैं, ध्यान करना पड़ता है। सबको अपनी परिस्थिति देखनी है। अगर व्यक्ति अकेला हो, तब एक किस्म की साधना है। अगर परिवार के साथ हो, तब दूसरी साधना है। इसलिए साधना परिस्थिति के अनुसार निश्चित होती है। पर उस साधना का एक ही मूल तत्त्व है, एक ही लक्ष्य है—अंदर देखना। नारायण की पूजा, हनुमान की पूजा, राम की पूजा या कृष्ण की पूजा, ये तो नाम हैं, रास्ते हैं, मार्ग हैं। असली चीज है—अपने अंदर देखना, बस।

अंदर देखने से भी महत्त्वपूर्ण एक और चीज है। तुम्हारे और तुम्हारे अंदर के बीच में एक पर्दा है। मेरे और मेरे बीच में एक पर्दा या काँच है। या तो वह धुँधला है, या टूटा है, या काला है, या बिल्कुल साफ है। ये जो पर्दे होते हैं, इनको ईसाई और यहूदी लोग बोलते हैं—सात पर्दे। योग में तीन पर्दे माने जाते हैं। अगर एकदम साफ रहा, तब तो तुम खुद को देख सकते हो, क्योंकि कांच साफ है। अगर वह साफ नहीं रहा और तुम गुरु कृपा, भगवत् कृपा या किसी साधना के द्वारा इत्तेफाक से अंदर चले जाओ, तो तुम को वहाँ गड़बड़ी दिखाई

देगी। किसी को भूत दिखाई देगा, किसी को आवाज सुनाई देगी, किसी को कुछ और दिखाई देगा। इसका मतलब अभी भी गड़बड़ी है अंदर वाले शीशे में, जिसको हम लोगों के यहाँ चित्त कहते हैं।

जो मुखड़ा देखन चाहिए, तो दर्पण मांजत रहिए।
जो दर्पण लागे काई, तो मुखड़ा लखी न जाई।

यह चित्त चेतना का पर्दा है। कोई उसको अहंकार कहते हैं, कोई जीव कहते हैं, कोई माया कहते हैं। उसे योग-शास्त्र और वेदान्त ने बहुत समझाया भी है, पर वह चीज क्या है, किसी को पता नहीं। अलग-अलग नाम हैं, पर वह एक वास्तविकता है। तुमको रातों में सपने क्यों आते हैं? इसलिए कि तुम्हारे और उसके बीच में पर्दा है। असली चीज तो दिखती नहीं है, क्या दिखता है? उधर घोड़ा दौड़ रहा है तो इधर गाय चर रही है। उधर आदमी बैठा हुआ है, फिर इधर भैंस दिखती है। दृष्टि धुँधली रहती है।

इसलिए साधना करने के पहले चित्त को शुद्ध करना आवश्यक है। चाहे क्रियायोग की साधना हो या प्राणायाम की साधना हो या रजनीश, महेश योगी या सत्यानन्द की कोई साधना हो, जो भी साधना करनी है उसके पहले चित्त-शुद्धि आवश्यक है। चित्त शुद्धि के लिए सबसे पहली चीज–निष्काम सेवा। दूसरों के लिए काम करो, अपने लिए नहीं। वह संत-महात्माओं ने स्पष्ट कर दिया है। गीता ने भी वही कहा कि कर्मयोग करो। हमारे गुरुजी उसे सेवा कहते थे। स्वामीजी कहते थे, सेवा पहला, प्रेम दूसरा और दान तीसरा कदम है। तब ही शुद्धता आती है।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।

सेवा के बिना, दूसरों से प्रेम किए बिना, आत्मभाव के बिना और दूसरों की मदद किए बिना चित्त की शुद्धि नहीं होती है। और चित्त की शुद्धि हुए बिना अगर तुम अंदर जाओगे, तो तुमको भूत ही दिखाई देने वाला है। परन्तु अपने आप को, जो 'मैं' है, जो 'सोऽहं' बोलता है, जो 'अहं ब्रह्मास्मि' बोलता है, उसे अगर देखना है तो पहले चश्मे की या दर्पण की सफाई होनी चाहिए और सफाई का रास्ता, सेवा बहुत कठिन है। सेवा धर्म कठिन ही नहीं, अति गहन है। गहन का मतलब, समझ में नहीं आता। *'सेवाधर्मः परम गहनः, योगिनां अपि अगम्यः'*–योगियों को भी प्राप्त नहीं होता है।

महात्मा गाँधी की किताब अगर तुम पढ़ो, तो समझ में नहीं आता कि एक तरफ यह आदमी देश की आजादी के लिए इतना चिन्तित है, पर दूसरी तरफ बात करता है कुछ और। उपवास करता है, कोढ़ियों की सेवा करता है, मेहतरों के यहाँ रहता है! उसका आजादी से क्या मतलब है? आजादी का तो मतलब होता है जन-आंदोलन, हल्ला-गुल्ला, 'इंकलाब जिन्दाबाद' वगैरह की नारेबाजी, यही न! पर यह आदमी बोलता है गाय की सेवा करो, भेड़-बकरी की सेवा करो, कोढ़ी की सेवा करो, हरिजन की सेवा करो, बीमार की सेवा करो। इन सबका आजादी से क्या मतलब है? मतलब यह है कि इन चीजों को किए बिना गाँधीजी की चित्त-शुद्धि नहीं हो सकती और जब तक कि गाँधी जी की चित्त शुद्धि नहीं होगी, तब तक उनके अंदर में अंतर्ज्ञान नहीं जाग सकता। आखिर गाँधीजी को कितना बड़ा अंतर्ज्ञान मिला, कभी अंदाज लगाया है क्या? गाँधी जी के अंदर का आइना जब साफ हो गया, तब उनको जो दिखाई दिया, उनको जो विचार आया, क्या वह किसी के दिमाग में आज तक आया है?

तुम तीन-चार दिन बिना सोए रह सकते हो, दो-तीन दिन बिना खाए रह सकते हो, एक-दो दिन बिना पीए रह सकते हो, पर इस कपड़े के बिना एक मिनट भी रह सकते हो क्या? आदमी के जीवन का साथी वस्त्र है और दुनिया में सबसे ज्यादा बिक्री भी इसी की होती है? गाँधीजी ने सूत्र पकड़ लिया। सूत हर इन्सान से जुड़ा हुआ है, बचपन से कफन तक। लंगोटी से लेकर कोट तक। गाँधीजी के सत्याग्रह का मंत्र था खादी, और कुछ नहीं। उनको यह विचार मिला शुद्ध चित्त में, उनको अंतर्ज्ञान प्राप्त हुआ। अंतर्ज्ञान का मतलब होता है, परमात्मा के द्वारा दिया हुआ ज्ञान या विचार। उनके आंदोलन की शुरुआत का आधार केवल खादी और चरखा था, और कुछ नहीं था। उनकी किताबें पढ़नी चाहिए, बहुत साहित्य है। हमने सब पढ़ा है, हम तो उसी जमाने के हैं। हम बचपन में उनके आश्रम में रहे भी हैं। साबरमती और वर्धा में तीन-तीन महीने रहे हैं।

चित्त-शुद्धि के बिना साधना का कोई महत्त्व नहीं है। सीधी बात बोल रहा हूँ तुमको। इसलिए जब हम अपने गुरुजी के यहाँ पहले दिन सामने खड़े हुए, तब उन्होंने कहा, 'सेवा करो, मेहनत करो। प्रकाश अपने आप तुम्हारे पास आएगा, क्योंकि प्रकाश तो तुम्हारे अंदर है।' जब तक तुम अपने लालटेन को साफ नहीं करोगे, तब तक उसका प्रकाश बाहर निकलेगा कैसे? जो तुम्हारी

ज्योति है, वह भूत तो नहीं है। यहाँ बहुत लोगों को भूत दिखता है। वे डरते हैं, बोलते हैं, 'भूत दिखता है।' हम कहते हैं, 'अरे! भूत नहीं दिखता है। कोई साधना तुमने गलत की है और जबरदस्ती अंदर चले गए हो। इसलिए अंदर जाकर तुमको भूत ही दिख रहा है।' वह भूत वगैरह कुछ नहीं है। आत्मा ही भूत, प्रेत या जानवर के रूप में दिखता है। वही आत्मा स्त्री के रूप में, डकैत के रूप में, सुख-दुःख के रूप में तुमको दिखता है। सब सपनों में वही आत्मा है। माण्डूक्य उपनिषद् में यही तो साफ-साफ समझाया है।

इसलिए जो भी साधना तुमको करनी है, करो, पर पहले अंदर साफ कर लो। नहीं तो अंदर बड़ी गड़बड़ होती रहती है। विषाद छाने लगता है। कोई बोलता है, मेरे को यहाँ एक आवाज आ रही है, कोई बोलता है मेरे पेट में कोई बैठा हुआ है, कोई बोलता है सत्यानन्द जी मेरे को बुला रहे हैं। कोई मेरे को देखकर कहता है, 'स्वामीजी, मैंने आपको दाढ़ी में देखा है। आपका शरीर ब्रह्मा-विष्णु जैसा था।' मैंने कहा, 'फालतू बातें मत करो, तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है। बैठकर पहले अपने लालटेन को साफ करो।'

तुमको एक ही चीज़ जाननी चाहिए। और कुछ नहीं करना है, केवल आत्मा की, मन की शुद्धि करनी है। दूसरों की सेवा करो, दो रोटी भगवान सबको देगा। हमको स्वामीजी कहा करते थे, 'तुम दूसरों की सेवा करो, रोटी भगवान देगा।' भगवान ने हमें खूब रोटियाँ दी हैं, खिलाते जा रहे हैं!

स्वप्न या दिव्य दर्शन में क्या होता है? क्या उससे अंतर्ज्ञान प्राप्त हो सकता है?

सपनों को समझाना बहुत कठिन है, क्योंकि यह एक पूरा का पूरा विषय है। सपनों के अनुभव तो निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण होते हैं, पर उनमें ज्यादा विश्वास नहीं रखना चाहिए, क्योंकि वे अक्सर भ्रमित कर देते हैं। हाँ, कुछ सपने सच भी होते हैं, पर यह अन्तर कैसे पता चलेगा? यह तो उस समय की मानसिक स्थिति पर निर्भर रहता है।

तुम्हारे मस्तिष्क में अलग-अलग केन्द्र हैं। किसी केन्द्र में अच्छी-बुरी, सभी स्मृतियाँ अंकित हैं। फिर दूसरा केन्द्र है, जिसमें संस्कार अंकित हैं। तीसरा है, जिसमें धारणाएँ अंकित हैं। जब तुम सो जाते हो, तब तुम्हारी बीटा, थीटा और अल्फा विद्युत चुम्बकीय तरंगों की आवृत्ति शून्य हो जाती है, याने बिजली ऑफ हो जाती है। सिर्फ डेल्टा तरंगें रहती हैं, जो वैसे ही शून्य आवृत्ति की

हैं। उस समय सपने आते हैं, अर्थात् स्वप्न वह अवस्था है जब मस्तिष्क की पूरी की पूरी विद्युत-चुम्बकीय गतिविधि बन्द हो जाए, केवल उसकी रासायनिक प्रक्रिया रहे। और रासायनिक प्रक्रिया के लिए हृदय का चलना जरूरी है। अतः रासायनिक प्रक्रिया से ये स्वप्न पैदा होते हैं और विद्युत-चुम्बकीय प्रक्रिया के नहीं होने से बाहर की दुनिया के विचार से मस्तिष्क का कोई सम्बन्ध नहीं रहता है।

अब सवाल यह है कि स्वप्न को कौन देख रहा है? स्वप्न तो केवल रसायनों की प्रतिकृति है। जो देखने वाला है, जो साक्षी है, उसको तो मोतियाबिंद है। इसीलिए रामचरितमानस में एकदम शुरू में लिखा है–

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष विभंजन।

दृग दोष का मतलब होता है मोतियाबिंद। जब आदमी का चित्त शुद्ध नहीं होता, तब सब कुछ गड़बड़ दिखाई देता है। चित्त शुद्ध हो तो सब ठीक हो जाएगा। तो स्वप्नावस्था में विद्युत-चुम्बकीय गतिविधि खत्म हो जाती है, रासायनिक गतिविधि चालू रहती है और देखने वाले की दृष्टि धुँधली रहती है। जितना उसकी आँख देख सकती है, उतना भर देखता है।

फिर इसके आगे एक अवस्था और होती है, जिसमें रासायनिक प्रक्रियाएँ भी बंद हो जाती हैं। उस वक्त देखने वाला भी वहाँ नहीं रहता, वह सो जाता है। न कुछ सोचता है, न कुछ देखता है। सारा का सारा व्यक्तित्व केन्द्रीभूत हो जाता है और वह व्यक्ति एकदम आनंद का पुंज हो जाता है। इसे तुम गहरी नींद कहते हो। गहरी नींद में रासायनिक प्रक्रियाएँ बंद हो जाती हैं, हृदय निष्क्रिय अवस्था में चला जाता है। निष्क्रियता का मतलब होता है कि शरीर में ऑक्सीजन नहीं रहती, बस कार्बन रह जाता है–एकदम बेहोश की तरह। यह अवस्था बहुत कम समय के लिए होती है, आती है फिर जाती है। आदमी असली नींद बहुत देर तक नहीं सो सकता है। वह नींद, स्वप्न और जागृति के बीच में आती-जाती है। असली निद्रा अगर तुमको आ जाए, तो दो मिनट ही काफी हैं, वे आठ घण्टे के बराबर हैं। नेपोलियन ऐसे ही सोता था, गाँधीजी ऐसे ही सोते थे। नेपोलियन तो घोड़े पर दो-तीन मिनट सो जाता था, फिर जगकर लड़ाई करता था!

दो मिनट की गहरी नींद में शरीर अपनी पूरी की पूरी मरम्मत कर लेता है। अभी हमारी मोटर चल रही है न, तो इसमें टूट-फूट हो रही है। गहरी नींद में

इसकी मरम्मत होती है, सपने में नहीं। चलती गाड़ी की मरम्मत होती है क्या? नहीं। गाड़ी की मरम्मत करने के लिए उसको बंद करना पड़ता है। उसी तरह से रात को जब तुम पूर्ण निद्रा में चले जाते हो, जब तुम्हारी सब शारीरिक गतिविधियाँ बन्द हो जाती हैं, तब शरीर की मरम्मत होती है। इस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। इसी के बारे में माण्डूक्य उपनिषद् में कहा गया है–

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्रज्ञस्तृतीयः पादः।

आनन्दमयः माने एकदम आनन्द! उसके बाद अच्छा लगता है न! यह सुषुप्ति है। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया–ये चार अवस्थाएँ होती हैं। स्वप्न तो अपनी जगह बहुत जरूरी, बहुत अच्छा है। आधुनिक मनोविज्ञान में स्वप्न पर बहुत लिखा है, उसे तुम पढ़ सकते हो। हम लोगों के यहाँ पुराणों में स्वप्न को बहुत अच्छी तरह से समझाया है। पर वे पुराण इतने मोटे हैं कि उसको कहानियों के बीच में से तुमको निकालना पड़ेगा। और तुरीयावस्था को लोग बोलते हैं, चौथा पद। यह जो चौथा पद है, यह अंदर में एक नई दुनिया का अनुभव है!

सन्तो, अब चौथा पद पाया॥
नाभि-कमल से सुरता चाली, सुलटा दम उलटाया।
त्रिकुटि महल की खबर पड़ी जब, आसन अधर जमाया॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती जानी, तुरिया तार मिलाया।
अन्तर अनुभव ताली लागी, शून्य मण्डल में समाया॥
चाली सुरता चढ़ी गगन पर, अनहद नाद बजाया।
रुम-झुम, रुम-झुम हो रणकारा, वा में सुरत समाया॥
देवी देव वहाँ कछु नाहीं, नहीं धूप नहिं छाया।
'रामदास' चरणे भणे बहादुर शा निरखा अमर अजाया॥

– 16 अगस्त 2004



अध्याय 7

झूलनोत्सव

झूलन का मतलब होता है पालना। अभी श्रीकृष्ण झूलनोत्सव का आयोजन होने जा रहा है। कृष्ण और क्राइस्ट की कथाओं में थोड़ा-सा ही अन्तर है। मैं नहीं जानता यह अन्तर ऐतिहासिक है या पौराणिक है या मात्र एक संयोग है। भारत में कृष्ण को कृष्टो भी बोलते हैं। बंगाली, उड़िया और अन्य पूर्वी तटवासी लोग कृष्ण नहीं, कृष्टो बोलते हैं और पश्चिम तथा दक्षिण भारतीय लोग कृष्ण बोलते हैं।

दूसरी बात, जन्म के पूर्व से ही कृष्ण राजा की वध-सूची में थे। जिस व्यक्ति का नाम वध-सूची में होता है, उसे मार दिया जाता है। और ऐसा ही क्राइस्ट के साथ भी था। आज के दिन हिन्दू लोग कृष्ण की एक छोटी मूर्ति को पालने में रखते हैं, और सभी लोग आ-आकर उनको खुश करने के लिए धीरे-धीरे पालने को झुलाते हैं। ये छोटे-छोटे बच्चे, जो कृष्ण के बाल सखा हैं, हमारे-तुम्हारे समान नहीं, घण्टों गीत गायेंगे, कीर्तन करेंगे और नाचेंगे। जो लोग यहाँ उपस्थित हैं, इसका आनन्द लेना। उत्सव पाँच दिनों तक चलेगा। इस अवधि में यह आश्रम हमारे क्षेत्र में रहने वाले इन छोटे बच्चों का आतिथ्य करेगा। स्वादिष्ट राजसी भोजन, सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों और भरपूर उपहारों से इन सबका स्वागत करेगा। यह बच्चों का उत्सव है।

इस उत्सव के बाद 25 दिसम्बर को फिर हम यही आयोजन करेंगे। वह भी एक बच्चे का ही उत्सव होगा। यह उत्सव कृष्ण का है और वह उत्सव क्राइस्ट का होगा। एक का जन्म मथुरा में हुआ था और दूसरे का जन्म आधुनिक इस्राइल में हुआ था। दोनों ही को जन्म के तुरंत बाद ही सुरक्षित

स्थानों में ले जाया गया। कृष्ण को गोकुल ले गए, तो क्राइस्ट मिश्र ले जाए गए। कृष्ण की कहानी तुम जानते हो, और क्राइस्ट की कहानी भी तुम्हें जाननी चाहिए। दोनों ही के इतिहास में वह दुःखद घटना समान थी। अन्त में वे सबके प्रिय हुए। दिसम्बर में जिसे तुम पालने में झुलाओगे, उसने पर्वत पर उपदेश दिया था। और जिसके उत्सव का आनन्द हम अभी लेंगे, उसने विश्व विख्यात गीता का उपदेश दिया था। भगवद्गीता भारत का जीवन-दर्शन है, हिन्दू इस से जीवन की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उसी प्रकार अपने को ईसाई कहने वाले लोगों के लिए 'सरमन ऑन द माउन्ट' प्रेरणा स्त्रोत है।

भारतीय लोग नहीं चाहते कि उनका भगवान अकेला रहे। वे सोचते हैं कि अकेले रहना अस्वाभाविक है। यदि भगवान कृष्ण अकेले रहते हैं, तब तो वे अस्वाभाविक जीवन जीने की शिक्षा हमें दे रहे हैं। समाज, मित्र और प्रेम, ये सब तो दिव्य उपहार हैं। ईश्वर ने तुम्हें समाज दिया है, मित्र दिये हैं, कोई ऐसा भी दिया है जो तुम्हें प्यार करता है या तुम जिसे प्यार करते हो। इसी तरह कृष्ण की संगिनी राधा हैं। राधा कृष्ण के पीछे नहीं आतीं, वरन् कृष्ण ही राधा के पीछे आते हैं। हम कृष्ण-राधा नहीं, राधा-कृष्ण कहते हैं। पहले राधा आती है, कृष्ण तो उनका अनुसरण करते हैं।

यह झूलन का जो उत्सव होने जा रहा है, इसमें हम राधा और कृष्ण, दोनों का गर्व और प्रेम से स्मरण करते हैं, पूर्ण स्वीकृति के साथ। राधा-कृष्ण के मिलन में कोई दोष नहीं है। योग दर्शन के अनुसार राधा और कृष्ण ब्रह्माण्ड के दो ध्रुवों के प्रतीक हैं। समस्त ब्रह्माण्ड, सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था, सौर मण्डल, तारे, ब्लैक होल या जो कुछ भी अस्तित्व में है, वह राधा और कृष्ण, शिव और शक्ति, पदार्थ और ऊर्जा से आविष्ट है। दोनों वास्तविकताएँ सदा एक साथ रहती हैं।

आश्रम-परम्परा

भारत में आश्रम राष्ट्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। हजारों वर्षों से यहाँ आश्रम-परम्परा चली आयी है। चाहे कोई भी धर्म भारत में आया, आश्रम-परम्परा बरकरार रही। चाहे बौद्ध धर्म हो या जैन या ईसाई या इस्लाम या शैव या वैष्णव। आश्रम जीवन इन सबका बहुत महत्त्वपूर्ण अंग रहा। इन आश्रमों में सरल नियमों और अनुशासनों का पालन होता रहा, चाहे ये बड़े हों या छोटे। शिवानन्द आश्रम बहुत बड़ा आश्रम है। भारत में लाखों आश्रम हैं।

आज योग हमारे समाज में बहुत लोकप्रिय हो गया है। पहले इसका प्रचलन बिल्कुल नहीं था। आश्रमों में संस्कृत, आयुर्वेद और वेदान्त की शिक्षा दी जाती थी। पर अब समय बदल रहा है। सभी जगह योगाश्रम स्थापित होते जा रहे हैं। छोटे-छोटे योग केन्द्र भी हैं, वहाँ एक योग शिक्षक होता है, कक्षाएँ चलती हैं। योगाश्रम भले ही छोटे क्यों न हों, उन्हें समय-समय पर महत्त्वपूर्ण उत्सवों का आयोजन करना चाहिए। सभी उत्सव मनाना तो संभव नहीं है, पर नवरात्रि, रामनवमी, झूलन, आदि महत्त्वपूर्ण त्योहारों को अवश्य मनाना चाहिए। हमने तो क्रिसमस मनाना भी शुरू कर दिया है, क्योंकि हमें यह भारतीय भावनाओं के अनुरूप लगता है।

वैदिक काल से ही हमारे देश के लोगों ने किसी सम्प्रदाय या धर्म की उपेक्षा नहीं की है। एक अरब से अधिक आबादी होने पर भी हम एक राष्ट्र हैं। इसलिए हमें हर आस्था में समानता का अनुभव करने का प्रयास करना है। इसी कारण हम क्रिसमस का त्योहार मनाते हैं और यह अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। केवल यहीं नहीं, शिवानन्द आश्रम में भी क्रिसमस मनाते हैं। भारत के अन्य अनेक आश्रमों में भी क्रिसमस मनायी जाती है। 25 दिसम्बर को क्रिसमस दिवस नहीं, झूलन कहो। वह क्राइस्ट का झूलन है। यह कृष्ण का झूलन है। रामनवमी राम का झूलन है। इन्हें मनाने में कोई हर्ज नहीं है। आध्यात्मिक आनन्द तो हमेशा उत्तम होता है, चाहे वह किसी नाम से भी मनाया जाए। हम क्राइस्ट के नाम से आनन्द मनाते हैं, राम के नाम में आनन्द लेते हैं, हमारे नाम में भी आनन्द ले सकते हैं। कोई समस्या नहीं है।

यह सात्त्विक आनन्दोत्सव है। ऐसा ही नव वर्ष के दिन भी होता है। आश्रमों में ऐसा आयोजन होना चाहिए। इस समय योगासन नहीं, कीर्त्तन होना चाहिए।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौनास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥

इस युग का नाम है कलियुग। इस युग में भगवान के नाम के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। *कलौनास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा।* और कोई रास्ता नहीं, केवल भगवत् कीर्त्तन एकमात्र रास्ता है। इसलिए तुम सब यहाँ कीर्त्तन का आनन्द ले रहे हो। ये छोटे बच्चे जो कीर्त्तन करते हैं, वे हृदय में

स्पन्दन पैदा करने वाले, लय-ताल युक्त और सरल होते हैं, साथ ही उनमें भोलापन भी होता है। कीर्त्तन तो आश्रम का आधार होना चाहिए–चाहे वह अक्षय तृतीया हो या मकर संक्रान्ति या और कोई कार्यक्रम। यदि कोई पण्डितजी हैं, तो थोड़ी पूजा और हवन भी कर दें।

हम यज्ञ कराते हैं। ये बच्चे यज्ञ करते हैं। हम द्रष्टा रहते हैं। ये बच्चे पाँच से तेरह साल के हैं, जिन्हें प्रशिक्षित करना है। अब नई पीढ़ी आ रही है। हर पीढ़ी की अपनी विलक्षणताएँ, समस्याएँ, कठिनाइयाँ और रुचियाँ-अरुचियाँ होती हैं। तुम्हारे बच्चे वह पसन्द नहीं करते, जो तुम्हें पसन्द था। तुम्हारे बच्चे उसे नापसन्द नहीं करते, जो तुम्हें नापसन्द है। वे तो वह चाहते हैं, जो तुम नहीं चाहते। परिवर्तन स्वाभाविक है। पीढ़ियों को तो बदलना है, जैसे दिन रात में बदलता है, रात दिन में बदलती है। शरद ऋतु को शिशिर ऋतु का स्वागत करना है, तो शिशिर को वसन्त के लिए स्थान खाली करना है। एक ही पीढ़ी, एक ही संस्कृति ठीक नहीं है। ये बड़ा ऊबाउ हो जाता है। परिवर्तन तो होना ही है। स्वाभाविक परिवर्तन है पीढ़ियों का परिवर्तन।

ये छोटे-छोटे बच्चे यज्ञ करेंगे–अर्चना, मंत्र, अष्टोत्तर शतनाम, सहस्रनामावली के साथ। ये बच्चे ही सब कुछ करेंगे। इन्हें कोई कठिनाई नहीं है। आश्रम परिसर में गृहस्थाश्रम की मनोवृत्तियों का प्रवेश नहीं होना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि गृहस्थाश्रम खराब है, गृहस्थाश्रम भी एक आश्रम है। पर वह सम्पूर्ण आश्रम नहीं, उसका एक चौथाई भाग है। ब्रह्मचर्य आश्रम पचीस प्रतिशत, गृहस्थाश्रम पचीस प्रतिशत, वानप्रस्थ आश्रम पचीस प्रतिशत और संन्यास आश्रम पचीस प्रतिशत। जो आश्रम चलाता है उसे स्नातक के समान रहना चाहिए। मानलो, मेरा एक आश्रम है। एक आदमी यहाँ रहता है, उसकी एक पत्नी, दो बच्चे, एक साली, एक साला है, फिर उसकी सास होगी, फिर उसकी भाभी होगी। फिर तो यह आश्रम गृहस्थाश्रम हो गया, योगाश्रम नहीं रहा। योगाश्रम में तुम्हें ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जहाँ तुम्हारे ट्रस्टी और मित्र दस, बीस, तीस, चालीस की संख्या में आएँ और एक-दो दिन ठहरकर शान्ति और ऊर्जा प्राप्त करें। आश्रम तो ईंट, गारे आदि से बना है, पर वहाँ ऊर्जा का चक्र होना चाहिए। और हजारों वर्षों से भारत में हम यही करते आए हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में एक प्रसंग है। विदेह जनक के गुरु महामुनि याज्ञवल्क्य संन्यास लेकर वन में जाना चाहते थे। उन्होंने अपनी दोनों

पत्नियों–मैत्रेयी और कात्यायनी को बुलाया और उनसे कहा, 'मैं जा रहा हूँ, यह जो मेरी सम्पत्ति है, तुम दोनों में बाँट देना चाहता हूँ।' कात्यायनी ने चुपचाप अपना भाग ले लिया, परन्तु मैत्रेयी ने कहा, 'मैं इस सम्पत्ति का क्या करूँगी? मुझे यह सम्पत्ति नहीं चाहिए। मुझे तो आध्यात्मिक ज्ञान दो।' आश्रम परिसर में रहने वालों का यही भाव होना चाहिए। जो ट्रस्टी हैं, बाहर रहने वाले सदस्य हैं, उनका अपना काम-धन्धा, अपना रोजगार, अपनी कठिनाइयाँ और समस्याएँ हैं, पर आश्रम को मन्दिर के समान रखना चाहिए। भले ही वह एक कमरे का ही क्यों न हो। यही परम्परा भारत में वैदिक काल से रही है। मैं यही चाहता हूँ कि इसे सदा इसी प्रकार सुरक्षित रखा और चलाया जाए।

भारत में योग

योग पहले भारतवर्ष में हज़ारों साल तक सम्मान का विषय तो रहा है, किन्तु मार्केट में नहीं आया था। स्वामी विवेकानन्दजी भी इसको मार्केट में नहीं ला सके। मार्केट में हम लेकर आए। अब अच्छा किया कि बुरा, यह तो भविष्य ही बतलायेगा, क्योंकि हमारे ऋषि-मुनियों ने योग को केवल आश्रम तक ही सीमित रखा, बाहर जाने नहीं दिया। अब उन्होंने सही किया कि गलत, उसका आंकलन तो हम लोग कर भी नहीं सकते हैं। विवेकानन्दजी ने योग शब्द को प्रचलित ज़रूर किया, मगर आसन, प्राणायाम, हठ योग आदि लोगों को मालूम नहीं था। पश्चिम के देशों में योग एक बहुत बड़ा विषय है। अब तो वहाँ योग की कम्पनियाँ हो रही हैं। जैसे हिन्दुस्तान लीवर और माइक्रोसॉफ्ट आदि बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हैं, वैसे ही अब एक कम्पनी योग की हो गई है। उसकी बौद्धिक सम्पत्ति के प्रकाशन पर सर्वाधिकार सुरक्षित होना शुरू हो गया है।

हिन्दुस्तान में योग का प्रवेश हो रहा है। जिस रूप में योग यहाँ एक आम आदमी के काम की वस्तु बनेगी, जिसको कहते हैं उपभोक्ता के लिए, वह अभी हिन्दुस्तान में नहीं आया है। अभी योग हिन्दुस्तान के उपभोक्ता बाजार में नहीं आया है। केवल प्रतिष्ठित बाजार में आया हुआ है। जिस दिन यह पाश्चात्य देशों की तरह उपभोक्ता बाजार में आ जाएगा, उस दिन हिन्दुस्तान में सबसे ज़्यादा रोजगार योग सिखलाने वालों को मिलेगा, क्योंकि योग ऐसी बीमारियों को ठीक करता है, जो न तो वाइरस से पैदा होती हैं, न बैक्टीरिया से, बल्कि खोपड़ी से पैदा होती हैं। एक प्रकार की बीमारी होती है, जिसको

कहते हैं खोपड़ी से पैदा होने वाली बीमारी, वह बुखार भी हो सकता है, सर्दी-खाँसी भी हो सकती है, दमा भी हो सकता है, दस्त भी हो सकता है, कैंसर भी हो सकता है, कुछ भी हो सकता है, मगर उसकी पैदाइश होती है खोपड़ी से। और दूसरे प्रकार की बीमारी होती है, जिसकी पैदाइश अन्य कारणों से होती है, उसके लिए डॉक्टर लोग बैठे हुए हैं। और डॉक्टर लोग तो चाँदी बना रहे हैं। उनकी खूब चलती है, क्योंकि बीमारी हर एक आदमी को होती है। इस दुनिया में कोई आदमी, जो बुढ़ापे तक ज़िन्दा रहा, बिना बीमारी के रहता नहीं है। जरा, मृत्यु, व्याधि, ये तीन हर आदमी के पीछे लगे हुए हैं। कोई आदमी कहे कि मैं बीमार हुआ ही नहीं, असम्भव है।

जो बीमारी शारीरिक होती है, उसको डॉक्टर देखता है। यहाँ गाँव में तो सब शारीरिक बीमारियाँ हैं। मगर जो बीमारी आधुनिक सभ्यता के कारण हिन्दुस्तान में पैदा होगी, अभी वह सभ्यता भारत में आई नहीं है। वह पाश्चात्य सभ्यता, जिसके बारे में हम अभी संकेत दे रहे हैं, आपकी इस सभ्यता से पूर्णत: भिन्न है जिसे आप इस देश में देखते हैं। गोरी जात का सोचने का तरीका एकदम अलग है। उनके पूरे के पूरे मूल्य ही अलग हैं। उनकी पूरी दृष्टि अलग है। मार्क ट्वेन ने कहा था, 'पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम।' वे दो एकदम अलग-अलग धाराएँ हैं। वह पश्चिमी धारा इस देश में बड़ी तेजी से आ रही है। अभी पूरी आ नहीं पाई है, लेकिन आएगी। उस समय जो रोग यहाँ के लोगों को पैदा होंगे, उन रोगों का इलाज योग के पास है। और उससे यह भी प्रतीत होता है कि किसी समय इस देश में एक ऐसी सभ्यता थी, जिसके लिए इनको योग की आवश्यकता पड़ी।

एक गाँव के आदमी को योग की ज़रूरत नहीं है। हमारे आस-पास जो गाँव के लोग रहते हैं, इनको योग की बिल्कुल ज़रूरत ही नहीं है। इनको तो ज़रूरत है ऐसे डॉक्टर की, जो कोल्डरीन जैसी दवाई देते हैं। किन्तु जो व्यक्ति आधुनिक सभ्यता के अनुसार चलता है, उसके मानसिक द्वन्द्व बढ़ते हैं। उसके कारण बीमारी होती है। और भारत में आधुनिक सभ्यता का प्रवेश अवश्य होगा, क्योंकि भारत के लोग पुरानी सभ्यता से थक चुके हैं, इसे पसन्द नहीं करते हैं। चारों तरफ कचरा, टट्टी, गंदगी, ये सब चीजें पसन्द नहीं करते हैं। जो अमेरिका में देखकर आते हैं, बिल्कुल वही चाहते हैं। और वे चाहेंगे तो फिर नई सभ्यता आएगी। उस समय में यहाँ हर व्यक्ति रोज किसी-न-किसी योग कक्षा में जाएगा और वहाँ से प्रशिक्षण लेकर आएगा।

कहते हैं कि इटली में पहले हर नुक्कड़ पर एक चर्च हुआ करता था। अब हर नुक्कड़ पर एक योगाश्रम है। जैसे यहाँ हर नुक्कड़ पर पान-बीड़ी की दुकान है, वैसे ही इटली में हर नुक्कड़ पर योगाश्रम बैठे हैं। एक जगह पर योग का झण्डा लगाकर बैठ जाते हैं और लोग आकर सीखते हैं, रोज या हफ्ते में एक दिन या दो दिन या तीन दिन। पचास-सौ डॉलर फेंक देते हैं। अब योग का समय आ रहा है। हिन्दुस्तान में अभी उतनी तेजी से नहीं आया है। हिन्दुस्तान में तो अभी मुंगेर या रिखिया आश्रम को छोड़कर कोई आश्रम ठीक से चलता नहीं है।

आश्रम में सात्त्विक उल्लास और आनन्द का वातावरण रहना चाहिए। उदासी नहीं, नीरसता नहीं। लटके चेहरे नहीं। उल्लास और आनन्द रहना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में तुम नाच-गा सकते हो, आनन्द मना सकते हो। पर यह सब सात्त्विक होना चाहिए। सात्त्विक आनन्द क्या है, राजसिक आनन्द क्या है? तामसिक आनन्द की क्या परिभाषा है? जब तुम्हारा आनन्द बाहरी वस्तुओं पर निर्भर रहता है, वह राजसिक आनन्द है। जब तुम्हारा आनन्द अपने आप पर निर्भर रहता है, आत्मानन्द, तो वह सात्त्विक आनन्द कहलाता है। जब तुम कीर्त्तन कर रहे हो, भजन गा रहे हो, महामृत्युंजय मंत्र का उच्चारण कर रहे हो, उस समय जो आनन्द आ रहा है, वह बाहर से नहीं, बल्कि भीतर से आ रहा है, वह सात्त्विक आनन्द है।

क्या आप अब विदेश के आश्रमों में भ्रमण के लिए जायेंगे?

मैं तो अब कहीं जाना नहीं चाहता। मैं यहाँ सन् 1989 में आया। तब से मैं कुछ ही बार बाहर गया हूँ। बद्रीनाथ, ऋषिकेश, माता वैष्णो देवी और दो बार कुम्भ मेले में। ये सब मेरी मनौतियाँ थीं। मैंने अपने मन में संकल्प ले रखा था कि यहाँ रिखिया में सुव्यवस्थित हो जाने पर मैं अपने गुरु के आश्रम, या अपना ही आश्रम कह लो, शिवानन्द आश्रम ऋषिकेश जाऊँगा। यह मेरा आश्रम नहीं है। ऋषिकेश मेरा आश्रम है। मुंगेर और रिखिया तो तुम लोगों का आश्रम है।

दो बार मैं कुम्भ मेले में गया। अब और नहीं जाऊँगा। बड़ा कठिन है। यहाँ से मैं वातानुकूलित टिकट आरक्षित कराकर गया। इलाहाबाद तक तो ठीक है। फिर वहाँ से तो मेरी उम्र के लोगों के लिये यात्रा बड़ी कठिन है। होटल जाने के लिए भी वे कार नहीं ले जाने देते। मेरे को पैदल ही चलना पड़ा और

वह भी अपना बैग साथ लेकर। तब जाकर त्रिवेणी में स्नान किया। मेरे को बारह किलो मीटर पैदल चलना पड़ा। वे वहाँ कार नहीं ले जाने देते, क्योंकि वहाँ बहुत भीड़ होती है। लाखों, करोड़ों तीर्थयात्री वहाँ जाते हैं। बारह किलोमीटर तक वे न रिक्शा ले जाने देते हैं, न साइकिल, न मोटर साइकिल, न और कोई सवारी, कार का तो सवाल ही नहीं।

दूसरी बार गया, तो और भी कठिन था, क्योंकि वह कुम्भ मेले का मध्याह्न काल था। मैं सुबह गया, स्वामी सत्संगी और दिल्ली के कुछ लोग साथ थे। आधे रास्ते में हम बिछुड़ गए। हमें पता नहीं लगा कि कौन कहाँ है। बस हम दो रह गए। हम चलते गए और अंत में वहाँ पहुँच गए। फिर मैं स्नान के लिए चला, पर आधे रास्ते में भटक गया कि मैं किधर से आया था। और भीड़ तो अपार थी। मैं भीड़ में खो गया। मेरे बदन पर मात्र एक कौपीन थी। और मेरे पास कुछ नहीं था। सुबह का समय था और ठण्ढ बहुत ज्यादा थी, इतनी कड़ाके की ठण्ढ थी कि हमको लगा कि हमारा अन्तकाल आ गया है। अचानक मेरा हाथ एक मोटे रस्से पर पड़ा। मैंने लम्बी सांस ली। फिर स्वामी सत्संगी भी मिल गई। वहाँ से हम होटल गए। रात में जसीडीह की गाड़ी थी। पर ट्रेन पकड़ने के लिए प्लेटफार्म तक पहुँचना भी बड़ा काम था। जब ट्रेन आती है, तुम दायें-बायें हिलडुल भी नहीं सकते, सभी तरफ लोग खड़े होते हैं। किसी तरह हम डब्बे में चढ़े। अब दुबारा कुम्भ मेले जाने की कोई संभावना नहीं है। फिर मैं वैष्णो देवी गया, शिखर तक। वहाँ बहुत ठण्ढ थी, जमा देने वाला जाड़ा था।

संस्था के लिए योगदान

भारतीय मानसिकता तो स्वभाव से संस्थाओं की मदद करने के लिए तैयार रहती है। हर वाणिज्य संस्थान, औद्योगिक संस्थान, घर-परिवार, व्यवसायी, यो कोई भी व्यक्ति जिसके पास थोड़ा भी पैसा है, वह सहायता करता है। यह स्वाभाविक है। यह उनके खून में है। पर यदि तुम उनसे मांगोगे, तो वे तुमसे प्रभावित नहीं होंगे। लेकिन कोई भारतीय जब तुम्हारे काम से प्रभावित हो जाता है, तब उससे मांगना नहीं पड़ता। यह हमारा साठ वर्षों का अनुभव है। हम किसी से कुछ नहीं मांगते। भारतीय लोग देते समय केवल यही देखते हैं कि क्या स्वामी सत्यानन्द एक अच्छा काम कर रहे हैं, जो समाज के लिए, लोगों के लिए अच्छा है।

ऋषिकेश से मुंगेर और रिखिया तक और अन्य जगहों पर भी मैंने आज तक कभी लोगों से मांगा नहीं है। रुपयों का स्वागत है, मैं नहीं कहता कि मुझे मत दो। पर संस्थाएँ लोगों की स्वीकृति से चलती हैं। यदि आप इसे संस्था के रूप में स्वीकार नहीं करते, तो मत दो, इस संस्था को मर जाने दो। जो संस्था समाज के लिए उपयोगी नहीं है, लोगों की सेवा नहीं कर रही है, जो संस्था आश्रम के सिद्धान्तों के अनुसार नहीं चलती है, उसे समाप्त हो जाना चाहिए।

संन्यासी का निजी जीवन नहीं होता। उसका न निजी बैंक खाता होता है, न निजी जमीन होती है, न परिवार। मेरे पास कुछ नहीं है। न मेरे पास जमीन है, न मैंने कभी अपना बैंक खाता खोला है। मैंने कभी चेक पर हस्ताक्षर नहीं किया है। मेरी कोई सम्पत्ति नहीं है। यदि मुझे यह आश्रम छोड़ना होगा, तो बस जैसा हूँ वैसे ही चल दूँगा। ट्रेन का टिकट खरीदने के लिए भी मेरे पास पैसा नहीं है। संन्यासी को ऐसे ही रहना चाहिए। ऐसे लोगों के लिये भारतीय लोग सब कुछ करेंगे।

अभी आपने योग पर थोड़ी-सी चर्चा की। योग के विषय में विस्तार से जानना चाहता हूँ। योग का अर्थ जो एक सामान्य भाषा में सामने आता है, वह है मिलन। और यहाँ पर योग के परिवेश में जो अर्थ सामने आता है, वह केवल एक शारीरिक अभ्यास के रूप में रह गया है। हमारे पुराने ऋषि-मुनियों ने योग की जो परिभाषा की थी, वह क्या केवल एक शारीरिक अभ्यास के रूप में थी या उसका अध्यात्म से भी कोई सम्बन्ध था?

योग का मतलब होता है मिलन। वियोग का मतलब होता है बिछोह, योग माने मिलन। हमारे यहाँ जीवात्मा-परमात्मा के मेल को योग कहते है। इसको हठ योग में समझाया गया है, इड़ा और पिंगला के मेल को योग कहते हैं। और वैष्णव सम्प्रदायों में राधा-कृष्ण के मिलन को योग कहा जाता है।

योग में दो विपरीत शक्तियाँ मिलती हैं, और भौतिक शास्त्र में भी इसी को योग कहते हैं। उसमें विलयन शब्द इस्तेमाल किया जाता है। परमाणु तकनीकी में जो अणु विस्फोट होता है, एटम बम का जो विस्फोट होता है, उसमें विलयन की प्रक्रिया होती है, उसमें दो तत्त्व, दो विपरीत ध्रुव होते हैं, वे विपरीत दिशा में जाते हैं, एक-दूसरे से मिलते हैं। अतः योग जो है, वह मेल है। कैसे होगा, उसके पहले शरीर की शुद्धि होनी चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी

होगा, इसी मंदिर में होगा। यह मंदिर साफ होना चाहिए। इस मंदिर में नसें हैं, नाड़ियाँ हैं, खून है। सारे मल को साफ करना है। इसके लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने हठ योग का अभ्यास बतलाया। इसमें नेति, धौति, कपालभाति, त्राटक, नौलि और बस्ति–ये छः कर्म बतलाए गए हैं। इन छः कर्मों को करने के बाद फिर आसन होता है।

आसन का मतलब शारीरिक व्यायाम नहीं होता है। इस शब्द को आपको थोड़ा बदलना चाहिए। आसन का मतलब होता है, शरीर की एक स्थिति। अभी हम इस आसन में बैठे हैं। यदि हम लेट जाते हैं, तो दूसरे आसन में आ जाएँगे। यदि हम खड़े हो जाते हैं, तो दूसरी स्थिति में आ जाएँगे। आसन का मतलब होता है, शारीरिक स्थिति या भंगिमा। योगासन का मतलब होता है, ऐसी स्थिति जो योग के लिए ठीक है। जैसे पद्मासन में बैठ गए, चिन्मुद्रा या कोई मुद्रा लगा ली, आँखें बन्द कर लीं, शरीर शान्त हो गया। हिलना-डुलना बन्द हो गया। इससे क्या होगा कि शरीर में हृदय को आराम मिलेगा। रक्त का चाप गिरेगा। मस्तिष्क में जो प्रणाली है, जिसको आप तरंग-प्रणाली कहते हैं, उसमें परिवर्तन आएगा। शरीर में जो हॉर्मोन इधर से उधर, उधर से इधर चक्कर लगा रहे हैं, उनका चक्कर लगाना बन्द हो जाएगा। दिमाग में जो रासायनिक क्रिया है, वह थोड़ी देर के लिए चुप हो जाएगी। तुम सोए नहीं हो, जगे हो। फिर भी तुम्हारे शरीर में वही स्थिति पैदा होती है, जो निद्रा या सुषुप्ति की अवस्था में पैदा होती है।

जाग्रत अवस्था में सुषुप्ति के लक्षणों को शरीर में प्रकट करना, यह योगासन में होता है। और साथ ही जाग्रत अवस्था में शरीर में ऐसे लक्षणों को प्रकट करना, जो मछली के शरीर में होते हैं, जो साँप, टिड्डी, मेंढक आदि के शरीर में होते हैं। जो रासायनिक क्रियायें उनके शरीर में होती हैं, वे उस आसन में आने पर इस शरीर में भी पैदा होती हैं। एक होता है मत्स्यासन। मत्स्यासन का मतलब होता है मछली आसन। मछली के अंदर कौन-सी क्रियाएँ होती हैं? मछली तो बिना ऑक्सीजन के पानी में चौबीसों घण्टे रहती है। और अपने पंख हिलाती रहती है। इसका मतलब होता है कि उसकी मांसपेशियाँ बहुत मजबूत हैं।

मछली की मांसपेशियाँ इतनी मजबूत क्यों हैं, इसका वैज्ञानिक कारण क्या है? इसलिए कि समुद्र के तल में पानी का इतना भार होता है कि कहते हैं कि जो गोता लगाने वाले नीचे जाते हैं, उनके मस्तिष्क के अंदर नाइट्रोजन

पैदा हो जाती है। जब लोग समुद्र के तल में जाते हैं, तो एक हद तक जाते हैं, क्योंकि उधर से ऊपर का जो दाब होता है, उनके मस्तिष्क में नाइट्रोजन पैदा कर देता है। मछली के अन्दर नाइट्रोजन पैदा नहीं होती है। मत्स्यासन का अर्थ यह हुआ कि तुम इस आसन में एक ऐसी स्थिति में आ रहे हो, जो मछली की है। और उस मछली की स्थिति द्वारा तुम अपने शरीर में उन तत्त्वों को पैदा कर रहे हो या रोक रहे हो या दबा रहे हो, जिसकी वजह से शरीर में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड का संतुलन बनता है।

नाइट्रोजन, कार्बन-डाई-ऑक्साइड और ऑक्सीजन आदि गैसों का संतुलन बिगड़ने से शरीर में अनेक रोग पैदा होते हैं। आदमी मर भी सकता है। आदमी के अंदर काम पैदा हो सकता है। आदमी के अंदर काम खत्म हो सकता है। आदमी के अंदर गुस्सा पैदा हो सकता है। अब बलात्कार की खबर तो आपको रोज अखबारों में मिलती है, कलकत्ता वाले की खबर है, तो राजस्थान, गुजरात वाले की खबर है। यह सब क्यों होता है? इसलिए कि उनके अंदर एक ऐसी मानसिक अवस्था पैदा होती है, एक ऐसी हॉर्मोन की स्थिति पैदा होती है, एक ऐसी रासायनिक अवस्था तैयार होती है, ऐसे विद्युत-चुम्बकीय परिपथ बनते हैं कि उनका अपने ऊपर कोई नियंत्रण नहीं रहता। दस साल की लड़की से कोई बलात्कार करे, दिमाग ठीक होगा उस आदमी का! उसका पूरा इलेक्ट्रॉनिक सर्किट बिगड़ गया है। उसका पूरा रासायनिक सर्किट बिगड़ गया है। मैं यह उदाहरण आपको इसलिए दे रहा हूँ कि आसन को शारीरिक कहना ही गलत है।

हमारे योग में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, ये तीन विभाजन केवल बोलने के लिए हैं। कहाँ पर शरीर खतम होता है, कहाँ पर मन शुरू होता है, कहाँ पर मन खतम होता है, कहाँ पर आत्मा शुरू होती है, यह विभाजन रेखा नहीं बतलायी जा सकती। गंगाजी और यमुनाजी मिलती हैं, कहाँ पर मिलती हैं, मिलन रेखा नहीं बतलायी जा सकती। गंगाजी का पानी समुद्र में मिल जाता है, कुछ पता ही नहीं चलता है ऐसा विलीन हो जाता है। उसी तरह से शरीर, मन और आत्मा, ये जो तीन नाम हैं, केवल समझाने के लिए शब्दों में प्रतीकात्मक रूप से कहे गए हैं। जिस तरह से पृथ्वी अनन्त होती है, केवल निशान तुम इधर-उधर लगा देते हो, वैसे ही यह जीवन अनन्त है। इसके एक भाग का नाम शरीर है, दूसरे भाग का नाम मन है, तीसरे भाग का नाम आत्मा है।

इसलिए आजकल जो बोलते हैं कि योगासन शारीरिक व्यायाम है, वह गलत है। हाँ, दण्ड-बैठक शारीरिक व्यायाम है। लेकिन योग को व्यायाम मानना ही गलत है, क्योंकि योग में व्यायाम होता ही नहीं! भुजंगासन में पड़े रहते हैं, इसमें व्यायाम क्या है? यह एक स्थिति है। हम मत्स्यासन में चले जाते हैं, पड़े रहते हैं, यह व्यायाम कहाँ? व्यायाम तो तब होता है जबकि शरीर को लगातार हिलाया जाता है। यहाँ पर तो शरीर को स्थिर रखा जाता है। अभी आप बैठे हुए हैं तो एक स्थिति में हैं या व्यायाम कर रहे हैं? आसन का मतलब होता है स्थिति। आसन की परिभाषा है–स्थिरं सुखमासनम्। भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, मत्स्यासन, सर्वांगासन, इस प्रकार चौरासी आसन हैं और सारे के सारे आसनों का नाम जानवरों के नाम से है।

ऋषि-मुनि लोग तो जंगल में रहते थे, बम्बई में तो रहते ही नहीं थे। अगर बम्बई में होते तो चौपाटी आसन, भेल-पुड़ी आसन बोलते! वे तो जंगलों में, तालाब के किनारे, झील के किनारे रहते थे। पीपल का पेड़ रहता था, आम का पेड़ रहता था, उधर शेर रहता था, इधर साँप घूमते थे, ऐसी जगह पर रहकर उन्होंने इन सब चीज़ों को देखा कि साँप कैसे चलता है, टिड्डी कैसे चलती है। उन्होंने उसके अंदर की रासायनिक प्रक्रिया को, हॉर्मोन की प्रक्रिया को, विद्युत-चुम्बकीय प्रक्रिया को देखा, क्योंकि ये जो प्रक्रियायें हैं, प्राणों की जो क्रियाएँ हैं, वे ब्रह्मकीटपर्यन्तं–सब में हैं।

मनुष्य में ही नहीं हैं, वाइरस में भी हैं, बैक्टीरिया में भी हैं, छोटे-छोटे कीड़ों में भी हैं। बिना किसी विद्युत-चुम्बकीय क्रिया, हॉर्मोनल क्रिया, रासायनिक क्रिया या प्राणिक क्रिया के, बिना ऑक्सीजन, कार्बन, नाइट्रोजन के प्राणी जीवित रह ही नहीं सकता है। इनके बिना अस्तित्व असम्भव है। इसलिए योगासनों को हमारे ऋषि-मुनियों ने शरीर, मन और आत्मा के विभाजनों में नहीं बाँटा। उन्होंने इतना ही कहा कि अगर तुम योग की ऊँची अवस्था में पहुँचना चाहते हो, तो पहले इस मंदिर को ठीक बनाओ। जब तुम्हारे शरीर में दर्द है, रोग है, तो तुम क्या ध्यान करोगे। अगर ध्यान करोगे, तो ध्यान के वक्त सपना दिखाई देगा कि कोई तलवार लेकर तुमको मारने आ रहा है। गलत अनुभव होगा। इसलिए ध्यान को पवित्र रूप से चलाने के लिए, मैं जैसा हूँ वैसा ही अपने को देख सकूँ। मैं अपने को भूत, प्रेत, राक्षस या काली-गोरी बुढ़िया स्त्री के रूप में न देखूँ, मैं अपने को किसी-भी अटपटे रूप में न देखूँ। मैं अपने को उसी रूप में देखूँ

जिस रूप में मैं हूँ। इसके लिए आपको अपना आइना साफ करना पड़ेगा, अपना फिल्टर साफ करना पड़ेगा।

जो मुखड़ा देखन चहिए, तो दर्पण मांजत रहिए।

आपका फिल्टर कैसे साफ होगा? रगड़ने से। रगड़ने का तरीका है—आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध।

संसार के पीछे संसार

क्राइस्ट के पहले ईसाई नहीं थे। कोन्स्टान्टिनोपल में हुई महासभा के बाद यह सब व्यवस्था हुई। उसके पहले इटली, पूर्वी और पश्चिमी यूरोप में रहने वाले लोग रहस्यवादी परम्परा को मानते थे। यह रहस्यवादी परम्परा किसी भी अन्य धर्म से पुरानी है। वेद, बाइबिल, कुरान, गीता, भागवत या रामायण से और जितने भी धर्म तुम आज जानते हो, उन सबसे पुरानी है, क्योंकि आदमी धर्म के प्रादुर्भाव से पहले भी था। पहले मनुष्य पैदा हुआ, धर्म बाद में आए। और पहले-पहल जब उसका जन्म हुआ, तब वह निष्पाप मनुष्य था। उसे पावन अनुभूतियाँ हुईं। उसे दुष्ट शक्तियों का अनुभव हुआ। आँखों, कानों, इन्द्रियों से परे के सभी अनुभव हुए। उसे अतीन्द्रिय और अलौकिक अनुभव हुए।

लोग बाबाजी की बातें करते हैं, थिओसॉफिस्ट लोग मॉस्टरों की बातें करते हैं, हम लोग ऋषि-मुनियों की बातें करते हैं। तुम हनुमान जी और गणेश जी की बातें करते हो कि वे शाश्वत हैं। अलौकिक आत्माओं से सम्पर्क करना अच्छा है। पर जैसे सर्दी-खाँसी, टी. बी. या और कोई बीमारी के वक्त तुम्हारे शरीर को कुछ एन्टीबायोटिक की जरूरत होती है, उसी तरह तुमको आसनों की भी जरूरत है।

इस संसार के पीछे भी एक संसार है। हमारा ज्ञान सीमित है। क्या तुम सोचते हो कि मेरा कुत्ता, 'पूर्णा' गेरु रंग पहचानता है? नहीं, यदि तुम पूर्णा से पूछोगे कि मैंने किस रंग के कपड़े पहने हैं, तो वह कहेगा, काले। तुम किसी वैज्ञानिक या नेत्र विशेषज्ञ से पूछ लो। पशु-पक्षियों को क्या रंगों का ज्ञान है? क्या मछलियाँ रंग पहचानती हैं? रंग उत्पन्न कैसे होता है? क्या यह कुत्ता तुम्हें गेरु में देख पाता है? कौन-सा रंग देखता है यह? यह क्षैतिज रूप में देखता है या लम्ब रूप में? तुम जो सोचते हो क्षैतिज या लम्बवत्, वही अन्तिम नहीं

है। अपने प्रत्यक्ष ज्ञान की क्षमता से मैं जो देखता हूँ, वही अन्तिम नहीं है, क्योंकि मैं जो देखता-समझता हूँ, कुत्ता वह नहीं देखता और समझता, गाय भी नहीं, मेंढक या साँप भी नहीं। पुस्तकों में यह सब लिखा है। मेरे लिए यह सब कहना जरूरी नहीं है। वैज्ञानिकों ने तो इसे स्पष्ट कर दिया है।

रंग और रूप के सिद्धान्त पर अनेक वैज्ञानिकों ने काम किया है। मैं तुम्हें एक रूप में देखता हूँ, तुम मुझे एक रूप में देखते हो, पर क्या हम वस्तुतः ऐसे हैं? तुम कहते हो वह वर्गाकार नहीं, गोल है। बड़ा कठिन है। तुम कहते हो स्वामी सत्यानन्द गेन्द के समान गोल-मटोल हैं, मुझे लगता है यह आदमी झूठ बोल रहा है। शंकराचार्य जी कहते हैं–यह संसार नहीं है। लेकिन उनका क्या मतलब है, मैं तो इसे देख रहा हूँ! क्या शंकराचार्य जी मिथ्या बोल रहे हैं? क्या वेद झूठ कह रहे हैं? उपनिषद् भी विचित्र बातें कह रहे हैं। ये कहते हैं, तीनों कालों में यह संसार अस्तित्वहीन है, पर मैं तो देख रहा हूँ। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान सापेक्ष है, अनुभव सापेक्ष है, निष्कर्ष सापेक्ष है। ये सभी अन्तिम नहीं हैं। परमार्थ में, अंतिम अर्थ में, कुछ भी नहीं है–

न निरोधो न चोत्पत्तिः, न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुः न वै मुक्तः, इत्येषा परमार्थता॥

न मेरी मृत्यु है न ही जन्म, न तो मैं बद्ध हूँ न ही मुक्त, न साधक हूँ न मुमुक्षु। यही अंतिम सत्य है।

समाधि किसे कहते हैं?

हमारी वैदिक परम्परा में, सनातन धर्म में भक्त जिसे भाव-समाधि कहते हैं, कर्मयोग में यह सहज-समाधि है, राजयोग इसे निर्विकल्प-समाधि कहता है, हठयोग में यह जड़-समाधि है, ज्ञान योग में यह जीवन-मुक्ति या तुरीयावस्था है। ये सब मन की एक विशेष अवस्था के भिन्न-भिन्न नाम हैं। कबीरदास कहते हैं, 'साधो सहज समाधि भली'–सहज समाधि श्रेष्ठ है। 'आँख न मून्दूँ, कान न रूँधूँ, तनिक कष्ट नहीं धारौं'–मैं आँखें बन्द नहीं करता, मैं नाद योग की भी साधना नहीं करता, कोई समस्या नहीं। वही सहज समाधि है। समाधि वह अवस्था है जिसमें प्रकृति का अनुभव नहीं रहता। प्रकृति से परे अवस्था एक ऐसी परिष्कृत अवस्था है, जहाँ प्रकृति के सारे तत्त्व दूर हो जाते हैं। प्रकृति क्या है–

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ 7.4 ॥

भूमि, आप, अनल, वायु, खं, मन, बुद्धि और अहंकार–यह अष्टधा प्रकृति है। निम्न प्रकृति है। गीता में कहा गया है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 7.5 ॥

अष्टधा प्रकृति के अतिरिक्त जो भी है, वह परा प्रकृति है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार राधा परा प्रकृति हैं तथा कृष्ण की आठ पटरानियाँ अपरा प्रकृति हैं। यह उदाहरणस्वरूप मैंने बतलाया। उन सबसे रहित जो अनुभूति है, वह समाधि है। यदि माण्डूक्य उपनिषद् पढ़ोगे, तो वहाँ चार चरणों की चर्चा है–वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय। सुषुप्ति अवस्था में हम कहते हैं–

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्रज्ञस्तृतीयः पादः।

वह सुषुप्ति के विषय में कहता है, जो स्वप्नरहित होता है। तत्पश्चात् वह तुरीयावस्था में जाता है।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणम् अचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपञ्चोशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।

यह समाधि की परिभाषा है, जहाँ प्रकृति का लेशमात्र भी नहीं रहता। तुम प्रकृति के परे चले गये हो। तुमने प्रकृति का अतिक्रमण कर लिया है।

– 22 अगस्त 2004

ॐ

अध्याय 8

श्रमिक जाति

शूद्र जाति का मतलब होता है श्रमिक वर्ग। इनमें बहुत दम होता है और रोगों से लड़ने की क्षमता भी बहुत होती है। ये लोग बुद्धिजीवी नहीं होते। इनकी विशेषता है भावना, संवेदना। संगीत और नृत्य इन लोगों की मुख्य अभिव्यक्ति है। जैसे साहित्य ब्राह्मणों का और व्यापार वैश्यों का संस्कार होता है, वैसे ही शूद्र जाति के संस्कार होते हैं, संगीत और नृत्य। ये लोग रातभर नाच सकते हैं।

आज सारी दुनिया में संगीत और नृत्य जो इतनी जोर से आया है, वह इसलिए आया है कि इन लोगों को हमारे समाज ने ऊँचा उठा दिया है। अभी तक तो इनको सबसे नीची जात कहकर दबाया जाता था, अब धीरे-धीरे इनको प्रोत्साहन मिला है और हमारे समाज के बड़े लोगों ने इनको मान्यता और सहारा दिया है। संगीत और नृत्य इस समय भारत में सबसे अधिक प्रबल संस्कार हैं। इनकी बच्चियाँ तीन-तीन घण्टे गाती हैं, रातभर गा सकती हैं। उनमें बहुत दम होता है और जहाँ तक नाचने का सवाल है, वे दो घण्टे तो क्या रातभर नाच सकती हैं। यहाँ गाँव में जितने कार्यक्रम होते हैं, रात को ही होते हैं।

इस जाति की तीसरी विशेषता है कि कम-से-कम भोजन में ये अधिक-से-अधिक सत्त्व खींचते हैं। आप लोग नहीं खींच सकते। आप लोगों को घी भी चाहिए, छेना भी चाहिए, फल भी चाहिए और फल को पचाने के लिए सब्जी चाहिए, सब्जी को पचाने के लिए दूध चाहिए और दूध को पचाने के लिए इलायची चाहिए! तब जाकर आप लोगों का जमता है। इन लोगों को उस सबकी जरूरत नहीं है। भात, प्याज और नमक—तीन चीजें काफी हैं। यहाँ तो

हम इन बच्चों को बराबर ही खिलाते हैं। इनको भात और दाल पसंद है, बाकी चीजें, जैसे, खीर, कढ़ी, दही वगैरह, जिनको आप लोग बहुत पौष्टिक बोलते हैं, वे इन लोगों को बिल्कुल जमती ही नहीं हैं। इन बच्चों को खिलाना हमको सस्ता पड़ता है, आप लोगों को खिलाना महँगा पड़ता है। अगर आप लोगों के बच्चों को खिलाना पड़े, तो छेने की मिठाई बनानी पड़ेगी। इन लोगों के लिए कुछ नहीं करना पड़ता और जो मिलता है उसी में ये लोग मस्त रहते हैं।

जहाँ तक बीमारी का सवाल है, इन लोगों में बीमारों की संख्या कम है, खर्च भी कम है। आप लोगों की तरफ से डॉक्टरों पर खर्च ज्यादा होता है, बीमारों की संख्या भी ज्यादा है। और आप लोगों की बीमारी ऐसी होती है कि डॉक्टर की समझ के भी बाहर होती है। जैसे, घुटनों में कैंसर, कुछ समझ में ही नहीं आता। इन लोगों की सबसे बड़ी जानलेवा बीमारी है, टी.बी., क्योंकि ये शराब पीते हैं। और कोई बीमारी नहीं है। हम लोग जब आश्रम में शंखप्रक्षालन कराते हैं, तो पानी उबाल कर रखते हैं। एक दिन हम सवेरे घूमने जा रहे थे, तो बगल के गाँव का एक आदमी, जो रायपुर आश्रम से योग सीखकर आया था, तालाब में खड़ा दिखाई दिया। हमने पूछा, 'क्या कर रहे हो?' उसने कहा, 'शंखप्रक्षालन कर रहे हैं!' हमने कहा, 'इस पानी से, जिसमें सब शौच-पेशाब करते रहते हैं, गाय-भैंस भी नहाती हैं।' उसने कहा, 'हाँ स्वामीजी, आराम से पानी मिल जाता है!'

इन लोगों का खान-पान और रहन-सहन बहुत सादा है। प्राकृतिक संसाधनों की जो बरबादी हो रही है, वह तो हम ही लोग कर रहे हैं। ये लोग नहीं करते हैं। हमारी सभ्यता में जो आज सबसे बड़ा दुर्गुण है, वह यह कि प्राकृतिक स्रोतों का बहुत दोहन हो रहा है। अगर हमारे समाज में इस जाति का वर्चस्व बना रहा, तो पचीस-तीस साल में भारत की स्थिति बेहतर होगी। इनके अंदर योग्यता बहुत है। ये जो छोटी बच्चियाँ हैं, छः-सात किलोमीटर से आती हैं और रात को सात-आठ बजे सब अकेले वापस जाती हैं। सवेरे जब रामायण या गीता होती है, तब पाँच बचे पहुँच जाती हैं!

हमारे प्राचीन शास्त्रों में कहा गया है कि समाज का जो सबसे साधारण वर्ग है, समाज उसी पर टिका हुआ है। आपका पूरा शरीर किस चीज पर टिका हुआ है? पैरों पर। *पद्भ्यां शूद्रो अजायत*–पुरुषसूक्त में यह मंत्र है। शूद्र तो पैर से निकला। अब तुम बोल सकते हो कि बहुत गन्दा रहता है। मगर वास्तव में देखा जाए तो सारा शरीर पैरों पर ही खड़ा है। वह अगर टूट

जाए, तो आदमी लंगड़ा हो जाता है। हम तो जात-पात कभी मानते आए ही नहीं हैं। किताबें बहुत पढ़ी हैं, मनुस्मृति पूरी पढ़ी है। लेकिन हमको यह सब समझ में नहीं आता है।

यहाँ बच्चों की कम्प्यूटर कक्षा भी बहुत अच्छी चल रही है। ये कन्याएँ सीख भी रही हैं, सिखाती भी हैं। जो आगे पहुँच चुकी हैं, वे छोटों को सिखाती हैं। हम इनको सब सिखला रहे हैं, ग्राफिक्स, फिल्में बनाना वगैरह। इसमें बहुत से लोगों ने योगदान भी दिया है। पहले जयपुर के एक आदमी के योगदान से दो कम्प्यूटर आए थे। उसके बाद फिर छः कम्प्यूटर दिल्ली से आए हैं और अभी बंगलौर से पन्द्रह-बीस आने वाले हैं। तो अब हम लोग करीब चालीस-पचास लड़कियों को आराम के साथ दो शिफ्ट में ले सकते हैं। यह कक्षा केवल दो-तीन महीने पुरानी है। दो-तीन महीने में ही ये कम्प्यूटर पर ग्राफिक्स, वेबसाइट और इंटरनेट, सब कर रही हैं।

हम सोचते हैं कि योग्यता के आधार पर व्यक्ति को मदद देनी चाहिए। अगर ये सीख जाती हैं, तो बाद में देखेंगे कि किस तरह से इनको सर्टिफिकेट दिया जा सकता है। हमारा विचार यह तो नहीं है कि ये कम्प्यूटर सीख कर नौकरी करें, हिन्दुस्तान में अभी इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं देखते हैं। भारतीय परिवेश में लड़कियों का जो स्थान है, वह घर ही माना जाएगा। कुछ लड़कियाँ हैं जो शहरों में पढ़ी-लिखी हैं, पर उनकी संख्या बहुत ही कम है।

भारत में जो लड़कियाँ पढ़ती, पढ़ाती या नौकरी करती हैं, उनकी संख्या बहुत कम है। अगले पचास सालों तक हिन्दुस्तान में आम स्त्री का गंतव्य है, घर। उसके बाद कोई परिवर्तन हो तो हो। आखिर प्रधान-मंत्री की पत्नी भी तो घर देखती है। तो ये लड़कियाँ कम्प्यूटर पढ़कर क्या करेंगी? घर में कुछ तो कर नहीं सकती हैं। किन्तु आदमी जो विद्या सीखता है, उसका सम्बन्ध उसके मस्तिष्क के विकास से होता है। एक ग्वाला या किसान अगर विकसित दिमाग वाला हुआ, तो बहुत कुछ कर सकता है। इनको प्रशिक्षित करने का इतना ही प्रयोजन है। इनकी नियति शिक्षिका वगैरह बनने की नहीं है। इन लोगों के घर आप जाएँगे, तो सोने की जगह नहीं है। अगर आप इनके माँ-बाप को बोल दें कि इनको यहीं आश्रम में सोने दीजिए, तो वे तुरंत राजी हो जाएँगे।

ये बच्चे मेहनत बहुत करते हैं। सबेरे उठते हैं, पहले तो सड़क से लकड़ी, पत्ता वगैरह चुन लेते हैं। फिर स्कूल जाते हैं। अभी हाल में धान का रोपा हुआ था, तो पूरे तीन दिन लड़कियाँ खेतों में रोपे में थीं। दिनभर रोपा करना पड़ता

है। किसान के यहाँ तो यह सब करना ही पड़ता है। सरकार ने जो कानून बनाया है कि कम उम्र के बच्चों को काम नहीं करना चाहिए, वह शहरों में चल सकता है, गाँव में नहीं। यहाँ के सब छोटे बच्चे रोपा में जाते हैं और जब धान बड़ा हो जाता है, तो बीच में जो मोथा होता है, उसको ये लोग निकालते हैं। भारत में बाल-श्रमिक का कानून बिल्कुल तर्कसंगत नहीं है। यह कानून पाश्चात्य देशों के दबाव में बनाया गया है। यह भारत के मुताबिक है ही नहीं। ये लड़कियाँ अगर रोपा नहीं निकालेंगी, मजदूर रोपा निकालेगा, तो पचास रुपया तो उसको देना पड़ेगा। तो क्या खाएँगे घर के लोग, कहाँ से इनको रोटी मिलेगी? सब भूखे मरेंगे।

एक चीज और देखने की यह है कि ये लोग अंग्रेजी बहुत पसंद करते हैं। ये सब लड़कियाँ रोज यहाँ अंग्रेजी पढ़ने आती हैं। इनको सिखलाने वाले भी अंग्रेज हैं, वरना हम लोग तो हिंग्लिश ही सिखलायेंगे! इन लोगों को आश्रम में पढ़ी-लिखी लड़कियों का जो संग मिला है, वह इनके लिए बहुत अच्छा अनुभव है। गाँवों में तो आश्रम बहुत जगह हैं। परन्तु वहाँ साधु लोग दाढ़ी वगैरह रखते हैं और स्थानीय लोगों से मिलते-जुलते नहीं हैं। यहाँ उनको पढ़ा-लिखा समाज मिला है और अब उनको समझ में आता है कि दुनिया में जर्मनी होता है, फ्रांस होता है, ऑस्ट्रेलिया होता है। उनको एक प्रकार से अपनी दुनिया की जानकारी मिलती है, जो ज्यादातर उन्हें नहीं मिल पाती है। अब इस काम को हम लोग बढ़ायेंगे। यह बढ़ेगा। हमारे भगवान ने हमको यह सुविधा दी है कि इस काम को बढ़ाया जा सके।

जिस जमीन पर आप लोग बैठे हैं, यह गाँव के लोगों की जमीन है। यह मोल ली हुई नहीं है। यहाँ सामने एक गाँव है, नवाडीह। वहाँ के चार भाइयों ने जमीन दी है। वे तो कह रहे थे कि आप पूरी ले लीजिए। हमने कहा कि इतना हम सम्भाल नहीं सकेंगे। हमने डेढ़-दो एकड़ ले ली। वहाँ आयुर्वेदिक बागान शुरू कर दिया है। दो-ढाई सौ पौधे लगाए हैं, उनकी जानकारी आगे चलकर गाँव वालों को दे देंगे। इसका मार्केट अच्छा है।

द्रविड़ जाति

आन्ध्र, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और महाराष्ट्र—दक्षिण भारत में ये पाँच द्रविड़ जातियों का क्षेत्र है। तीस साल पहले ये आर्थिक दृष्टि से बहुत कमजोर थे। हम दक्षिण भारत पहली बार सन् 1950 में गए थे। हाल में उन्होंने बहुत

अच्छी तरक्की कर ली है, शिक्षा में और बाकी सभी क्षेत्रों में भी। उनकी लड़कियों को संगीत, नृत्य, पूजा और खाना बनाना, ये चार चीजें जरूर सिखाई जाती हैं। वहाँ की हर लड़की को नाचना, गाना, शिवजी, रामजी, कृष्णजी या जो भी इष्ट हों, उनकी पूजा करना और इडली, साम्भर, डोसा वगैरह बनाना आना चाहिए। वहाँ हिन्दू भी हैं, ईसाई भी और मुसलमान भी, पर वे सब अपने आप को पहले केरलवासी मानते हैं। धर्म का जो फर्क तुमको यहाँ दिखता है, वहाँ उन लोगों में नहीं दिखता, क्योंकि जितने भी लोग बाहर से आए, चाहे मुसलमान हों या ईसाई, वे सब पहले केरल तट में आए हैं। ईसा मसीह के क्रूसारोहण के बाद उनके अनुयायियों को तो भागना पड़ा। नहीं तो उनका वहाँ उत्पीड़न होता। केरल देश में यहूदी लोग बहुत प्राचीन काल से रह रहे हैं। वहाँ यहूदियों का बहुत पुराना सिनागॉग है। और ईसाइयों का भी सबसे पुराना चर्च केरल में है। वैटिकन सबसे पुराना नहीं है, वह सबसे बड़ा है, पर सबसे पुराना जो सिरियन चर्च है, वह है केरल में।

केरल का इतिहास दो हजार साल पहले का है और उससे पुराना इतिहास है महाराजा बलि का। केरल के लोग महाराजा बलि को अपना राजा मानते हैं। आज मलयाली लोगों का बहुत बड़ा त्योहार है, ओणम। कहते हैं कि आज के दिन महाराजा बलि प्रजा से मिलने के लिए धरती पर आते थे। यह त्योहार नौ दिनों तक चला, आज इसका अंतिम दिन है। वे लोग केले के पत्ते में खाना खाते हैं और इनके जितने भी राजदूत विदेश जाते हैं, वे केले के पत्तों का पूरा बंडल ले जाते हैं वहाँ। हम इनके यहाँ खाते थे, तो हमको केले के पत्ते पर खाना खिलाते थे। कॉफी और मसाला वही दक्षिण भारत वाला होता था। ये बहुत मितव्ययी होते हैं, जो कि बहुत अच्छा गुण है। पर्यावरण, आर्थिक या अन्य किसी भी दृष्टिकोण से प्राकृतिक संसाधनों का जितना कम उपयोग करो, उतना फायदेमन्द है। पाश्चात्य देशों ने इस प्राकृतिक संपदा का दुरुपयोग करके पर्यावरण का नाश किया है, जिससे पर्यावरण गड़बड़ा गया है।

ये दक्षिण भारतीय लोग रहने वाले वहाँ के नहीं हैं। इनका इतिहास पाँच-सात हजार साल पहले सिन्ध में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो का था, जो अब पाकिस्तान में है। वहाँ से ये लोग स्थानान्तरित होकर दक्षिण भारत गए थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में जो मुहरें और अन्य चीजें मिली हैं, वे इस तथ्य को उजागर करती हैं। उनकी सभ्यता का अध्ययन करना चाहिए। संन्यासियों का सबसे पहला मठ श्रृंगेरी, कर्नाटक में बना था। काँची में भी मठ

है, और वह जगह अच्छी है। वहाँ आश्रम में विश्वविद्यालय है और अपना बहुत बड़ा आयुर्वेदिक महाविद्यालय तथा पुस्तकालय भी है।

कांजीवरम का जो रेशम उद्योग है, उसमें काम करने वाले सब मुसलमान हैं। वे सब काँची जगत्‌गुरु के चेले हैं। यहाँ जितने मुसलमान हैं, वे सब भारतवंशी हैं। अब आप हिन्दुस्तान में रहते हैं, तो साड़ी पहनते हैं। अगर विदेश चले जायेंगे तो जीन्स पहनेंगे, पर उससे आप बदल तो नहीं जाते हैं। धर्म आदमी के विश्वास की चीज है और हर एक आदमी को अपने धर्म को मानने का पूरा हक है। एक देश में दो धर्म वाले लोग नहीं रह सकते, यह हमारे देश की संस्कृति है ही नहीं। हमारे देश की संस्कृति बहुत प्राचीन काल से अतिथि-सत्कार की रही है। यहाँ पार्थियन आए, बैक्ट्रिअन आए, कुशान आए। आखिर सम्राट् कनिष्क कौन था?

अतः ये जो बातें हैं कि हम लोगों के यहाँ एक ही धर्म होना चाहिए, एक ही भाषा होनी चाहिए और एक ही प्रकार का कपड़ा पहनना चाहिए, ये सब फालतू बातें हैं। एक बगीचे में खाली आम ही आम हो, तो कैसा लगता है? आम भी हो, अमरूद भी हो, आँवला भी हो, तब वह अच्छा बगीचा लगता है। हिन्दुस्तान की संस्कृति में अनेक जातियों का एक साथ रहना और अपने ढंग से भगवान को पूजना स्वीकार्य है। आखिर हमारे यहाँ भी तो अलग-अलग भगवान हैं न? हनुमानजी को पूजते हैं, देवीजी के यहाँ पूजा होती है तो बकरा काटा जाता है, वैष्णवों के यहाँ कुम्हड़ा काटते हैं। इसीलिए हम उन लोगों से कभी सहमत नहीं होते जो यह कहते हैं कि देश में एक ही धर्म होना चाहिए।

योग के बारे में कुछ मार्गदर्शन देने की कृपा करें।

मैंने अब मार्गदर्शन देना बंद कर दिया है। जैसे अफसर लोग साठ साल की उम्र में सेवानिवृत्त होते हैं, वैसे ही सन् 1984 से मैं भी सेवानिवृत्त हो गया और दुबारा वह काम हाथ में नहीं लिया। अभी मुंगेर में स्वामी निरंजन हैं, हो सकता है वे भी कुछ समय बाद सेवानिवृत्त हो जाएँ, क्योंकि अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों का कुछ-न-कुछ लक्ष्य तो होना चाहिए। आदमी को कहीं पर तो वाक्य समाप्त करना पड़ता है, कहीं पर तो अध्याय समाप्त करना पड़ता है और अंत में जाकर किताब भी समाप्त करनी पड़ती है। भाग 1, भाग 2, भाग 3, भाग 4 लिखते जाने का तो कोई मतलब नहीं। प्राकृतिक कानून यही है,

किन्तु मनुष्य ने पिछले कुछ सालों में अपनी सभ्यता बदल दी है। भोगप्रधान संस्कृति की जो लहर आई है, उसमें पैदा होने से मरने के दिन तक, हर चीज में आदमी हाथ-पैर मारता रहता है। यह नहीं कि बचपन थोड़ा खेल-कूद में बिताओ, जवानी थोड़ी मौज-मस्ती और रुपया-पैसा कमाने में बिताओ, फिर उम्र जब ज्यादा बढ़ जाए तो मंदिरों और साधु लोगों का चक्कर लगाओ। वह सब अब खत्म हो गया। अब तो आखिरी दिन तक, जब तक हृदयाघात न हो, तब तक कमाते रहो और जोड़ते रहो। और बेटे लोग फूँकते रहें। कमाओ तुम और हीरो-होण्डा वह चलाए!

जीवन में एक योजना होनी चाहिए। हर चीज में योजना जरूरी है। और जीवन का मार्गदर्शन आदमी को अपने अन्दर से मिलना चाहिए। जब भगवान बुद्ध शरीर छोड़ रहे थे, तब उनके शिष्य रो रहे थे। उन्होंने पूछा, 'क्यों रोते हो।' शिष्यों ने कहा, 'भगवान! तुम तो जा रहे हो, अब हम क्या करेंगे? तुम जब जा ही रहे हो तो थोड़ा बतला कर जाओ कि हम क्या करें।' बुद्ध बोले, 'अस्सी साल तक जो बोल रहा था, नहीं सुना क्या? अब अंतिम समय का उपदेश क्या काम आयेगा?' 'महाराज कुछ तो बोलो', उन्होंने कहा। तब बुद्ध ने कहा, 'आत्मदीपो भव।'

यह उनका मंत्र था—खुद प्रकाश बनो। और आदमी जब तक संयम के साथ विचार नहीं करता है, वह अपना प्रकाश नहीं बन सकता। आदमी को जीने के लिए कुछ चाहिए, यह तो सच्ची बात है। मकान भी चाहिए, कपड़ा भी चाहिए और खर्च के लिए रुपया-पैसा भी चाहिए और कुछ मन की भावनाओं को प्रसन्न करने के लिए परिवार, बेटा-बेटी, भाई-बहन भी चाहिए। ये भावनात्मक आवश्यकताएँ हैं, लेकिन समस्या यह है कि तुमने अपनी आध्यात्मिक आवश्यकताओं के बारे में कभी नहीं सोचा है। इसका भी समय आता है।

लड़के-लड़कियों को पढ़ाओ अच्छी तरह से, अच्छे संस्कार दो। छुट्टी के समय किसी आश्रम में चले जाओ और वहाँ पढ़ाई-लिखाई छोड़कर थोड़ा मौज-मस्ती करो। मुम्बई के आस-पास बहुत आश्रम हैं, पूना में भी बहुत आश्रम हैं। हिन्दुस्तान में तो आश्रम सब जगह हैं और सब जगह एक समान हैं। उन्नीस-बीस का भी फर्क नहीं है। बच्चे आते हैं, उनके माता-पिता आते हैं। कोई एक दिन, कोई दो दिन, कोई दस दिन रहता है। कोई पैसे वाले, कोई कम पैसे वाले, कोई बिन पैसे वाले होते हैं, सब रहते हैं। पैसे वाले थोड़ा ज्यादा

देकर जाते हैं, कम पैसे वाले थोड़ा कम देकर जाते हैं और बिन पैसे वाले फोकट में खाकर जाते हैं। आश्रम तो यहाँ प्राचीन काल से आज तक ऐसे ही चलता आ रहा है। कहीं पर भी चले जाओ, सब जगह एक जैसी बात सिखलाते हैं। कोई गीता सिखलाता है, कोई उपनिषद्; कहीं कीर्तन होता है, कहीं पूजा होती है, कहीं भजन होता है, कहीं दान-धर्म होता है, कहीं क्रिया योग होता है, कहीं आसन होता है, कहीं प्राणायाम सिखाते हैं। चीज अलग-अलग सिखाते हैं, अब जिसको जहाँ अच्छा लगे जाना। एक-आध महीना छुट्टी करके आश्रम आकर रहो।

लड़कियों या लड़कों को पढ़ने में केवल डिग्री लेने तक ही नहीं सोचना चाहिए, क्योंकि डिग्री आज बेकार है। उनको पहले कोई योग्यता हासिल करानी चाहिए। जैसे ही कॉलेज पास किया, उनको कृषि विज्ञान में डाल दिया या कम्प्यूटर में डाल दिया या किसी और व्यावहारिक क्षेत्र में डाल दिया, और जब तक वे आगे पढ़ते हैं तब तक उनको एक योग्यता प्राप्त हो जाती है। मैं यहाँ डिग्री और योग्यता में फर्क बता रहा हूँ। योग्यता अर्जित करने के बाद वह बैंक या और कहीं पर नौकरी करेगी, तो बीस-पचीस हजार रुपये मिल जाएँगे, अपना कमाएगी।

उसके बाद घर जोड़ना होगा, तो घर जोड़ेगी और अगर घर नहीं जोड़ना हो, किसी आश्रम में पटरी बैठ जाए, तो छः महीना नौकरी करे, छः महीना आश्रम आ जाए। और डॉक्टर हो तो सबसे बढ़िया! ऐसे तो आश्रम में सब खप जाते हैं, पर आश्रम में दो आदमियों की बहुत जरूरत है। पहला डॉक्टर, जहाँ भी आश्रम हैं वहाँ डॉक्टरों की बहुत इज्जत होती है, क्योंकि आस-पास के लोगों की दवाई मुफ्त दे देते हैं, और दूसरा, आर्किटेक्ट, मकान बनाने वाला, क्योंकि भारत भर में जितने आश्रम हैं, ये सब विश्वकर्मा के बेटे हैं। सब जगह आश्रम मकान या मंदिर बनाते रहते हैं। यहीं देख लो, चौदह साल से खाली मकान बनाना ही तो चल रहा है।

यहाँ जर्मनी से आई एक लड़की सब कन्याओं को कम्प्यूटर सिखाती है, हमको बाजार से किसी को नहीं बुलाना पड़ता है। अतः जिसका इस तरफ रुझान हो, वह अपना आश्रम से सम्बन्ध रखे, कोई जरूरी नहीं है घर जोड़ना। हिन्दुस्तान की आबादी तो एक अरब है। अब उसमें क्यों ज्यादा जोड़ना? शादी नहीं करना भी देश के हित में है। शादी नहीं करना और बाल-बच्चे पैदा नहीं करना भी अब देश की बड़ी सेवा है और सचमुच में देखा जाए, अगर

हिन्दुस्तान के एक करोड़ संन्यासी आज फैसला कर लें कि हम भी शादी करेंगे तो राम-राम! सोने को जगह नहीं मिलेगी! एक करोड़ से तीन साल में फिर एक करोड़ और हो जाएँगे, माने जल्द ही चीन के साथ स्पर्द्धा कर लेगा! इसलिए शादी नहीं करना, यह बहुत बड़ा गुण है, बहुत बड़ी मदद है हिन्दुस्तान को। हिन्दुस्तान की आबादी बहुत हो गई है। जितना धरती झेल सके, उससे ज्यादा। बच्चों को यह बतलाना चाहिए। अब इसके बावजूद भी अगर घर जोड़ना चाहें, तो जोड़ें। आज के जमाने में लड़का या लड़की क्या करती है, उसमें माता-पिता का कोई योगदान नहीं होना चाहिए। अब माता-पिता चाहें कि बेटा बड़ा नाम करेगा, फिर इंग्लैण्ड जाएगा, उसके बाद शादी करेगा, फिर उसका बेटा होगा, मैं अपने पोते का मुँह देखूँ; आज का युग इसके अनुरूप नहीं है। आज लड़के-लड़कियों को आजादी के साथ रहना चाहिए। एक उम्र तक माता-पिता उनकी देखभाल करें और उसके बाद माता-पिता को अपना आध्यात्मिक जीवन देखना है। वे किसी भी आश्रम में जा सकते हैं।

माउण्ट आबू में सिंधियों की बहुत बड़ी संस्था है, जिसे प्रजापिता ब्रह्मकुमारी बोलते हैं। उसके संस्थापक थे दादा लेखराज, जो हैदराबाद, सिंध से थे और हमारे गुरुजी के समकालीन थे। वे बचपन में वेदान्ती थे और ॐ मण्डली चलाते थे। देश के विभाजन के बाद वे हिन्दुस्तान आए और यहीं रह गए। उनकी पत्नी थी सरस्वती। हमने वहीं माउण्ट आबू में उनके दर्शन किए थे। वहाँ प्राय: सिंधी लोग रहते हैं, सिंधी लड़कियाँ बहुत बड़ी संख्या में आती हैं। बहुत अच्छी संस्था है। कहने का मतलब यह है कि मैं इन संस्थाओं में फर्क नहीं देखता। जितनी सरकार की समितियाँ और विभाग नहीं हैं, उससे ज्यादा हमारे यहाँ संस्थाएँ और आंदोलन हैं। परन्तु हम राजनीति में नहीं रहते और न ही राजनीति को प्रभावित करते हैं। ऐसी बहुत-सी संस्थाएँ हैं–रामकृष्ण मिशन, नानक पंथी, दादू पंथी, गोरख पंथी वगैरह। वहाँ बच्चों और बड़ों, दोनों को जाना चाहिए। सबका सब जगह मन नहीं लगता है, मगर कहीं न कहीं मन लगना चाहिए। वहाँ किसी भी रूप में जा सकते हैं, चाहे रहने के लिए, चाहे मेहमान के रूप में, चाहे सेवक या मददगार के रूप में। हमारे देवघर में ही बहुत संस्थाएँ हैं।

ऐसी संस्थाओं में लड़के-लड़कियों को जरूर जाना चाहिए और उनमें से कोई घर बसाना चाहे, तो फिर कोई रोक-टोक नहीं है। पर एक चीज तो हमेशा हमारे दिमाग में आती है कि हर बच्चे को जबरदस्ती घर बसाने के लिए क्यों

कहा जाए। यह एक बीमारी है। कैसी बीमारी है, उसका एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। माँ बोलती है, नहा लिया क्या, दाँत ब्रश कर लिया न, ठीक से कपड़ा पहनना। अरे! पचीस साल से वही बात रोज सबेरे पूछती आ रही है। उसको यह समझ में नहीं आता है कि पचीस साल से मैं क्या बोल रही हूँ! उसकी समस्या इतनी बढ़ गई है कि मनोवैज्ञानिक ग्रंथि बन गई है। बच्चों को कम-से-कम अपने ढंग से सोचने तो दो कि ब्रश करना है कि नहीं। नहीं करना तो नहीं करना, बात खतम।

आधुनिक मनोविज्ञान में कहते हैं कि माता-पिता सनकी हो गए हैं। वे बच्चों के बारे में बहुत ज्यादा चिन्तित रहते हैं, चौबीसों घण्टे उन्हीं के बारे में सोचते हैं। उनके दिमाग में उनके बच्चे ऐसे घुसे रहते हैं जैसे भूत घुस गया हो! सनक कहते हैं इसको। यह होना गलत है, इससे नुकसान अपने को होता है। इस मानसिक बीमारी की वजह से उनके मस्तिष्क की रासायनिक प्रक्रिया प्रभावित हो जाती है। जबकि सच्ची बात यह है कि बच्चे का एक तो शरीर है और एक उसके अन्दर में रहने वाला है। जैसे यह मकान और मैं अलग-अलग हैं, एक नहीं हैं। यह मकान जिसने भी बनाया हो, पर मेरे को उसने नहीं बनाया है। मैं यहाँ बसने के लिए आया हूँ, चाहे मालिक के रूप में या किरायेदार के रूप में। उसी तरह से तुम्हारे अंदर में जो आत्मा है, वह तुम्हारे माता-पिता की नहीं है। आत्मा स्वतंत्र होती है, वह तो शरीर में एक किरायेदार है। हमारा यह शरीर हमारी माँ के उत्पादन कारखाने में बना। डिज़ाइन बाप का है। विज्ञान भी यही कहता है। माँ खेत है, बाप बीज है। आम का बीज जमीन में डालते हो, जमीन आम को रखती है, उसको बढ़ाती है। पर जमीन आम नहीं है, उसका कार्य केवल आम को बढ़ाना है।

बच्चे में जो आत्मा आती है, वह अपने कर्म लेकर आती है। अब क्यों आती है, कैसे आती है, वह तो बहुत बड़ा विषय है। उसके बारे में अभी बताने की जरूरत नहीं है। लेकिन इतना जरूर है कि तुम्हारा बच्चा, हमारा बच्चा या किसी का भी बच्चा उनका नहीं है। हाँ, सामाजिक दृष्टिकोण से हो सकता है, पर आध्यात्मिक दृष्टि से बच्चे तुम्हारे नहीं हैं। खलील जिब्रान की 'प्रोफेट' किताब में एक छोटा-सा अध्याय है, उसमें यह लिखा है–'बच्चे तुम्हारी अमानत नहीं हैं, क्योंकि वे तुमसे अलग हैं। किसी ने यह मकान बना दिया और मैं इसमें रह रहा हूँ, पर इससे मैं मकान बनाने वाले की अमानत थोड़े न बन गया।'

बच्चों का तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है, तुमने पैदा किया बस! यह दृष्टिकोण जब तक नहीं आएगा, तब तक गीता के अनुसार तुम जीवन यापन नहीं कर सकते। गीता यही कहती है—सम्बन्धों की सचाई को जानो, कर्मों की सचाई को जानो। हम लोग कर्मों की सचाई को नहीं जानते, सम्बन्धों की सचाई को नहीं जानते।

लड़कियों को मेरी यही सलाह है कि खूब अच्छी तरह से पढ़ो और फिर पढ़ने के बाद नौकरी-चाकरी करो। अपना जीवन खुद सम्भालो। घर-बार जोड़ना है तो घर-बार जोड़ो, आश्रम जाना है तो आश्रम जाओ। पर लड़की को क्रियावान्, बुद्धिमान् और धनवान् होना चाहिए। लड़की को धनवान् जरूर होना चाहिए, नहीं तो बहुत मुश्किल है। तुम जानते हो, हिन्दुस्तान में आश्रमों में लड़कियों को रखते नहीं हैं। बहुत मुश्किल है लड़कियों को। दो-चार बड़ी उम्र वालों को भले ही रख लें, पर लड़की को कोई नहीं रखता। लेकिन अगर धनवान् हो, तो स्वामी सत्संगी भी तुमको मना नहीं करेगी, धनवान् के सामने आश्रम झुकता है। लड़की को धनवान् होना जरूरी है और धनवान् बनने के लिए अच्छी पढ़ाई जरूरी है। किसी कम्पनी की सेक्रेटरी बन जाओ, अपना एक लाख रुपया मिल जाए, गाड़ी मिल जाए, इंग्लैण्ड-अमेरिका जाओ। धनवान् होना कोई कलंक की बात नहीं है, पर उस धन का उपयोग भोग में नहीं, अच्छे काम में करना है।

हमारी लड़की की जन्मपत्री में मंगल भारी है, उसके लिए क्या करना चाहिए?

मंगल कुछ नहीं है, यह सब दुकानदारी है। मैं अपने बारे में बताता हूँ। हमारी जन्म-पत्री देखकर ज्योतिषी ने कहा कि यह तो हमेशा बीमार, आवारा, कुलनाशी और धनहीन रहेगा। सब तो नकारात्मक ही कहा। हमारी कुण्डली में राहु, केतु और शनि, सब गुण्डे एक जगह बैठे हुए थे। मगर मेरे को बीमारी नाम की कोई चीज हुई ही नहीं। कब्ज पर मैंने किताब लिखी, पर मेरे को आज तक कब्ज नहीं हुई है। अब मेरी आवारागर्दी क्या है? नार्वे, अर्जेन्टीना, अलास्का, आयरलैण्ड, ल्हासा, बर्मा, अफगानिस्तान, लंका, सब जगह गया। इसको आवारागर्दी कहो तो बहुत अच्छा है, हम लोग इसको कहते हैं परिव्राजक। और कुलनाशी, शादी नहीं करेगा तो बेटा नहीं होगा, माने कुलनाशी होगा। मैं तो कम-से-कम लाखों लोग छोड़ जाऊँगा जिस दिन

मरूँगा। लाखों लोग रहेंगे गेरु कपड़े वाले, सब जातियों, धर्मों और देशों के। तो कुलनाश कैसे किया है मैंने? ये सब चीजें सच हैं या झूठ, यह तो कहना मुश्किल है, पर मनुष्य अपने जीवन में इन चीजों के मायने बदल सकता है। और हमने ऐसा किया। हमारे ज्योतिषी ने हमारे बारे में जो कहा था, वह सब सच था। अब धनहीन, हमने आज तक कहीं बैंक एकाउंट नहीं खोला, हमारी कहीं चेक-बुक नहीं है, हमारे नाम की कहीं जमीन-जायदाद नहीं है।

जैसे एक रसायन को दूसरे रसायन से मिलाने के बाद, दोनों के गुण-धर्म खत्म हो जाते हैं और तीसरे पदार्थ के गुण आ जाते हैं, उसी तरह से गुरु की शरण में जाने के बाद आदमी अपने भाग्य को बदल सकता है। गुरु की शरण में जाने का मतलब केवल माला लेना नहीं होता है। उसका मतलब होता है, गुरु मेरे मन, प्राण, जीवन, सब कुछ हैं। गुरु और शिष्य के आपसी आध्यात्मिक सम्बन्ध में गहराई होनी चाहिए। इस सम्बन्ध की गहराई, भाई और बहन, माता-पिता और संतान, पति और पत्नी, प्रेमी और प्रेमिका के सम्बन्ध की गहराई से भी अलग और आगे जाती है। गुरु भाग्य को बदल सकता है।

उदाहरण के लिए विवेकानन्द जी को देखिए। एक बंगाली लड़का, ब्रह्म समाज वाला, उसके घर में कितनी समस्याएँ थीं। पर वह देश का एक नायक बन गया और उसने पश्चिम में जाकर दरवाजा खोल दिया, रास्ता बना दिया। गुरु ने उसका भाग्य बदल दिया, वह नरेन्द्र नहीं रहा। दूसरा उदाहरण है ईसा मसीह। एक बढ़ई का बेटा, कितना दर्दनाक जीवन था उसका! पैदा हुआ तो उसको बचाने के लिए जोसेफ और मेरी उसे मिस्र ले गए। मिस्र से वह वापस इस्राइल नहीं गया, बल्कि भारत आया। हिन्दुस्तान में आकर उसने गुरुओं की शरण ली, इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। भविष्य पुराण में और लद्दाख में लामाओं के मठों में इसके लिखित उल्लेख हैं। शालीवाहन की, जो उस समय भारत का शासक था, ईसा मसीह से मुलाकात हुई है, यह अभिलिखित तथ्य है। गुरु का पद उसको यहाँ मिला। आज वह सारी दुनिया का बेताज बादशाह है! इसमें कोई दो मत नहीं।

गुरु और शिष्य का रिश्ता बहुत बड़ा रिश्ता होता है। पहले तो इस रिश्ते को जोड़ना बड़ा मुश्किल है और जुड़ गया तो इसको निभाना और भी मुश्किल है, क्योंकि गुरु तो शरीर में होता है। मतलब यह कि जैसे तुम खाते, सोते, हँसते, बोलते, टट्टी-पेशाब आदि करते हो, वैसे वह भी करता है। तो तुममें और गुरु में फर्क क्या है? इसलिए कभी-कभी गुरु के प्रति दृढ़ता कमजोर

हो जाती है। गुरु का दिव्य प्रकाश तो देखा जा नहीं सकता। लोग बोलने लगते हैं, 'वह तो हमारे ही जैसा है, क्या फर्क पड़ता है?' भगवान बुद्ध को भी लोगों ने यही कहा था, 'भगवन्! तुममें और हममें फर्क क्या है?' ऐसे में गुरु और शिष्य के बीच के सम्बन्ध की दृढ़ता बहुत मुश्किल है।

लेकिन गुरु क्या सोचता है, क्या करता है, तुमको क्या मालूम। तुम तो केवल यही देखते हो कि क्या पहनता है, क्या खाता है, क्या पीता है, क्या रखता है, कैसे सोता है, कैसे हँसता है, वगैरह। अन्दर की चीज तो कोई देख ही नहीं सकता, और अंदर की चीज को देखेगा कौन? एक शेक्सपीयर को दूसरा शेक्सपीयर ही समझ सकता है। तुम्हारे पास देखने की आँखें हों तब तो तुम देखोगे और समझोगे कि मेरे अंदर क्या है। गुरु और शिष्य के बीच संकट की घड़ी तब आती है, जब शिष्य अपने सम्बन्ध को दृढ़ नहीं कर पाया होता है। कई बार उनके सम्बन्धों में दरार आ जाती है। यह सम्बन्ध इतना आसान नहीं कि गुरु बना लिया, आश्रम में चले गए और मुक्ति हो गई। बीच में बहुत संकट आते हैं। जब पति-पत्नी या भाई-बहन के बीच मन-मुटाव हो जाता है, तब गुरु-चेला को तो मारो गोली, पता नहीं यह कहाँ से आया, वह कहाँ से आया, कहाँ की ईंट, कहाँ का रोड़ा!

ग्रामीण विकास

हमने यहाँ रिखिया में आने के बाद बड़ी मुश्किल से स्कूल की संस्कृति को पुनर्जीवित किया है। अब यह संस्कृति यहाँ बहुत अच्छी तरह आ गई है। यहाँ शत-प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं। और जाते ही नहीं, पढ़ाई में मन भी लगाते हैं। वे समझ गए हैं कि स्कूल जाना बहुत अच्छा है। अब तो यहाँ एक प्राईवेट स्कूल भी खुल गया है, जहाँ लोग पैसा देकर पढ़ाते हैं। तीस रुपये फीस लगती है। इसका मतलब है कि पढ़ने को ये लोग इतना जरूरी समझते हैं कि तीस रुपये महीना देने को तैयार हैं। और संख्या कम नहीं है। पाँच-छ: सौ बच्चे पढ़ने जाते हैं। यहाँ के दो-तीन बी.ए. पास लड़के हैं, उन्होंने मिलकर खोला है। और स्कूल के वातावरण को हम लोग किसी भी बहाने भंग नहीं होने देते हैं। कन्याओं को भोज वगैरह के लिए छुट्टी के दिन ही बुलाते हैं।

सामाजिक वातावरण तो यहाँ का बहुत अच्छा हो गया है, पर इसकी वजह से यहाँ के अधिकतर लोग अब दूसरी जगह जा रहे हैं। कोई राँची, कोई पटना, कोई धनबाद, कोई आसनसोल, तो कोई कलकत्ते जा रहा है, क्योंकि अब

पढ़-लिख गए हैं। गाँव में, खेती-बाड़ी में तो रह नहीं सकते। पता नहीं दस-बीस साल में बंजर न हो जाए यह जमीन। यहाँ पैसा जरूरी चीज नहीं है। गाँव के जो बड़े लोग होते हैं, पचास-पचपन की उम्र के लोग, इनको पैसों की उतनी जरूरत नहीं रहती है। पैसे की जरूरत है कम उम्र के लोगों को। पढ़ते ही, योग्य होते ही, यहाँ रोज़गार नहीं होने की वजह से ये लोग शहर चले जाते हैं। तो गाँव में रह जाते हैं बूढ़े और बुढ़िया। वे लोग फिर खेती के काम में मजदूरों को लगाते हैं। वे मजदूर दूसरे गाँव से आते हैं और फिर यहाँ जम जाते हैं। एकदम नए रंगरूट आते हैं, उनको दुबारा प्रशिक्षण देना पड़ता है।

गाँवों में लोग ऐसी खेती करें, जिससे कि इनको बाहर न जाना पड़े और पैसा यहीं मिलता रहे। तब गाँवों में पढ़े-लिखे लोग रहेंगे, सभ्य-संस्कृत लोग रहेंगे। और शहरों की तरफ पलायन नहीं होगा। उसके लिए सरकार पर निर्भर करेंगे, तो चातक का स्वाति की बूंद के लिए तड़पने जैसा हाल हो जाएगा। हमें नहीं लगता कि सरकार कुछ मदद कर सकती है, पिछले पचास-साठ सालों से तो देख ही रहे हैं।

यहाँ एक साल से हमने आयुर्वेदिक बागान शुरू किया है। उसके बाद इस विद्या को गाँव के लोगों को हस्तांतरित कर देंगे। अभी वही चीजें रख रहे हैं जो साबुन, लोशन, क्रीम वगैरह में इस्तेमाल होती हैं। भारत में इसका मार्केट बहुत आशाजनक है। और कुछ एक दवाइयाँ हैं, जो जड़ी-बूटियों से बनती हैं, जैसे ब्राह्मी, भृंगराज, अश्वगंधा, इत्यादि। यह विद्या तो अब भारत के कृषि-क्षेत्र में आ गयी है, बहुत जगह पर उन्नत किसान लोग आयुर्वेदिक बागान लगा रहे हैं। इसके लिए कई लोगों ने तो अपनी बड़ी नौकरियाँ छोड़ दी हैं।

किसानों के सामने सबसे बड़ी समस्या बिजली नहीं है, सड़क नहीं है, चिकित्सा-सुविधा नहीं है और न ही कानून और व्यवस्था है, जिन सब के बारे में सरकार बहुत बोला करती है। किसानों की सबसे बड़ी समस्या है, पानी। किसानों की यह एक समस्या हल हो जाए, तो किसान अपना मकान बना लेंगे, पढ़ाई कर लेंगे। इनको सरकार से फिर किसी प्रकार की मदद या सहारे की जरूरत नहीं है। किसान बहुत मजबूत जात है हिन्दुस्तान की। हम तो किसान परिवार के हैं। किसान कभी हिम्मत नहीं हारता है। सन् 1761 में जब अहमद शाह अब्दाली ने हिन्दुस्तान पर हमला किया और मराठों को पानीपत की लड़ाई में हराया, इसके बाद मारवाड़ी वहाँ से देश छोड़ कर आए, पर किसान नहीं आए हैं। बनिया और ब्राह्मण आए हैं। आप देख लीजिए, उत्तर

हो या दक्षिण, कोई किसान आया है क्या? जबकि राजस्थानी लोग सब दुकान खोले बैठे हैं, गद्दी खोले बैठे हैं, लेकिन किसान नहीं आया है।

किसान हिम्मत हारता ही नहीं है। वह मुसलमान बन गया होगा। सीधा-सादा हिसाब है। इसमें झंझट ही नहीं है। पर बनिये के पास तो सोना-चाँदी जैसी चल संपत्ति होती है, वह उसको लेकर निकल गया। किसान के पास तो अचल संपत्ति होती है। वह कहता है, 'कहाँ जाएँगे? अब तो हम रहीम बन जाएँगे।' और बन जाता है। किसान बहुत मजबूत जीव होता है। देश छोड़ कर पलायन करने की प्रथा किसान में नहीं है। किसी भी देश का किसान और खासकर भारत में किसान धर्म बदल लेगा, लेकिन देश छोड़कर नहीं जायेगा, क्योंकि उसके पास तो चल संपत्ति है ही नहीं! सिर्फ खटिया होती है और बैल होता है। कहाँ जाएगा वह?

किसान भारत का बहुत सशक्त तत्त्व है। इसके पास एक ही चीज की कमी है, पानी। और पानी का इंतजाम हो नहीं सकता है। सरकार नदियों को जोड़ने की बात कर रही है, लेकिन वह कभी होने वाला नहीं है। यह एक असंभव स्वप्न है। सड़कों को जोड़ना, धर्मों को जोड़ना, लोगों को जोड़ना, भारत में संभव नहीं है। यहाँ पानी नहीं है, तो कुआँ बनाओ, आयुर्वेदिक पौधों की खेती करो और पाँच-दस लाख रुपया महीना कमाओ, उसके बाद तुमको जो करना है करो।

हम तो सब को बोलते हैं कि सरकार की तरफ आशा मत लगाए रखो, अपना काम खुद करो। इसलिए बगल में आयुर्वेद बागान लगाना शुरू कर दिया है, बहुत अच्छी तरह से जम रहा है। हम लोग ज्यादा ख्याल भी नहीं करते, कभी-कभी घास वगैरह निकाल देते हैं, बस। यहाँ करीब डेढ़-दो सौ पौधे हैं और हम धीरे-धीरे, दो-तीन साल में इस क्षेत्र में आयुर्वेद का अच्छा बगीचा लगवा देंगे। मैंने गाँव के लोगों से कहा, बाजार में बेचो, अगर तुम साल में दस लाख रुपया कमा लेते हो, तो उसके बाद अपना राशन खरीदो; कुआँ खोदना है, कुआँ खोदो; वॉटर हारवेस्टिंग करना है तो वॉटर हारवेस्टिंग करो; गहरा ट्यूब-वेल खोदना है, तो वह करो। तुम्हारे पास तो अपना पैसा हो जाएगा, तुम सरकार पर नजर क्यों रखते हो? खुद मेहनत करो।

यह योजना सफल होने वाली है और तब तक ये लड़कियाँ भी तैयार हो जाएँगी। अब तो लड़कों को भी हम लोग ले रहे हैं। यहाँ तेरह साल तक की सब लड़कियों को हम लोग कहते हैं कन्याएँ और लड़कों को कहते हैं बटुक, वे सब आश्रम आ रहे हैं। अगले पाँच-छः सालों में वे तैयार हो जाएँगे। वे नए

ढंग से अपनी समस्या का समाधान करेंगे। हमारा मकान बना दो, हम तुमको भेंट देंगे, नहीं, यह सब कहना गलत है।

गौरी-गणेश

मेरे आवास का नाम है गौरी-गणेश, माँ और बेटा। यह श्री केदारनाथ गोयनका की स्मृति में बनाया गया है, क्योंकि वे बिहार योग विद्यालय के सह-संस्थापक थे। लाल दरवाजा के पास की सारी जमीन उन्हीं की दी हुई है, और वहाँ के सारे भवन भी उन्हीं के द्वारा बनाए गए हैं। गंगा दर्शन की जमीन का सौदा भी उन्हीं ने कराया, वह बहुत बड़ी जमीन है, उसे राजा का महल कहा जाता था। मुंगेर के लोग सोचते थे कि उसके नीचे बहुत सोना गड़ा है। शायद वे लोग अभी भी यही सोचते हैं कि मैंने गंगा दर्शन का निर्माण उसी सोने से किया है! सोना वगैरह तो मुझे कुछ मिला नहीं, मिला केवल एक अविछिन्न चट्टान! और वह पूरा छः मंजिला गंगा दर्शन की नींव बना। केवल पाँच फुट गहरी नींव पर बना है!

– 28 अगस्त 2004



ॐ

अध्याय 9

झूलन

यह झूलन उत्सव श्रीकृष्ण की याद में मनाया जाता है, जिनका जन्म यमुना तट पर बसी मथुरा में आज से पाँच हजार साल पहले हुआ था। यहाँ झूलन के दो उत्सव होते हैं। एक जो अभी चल रहा है। यह श्रीकृष्ण की याद में मनाया जाता है, जो भगवान के लीला अवतार थे। वे इतिहास में एक युग-पुरुष कहलाए। इतिहास ही आगे चलकर दन्तकथा बनता है, पुराण बनता है। दन्तकथा बने बगैर इतिहास जीवित भी नहीं रह सकता। इतिहास को तो हमेशा शासक, राजा, सम्राट् और सम्प्रदाय या तो विकृत कर देते हैं या नष्ट कर देते हैं। लेकिन दन्तकथाएँ और पुराण जीवित रह जाते हैं। अब तो श्रीकृष्ण भी पौराणिक कथा के पात्र बन चुके हैं। इतिहास समाप्त होकर पुराण बनता है और उस रूप में जीवित रहता है। और फिर वे पुराण स्वप्न बन जाते हैं। तुम लोगों ने यहाँ झूलन का जो कार्यक्रम देखा, वह एक सपना है।

दूसरा झूलनोत्सव हम 25 से 27 दिसम्बर तक मनाते हैं, क्राइस्ट के जन्मोत्सव, क्रिसमस के समय। हमारे पास एक पालना है, जो इटली वाले बहुत साल पहले लाए थे। हर साल शिशु ईशु के लिए हम उसी पालने का इस्तेमाल करते हैं। बाल कृष्ण और शिशु ईशु में बहुत अधिक समानता है। नामों में भी समानता है और उत्सव में भी। और सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनों ही राजा की वध-सूची में थे। कृष्ण के जन्म के दिन राजा ने आदेश दिया था कि उस दिन जन्में सभी नवजात शिशुओं का वध कर दिया जाए। क्राइस्ट के साथ भी ऐसा ही हुआ, इसलिए क्राइस्ट को मिस्र ले जाना पड़ा और कृष्ण को यमुना के पार गोकुल में। दोनों में एकमात्र अन्तर यही है कि

कृष्ण पाँच हजार साल पहले जन्मे थे, जबकि क्राइस्ट दो हजार साल पहले। यह अन्तर सिर्फ इतिहास में समय का है और इतिहास में जो समय लिखा जाता है, वह गलत भी हो सकता है, क्या मालूम? इसलिए जब तुम इस झूलनोत्सव में शामिल होते हो, तब दोनों को याद कर लो। अगर तुम क्राइस्ट का झूलनोत्सव भी मनाना चाहते हो, तो दिसम्बर में आ जाओ। उस समय हम ईसा मसीह के गीत गाते हैं। लेकिन अभी हमारे सभी कीर्त्तन और भजन भगवान कृष्ण के लिए हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात जो मैं तुम लोगों को अभी कहना चाहता हूँ, वह यह कि हम श्रीकृष्ण को गीता के अमर संदेश के लिए याद करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता माने प्रभु का दिव्य गीत! भगवान कृष्ण को हम बहुत-सी बातों के लिए याद करते हैं। पश्चिम में भी उन्हें याद किया जाता है। पश्चिम में कृष्ण-पंथ आने वाला है। समय लगेगा, पर यह आएगा जरूर। गीता के संदेश के अलावा भी उन्हें बहुत-सी चीजों के लिए याद किया जाएगा। राधा से प्रेम के लिए भी उन्हें याद किया जाएगा। और पश्चिम उन्हें स्वीकार करेगा, क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता राधा-प्रसंग को पसन्द करती है, उसे संयम या बंधन पसन्द नहीं। श्रीकृष्ण को उनके मनोहारी नृत्य के कारण याद किया जाएगा, उनके नटखटपन और छेड़खानियों के लिए याद किया जाएगा और पश्चिम उसे भी स्वीकार करेगा। उन्हें एक कुशल राजनेता और कूटनीतिज्ञ के रूप में भी याद किया जाएगा। पश्चिम को उनका यह रूप पसन्द आएगा, क्योंकि वहाँ का राजनैतिक तंत्र भी तो कूटनीति प्रधान है।

गीता कोई धर्म ग्रन्थ नहीं है, इसकी तुलना कुरान या बाइबिल से नहीं की जा सकती। गीता की बराबरी न तो शिव पुराण से की जा सकती है और न ही ज़ेन्दावेस्ता से। गीता विलक्षण है। वह हमें जीवन, जीवन की समस्याओं और उन समस्याओं को सुलझाने की विधियों के बारे में बताती है। तुम्हारे जीवन में भी तो हमेशा एक महाभारत चलता रहता है। तुम्हारा जीवन तो दो शक्तियों के बीच दिन-रात निरन्तर चलने वाला युद्ध है। अपने शरीर, मन, आत्मा, परिवार, समाज, विभाग, व्यापार या देश में, जहाँ कहीं भी देखो, सभी जगह महाभारत चल रहा है। हर जगह दो शक्तियाँ एक-दूसरे को खींच रही हैं, एक-दूसरे पर आक्रमण कर रही हैं।

गीता यह बतलाती है कि कैसे अपने जीवन को सावधानी और बुद्धिमानी से संचालित किया जा सकता है, ताकि तुम संग्राम में विजय प्राप्त कर सको,

जीवन में सफल हो सको। एक अफसर के रूप में या एक संन्यासी के रूप में या एक गृहिणी के रूप में, किसी भी रूप में तुमको जीवन में सफल होना है। विजय एक सफलता है और सफलता ही विजय है।

श्रीकृष्ण ने गीता में जो अमर उपदेश दिये हैं, उसके लिए उन्हें हमेशा याद किया जाएगा। अट्ठारह अध्यायों और सात सौ श्लोकों की यह छोटी-सी पुस्तक, जिसमें अट्ठारह योगों का वर्णन है, सारे संसार में बिकती है। यह बाइबिल, कुरान या अन्य किसी भी पुस्तक से अधिक बिकती है। इसके बाद बाइबिल का स्थान आता है। गीता की भारत में ही पचास करोड़ से अधिक प्रतियाँ प्रतिवर्ष छपती हैं! यह हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा विश्व की अन्य बहुत-सी भाषाओं में भी छपती है। हमारे देश में तो लोग हर दिन इसको पढ़ते हैं। कम-से-कम मैं तो इसको हर रोज पढ़ता हूँ। अगर तुम अपने दैनिक जीवन में सफल होना चाहते हो, तो तुम सब को इसे हर रोज पढ़ना चाहिए और इसमें बताए गए योग को आत्मसात् करने का प्रयास करना चाहिए।

श्रीकृष्ण का झूलन-उत्सव हम इन दिनों मना रहे हैं। उन्हें हम मानव नहीं, ईश्वर का अवतार मानते हैं। यह मानते हैं कि भगवान मानव देह धारण कर हमारे बीच अवतरित हुए। ईसाई धर्म में भी इसी तरह की मान्यता है, वे ईसा को ईश्वर का पुत्र मानते हैं और हम कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते हैं। मानव रूपधारी भगवान! वे वस्तुतः मानव नहीं होते। न तो वे पैदा होते हैं और न ही मरते हैं। हालाँकि वे मानव रूप में लीला करने आते हैं, वे नर नहीं, साक्षात् नारायण होते हैं।

वैष्णवों ने भक्ति का उपदेश दिया। अब यह भक्ति भी कई प्रकार की होती है। जहाँ भगवान हम से अलग हैं, जहाँ मैं नर हूँ और वे नारायण हैं, वहाँ भेद भक्ति है। भक्ति का दूसरा स्वरूप है अभेद भक्ति, जहाँ हममें और भगवान में अन्तर नहीं है। 'अहं ब्रह्मास्मि', यह हुई अभेद भक्ति। फिर तीसरे प्रकार की भक्ति भी है, जिस पर हिन्दुओं की पूरी श्रद्धा है। वह है भेदाभेद भक्ति। ईश्वर अलग भी हैं और नहीं भी। ईश्वर सर्वव्यापी भी हैं और सब के परे भी। ईश्वर यहाँ भी हैं, वहाँ भी हैं और कहीं भी नहीं हैं!

भारतवासियों की हमेशा से यह धारणा रही है कि ईश्वर की परिभाषा देना ही भूल है। ईश्वर के सम्बन्ध में अन्तिम बात न कही जा सकती है, न कही जानी चाहिए और न ही कहने की जरूरत है। तुमको बस यह कहना चाहिए कि मैंने इतना ही देखा है और मेरी समझ में वे ऐसे हैं। रामानुज, चैतन्य

महाप्रभु, मीराबाई और अन्य कई भक्त संतों ने ईश्वर को अपने से अलग माना, यह भेद भक्ति है। मैं नर हूँ और तुम नारायण हो, तुम वहाँ रहते हो और मैं यहाँ रहता हूँ। यह भेद भक्ति तुम्हें क्राइस्ट में भी मिलेगी। पर क्राइस्ट ने उसमें थोड़ा संशोधन भी किया है बाद में। पहले वे कहते थे, 'मेरे पिता स्वर्ग में हैं।' इसका अर्थ हुआ कि मैं यहाँ हूँ और तुम स्वर्ग में हो। कुछ समय बाद उन्होंने कहा, 'मैं और मेरे पिता एक हैं।' अर्थात् सोऽहम्, शिवोऽहम्, अहं ब्रह्मास्मि। इन तीनों का अनुवाद करो, सबका एक ही अर्थ निकलेगा–मैं और मेरे पिता एक हैं। यह हुई अभेद भक्ति।

मेरी समझ में जो लोग कृष्णजी, देवीजी, रामजी, शिवजी आदि के रूप में ईश्वर की पूजा करते हैं, उन्हें लगता होगा ईश्वर हमसे अलग हैं। नहीं तो अगर तुम ही ईश्वर हो तो फिर किसकी पूजा करते हो? इस स्थिति में तो पूरा आनन्द ही समाप्त हो जाएगा। तुम ईश्वर में हो या ईश्वर तुममें हैं, इसमें तो कोई मजा नहीं है। पूजा और आराधना का अपना एक अलग आनन्द है, अपना एक अलग महत्त्व है। यदि ईश्वर ही ईश्वर की पूजा कर रहा है, तो भी क्या? मान लिया कि मैं ईश्वर हूँ, ठीक! और मैं शिव की पूजा कर रहा हूँ। अब हम दोनों एक ही हैं। तो मैं अपनी ही पूजा खुद कर रहा हूँ। अगर मैं अपनी ही पूजा कर रहा हूँ तो भी घण्टी और शंख बजाने या आरती और मंत्र करने में हर्ज ही क्या है। उल्टा ज्यादा आनन्द है! अपने आप को भगवान की किसी मूर्ति में प्रक्षेपित करके, उसकी पूजा करने में कोई हानि है क्या?

भेद भक्ति में यह मानकर पूजा करो कि ईश्वर तुमसे अलग है और अगर तुम मानते हो कि ईश्वर तुममें है, तुम स्वयं ईश्वर हो, तब भी तुम पूजा करते जाओ। उसका अपना आनन्द है! पूजा भक्ति का अनुष्ठान है। पूजा के बिना भक्ति तो वैसी ही है, जैसे चीनी के बिना खीर, नमक के बिना भोजन या प्राणहीन शरीर। प्राण के बिना शरीर का कोई मूल्य नहीं है। नमक के बिना सब्जी मेरे जैसे बूढ़े के लिए ठीक हो सकती है, पर तुम्हारे लिए नहीं। चीनी के बिना खीर या मिठाई में कोई स्वाद नहीं होता। भक्ति में यही चीज सीखने को मिलती है।

रिखिया के कन्या-बटुक

हमने पाँच-छः सौ कन्याओं और बटुकों को अपना लिया है। कन्या का मतलब कुमारी और बटुक का मतलब बदमाश नहीं, ब्रह्मचारी होता है। वे

यहाँ दिनभर मधुमक्खियों के समान रहते हैं, सिर्फ रात में अपने घर जाते हैं। वे यहाँ दिनभर रहते हैं, अँग्रेजी सीखते हैं। अब तो वे अच्छी अँग्रेजी बोलने लग गये हैं। आजकल वे कम्प्यूटर भी सीख रहे हैं। सबसे पहले जयपुर के किसी व्यक्ति ने दो कम्प्यूटर दिए, उसी से शुरू किया गया। फिर दिल्ली की एक कम्पनी ने एक साथ छः दिए। अभी कोई दूसरी कम्पनी पाँच-छः और देने जा रही है। अभी मुश्किल से दो-तीन महीने हुए हैं और इतने कम्प्यूटर हो गए। दो महीने में इन्होंने इतना सीख लिया है जितना कलकत्ता वगैरह में ग्रैजुएट लोग दो साल में सीखते हैं। एक जर्मन स्वामी इनकी शिक्षिका है। इनको अब सब तरह की जानकारी है। ये लोग ग्राफिक्स, वर्ड और एक्सेल जानते हैं, कुछ ने तो अपने से छोटों को भी सिखाना शुरू कर दिया है।

ये सभी तेरह साल से कम की हैं। हम लोग आश्रम में तेरह साल तक की बच्चियों को ही रखते हैं। तेरह साल के बाद वे 'सेवा-निवृत्त' हो जाती हैं और उनकी जगह नई बच्चियाँ आ जाती हैं। भारत के गाँवों में अभी भी दस-दस के हिसाब से बच्चे पैदा होते हैं, 'हम दो हमारे दो' यहाँ नहीं चलता। मेरे ख्याल से चीन के अलावा यह सिद्धान्त और कहीं नहीं चलता। यहाँ पर तो 'हम दो हमारे दस' चलता है! मैं इसका विरोधी नहीं हूँ, न ही मैं कोई व्यंग कर रहा हूँ। पर हमें देखना है कि नए लोग आते जाएँ और पुराने लोग उनके लिए जगह बनाते जाएँ। अब पाँच हजार के लिए तो हमारे पास जगह नहीं है। कभी-कभी तो इन पाँच-छः सौ को ही भोजन के लिए बैठाने पर जगह की कमी हो जाती है। पर हम लोग किसी प्रकार काम चला रहे हैं, कोई समस्या नहीं है। हम नहीं जानते इनका भविष्य क्या होगा। इनका भविष्य ईश्वर के हाथ में है, हम तो सिर्फ अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं।

मैं तो यहाँ एकान्त के लिए आया था। मैं आजकल एकान्त में ही रहता हूँ। मैं यहाँ की गतिविधियों के बारे में तुमको बता जरूर रहा हूँ, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं उनमें भाग लेता हूँ। मैं अब इन सबसे बाहर रहता हूँ। मैं तो इस जगह रहता भी नहीं। यहाँ के गाँव वालों ने मेरे को एक जमीन दान में दी है, वहीं रहता हूँ। मैं वहाँ जाकर ताला लगा लेता हूँ और अकेले रहता हूँ। जब मैं यहाँ आया था, तब मैंने एक आवाज सुनी थी। न तो वह सपना था, न ही सुनने में कोई धोखा हुआ था। वह आवाज इतनी ही स्पष्ट थी, जैसे अभी तुम मेरी आवाज को सुन रहे हो। तब मैंने स्वामी सत्संगी को कहा कि अपना सब पैसा इन गाँव वालों पर खर्च कर दो। स्वामी

सत्संगी एक अमीर घर की है, उसके पास काफी पैसा था। उसने यहाँ काम शुरू कर दिया।

सबसे पहले हमने यहाँ के लोगों को रोजगार दिया, मकान और चहारदिवारी बनाने का काम शुरू किया। सत्संगी ने पूछा, आप यह सब क्यों बनवा रहे हैं? मैंने कहा कि केवल इनको एक रोजगार देने के लिए। उस समय जो लड़के काम के लिए आते थे, आज वे मिस्त्री और कारीगर हो गए हैं। उनमें से कुछ दिल्ली चले गए, कुछ कानपुर, कुछ बम्बई और कुछ कलकत्ता भी चले गए हैं।

यहाँ अँग्रेज़ी कक्षा एक लड़की से शुरू हुई थी। उसका नाम था रूबी। अब तो उसकी शादी हो गयी है और बच्चे भी हो गए हैं। एक से हमने शुरू किया और अब ये इतने सारे हो गए हैं। मेरे को लगता है ये सब तो खुश हैं ही, इनके माता-पिता भी काफी खुश हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण बात बतला देता हूँ। इन बच्चों के सिवाय मैं यहाँ और किसी से सम्बन्ध नहीं रखता। इन्हीं के माध्यम से मैं इनके माँ-बाप, दादा-दादी, भाई-बहन, चाचा-चाची, पूरे परिवार से सम्बन्ध रखता हूँ। हम किसी को न्यौता नहीं देते। झूलन का निमंत्रण भी हम किसी को नहीं भेजते। केवल इन कन्याओं को कह देते हैं कि अपने माँ-बाप को आने के लिए बोल देना, और वे लोग आ जाते हैं। यदि इनका भविष्य सुन्दर बनता है तो हमें खुशी होगी।

अभी लड़कों के लिए हमने संस्कृत और श्रीमद्‌भगवत गीता की कक्षा शुरू की है। ये जो नन्हें शैतान हैं, भगवान बचाए इनसे! इनमें से एक-एक बटुक अकेला पचास कन्याओं के बराबर है। ये इतने चुस्त, फुर्तीले और चंचल हैं कि पूछो मत! हम लोग इन्हें सम्हाल नहीं पाते हैं। पर मैं इसे नकारात्मक रूप में नहीं देखता। आखिर श्री कृष्ण भी तो ऐसे ही नटखट थे। वे एक नम्बर के बदमाश थे, पूरे गोकुल में हर जगह बवाल खड़ा कर देते थे। हर दिन लोग उनकी माँ के पास जाकर शिकायत करते थे कि अपने कन्हैया को सम्हालकर रखो। जब उनकी माँ उनकी पिटाई करना चाहती थी, तो वे भाग जाते और कहते–

मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो।
भोर भयो गइयन के पाछे, तूने मधुबन मोहि पठायो।
चार प्रहर बंशीबट भटक्यो, सांझ परे मैं घर आयो।

मैं बालक बहियन को छोटो, यह छींको किस बिधि पायो।
ये ग्वाल बाल सब बैर पड़े हैं, बरबस मुख लपटायो।

'ये ब्रज के सभी लोग मुझसे दुश्मनी रखते हैं, इसलिए झूठी शिकायत करते हैं। मैं तो इतना भोला-भाला लड़का हूँ, सुबह ही गाय चराने निकल जाता हूँ। मैं उनके घर कब जाता हूँ।' पर सभी शरारतों के पीछे उन्हीं का हाथ होता था। वे गोपियों की मटकियाँ फोड़ देते थे और जब वे स्नान करने जातीं, तो उनके कपड़े छुपा देते थे। जब वे उनसे विनती करतीं कि हमारे कपड़े लौटा दो, तो वे कहते, 'आकर ले लो!' अब भला वे कैसे आतीं?

श्रीकृष्ण के भक्तगण इस प्रसंग की व्याख्या इस प्रकार करते हैं। गोपियां का तात्पर्य इन्द्रियों से है और कपड़े इन्द्रियों के विषय हैं। विषय माने जिस चीज को तुम देखते, सुनते, स्पर्श करते, सूँघते या खाते हो। ये सब इन्द्रियों के संस्कार हैं, गुण हैं, आसक्तियाँ हैं। ये इन्द्रियाँ इन विषयों से ढकी हुई हैं। अगर तुम भगवान का दर्शन चाहते हो, उनका अनुभव और सामीप्य चाहते हो, तो तुम्हें इन आवरणों के बगैर आना होगा। ये कुर्ता और साड़ी आवरण नहीं हैं, इन्द्रियों के संस्कार वास्तविक आवरण हैं। ईश्वर के सामने निर्वस्त्र होकर जाओ, उनसे परदा कैसा?

भगवान कहते हैं, 'जैसे मैंने तुम लोगों को निर्वस्त्र आने को कहा है, वैसे ही मैं तुम को अपने पवित्र रूप में आने को कह रहा हूँ। अपनी पुरानी आदतों, उलझनों, पूर्वाग्रहों, नाम, जाति और धर्म के साथ मेरे पास मत आओ। केवल एक जीव के रूप में आओ।'

बाल कृष्ण तो उत्पात करने में सबसे आगे रहते थे। उनके साथ छोटे-छोटे ग्वाल बाल रहते थे और वे एक-दूसरे के कन्धों पर चढ़कर ऊपर छींके में रखा माखन चुराकर खा जाते थे। इसलिए गोपियाँ अपना माखन बच्चों की पहुँच से बाहर रखती थीं। पर वे किसी-न-किसी तरह उसे चुरा ही लेते थे। भगवान श्रीकृष्ण की कथा श्रीमद्भागवत में है। श्रीमद्भागवत का अनेक लोगों ने अंग्रेजी में अनुवाद किया है। अन्य कई भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। भागवतम् का अर्थ होता है भगवान से सम्बन्धित। हम भगवान कहते हैं, अंग्रेज लोग गॉड कहते हैं, अरबी में अल्लाह या खुदा कहते हैं।

श्रीमद्भागवत में भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। श्रीमद्भागवत के अंग्रेजी अनुवाद तो बहुत हैं, पर उनमें इस्कॉन के संस्थापक श्री प्रभुपाद भक्तिवेदान्त का अनुवाद सबसे प्रचलित है। वे बंगाल के रहने वाले थे, अब

तो उन्होंने शरीर त्याग दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण भागवतम् और गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ सबको पढ़ना चाहिए, साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं, धर्म की दृष्टि से भी नहीं और न हिन्दू दृष्टिकोण से, बल्कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से। यह बहुत सुन्दर ग्रन्थ है, इसमें श्रीकृष्ण की लीला-कथायें हैं, युद्ध की भी चर्चा है, और भी बहुत-सी चीजें हैं।

अभी एक-दो साल में झूलन का रूप और बदलेगा। इन बच्चों से हम लोग कृष्ण-लीला कराएँगे। जितनी बदमाशी भगवान ने की थी, ये लोग बड़े आराम से कर सकते हैं। कोई राधा बनेगी तो कोई गोपी। कोई वह लँगड़ा बच्चा, पेंडिया बनेगा! वही तो सबसे बदमाश था, भगवान कृष्ण को वही तो चढ़ाता था। अभी इस कृष्ण-लीला की कहानी लिखी जा रही है!

द्रविड़ सभ्यता और तमिल भाषा

हिन्दी मेरी राष्ट्र भाषा है, संस्कृत मेरी मातृ भाषा है, अंग्रेज़ी मेरी व्यावसायिक भाषा है और तमिल मेरी गुरु भाषा है। इन चार भाषाओं को मैं अच्छी तरह से पढ़ लेता हूँ और संस्कृत तो मैं बहुत अच्छी बोलता भी हूँ, अंग्रेज़ी से भी अच्छी। अगर सुनोगे तो आँखें फाड़-फाड़ कर देखते-सुनते रह जाओगे। मैंने पूरा संस्कृत व्याकरण शास्त्र पढ़ा है, सब कंठस्थ है। अभी भी याद है मुझे। पर क्या करें, संस्कृत का तो मार्केट ही नहीं है। कोई सुनने के लिए तैयार ही नहीं है। अंग्रेज़ी का इतना मार्केट है कि पूछो मत। आज के जमाने में वही ठीक है।

यह जो तमिल भाषा है, इसमें 'क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ठ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म ...' ऐसी वर्णमाला नहीं होती है। 'क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह', केवल ये कोमल व्यंजन होते हैं, कठोर व्यंजन नहीं होते। इसमें कोमल और कठोर व्यंजनों का संतुलन नहीं है। गोपाल को कोपाल बोलते हैं और भगवान को पवान बोलते हैं, क्योंकि भ है ही नहीं उनके यहाँ। इनके यहाँ ब या भ है नहीं, बस प और म है। जैसे पंजाबी लोग भाई जी को पा जी और फुलका को पुलका बोलते हैं, वैसे ही तमिल में भी है। तमिल भाषा बहुत प्राचीन है, इसकी लिपि को द्रविड़ लिपि बोलते हैं। यह द्रविड़ लिपि संस्कृत से प्राचीन है, वेदों से पहले की है। इसी द्रविड़ लिपि में विद्वानों ने बाद में कठोर व्यंजन जोड़े हैं।

यह द्रविड़ जाति पहले सिन्ध में रहती थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में जो मुहरें मिली हैं, वे इन्हीं लोगों की हैं। बहुत हजार साल पहले भारत के मौसम में एक बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। कश्मीर की घाटी में पहले समुद्र था। यह प्रागैतिहासिक काल की बात बोल रहा हूँ, ऐसा पुराणों में लिखा है। उस समुद्र का नाम था नीलांचल। वह समुद्र जब धीरे-धीरे सरका, एक-दो दिन में तो नहीं सरका होगा, तीन-चार सौ साल लगे होंगे, उस वक्त बहुत भयंकर बाढ़ और तूफान आया। सिन्ध के लोग वहाँ से भागे दक्षिण भारत की तरफ। जो सिन्ध नदी के इस पार रहते थे, वे इस तरफ आ गए और जो सिन्ध नदी के उस पार रहते थे, वे वहाँ से भागकर इस्राइल पहुँच गए। वे यहूदी लोग थे।

यहूदियों का मूल स्थान तो कश्मीर में है। प्राकृतिक उथल-पुथल के कारण वे वहाँ से दूसरी जगह चले गए। यह सिलसिला अनेक शताब्दियों तक चलता रहा। इसका बाइबिल में उल्लेख है। नदी के पूरब में रहने वाले दक्षिण चले गए और उस पार वाले इस्राइल चले गए। पर अब यह इतिहास कौन बोलता है? न तमिल बोलते हैं कि हम सिन्ध नदी के इलाके से आए हैं और न ही यहूदी यह बात कहते हैं। यहूदी लोग तो आज उस जमीन के लिए युद्ध कर रहे हैं, जो उनकी है ही नहीं। इस्राइल उनकी भूमि नहीं है। वे कश्मीर से वहाँ गए हैं, भले ही हजारों साल पहले गए हों। और यही कारण है कि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में क्राइस्ट कश्मीर आए, क्योंकि उन्हें अपने मूल स्थान का पता था। यहूदियों की जड़ें कश्मीर में हैं, तमिलों की भी जड़ें कश्मीर में हैं।

हमारे गुरुजी तमिल थे। वे बहुत पहुँचे हुए थे। धर्म के मूर्त्तिमान रूप थे। सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि के जो नियम हैं, सब उनके जीवन में जीवन्त दिखायी देते थे। हमारे लिए तो उनका वही स्थान है, जो एक लोहे के लिए पारस पत्थर का होता है।

–29 अगस्त 2004



अध्याय 10

गुरुकुल एक परिवार होता है, जिसमें सब लोग रहते हैं। बच्चों को आश्रम में रहने के लिए माता-पिता की केवल रज़ामंदी की ही ज़रूरत नहीं है, बल्कि माता-पिता को प्रसन्न होना चाहिए कि हमारे बच्चे आश्रम में ही रहते हैं। यहाँ आश्रम में चार बच्चे दिनभर रहते हैं। इनका बाप मुंगेर में बिहार योग भारती से एम.एस.सी. कर चुका है। वह इसी गाँव का लड़का है। उसने चौबीस हजार रुपये कर्जा लेकर मुंगेर यूनिवर्सिटी में दो साल पढ़ाई की है। उसके बाद यहाँ आकर वह रोज आश्रम आता है। एक दिन भी नहीं चूकता। देहात का लड़का है। और उसकी मुख्य रुचि है—साधु, महात्माओं की संगत। यह मनुष्य के लिए बहुत ज़रूरी है। चाहे रोटी मिले न मिले, खाना मिले न मिले, नौकरी मिले न मिले, पैसा मिले न मिले, ये उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, ऐसा कहता है वह। हमने कहा, ठीक है, तुम अपने बच्चों को यहाँ रखो। बच्चे यहाँ आएँगे, दिन में खाएँगे। उसने कहा, नहीं स्वामीजी, सवेरे से शाम तक इनको यहीं रहना है। घर में क्या करेंगे। घर में तो आध्यात्मिक वातावरण कहीं होता नहीं है।

इन बच्चों को हमने अपना लिया है, अब ये यहीं रहेंगे। और बाद में ज़रूरत पड़ी, तो इनको रात को भी रखेंगे। वह निर्भर है माता-पिता की रज़ामन्दी पर। और रज़ामन्दी भी ज़रूरी नहीं है, ज़रूरी है उनकी प्रसन्नता। माता-पिता को खुश होना चाहिए कि हमारे बच्चे आश्रम में रह रहे हैं। उन्हें यह जानना और समझना चाहिए कि बच्चों के जीवन में आश्रम जीवन का क्या महत्त्व है। नहीं तो क्या फायदा रखने से?

पन्द्रह साल की उम्र तक लड़के-लड़कियों, दोनों को एक साथ रखना चाहिए, अलग-अलग नहीं। नहीं तो उससे लड़के-लड़कियों के व्यक्तित्व पर

बुरा असर पड़ता है। पन्द्रह साल के बाद अलग-अलग कर लिया, वह सब ठीक है, समाज का नियम है। सामाजिक नियमों का पालन हम लोग भी करते हैं। पन्द्रह साल तक एक साथ रहें, खेलें, कूदें, जो करना है करें। पन्द्रह साल के बाद अपने घर जाएँ। शादी करनी है करें, नहीं तो न करें। अब तो यही तरीका अच्छा है, लड़कों को हाई स्कूल पढ़ाओ और प्रतियोगिता परीक्षाओं में भेज दो। वह बी.ए., एम.ए. वाला चक्कर छूट जाना चाहिए। बी.ए., एम.ए. में कोई खास दम नहीं है। मैट्रिक के बाद उसको प्रतियोगिता परीक्षाओं में भेज दो, अपना कहीं पर रहे, चालीस-पचास हज़ार रुपया जमा कर ले, आराम के साथ हर महीना आश्रम में आए।

इस पंचायत में जितने बच्चे हैं, वे सब आश्रम से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। कीर्तन, भजन, गीता, हवन, अँग्रेज़ी और संस्कृत सीखते हैं। भगवद्गीता, रामचरितमानस, शिवमहिम्न, इन सबका ये लोग बढ़िया पाठ करते हैं। और आश्रम में सब कामों में भाग लेते हैं, स्कूल भी जाते हैं। फिर दिन में मास्टर साहब को बोलकर आते हैं कि हम आश्रम जा रहे हैं। मास्टर लोग भी बहुत खुश रहते हैं। दो वजह से खुश रहते हैं, एक तो उनको छुट्टी मिल जाती है और दूसरा उन्हें लगता है कि उनके बच्चे बुद्धि को तेज करने वाली कक्षाओं में जाते हैं। स्कूल में जो पढ़ाया जाता है, उससे बुद्धि नहीं बढ़ती। उसमें केवल स्मरणशक्ति का काम होता है। पर आश्रम में जाकर कीर्तन-भजन करना, रामायण-भागवत सुनना, यह बुद्धि को तेज करता है। अतः बच्चों के आश्रम में आने से मास्टर साहब को खुशी रहती है कि हमारे लड़के बुद्धि को तेज करने वाली कक्षाओं में जायेंगे, तो बहुत तेज़ हो जायेंगे और इन सबका परीक्षा परिणाम बढ़िया निकलेगा।

अब हम इन बच्चों को नाट्य में भी रखना चाहते हैं। नाट्य माने नृत्य, नाटक। साहित्य, संगीत और कला—ये मनुष्य को पशु से अलग बना देते हैं। अगर मनुष्य साहित्य, संगीत और कला में रुचि न ले, तो समझना चाहिए कि वह बिना पूँछ और सींग का जानवर है। खाली खाता-पीता और पिल्ले पैदा करता है। वह बेकार में पृथ्वी माता के लिए भार है। इसलिए इन बच्चों को नृत्यकला में निपुण करना है।

साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेणमृगाश्चरन्ति ॥

मैं जब बच्चा था, तब अलमोड़े में उदयशंकर सांस्कृतिक केन्द्र में नृत्य सीखने जाता था। उस वक्त वे रूस से आए हुए थे। मैं तो 1962 तक लोगों के बीच भरतनाट्यम नृत्य का प्रदर्शन करता था। कत्थक वगैरह सब आता है, मगर भरतनाट्यम में अपने को रुचि है। वह उत्तम है, उसका शास्त्र है। ये जितने बच्चे हैं, सब नृत्य सीख सकते हैं।

मर्यादा का पालन

स्वामी सत्यानन्द जहाँ-जहाँ गया है, वहाँ-वहाँ कमल खिलते हैं। यह हम पर हमारे गुरु का आशीर्वाद है। हम तो उस लायक नहीं हैं। हम गुरुजी के आश्रम में गए। गुरुजी एक ऐसे कमरे में रहते थे, जहाँ बिच्छू और मकड़ियाँ रहा करती थीं। हमने आलीशान मकान बना दिया, बारह साल तक खट्, खट् काम किया। आज वह दुनिया का 'नम्बर वन' आश्रम है। जब मुंगेर में आए, तो जहाँ कर्ण चौरा में हम रहते थे, वहाँ चोर, डाकू और वेश्याएँ रहती थीं। सब बदल गया। यह रिखिया भी बदलेगा, हरलाजोड़ी भी बदलेगा। लेकिन मैं यहाँ के लोगों से कहता हूँ, खाली तुम नहीं बदलना, क्योंकि सम्पत्ति आती है तो व्यसन आते ही हैं। खाना खाते हो तो टट्टी होती ही है। पानी पीते हो तो पेशाब होता ही है। कसरत करते हो तो पसीना आता ही है और सत्ता आती है तो मद आता ही है। यह पतन बिल्कुल निश्चित है, इसको कोई रोक नहीं सकता।

प्रभुता में मद, सम्पत्ति में व्यसन, भोजन में मल और पानी में मूत्र है, इसको कहते हैं, पतन। और यह सबको होगा, तुमको भी होगा, हमको भी हो सकता है। मगर हमारे गुरुदेव ने हमको कहा–थोड़ा सावधान रहना। खाओगे, फिर टट्टी तो तुमको ज़रूर होगी, पर कहीं ऐसा न हो कि तुम अपने ड्राइंगरूम में टट्टी कर दो, टॉयलेट में जाकर टट्टी करो। तुम जीवन में सफल बनोगे, पर सफलता के साथ मद आता है। व्यापार में या कहीं पर भी आदमी सफल होता है, तो मद आता ही है। पर ऐसा नहीं कि तुम खाना खाओ और टट्टी लग रही हो तो डाइनिंग हॉल में ही टट्टी कर दी। टॉयलेट में जाओ, नहीं तो दूर कहीं मैदान में जाकर करो, वहीं धोकर आओ। अपने भीतर जितना भी अहंकार है, मद है, वह सब भगवान के चरणों में समर्पित करते जाना चाहिए।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥16.15॥

मैं बहुत बड़ा आदमी हूँ। मेरे समान और है ही कौन! कितना बड़ा मेरा आश्रम है, किसी से भी पूछ लो। यह मद सबको होता है, परन्तु होना गलत नहीं है, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है। शादी करोगे तो बिटवा तो होवे करेगा। वह तो नियम है। परन्तु मर्यादा हर एक को निभानी पड़ती है। मर्यादा का मतलब होता है–टट्टी करनी है टॉयलेट में, भोजन बनाना है रसोई में, सोना है बेडरूम में, गपशप करनी है अपने दोस्तों से दीवानखाने में। रसोई में टट्टी करने लग गए, टॉयलेट में जाकर चाकलेट खाने लग गए, इसका मतलब होता है सब मर्यादाएँ भंग हो रही हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि टट्टी मत करो, पेशाब मत करो, खाना मत खाओ। हर चीज़ की एक जगह होती है। जैसे घर-संसार है, भोग के लिए है; उपभोक्ता समाज है, वहाँ पंखा रखो, एयरकण्डीशनर रखो, फ्रिज रखो, पर जब आश्रम में आते हो, यह सब नहीं होना चाहिए, क्योंकि आश्रम की अपनी मर्यादा है। उससे क्या होगा, घर में किया हुआ पाप यहाँ नष्ट हो जाएगा। पाप का मतलब गलती। इसी प्रकार की मर्यादाएँ हैं और उन मर्यादाओं का पालन हर व्यक्ति को हर जगह पर करना पड़ता है।

हमारे यहाँ बहुत से लोग आते हैं। उन्हें बहुत तकलीफ होती है, क्योंकि यहाँ जीरे के अलावा कोई मसाला पड़ता ही नहीं है। यदि कोई लाल मिर्ची का पाउडर भेजता है, तो मैं सब इकट्ठा करवाता हूँ, फिर उसको पानी में घोलकर पेड़ों में डलवा देता हूँ। यूरिया की जरूरत ही नहीं है, सब कीड़े मर जाते हैं, क्योंकि यह तो मारने वाली चीज़ है, जहर है। लोग बोलते हैं बीड़ी मत पीयो। मिर्ची मत खाओ, यह तो कोई बोलता ही नहीं है। बीड़ी से बड़ा जहर है लाल मिर्ची पाउडर।

हम तो कहते हैं, भले ही तुम बीड़ी पी लो, पर मिर्ची मत खाओ। तुम मिर्ची थोड़ी देर हाथ लगाकर पीसो, हाथ जलता है। जो मिर्ची इस कठोर चर्म को जला सकती है, वह अन्दर म्यूकस मेम्ब्रेन का क्या हाल करेगी, वह तो किसी को पता ही नहीं है। डॉक्टर लोग जानते हैं, मिर्ची का म्यूकस मेम्ब्रेन पर क्या असर होता है, वसा पर क्या असर होता है, कोलेस्ट्रोल पर क्या असर होता है। बीड़ी भले दो पी लो, वह तो थोड़ा फेफड़े में जाएगी, निकल जाएगी। मिर्ची तो मुँह से लेकर नीचे तक की पूरी यात्रा करती है। ओसाका से पेरू तक

की पूरी यात्रा करती है। मैं बीड़ी पीने को नहीं बोल रहा हूँ। नहीं। मैं केवल मनुष्य को नष्ट करने वाली जो चीज़ें हैं, उनकी तुलना कर रहा हूँ। चाहे कम नुकसानदायक हो या अधिक नुकसानदायक या मारक, कोई भी जहर सुरक्षित नहीं होता।

भागवत का महत्त्व

अभी यहाँ भागवत कथा हो रही है। सबको भागवत में ज़रूर आना चाहिए, हर दृष्टि से। यहाँ तो हम अपने गुरुजी के नाम पर करते हैं, क्योंकि जो व्यक्ति चला गया है, उसके नाम पर भागवत करने से उसकी आत्मा को मुक्ति भी मिलती है। भागवत सबके लिए मोक्ष शास्त्र है। ज्ञानियों के लिए भी और गृहस्थों के लिए भी। और जिनके घर में कोई मरता है, उसके लिए भागवत कराने से उसकी आत्मा को मोक्ष मिलता है। घर पर तो सबके यहाँ मरते ही हैं या कोई ऐसा भी है जिसके घर में कोई मरता नहीं है? नहीं। भागवत के गोकर्णोपाख्यान में धुंधुकारी की कथा आती है कि भागवत कथा के श्रवण से ही उसे प्रेतयोनि से मुक्ति मिली और मोक्ष प्राप्त हुआ। इसलिए भागवत जहाँ भी हो, ज़रूर एक आदमी सुनने के लिए चले जाओ और वहाँ थोड़ा फल चढ़ा देना चाहिए।

भागवत का बड़ा माहत्म्य है। भागवत मोक्ष शास्त्र है। मोक्ष का मतलब, जैसे जेल से छुट्टी मिलती है, वैसे ही मुक्ति हो गई। अब तुम स्वतन्त्र हो। जीवात्मा मृत्यु के कारण कहीं पर इधर-उधर भटकता है, बीच में अटकता है बेचारा, हो सकता है उसके पास कमाई न हो। जैसे यहाँ से आसनसोल तक का टिकिट लेना था, उसके पास तो पैसा है ही नहीं, तो टी.टी. ने जेल में डाल दिया और निकाल दिया। अब कहाँ जाएगा? उस वक्त कोई भला आदमी उसको आगे बढ़ा सकता है। भागवत मृतक की आत्मा को गति प्रदान करता है।

दूसरी चीज़, भागवत वैराग्य का शास्त्र है। तुम भागवत में कहीं भी पढ़ लो। हर कथा में लिखा है—उसने घर छोड़ दिया, वैराग्य ले लिया, चला गया, उसका मोक्ष हो गया। यह मोक्ष और वैराग्य शास्त्र है। और मजे की बात है कि इसमें भेद भक्ति है, अभेद भक्ति भी है और भेदाभेद भक्ति भी है। भक्ति के तीन रूप होते हैं। भेद भक्ति का मतलब यह हुआ कि मैं अलग, भगवान अलग। हममें तुममें है भेद यही, हम नर हैं तुम नारायण हो—यह भेद भक्ति हुई। इसमें भगवान और भक्त अलग-अलग हो जाते हैं। अभेद भक्ति का

मतलब होता है, जो तुम वह मैं–सोऽहं। त्वमेवाहं। भेदाभेद भक्ति का मतलब होता है–अलग भी हैं, एक भी हैं। श्रीमद्भागवत में भक्ति के तीनों रूप तुमको देखने को मिलते हैं। और भक्ति के ये तीनों रूप सही हैं, क्योंकि भक्ति और भगवान के बारे में केवल एक बात कह देना कि ऐसा ही है, उचित नहीं है। तुमने भगवान को देखा है जो बोलते हो कि ऐसा ही है? हमने ऋषि-मुनियों के मुख से सुना है कि भगवान ऐसा है, फिर हमने सुना भगवान ऐसा है, फिर हमने सुना भगवान ऐसा है। हम तो तीनों को मानते हैं। ईश्वर अंश जीव अविनाशी–यह भी मानते हैं। अहं ब्रह्मास्मि, अयं आत्मा ब्रह्म, इसको भी मानते हैं। भगवान के बारे में अन्तिम शब्द तो कहना गलत है। यह बात सब अच्छी तरह से ध्यान रखना।

जो भी पूजा-पाठ, जप-ध्यान या किसी सम्प्रदाय का प्रचार करते हैं, उन्हें एक बात ज़रूर याद रखनी चाहिए कि ऋषि-मुनियों ने सोच-समझ कर, बहुत अनुभवों के बाद, अनेक साधनाएँ करने के बाद एक शब्द का उच्चारण किया है–नेति, नेति। नेति का मतलब होता है, न इति। न इति का मतलब होता है–जितना कहा वह तो हमने कहा, पर वह अन्तिम उत्तर नहीं है। ईश्वर के बारे में कोई भी सम्प्रदाय अन्तिम शब्द नहीं कह सकता है। ईश्वर ही नहीं, दुनिया में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसके बारे में अन्तिम शब्द तुम कह सकते हो।

सोना कैसा होता है, उसका क्या रूप होता है? यह इस बात पर निर्भर रहता है कि सोने का क्या रूप बनाया गया है। पर क्या वह सोने का रूप है? कंगन सोने का रूप है? अंगूठी सोने का रूप है? चूड़ामणि सोने का रूप है? कोई भी अलंकार या आभूषण सोने का रूप है क्या? कोई भी बर्तन मिट्टी का रूप है क्या? कुल्हड़ मिट्टी का रूप है क्या? ईंट मिट्टी का रूप है क्या? घड़ा मिट्टी का रूप है क्या? तो मिट्टी का अन्तिम रूप बतलाओ। तुम मिट्टी या सोने का ही अन्तिम रूप नहीं बतला सकते हो और चले हो भगवान का अन्तिम रूप बतलाने के लिए!

अनन्त सृष्टि को बनाने वाला, सूर्य और चँद्रमा को बनाने वाला, उनके नियम निर्धारण करने वाला और अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को जो क्षण-क्षण में पैदा करता और नष्ट करता है, उस परमात्मा के बारे में हम लोग केवल कथा करते हैं, ताकि तुम लोगों के कान पवित्र हों, ताकि तुम लोगों के हृदय में अच्छी बातें जा सकें, ताकि तुम लोग थोड़ी देर के लिए टी.वी. न देखकर हमारी बातें सुनो। टी.बी.का मतलब होता है ट्यूबरकुलोसिस। टी.वी. का डिब्बा, जिसको

इडिएट बॉक्स कहते हो, उसको भी हम कहते हैं ट्यूबरकुलोसिस। नाम भी वैसा ही है, टी.बी.। उड़िया लोग बोलते हैं टी.भी.और स्वामी सत्यानन्द बोलता है टी.बी. (ट्यूबरकुलोसिस)–क्षय रोग। क्षय रोग का मतलब होता है, जिसमें धीरे-धीरे क्षरण होता जाता है। तुम्हारे मन की संरचना का क्षरण होता है, व्यक्तित्व की संरचना का क्षरण होता है, जीवन दर्शन और दृष्टिकोण का क्षरण होता है। पारिवारिक स्तर पर क्षरण होता है, राष्ट्र के स्तर पर क्षरण होता है, हर जगह क्षरण होता है, यहाँ तक कि बाजार में भी। बाजार पर क्षरण का असर नहीं पड़ता है क्या? तब इसको टी.वी.बोलें कि टी.बी. बोलें? समाज का ट्यूबरकुलोसिस।

हम लोग भगवान की कथा करते हैं। महाराज जी ने कथा की। अब यह नहीं सोचना कि इन्होंने भगवान के बारे में तुमको सब कुछ बतला ही दिया। भगवान की कथा करने का मतलब यह होता है कि हम तुमको यह नहीं बतला रहे हैं कि भगवान यह है कि भगवान वह है। भगवान इतना ही है, भगवान साढ़े तीन इंच है या साढ़े छ: इंच है, भगवान विराट् है, भगवान अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड है–हम ये सब नहीं कहते हैं। हम केवल इसलिए कथा कहते हैं कि कथा सुनने से आपको उसमें से अमृत मिलता है। कर्ण पवित्र होते हैं । हमारे ऋषि कहते हैं, हर तरफ से मेरे पास अच्छे विचार आयें–

आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:।

भगवान के बारे में जब हम साधु-महात्मा और विद्वान् लोग बातें करते हैं, तो आपको भगवान के अंतिम रूप का निर्णय नहीं देते हैं। भगवान की बात इसलिए कहते हैं कि भगवान की बात करना मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा आनन्द है। सबसे बड़ा मंगल है और धर्म है। दुनिया में मनुष्य के अलावा, दो पैर वाले इस दोपाये के अलावा और कोई जानवर है जो भगवान का भजन करता पाया गया? कोई ढोलक बजाता है क्या? कोई घण्टी बजाता है क्या? कुत्ते या गधे को तुमने राम-राम करते देखा है क्या? किसी सूअर को तुमने आरती करते देखा है क्या? नहीं।

केवल यही दोपाया जीव है, इसी को भगवान के बारे में पता लग गया। और मजे की बात तो यह है कि इसने भगवान को देखा भी नहीं है। पर इसको पता चल गया कि भगवान है। पूछोगे क्यों इसको पता चला, कुत्ते या गधे को क्यों पता नहीं चला? आखिर वह भी तो दुनिया में रहता है, भगवान ने उसको

क्यों नहीं कहा कि मैं हूँ? कुत्ते को नहीं कहा मैं हूँ, सूअर को नहीं कहा मैं हूँ। कारण बतलाता हूँ मैं।

मनुष्य के अन्दर में दो चीज़े हैं—बुद्धि और श्रद्धा। बुद्धि के द्वारा उसने भगवान के बारे में जाना और श्रद्धा के द्वारा उसको भगवान की अनुभूति हुई। श्रद्धा से जानकारी नहीं, अनुभूति होती है। जैसे, प्रेम, बैर, ईर्ष्या और सुख-दु:ख की अनुभूति होती है। दु:ख, सुख, प्रेम, ये बुद्धि के विषय नहीं हैं। बुद्धि का विषय है, विश्लेषण। ऋषि-मुनियों ने बुद्धि के द्वारा उपनिषद् लिखे हैं, पर श्रद्धा वह चीज़ है जो अदृश्य वस्तु को भी ग्रहण करती है। आखिर क्रोध को किसी ने आँख से देखा है क्या? नहीं। पर क्रोध है कि नहीं? देखा नहीं, और है—यह है श्रद्धा का विषय। श्रद्धा को देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। श्रद्धा को अनुभव की आवश्यकता है। इसीलिए रामचरितमानस के शुरू-शुरू में तुलसीदास ने एक मंत्र दिया है—

भवानी शंकरौ वन्दे, श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम् ॥

सिद्ध पुरुष भी अपने अंदर में, एकदम नजदीक में छिपे हुए भगवान को देख ही नहीं पाते हैं। क्यों नहीं देख पाते हैं? श्रद्धा-विश्वास है ही नहीं। भगवान को अनुभव करने के लिए श्रद्धा-विश्वास की परम आवश्यकता है और यह श्रद्धा-विश्वास शुरू होता है गुरु से। गुरु एक अपरिचित जीव है, चेला एक अपरिचित व्यक्ति है। गुरु कहीं का और चेला कहीं का। पर शिष्य को गुरु में श्रद्धा हो जाती है। वह श्रद्धा का अभ्यास करता है। वह श्रद्धा का क,ख,ग,घ गुरु से शुरू करता है और अभ्यास करते-करते अपनी श्रद्धा का विकास करता है। उसी श्रद्धा में उसको परमात्मा की छाई, परमात्मा का प्रतिबिम्ब, परमात्मा का आलोक दिखाई देता है।

गुरु में श्रद्धा का अभ्यास करना पड़ता है। पर गुरु के पहले माता-पिता में श्रद्धा का अभ्यास करना पड़ता है। तुमको अपने बाप का पता तो है ही नहीं। जब तक बाप का डी.एन.ए. परीक्षण न हो, तब तक मेरे को कैसे मालूम हो कि वह मेरा बाप है। पर वह मेरा बाप है। डी.एन.ए. परीक्षण की ज़रूरत नहीं है। मेरी श्रद्धा कहती है कि वह मेरा बाप है। ज़िन्दगी भर बाप को अपना बाप मानना, माँ को अपनी माँ मानना, एक अपरिचित छोकरी को अपनी पत्नी मानना, एक अपरिचित छोकरे को अपना पति मानना—यह श्रद्धा के आधार

पर ही होता है। यह किन्डरगार्टन, मॉन्टेसरी की पहली कक्षा है। पहले बच्चे श्रद्धा और विश्वास का अभ्यास अपने घर में करते हैं, फिर गुरु में करते हैं, फिर देवी-देवता में करते हैं। इस प्रकार बहुत चीज़ों में श्रद्धा का अभ्यास करते-करते अन्त में जब उनकी श्रद्धा बलवती, स्पष्ट और दिव्य हो जाती है, शुद्ध मन और हृदय से उपजती है, तब भगवान दिखाई देता है। उस वक्त भेद, अभेद, भेदाभेद, तीनों के द्वारा निर्दिष्ट होने वाले भगवान उस व्यक्ति को दिखाई देते हैं।

श्रद्धा-विश्वास बहुत ज़रूरी चीज़ है। बुद्धि अपनी जगह पर ठीक है। एक बार मेरे से किसी ने पूछा था कि स्वामीजी ये लोग गुड्डे-गुड़ियों को बहुत पूजते हैं। हमने कहा, बुद्धि के स्तर पर तो बड़ा गड़बड़ लगता है। एक पत्थर कैसे भगवान हो सकता है, एक कागज का पर्चा कैसे भगवान हो सकता है? एक टट्टी-पेशाब करने वाला कैसे गुरु और भगवान हो सकता है? बुद्धि के द्वारा ऐसा सोचना ठीक है। पर जब श्रद्धा का विषय आता है, उस वक्त पत्थर भी भगवान होता है, पत्ता भी भगवान होता है, वृक्ष भी भगवान होता है। श्रद्धा किसी भी चीज़ को भगवान के रूप में प्रतिष्ठित कर सकती है।

श्रद्धा सबसे बड़ी शक्ति है। अगर तुम्हारे भीतर श्रद्धा नहीं है, तो भगवान को भूल जाओ। उसके बारे में बात ही मत करो, क्योंकि भगवान के बारे में केवल बातें करने से तुम्हें कोई उपलब्धि नहीं होने वाली है। तुम सालों तक, सदियों तक भगवान के बारे में बातें कर सकते हो, लेकिन उससे कुछ होने वाला नहीं है। इसलिए भगवान रामकृष्ण कहते थे कि कागज में पानी, पानी, पानी लिखते जाओ, उसको निचोड़ो तो पानी निकलने वाला नहीं है। क्यों नहीं निकलता? इसलिए कि केवल लिखा था–पानी उसमें भरा ही नहीं था! उसी तरह से भगवान के बारे में जो अनुभव की वस्तु है, वह बहुत ही सरल है। जिसको कहते हैं सरल व्यक्ति। जैसे छोटे बच्चे हैं, ये सब सरल हैं। अगर ये चाहें तो इनको भगवान का अनुभव बहुत जल्दी हो सकता है।

आजकल गाँव के बच्चे भी अँग्रेजी बोलने लग गये हैं।

अँग्रेज़ी का मार्केट अच्छा है। उसकी कीमत भी है और सम्मान भी। और हमने देखा है कि अंग्रेज़ी पढ़ने वालों का दिमाग बहुत जल्दी-जल्दी चलता है। संस्कृत वालों का बहुत धीरे-धीरे चलता है। हमने तो संस्कृत पढ़ी है, प्रथमा, मध्यमा वगैरह सब पढ़ीं। हम सोचते थे कि हमारा दिमाग चलता ही नहीं है। बहुत धीरे-धीरे चलता था, तो किसी ने कहा तुम अंग्रेज़ी पढ़ लो। तो अंग्रेज़ी

पढ़ी, अब इतनी तेज़ी से दिमाग चलता है कि कभी-कभी दिमाग तो बहुत दूर पहुँच जाता है, पर मैं यहीं का यहीं रहता हूँ।

गौरी-गणेश

जहाँ मैं रहता हूँ, उस मकान का नाम है गौरी-गणेश। राधा-कृष्ण का तो माधुर्य भाव का सम्बन्ध है। सुभद्रा, बलराम और कृष्ण का स्नेह-भाव का सम्बन्ध है। यशोदा-कृष्ण का वात्सल्य भाव का सम्बन्ध है। ये भक्ति के विभिन्न रूप हैं। हमने सोचा वात्सल्य भाव में तो गौरी-गणेश का सम्बन्ध बहुत अच्छा है। इसलिए हमने अपने मकान का नाम रख दिया 'गौरी गणेश'। और उनकी मूर्ति बनाकर वहाँ पर स्थापित कर दी।

राधा-कृष्ण की जो अवधारणा है, वह प्रकृति-पुरुष की अवधारणा है। गीता में उसी परा प्रकृति के बारे में लिखा हुआ है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 7.5 ॥

यह राधा-कृष्ण का सम्बन्ध है। सुभद्रा और कृष्ण के सम्बन्ध की जो अवधारणा पुरी में आप देखते हैं, वह भाई-बहन का सम्बन्ध है। वह स्नेह है। स्नेह एक तार, एक भावना, एक सम्बन्ध का नाम है, जो तुम्हारे और मेरे बीच हो सकता है। माधुर्य एक सम्बन्ध का नाम है, जो तुम्हारे और मेरे बीच हो सकता है। पर उसके अलावा एक सम्बन्ध और है–वह है वात्सल्य, जो तुम्हारे और मेरे बीच हो सकता है। यह सम्बन्ध कौशल्या और राम का था, यशोदा और कृष्ण का था। हमने उसको कर दिया है गौरी-गणेश–वात्सल्य सम्बन्ध कर दिया है।

भगवान प्रेम की डोर में बँधे होते हैं। प्रेम का मतलब क्या होता है? यह टी.वी. वाला प्रेम नहीं। प्रेम तो एक ऐसी भावना का नाम है, जहाँ दो विपरीत तत्त्वों में एकता देखी जाती है।

प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, शीश देय ले जाय ॥

दो विपरीत ध्रुवों में विलयन जहाँ देखा जाए, उसको प्रेम कहते हैं। भौतिक शास्त्र के अनुसार पदार्थ में धनात्मक और ऋणात्मक, दो ध्रुव होते हैं।

धनात्मक ध्रुव और ऋणात्मक ध्रुव को देश और काल के नाम से पुकारा जाता है। जब वे एक-दूसरे की तरफ आते हैं, तो एक बिन्दु पर मिलते हैं, उसको भौतिकी में विलयन कहते हैं। और हमारे यहाँ उसको कहते हैं योग। योग और विलयन, दोनों समानार्थक शब्द हैं।

विज्ञान में दो विपरीत तत्त्वों के योग को विलयन कहते हैं। उसी प्रकार ध्यान और भगवत भजन में भी जो योग होता है, वह दो विपरीत तत्त्वों का ही होता है। और वे जो विपरीत तत्त्व हैं, उनको कहते हैं–पुरुष और प्रकृति– परमात्मा और जीवात्मा। इन विपरीत तत्त्वों को अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। जीवात्मा परमात्मा से मिलता है या प्रकृति का पुरुष से योग होता है। नाम तुम कुछ भी कह सकते हो–पुरुष कहो, प्रकृति कहो, क कहो, ख कहो, ग कहो, घ कहो, पर दो विपरीत तत्त्व होते हैं, जो मिलते हैं। अँग्रेज़ी में कहते हैं कि पदार्थ से आत्मा मिलती है। तुम्हारा मन, तुम्हारे विचार–ये तो पदार्थ हैं। मन स्थूल तत्त्व है। मन को पदार्थ की श्रेणी में माना जाता है, क्योंकि मन की उत्पत्ति पंच तत्त्वों से हुई है। और इसका योग किससे होगा? जो पदार्थ नहीं है उससे।

परमात्मा पदार्थ नहीं है। परमात्मा तत्त्व अलौकिक तत्त्व है, सर्वव्यापी तत्त्व है। जिसको परमात्म तत्त्व या आत्म तत्त्व कहते हो, उसके बारे में कहा गया है कि वह सर्वव्यापी है। इसलिए पदार्थ नहीं है। पदार्थ सर्वव्यापी नहीं हो सकता है। पदार्थ यहाँ है, तो वहाँ नहीं है। मगर परमात्मा सर्वव्यापी है। इसका मतलब यह होता है कि वह यहाँ भी है और वहाँ भी है, सर्वत्र है। जो सर्वत्र हो, वह सर्वव्यापी है।

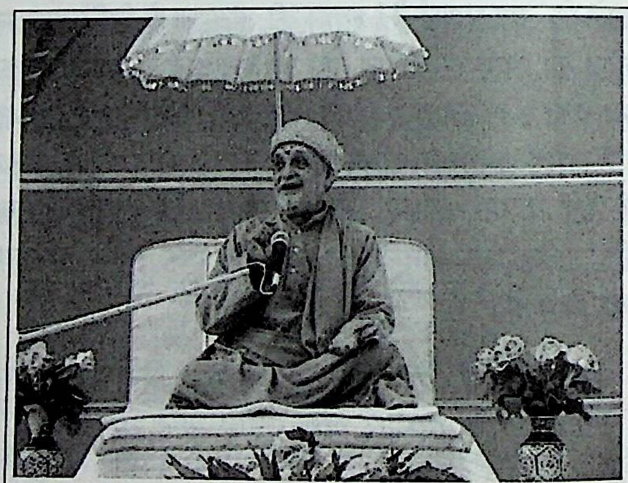
मन, जिसको तुम ध्यान में मंत्र के द्वारा उठाते हो, सूक्ष्म बनाते हो और अन्दर ले जाते हो, वह पदार्थ है। ध्यान की अवस्था में निर्विकल्प समाधि तक तुम जिस चीज़ को आगे ले जा रहे हो, वह पदार्थ है। उस पदार्थ का परमात्मा में लीन होना योग कहा जाता है। और यह दो विपरीत तत्त्वों का योग है। प्रेम का मतलब है, दो विपरीत तत्त्वों के बीच योग होना। इसलिए प्रेम को सीमित परिभाषा में नहीं मानना चाहिए, केवल उमंग और भावना के रूप में नहीं मानना चाहिए। प्रेम एक चैतन्य का नाम है। एक स्मृति का नाम है। एक पागलपन का नाम है।

कामिहिं नारी पियारी जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहू मोहि राम॥

हम गौरी-गणेश में अकेले रहते हैं। लोग प्रयास करते हैं, नहीं हो पाता है। पेट का भोजन–रोटी, दाल, भात। जीव का भोजन–समाज, दोस्ती और प्रेम। इनके बिना आदमी मर जाएगा। और हम बहुत सालों से इनके बिना जीने की कोशिश कर रहे हैं। अकेले में रहने की कोशिश करते रहे हैं। बहुत प्रयास किया। ऋषिकेश में प्रयास किया, नहीं हो पाया। गुरुजी ने ड्यूटी दे दी। हमने कहा, 'स्वामीजी, हम तो अकेले में रहना चाहते हैं।' उन्होंने कहा–'हाँ, अकेले में रहो, काम करते जाओ।' हमने कहा, 'दूसरों के साथ तो हमको काम करना पड़ता है न!' उन्होंने कहा, 'तुमको उसकी क्या चिन्ता है। तुम अकेले में रहो, अपने को एकान्त में रखो, अलख निरंजन।' नहीं हो पाया। झगड़ा हो जाता था, प्रेम हो जाता था, बुरा लगता था–यह तो संगत का परिणाम है। यह एकान्त का परिणाम तो हो ही नहीं सकता है। एकान्त के परिणाम में–न हम, न तुम, दफ्तर गुम। मगर संगत का परिणाम यही होता है, कभी झगड़ा, कभी प्यार।

फिर हम वहाँ से चले आए। बहुत दिन कहाँ-कहाँ घूमते रहे। फिर यहाँ आए। यहाँ पर बड़ी मुश्किल हो गयी। यह सड़क जिसमें आजकल इतने रिक्शे-ठेले चलते हैं, उस समय यहाँ दिन में आदमी का दर्शन नहीं होता था। दिनभर एकान्त। अब तो रिखिया थोड़े दिन में बदल जाएगा। अब सोच रहे हैं कि गौरी-गणेश को भी छोड़ कर चले जाएँ उत्तराखण्ड में। वहाँ भी कुछ इंतजाम कर लिया है, कुटिया बनवा ली है। वहाँ एकान्त में रहेंगे और क्षेत्र में भोजन कर लेंगे, एक ही बार तो खाना है। एकान्त कुटिया।

– 12 सितम्बर 2004





अध्याय 11

मंत्र दीक्षा

जो लोग मंत्र या कोई अन्य दीक्षा लेते हैं, वे अपने जीवन में एक बीज बोते हैं। जिस तरह खेत में बीज बोने से अनाज पैदा होता है, जिसका तुम फिर उपभोग करते हो, उसी तरह से यह मन भी एक खेत है। जिस मन से आप मेरी या दूसरों की बातें सुनते हैं, जिस मन में अच्छे और बुरे विचार आते हैं, वह मन भी एक क्षेत्र है। भगवान कृष्ण ने गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग-योग नाम से तेरहवाँ अध्याय कहा है, जिसमें यह बतलाया है कि जीवन एक क्षेत्र है और उस खेत में अमृत की बेल भी बोई जाती है और विष की बेल भी। जो जैसा बोएगा, वैसा पाएगा। इसे जीवन का प्रथम नियम कहते हैं। जैसे विज्ञान में भौतिकी का प्रथम नियम, द्वितीय नियम इत्यादि सिद्धान्त होते हैं, वैसे ही जीवन में भी नियम होते हैं। जैसा बोएगा वैसा पाएगा, यह नियम अपरिहार्य है, इसमें कोई विवाद नहीं है। गाजर बोया और बबूल मिला, ऐसा तो कभी देखने को नहीं मिलता। आम बोया तो आम मिलेगा, खजूर बोया तो खजूर मिलेगा।

मंत्र एक बीज है, शब्द का बीज। जीवन खेत है और विश्वास किसान। बिना किसान के तो बीज का कोई महत्त्व ही नहीं है। पर जहाँ बीज है, वहाँ खेत भी है और किसान भी। विश्वास ही किसान है और इस किसान के प्रयत्न के बिना इस बीज की रक्षा और विकास नहीं हो सकता। किसान बीज को पानी भी देता है, खाद भी देता है और उसके अगल-बगल में उत्पन्न होने वाले खर-पतवार को भी निकालता है। इसलिए दीक्षा के लिए जब लोग आते हैं, तब पहला अनिवार्य तत्त्व होता है, विश्वास। और विश्वास मंत्र से पहले आता है। पहले किसान होगा, फिर खेत होगा, फिर बीज होगा।

जितने मंत्र होते हैं, सब में से कुछ-न-कुछ पैदा होता ही है। जिस प्रकार धान डालोगे तो धान, गेहूँ डालोगे तो गेहूँ, गाजर डालोगे तो गाजर निकलेगी, उसी प्रकार जितने मंत्र हैं, उनसे निश्चित रूप से अमृत की बेल निकलती है। इसलिए यह मानकर चलना कि जो भी मंत्र हमको प्राप्त होता है, वह मंत्र एक सफल बीज है। धान न सही, गेहूँ तो मिलेगा न! कुछ-न-कुछ तो मिलेगा ही।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक अपने इस खेत में केवल खर-पतवार देखते हैं। और वे ठीक देखते हैं। आखिर जिस खेत में खेती नहीं होगी, उसमें और क्या होगा? जो खेत खाली पड़ा रहेगा, उसमें तो खर-पतवार ही होगी। कोई दूसरा विकल्प तो है नहीं। उस खेत को खर-पतवार से रहित बनाने के लिए उसमें बीज लगाना पड़ता है और उस बीज को सुरक्षित रखने एवं विकसित करने के लिए किसान को खर-पतवार निकालने का प्रयत्न करना पड़ता है। अब जिस खेत में तुम बीज लगाओगे ही नहीं, वहाँ खर-पतवार निकालने जाओगे क्या? आधुनिक मनोविज्ञान की यही कमी है। वह साधक को यह नहीं बतलाता कि खर-पतवार क्यों निकाले जाएँ। खर-पतवार निकालने के लिए प्रेरणा और उत्साह की जरूरत है। अपने मन में जो घास-फूस है, जो बुराइयाँ और विकार हैं, उनको निकालने की जरूरत क्यों है? इसलिए कि तुमको तुम्हारी गाजर और मूली मिले, नहीं तो कोई खा जाएगा सब।

मंत्र का जो बीज है, वह योग से भी पहले आता है। पहले बीज लगाओ। तब उस बीज के चारों तरफ जो खर-पतवार उग रही है, उसको निकालने के लिए योग करो। केवल योग से फायदा नहीं होता है, योग के पहले सबको मंत्र लेना चाहिए। मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि व्यक्ति खेत से तब तक खर-पतवार नहीं निकालता जब तक कि उसमें कोई बीज न बोया गया हो। मंत्र लेकर तुमने बीज बो दिया, अब बीज बोने के बाद तुमको खर-पतवार, घास-फूस निकालनी पड़ेगी। उसी को कहते हैं योग। योग का मतलब ही होता है कि जो बेकार की चीजें हैं, उनको निकालते जाओ। केवल गाजर, मूली, गोभी वगैरह काम की चीजें रहनी चाहिए, बाकी को निकाल देना चाहिए।

अत: सबसे पहले विश्वास रूपी किसान की जरूरत है, उसके बाद खेत की जरूरत है और उसके बाद बीज की जरूरत है। आसन-प्राणायाम करने से केवल मधुमेह, कमर दर्द, पीठ दर्द, नाक दर्द वगैरह दूर होते हैं, केवल शरीर के दर्द की मुक्ति से मनुष्य की मुक्ति नहीं होती। शरीर की वेदना, शरीर की बीमारियाँ, आधिभौतिक मानी जाती हैं। पर आधिदैविक और आध्यात्मिक

रोगों का क्या होगा? आखिर क्लेश, बीमारियाँ, तकलीफें, वेदनाएँ और समस्याएँ केवल भौतिक तो नहीं हैं। बीमारियाँ मानसिक और भावनात्मक भी होती हैं। और कभी-कभी नकली भी होती हैं। कई बार आपने देखा होगा, बीमारी है नहीं, मगर व्यक्ति को बीमारी की तकलीफ होती है।

मंत्र केवल अंधविश्वास पर नहीं, बल्कि एक ठोस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित है। कई लोगों को लगता है कि कान फुँकवा लेना, गुरुमंत्र लेना और चेला बन जाना, यह सब अंधविश्वास है। नहीं, यह अंधविश्वास नहीं है। मन में जो बीज गिरता है, जो भी विचार आता है, वह अविनाशी है। काम, क्रोध, ईर्ष्या, चिन्ता, सुख, दुःख, मित्रता, शत्रुता, जीना, मरना, चोरी, डकैती आदि के तो करोड़ों विचार आते हैं। जो भी विचार तुम्हारे मन में गिरता है, वह मस्तिष्क के अंदर जाकर एक पेटी में घुस जाता है। वह पेटी ऐसी नहीं कि उसका कोई वजन हो। उसको नापने के लिए किसी के पास कोई पैमाना नहीं है। अब जैसे कि ऊर्जा आवृत्तियों को किलो-हर्ट्ज़ से नापते हैं, वजन हुआ तो किलो में तौलते हैं। पर मन के अंदर जो विचार आते हैं, उनको कैसे मापा जाए? कोई मापक यन्त्र तो है नहीं। लेकिन विचार की अपनी एक आवृत्ति होती है, उसका अस्तित्व उतना ही सच्चा है जितना कि ठोस पदार्थ का। जब उस विचार को हम सामने रखते हैं, तब मंत्र का महत्त्व समझ में आता है।

मंत्र शब्द जो हमारे यहाँ संस्कृत में आता है, अंग्रेज़ी में उसको बोलते हैं पवित्र शब्द या पवित्र अक्षर। लेकिन हमारे यहाँ न तो पवित्र शब्द है और न ही पवित्र अक्षर। सीधी बात बोल रहा हूँ। मंत्र का धर्म या सम्प्रदाय से कोई मतलब नहीं है। अब ठीक है मैं शैव हूँ, एक मंत्र जपता हूँ। पर मेरी वजह से यह मंत्र शैव नहीं हो जाता। तुम वैष्णव हो, एक मंत्र जपते हो, तुम्हारी परम्परा वैष्णव है, तुम्हारे पुरखे वैष्णव थे, लेकिन तुम्हारे जपने से वह मंत्र वैष्णव नहीं हो जाता। जिस थाली में तुम खाते हो या जो कपड़ा तुम पहनते हो, वह वैष्णव नहीं हो जाता।

मंत्र का मतलब होता है– *'मननात् त्रायते इति मन्त्रः।'* मनन माने बार-बार एक ही ध्वनि का पुनरावर्तन, जैसे बार-बार राम-राम की आवाज मन में घूमती है। त्रायते का मतलब होता है, छुट्टी, विलग होना। जैसे हम लोग विद्युत-विज्ञान में इलेक्ट्रॉन्स का विलग होना बोलते हैं। जब इलेक्ट्रॉन अलग हो जाता है, तब बिजली बनती है। वैसे ही मनन करते रहने से दिमाग में से कोई चीज छूट जाती है, निकलती है। जब तुम अपने गुरु मंत्र को जपते हो, तब

बार-बार मनन करने से, एक दिन में, दो दिन में, दो साल में या दस साल में उसमें से कोई चीज अलग होती है और उस विलग होने की क्रिया को संस्कृत में कहते हैं त्रायते। तुम्हारा मन एक स्थूल तत्त्व है और इस मन में एक आध्यात्मिक शक्ति है, जो मंत्र का जप करने से अलग या स्वतंत्र होती है। इतना भर समझ लो।

अब अगली बात समझने की यह है कि जो मंत्र दिया जाता है, उसको नियमपूर्वक और क्रमबद्ध तरीके से जपना चाहिए। यह नहीं कि दिन-भर और रात-भर जपे जा रहे हैं। हमारे गुरुजी ने सन् 1943 में हमको एक मंत्र दिया था और कहा था, पाँच माला सवेरे जप करो और पाँच माला शाम को। मन लगे तो भी करो, न लगे तो भी करो। बुखार हो तो भी करो, बुखार न हो तो भी। खाना मिले तो भी करो, खाना न मिले तो भी। गरीबी में करो, अमीरी में करो। भोग में करो, योग में करो।

जिस हाल में, जिस चाल में, जिस ढाल में रहो ।
जिस संग में, जिस रंग में, जिस ढंग में रहो ॥
जिस भोग में, जिस रोग में, जिस योग में रहो ।
जिस काम में, जिस धाम में, जिस ग्राम में रहो ॥
जिस हाल में, जिस देश में, जिस वेश में रहो ।
राम भजो, राम भजो, राम भजो जी ॥

माने भगवान के जप को किसी बहाने छोड़ना नहीं। यह पहला नियम है। दूसरी बात यह कि जितना बोला उतना ही करना। मेरे को गुरुजी ने पाँच माला कहा और उसी में मेरे को बड़ी मुश्किल हो जाती थी। पाँच माला यूँ ही निकल जाती थी, क्योंकि माला जपते वक्त तो मन कहीं दूसरी जगह रहता था। कबीरदास जी कहते हैं, 'माला तो कर में फिरें, जीभ फिरे मुख मांहि, मनवा तो दस दिसी फिरे, यह तो सुमिरन नाही।' स्वामीजी से पूछा, तो उन्होंने कहा, 'चिन्ता मत करो। तुम बस करते जाओ।' आज तक पाँच माला जप चल रहा है, मैंने उसको कभी दस नहीं बनाया।

जब मैं गुरुजी की सेवा के दायित्व से मुक्त हो गया, तब मैंने एक काम किया। साधु के जीवन की एक चंचलता होती है, जिसको आश्रम कहते हैं। साधु के जीवन का भोग जब फलता है, तब आश्रम बनता है। यह योग नहीं है, यह उसके किसी कर्म के फल का भोग है। जब मेरा भोग खतम हो गया,

उसके बाद मैं यहाँ रिखिया में आकर बैठा और लगातार जप किया। एक करोड़ आठ लाख जप यहाँ किया, अखाड़े की भूमि में बैठकर। उसमें तीन साल लगे। इसको कहते हैं पुरश्चरण। मंत्र में जितने अक्षर होते हैं, उतने लाख बार मंत्र जपने को पुरश्चरण कहते हैं। जब समय मिले, जब भोग से मन को थोड़ा विश्राम हो, तब दार्जिलिंग, नैनीताल, भीमताल वगैरह चले जाओ। वहाँ एक कमरा ले लो, पन्द्रह दिन में अपने मंत्र का एक पुरश्चरण कर लो, जिसको कहते हैं अनुष्ठान। पर यह अनुष्ठान रोज-रोज नहीं होता। जैसे हर रोज पर्व-त्यौहार नहीं होता, हर रोज घर में पूरी-कचौड़ी नहीं बनती, वैसे ही कभी दो-तीन साल में एक बार बैठकर अपना पुरश्चरण कर लेना चाहिए।

मंत्र का एक ही नियम है कि उसको नित्य जपना चाहिए। मंत्र का मनुष्य के जीवन, उसकी उपलब्धियों, मोक्ष, सफलता और असफलता पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। कैसे पड़ता है, यह तो मेरे को भी समझ में नहीं आता है। इसे कैसे समझाऊँ? मगर पड़ता निश्चित रूप से है। हमारे गुरुजी कहते थे, 'बोओगे तो पाओगे जरूर, इसमें कोई शक है ही नहीं।' तो पाँच माला का जो नियम हमको हमारे गुरुजी ने दिया था, आज भी वह पाँच माला ही चल रहा है।

अब हमको उससे क्या मिला? हमने तो कभी कुछ चाहा नहीं, हमारे मन में तो कभी चाहना नहीं रही। हमारे मन में एक ही चाहना थी कि संन्यास का जीवन आराम और अनासक्ति के साथ गुरुकृपा में बीते। और बीत गया है। इक्यासी साल बड़े आराम के साथ बीते, कोई दिक्कत नहीं हुई। अब आपके मन में क्या संकल्प है, क्या मंशा है, क्या इच्छाएँ हैं, यह तो आप जानिए। मैं तो बस आप लोगों को अपने हृदय से सद्भावना प्रदान करता हूँ और यह विश्वास करता हूँ कि यह बहुत बड़ी चीज़ जो हमारे देश के ऋषि-मुनियों ने प्राचीन काल से दी है, इस दीक्षा को आप लोग सही भाव से स्वीकार कर सकेंगे।

कर्म-संन्यास

कर्म-संन्यास की दीक्षा जो यहाँ दी जाती है, यह गीता का कर्म-संन्यास है। कर्म-संन्यास का मतलब होता है कि तुमको अब पता लग गया है कि कमल जल में कैसे रहता है या बेचारी जीभ तीखे दाँतों के बीच में कैसे रहती है या फिर प्लास्टिक का बरसाती कोट इतनी बरसात में भी जैसे का तैसा कैसे रहता है। हाँ, ऐसे रहा जा सकता है कि पानी पड़ता रहे, पर मैं सूखा रहूँ। कमल जल में पैदा होता है, पर जब कमल को तुम निकालते हो, तब कहीं पानी नहीं

मिलेगा तुमको। कमल पानी में पैदा हुआ, पानी के बिना रह नहीं सकता, लेकिन फिर भी ऐसे कमल को पानी छू नहीं सकता है। इसी तरह तुम दुनिया में रहते हो, जहाँ सुख, दु:ख, दर्द, अरमान, असफलता और निराशा हैं। मन झूले की तरह कई बार ऊपर-नीचे आता-जाता है। यह सब तो दुनिया में है, कैसे रहोगे यहाँ जीभ की तरह। बेचारी जीभ बत्तीसी के बीच में रहती है, पर कितनी होशियारी से चल रही है, कहीं कट नहीं रही है। अगर एक बार कट जाए, तो फिर बोलने की हिम्मत नहीं रहेगी। जिस तरह से जीभ इन बत्तीस तीखे दाँतों के बीच में काम चलाती रहती है, बतियाती रहती है, पर कटती नहीं, उसी तरह से इस दुनिया में भी जीव को रहना है। कर्म-संन्यास के बारे में गीता का यही उपदेश है।

कर्म-संन्यास का मतलब यह नहीं होता कि कर्म को त्याग दो। इसका मतलब होता है कि अपने कर्मों को तुम समर्पित कर दो। तुम क्यों कर्म कर रहे हो, क्यों बच्चा पैदा कर रहे हो, क्यों धन-सम्पत्ति का अर्जन कर रहे हो, क्यों नाम और यश का अर्जन कर रहे हो? किसके लिए? अपने लिए? नहीं, अपने लिए तो कुछ करने की जरूरत ही नहीं है। तम्बोली दिन भर तम्बाकू बेचता है और उसके बदन से तम्बाकू की बास आती रहती है। उसको क्या तम्बाकू लगाना पड़ता है? अस्पताल से डॉक्टर बाहर निकलता है, तो उससे डेटॉल की महक आती है। वह डेटॉल लगाता है क्या? अतरफरोश दिनभर अतर बेचता रहता है, उसके शरीर से अतर की सुगंध आती है। 'बाँटनवारी के लगे ज्यूँ मेंहदी के रंग।' जो स्त्री मेंहदी बाँट रही है, मेंहदी लगा रही है, उसको अपने हाथ में मेंहदी लगाने की जरूरत है क्या?

इसी तरह से जो कुछ तुम करते हो, दूसरे के लिए करो। तुमको जो तनख्वाह मिलती है, दूसरे के लिए मिलती है। और यही बात सही है, लेकिन तुम लोग समझ नहीं रहे हो। बाप जो कमाता है, वह बेटे, बेटी, बीबी, बाबा, चाचा, ताऊ के लिए कमाता है, अपने लिए तो बेचारा दो रोटी कमाता है। वास्तव में तुम कमाते तो दूसरों के लिए हो, पर तुम्हारे अन्दर यह ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है कि मैं केवल अपने लिए नहीं कमाता हूँ। मानलो, तुम तीस-चालीस हज़ार रुपया महीना कमाते हो, मगर क्या खाते हो उसको? चालीस हज़ार रुपये की कोई पाव-रोटी मिलती है क्या? नहीं। बेटा, बेटी, दामाद, साला, साले का साला, ये सब खाते हैं। या फिर वकील, डॉक्टर, मुंशी या मजिस्ट्रेट खाते हैं। तुम तो बेचारे दो रोटी खाकर सो जाते हो।

मनुष्य को दूसरों के लिए जीवित रहना चाहिए, यही कर्म-संन्यास का सिद्धान्त है। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को केवल इतना कहा– *'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्*–हे अर्जुन! मरोगे तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे, जीओगे तो दुनिया का भोग करोगे।' संघर्ष और कर्म का त्याग नहीं करना है। आखिर किस संन्यासी ने कर्म का त्याग किया? क्या स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आदि शंकराचार्य या भगवान बुद्ध ने कर्म का त्याग किया था? तब तुम कैसे कह सकते हो कि कर्म-संन्यास त्याग का उदाहरण है। त्याग का मतलब वस्तु को छोड़ना नहीं होता, यदि ऐसा होता तो सड़क के किनारे बैठा हुआ भिखारी जिसके पास कुछ भी नहीं है, दुनिया का सबसे बड़ा त्यागी होता। लेकिन उसके मन में कितनी आशाएँ हैं। त्याग का मतलब मोह और ममता को छोड़ना होता है। आशा, अपेक्षा और आसक्ति के त्याग को ही गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाया है–

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥5.8॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥5.9॥

खाते, पीते, सोते, उठते, बैठते, जागते, तुम केवल कर्म की चिन्ता करो। सांसारिक कर्मों को करते हुए इस बात को हमेशा याद रख लो कि तुम कर्त्ता नहीं हो। कर्म-संन्यासी और संन्यासी में केवल इतना अंतर होता है कि कर्म-संन्यासी अपनों के बीच में रहता है, जबकि संन्यासी अकेले रहता है। एक निरंजन, दो गड़बड़, तीन लटपट और चार चौपट। संन्यासी का इतना ही सिद्धान्त होता है। अपनी न कोई बीबी है, न जोरू, न जत्था, न झोला और न झण्डा। हमने तो अब झोला-झण्डा भी छोड़ दिया है।

जिज्ञासु संन्यास

तीसरी दीक्षा है जिज्ञासु संन्यास की। जिज्ञासु संन्यास में व्यक्ति को हमेशा ज्ञान की इच्छा से प्रेरित रहना चाहिए, क्योंकि दुनिया में कर्म सम्बन्धी, जीवन सम्बन्धी, व्यवहार सम्बन्धी और आत्मा सम्बन्धी बहुत से प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उसको निराकरण करना होगा। तुमको जीवन के बारे में प्रश्न उठाने चाहिए। हमारे पूरण के मन में प्रश्न नहीं उठते हैं। घर में जो बिल्ली वगैरह

होती हैं, उनके भीतर भी कोई प्रश्न नहीं उठते हैं। मगर साधक के भीतर प्रश्न उठने चाहिए। कितने सारे प्रश्न हैं। भगवान से सम्बन्धित प्रश्न तो अभी तक अनुत्तरित रहे हैं। भगवान के अलावा बहुत सारे प्रश्न हैं—कर्म, पुनर्जन्म, चेतना, चेतना के धरातल, स्वप्न, जाग्रत, सुषुप्ति, तुरीया—ये सब क्या हैं? इसको कहते हैं जिज्ञासा, जानने की इच्छा। यह जो जानने की इच्छा है, इसकी पूर्ति के दो रास्ते हैं—सत्संग और स्वाध्याय।

सत्संग और स्वाध्याय के लिए बहुत पुस्तकें हैं। संत-महात्माओं ने बहुत सरल भाषा में पुस्तकें लिखी हैं, अंग्रेजी में भी और हिन्दी में भी। उनमें स्वामी विवेकानन्द जी और स्वामी शिवानन्द जी की पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। आप लोगों के लिए तीन मुख्य आधार हैं—गीता, श्रीमद्भागवत और रामायण। इन तीनों में से किसी एक को आधार बना कर ऐसी पुस्तकों का अध्ययन नियम से करना चाहिए।

शरीर रूपी भवन

जिसने यह नौ दरवाजों वाला शरीर रूपी भवन बनाया है, वह पता नहीं कहाँ बैठा हुआ है।

बँगला खूब बना महाराज, जिसमें नारायण बोले।
पाँच तत्त्व की ईंट थपाई, तीन गुणों का गारा,
राम नाम की करनी बनाई, साँवरिया चेजारा।
इस बँगले में दस दरवाजे, बीच पवन का खंभा,
आवत-जावत कोऊ नहीं देखा, यही एक अचंभा।
इस बँगले में बाग लगाया और लगी फुलवारी,
कच्चा, पक्का कुछ न देखा, तोड़ लिया गिरधारी।
एक अचम्भा हमने देखा, नारी पुरुष का जोड़ा,
कहत कबीर सुनो भई साधो, जिन जोड़ा तिन तोड़ा।

इस शरीर में एक चोर दरवाजा भी है, दसवाँ द्वार, पर वह दरवाजा बन्द है। '*दसवें द्वारे ताली लागी, अलख पुरुषवा को ध्यान धरे।*' उस दरवाजे का जो चौकीदार है, वह अलख पुरुष है। अलख माने जो दिखाई न दे, पुरुष माने आत्मा। आत्मा जो दिखाई नहीं देती है, वही उसकी द्वारपाल है। किसी को वहाँ से जाने नहीं देती। जो इस जनम में भगवान का ध्यान करता है, उसी को जाने

की अनुमति मिलती है। तब दसवें दरवाजे से वह सीधा चला जाता है ऊपर, जहाँ अल्लाह मियाँ रहते हैं।

हम लोगों ने मिलकर एक साधना केन्द्र शुरू किया है। कृपया इस सम्बन्ध में थोड़ा मार्गदर्शन करें।

उपभोक्तावाद ने आज लोगों के सामने बहुत बड़ी चुनौती रखी हुई है। इसलिए साधना केन्द्र या योग केन्द्र चलाओ, बहुत अच्छा है, परन्तु आदमी को वहाँ जमकर रहना चाहिए। जैसे अब हमारे यहाँ रिखिया पंचायत में एक जवान लड़का है। उसने कर्जा लिया और मुंगेर गया। दो साल उसने बिहार योग भारती में प्रशिक्षण लिया, वहाँ से एम.एस सी. डिग्री प्राप्त की। वह शादी-शुदा है, उसके बाल-बच्चे भी हैं। लेकिन उसका मन योगमय है। वह बोलता है कि हम योग के अलावा कोई दूसरी चीज नहीं सिखाएँगे। जब भी यहाँ आता है, चौबीस घण्टे यहीं रहता है। उसके बच्चे भी आश्रम में रहते हैं, उनको यहाँ अच्छा लगता है। वे झाड़ू देते हैं, सफाई करते हैं, सब कुछ करते हैं। वह बोलता है, घर में रहकर क्या करेंगे? घर में जाहिल माँ जाहिल ही बनाती रहेगी। यहीं रहें तो ठीक है, कम-से-कम यहाँ कुछ सीखेंगे।

योग शिक्षक का ऐसा ही भाव होना चाहिए। अब उस आदमी को अगर कहीं पर भी योग सिखाने का मौका मिलेगा, तो वह अच्छा काम करेगा, क्योंकि वह उसी वातावरण का भक्त है। उसके लिए योग और संसार दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। उसके लिए जीवन का एक ही मकसद है, जिसका नाम है योग और उसी के अन्दर वह अपनी पत्नी, बच्चों और कमाई को फिट रखता है। उसने दो मकसद नहीं बनाए कि सवेरे दो घण्टे योग सिखा दिया और बाकी समय कुछ और चल रहा है। योग उसके जीवन का आधार हो गया है। अब वह जहाँ भी काम करके पाँच-दस हज़ार कमाएगा, उसका पैसा पूरा बचने वाला है, क्योंकि जो लोग योग के रास्ते में आते हैं, वे बहुत मितव्ययी होते हैं।

जो साधक-साधिकाएँ होती हैं, चाहे वे शादी-शुदा हों या ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी हों, कोई फर्क नहीं पड़ता, मगर उनको प्रकृति के नियमों के विरुद्ध नहीं जाना चाहिए। फिजूलखर्ची प्रकृति के नियमों का विरोध है। जहाँ एक साड़ी से काम चलता है, वहाँ दूसरी साड़ी की जरूरत नहीं। इससे बाजार नियंत्रण में रहेगा। फिजूलखर्ची से बाजार में महँगाई बढ़ती है। देश की मुद्रा के लिए एक बहुत बड़ी खतरे की चीज है फिजूलखर्ची।

मेरे कहने का मतलब यह है कि आप जो योग केन्द्र चलाने की बात कर रहे हैं, वहाँ इस चीज का ख्याल रखना कि वहाँ का वातावरण उस आदमी पर निर्भर रहे, जो वहाँ का आचार्य है। तब फिर कोई व्यक्ति उस आश्रम के पैसे का अपव्यय नहीं कर सकता है। आश्रम की सम्पत्ति की बर्बादी आश्रम के मुखिया की तरफ से शुरू होती है। जितने भी आश्रम, मंदिर या घर बर्बाद हुए हैं, अंदर से ही तो बर्बाद हुए हैं। सीधी-सी बात है। गुरु को गुरु की तरह रहना होगा। हम यह नहीं कहते कि वह शादी न करे, उसके बच्चे न हों। राम जी के भी तो अपने बच्चे थे। परिवार होने में कोई हर्ज नहीं, बच्चे होने में कोई हर्ज नहीं, परन्तु कुछ चीजें योग में ऐसी हैं जहाँ मनुष्य सिद्धान्तों का कभी निरादर नहीं कर सकता। फिजूलखर्ची एक ऐसी ही चीज है।

अब रसोईघर में लोग लौंग, अदरख, बड़ी इलायची, छोटी इलायची वगैरह सब डाल रहे हैं। यह सब क्या है, समझ में नहीं आता। सीधे सब्जी खानी है। तेजपत्ते में कैलोरी नहीं होती। कैलोरी रोटी, चावल, चीनी, दाल, अनाज में होती है। तुमको तो कैलोरी से मतलब है न! आदमी खाना क्यों खाता है? ताकत के लिए खाता है, ताकि दिनभर काम कर सके। सीधा हिसाब है। अब आप लोगों के यहाँ वनस्पती घी में सब्जी तलने का हिसाब आया कहाँ से, मेरी समझ में नहीं आता। भारत की प्राचीन संस्कृति में कोई सब्जी या गोश्त वनस्पती घी में नहीं तले जाते थे। प्राचीन काल से वेदों, शास्त्रों और आयुर्वेद में लिखा हुआ है। केवल तेल में तला जाता था। अब यह वनस्पती वसा लोगों को एकदम गोलमटोल बना देती है। गोरखनाथ जी ने कहा भी है, 'मोटा-मोटा कूल्हा, मोटा-मोटा पेट, सुन रे गोरखा नहीं गुरु से भेंट!'

भोजन और रहन-सहन में फिजूलखर्ची कम होनी चाहिए। आश्रमों में फिजूलखर्ची एकदम बन्द होनी चाहिए। चाहे किसी को पसंद हो या न हो। अब यहाँ पर पंखे नहीं हैं। क्यों नहीं हैं? इसलिए कि जरूरत नहीं है। दिल्ली, धनबाद, बंगलौर, कलकत्ते जैसे शहरों में जरूरत हो सकती है, पर किसी भी गाँव में पंखे की जरूरत नहीं है, क्योंकि चारों तरफ खुला हुआ आसमान है। पंखा तो हवा को केवल घुमाता है। पर यहाँ तो घुमाने की जरूरत नहीं है, जहाँ देखो वहाँ ताजी हवा है। यहाँ तो ऑक्सीजन ही ऑक्सीजन है। तुमको यहाँ भरपूर ऑक्सीजन समृद्ध वायु मिलती है, इसीलिए हमने कहा जब ऑक्सीजन मिल रही है, तब ऑक्सीजन को क्यों घुमाओगे, पंखे लगाने की जरूरत नहीं है।

– 30 सितम्बर 2004



अध्याय 12

रिखिया भक्तियोग की जगह है। मुंगेर राजयोग और हठयोग का स्थान है, लेकिन यहाँ राजयोग और हठयोग नहीं है। यहाँ केवल भक्तियोग और कर्मयोग है। भक्ति माने भगवान का नाम लेना, भजन करना और कर्मयोग का मतलब होता है, अगल-बगल में कहीं पर कचरा, प्लास्टिक वगैरह गिरा हो, तो उठा कर जला दो, कहीं टट्टी वगैरह पड़ी हो तो उसको साफ कर दो, बच्चों को थोड़ा पढ़ा दो, किसी को दवाई दे दो। जिनको कर्मयोग और भक्तियोग में दिलचस्पी है, उनको यहाँ का कार्यक्रम निश्चित रूप से मालूम करके रखना चाहिए और यहाँ आकर सीखना चाहिए। पर जिनको आसन और प्राणायाम सीखना है, उनको तो मुंगेर ही जाना होगा, यहाँ उसका कोई उपाय नहीं है। वह भी एक रास्ता है भगवान के अनुभव का और यह भी एक रास्ता है। परन्तु आम आदमी के लिए भगवान के अनुभव का सबसे छोटा रास्ता रिखिया से होकर जाता है, मुंगेर से होकर नहीं। मुंगेर से होकर भी जाओगे, तो रिखिया ही आना पड़ेगा।

हठयोग शरीर और बीमारी से सम्बन्ध रखता है और राजयोग मन और मस्तिष्क से। लेकिन भक्तियोग और कर्मयोग केवल दिल और भावना से सम्बन्ध रखते हैं। भगवान को पाने के लिए सबसे उत्तम रास्ता भक्ति का है। पर बहुत से लोग आसन-प्राणायाम सीखना चाहते हैं, क्योंकि किसी को मधुमेह है तो किसी को कमर दर्द है। सीखना हो तो सीखें, पर वापस उनको रिखिया ही आना पड़ता है। तो बजाय इसके कि पहले मुंगेर जाओ और बाद में रिखिया आओ, सीधे ही रिखिया आ जाओ तो अच्छा है। यहाँ कीर्तन में क्या आनन्द आता है! हमारे ये सब हाफ-टिकट (कन्या-बटुक) रहते हैं कीर्त्तन

में। ये सब चिल्लर हैं, सौ या पाँच सौ रुपये का नोट नहीं। पाँच सौ रुपये का नोट तो नकली भी हो सकता है, लेकिन चिल्लर में कभी खोट नहीं होती।

शुरू-शुरू में पन्द्रह-बीस बच्चे थे। अब पाँच-छः सौ हो गए हैं और अगले साल तक पूरे दो हज़ार हो जाएँगे। रिखिया पंचायत के सब हाफ-टिकट को हम ले लेंगे। ये लोग यहाँ आकर अंग्रेजी सीखते हैं, इनका स्कूल बगल में ही है। सरकारी स्कूल है, मगर बहुत अच्छा है। यहाँ के कलेक्टर ने बहुत अच्छा भवन भी बनवा दिया है। पढ़ाई अच्छी होती है, बहुत बच्चे पढ़ते हैं। हम उस पर नजर रखते हैं, मास्टर लोगों पर भी नजर रखते हैं।

जब हम आए थे, तब यहाँ कोई स्कूल नहीं जाता था। पर अब सब जाते हैं। अब इनमें से कुछ लोगों को कम्प्यूटर भी सिखा रहे हैं। अभी दस-बारह हैं जिनको अंग्रेजी आती है, वे कम्प्यूटर क्लास में चले गए हैं। इन्होंने तो पहले कभी कम्प्यूटर देखा ही नहीं था। मालूम ही नहीं था कि यह किस चिड़िया का नाम है। पहले तो इन्होंने उसका हर बटन सीखा, कैसे उसको ऑन-ऑफ करते हैं। फिर वर्ड, एक्सेल और ग्राफिक्स सीखा। ये तीन चीजें इन्होंने दो-तीन महीने में सीख ली हैं। इस साल के अन्त तक पचास को लेने की योजना है। और वे सब तेरह साल की उम्र से नीचे होंगे, बीस-बाइस साल के नहीं। हमारे यहाँ तेरह-चौदह साल में सेवा-निवृत्ति हो जाती है, उसके बाद ये सब सौ रुपये का नोट हो जाते हैं! तेरह-चौदह साल तक ये चिल्लर रहते हैं। एकदम कोई खोट नहीं रहती है इनमें।

परमार्थ

स्वार्थ का मतलब 'स्व-अर्थे', अपने लिए। जो चीज तुम अपने लिए करते हो, वह स्वार्थ है। और जो तुम दूसरे के लिए करते हो, उसे परमार्थ कहते हैं। दूसरे का मतलब जो तुम्हारा नहीं है। पति-पत्नी, बेटा-बेटी, बहन-भाई, माँ-बाप, सास-ससुर, चाचा-भतीजा, ये सब अपनों में आते हैं। जिनके साथ तुम्हारा सम्बन्ध होता है, वे सब तुम्हारे होते हैं। उनके लिए जो भी तुम करते हो, स्वार्थ है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम उनकी सेवा मत करो। सेवा करनी ही पड़ती है। परन्तु एक बात याद रख लो कि जीवन में संतुलन की जरूरत है। यह सारी ज़िन्दगी संतुलन पर चलती है। स्वार्थ के साथ परमार्थ भी करना होगा। स्वार्थ और परमार्थ के बीच कितना अनुपात होना चाहिए, यह भी हमारे ऋषि-मुनियों ने बता दिया है। परमार्थ के लिए दसवाँ भाग और बाकी स्वार्थ के

लिए। शास्त्रों ने तुम्हारे लिए कितना बड़ा बजट बना दिया, नौ भाग तुमको दे दिए और एक भाग दूसरों को दिया। कम-से-कम एक भाग दूसरों के लिए जरूर होना चाहिए।

इसमें एक सबसे बड़ी बात यह है कि जो भी तुम करते हो, देते हो, सोचते हो, उसको खैरात मानकर नहीं, भगवान की पूजा समझ कर करना है। जब हम अपने बच्चे को दूध पिलाते हैं, तो खैरात करते हैं क्या? हम अपनी माँ के पैर दबाते हैं या अपने पति या पत्नी की सेवा करते हैं, तो एहसान करते हैं क्या? नहीं, उसको कहते हैं प्रेम। लेकिन हम प्रेम भी नहीं कहते, हम कहते हैं उपासना। इसीलिए हमने रिखिया पंचायत में कन्याओं को चुना, क्योंकि कन्याएँ हमारे शास्त्र में देवीजी का प्रकट रूप हैं। और जो कुछ भी हम कन्याओं के प्रति करते हैं, वह सीधा देवीजी को जाता है, सीधा परमात्मा को प्राप्त होता है। तो इसमें दान-धर्म का सवाल ही कहाँ उठता है? भगवान को तुम क्या दान दोगे? उलटे बाँस बरेली को! बस, सेवा में यही भाव रखना चाहिए।

कितने ही लोग हमसे कहते हैं, 'स्वामीजी, मन नहीं लगता ध्यान में।' लगेगा कैसे? तुम तो सीधे बी.ए. की कक्षा में बैठ गए। अब वहाँ प्रोफेसर साहब आकर उच्च स्तरीय गणित पढ़ा रहे हैं और तुमको कुछ समझ में नहीं आ रहा है। पहले तीन तिया नौ, तीन चौके बारह तो सीखा नहीं, सीधे उच्च स्तरीय गणित पढ़ने लग गए। जब घर लौटे और मम्मी ने पूछा, 'बेटा, आज क्या पढ़ा?' तब तुम बोले, 'कुछ समझ में नहीं आया।' जब सत्संग से लौटे तो बड़े भैया ने पूछा, 'स्वामीजी क्या बोल रहे थे?' 'पता नहीं क्या बोल रहे थे। बड़ी ऊँची बात बोल रहे थे।' अरे! तो तुम वहाँ गए ही क्यों? तुमको वेदान्त या सांख्य योग की कक्षा में जाने से पहले कम-से-कम अपने को तैयार करना चाहिए था।

अपने आपको तैयार करने का तरीका मैं तुमको बतला रहा हूँ। वह है रिखिया का तरीका–पहली चीज, अपने जीवन के नौ हिस्से अपनों के लिए, बाकी का एक हिस्सा दूसरों के लिए। मैं रुपये-पैसे की बात नहीं बोल रहा हूँ, किसी की जेब पर मेरी नज़र नहीं रहती है। नहीं, मेरे पास तो ब्लैंक चेक है, मेरे को चिन्ता नहीं। पर तुम अपने दिल का दसवाँ हिस्सा दूसरों को दो। जब तुमको सुख मिलता है, तब उसका एक हिस्सा दूसरों के लिए, नौ हिस्से अपने लिए। इसीलिए हमारे यहाँ जब किसी की पदोन्नति होती है या किसी के यहाँ

बच्चा होता है या शादी होती है, तब मंदिर में जाकर प्रसाद चढ़ाते हैं, गुरुजी के यहाँ देते हैं। बस, वही तरीका है, एक हिस्सा दूसरों के लिए और नौ हिस्से मेरे अपने लोगों के लिए।

अपने गुरुजी से हम सन् 1943 में मिले थे, आज इकसठ साल हो चुके हैं। हमारे गुरुजी ने हमसे कहा, 'देखो सत्यानन्द, लक्ष्य मत बनाओ।' ध्यान देना, क्योंकि यह मेरा वचन नहीं है, मेरे गुरु का वचन है। उस वक्त मेरी उम्र उन्नीस-बीस की थी। गरम दिमाग, गरम खून, सब कुछ गरम। उन्होंने मेरे को कहा कि लक्ष्य मत बनाओ, क्योंकि जो लक्ष्य तुमने बनाया है, उसका अस्तित्व है भी या नहीं, इस बात का क्या भरोसा। जिस लक्ष्य की बात तुम कर रहे हो, चाहे वह सविकल्प समाधि हो या निर्विकल्प समाधि हो या मोक्ष हो, वह अस्तित्व में है भी कि नहीं? हो सकता है वह काल्पनिक हो। हो सकता है कि वह लक्ष्य हो ही नहीं और तुम चलते ही रहो, चलते ही रहो। दुनिया के अंतिम छोर तक तुम चलते गए, मगर तुमको न तो दुनिया का अंतिम छोर मिला और न ही अपना मनोकल्पित लक्ष्य। इसलिए लक्ष्य मत बनाओ। तब हमने पूछा कि फिर क्या करें। उन्होंने कहा कि यह मन्त्र है, तुम सवेरे बिस्तर से उठते ही और रात को सोने के पहले पाँच माला इसको चुपचाप जप लेना।

अब जप करते वक्त हम एकाग्र होना चाहते हैं, पर मन तो वहाँ से भाग जाता है। हर एक आदमी की यही प्रवृत्ति है। मन भागता है, फिर आ जाता है। हमारे गुरुजी ने हमारे साधना के पाठ्यक्रम में से एकाग्रता का वह पाठ ही निकाल दिया। बोले, 'केवल जप करो।' अब होता क्या था, मैं माला हाथ में लेता था, लेकिन पाँच माला कभी जप नहीं पाता था। नींद आ जाती थी, सवेरे भी और रात को भी, क्योंकि दोनों ही समय सोने के लिए इतने बढ़िया थे। सवेरे बिस्तर से उठते ही और रात को सोते वक्त, दोनों समय माला गिर जाती थी और फिर उठाकर सोचते थे कि माला कहाँ छूटी।

अब मन में एक विकार आता था। क्या मालूम पाँच माला पूरी भी हुई कि नहीं? तो हमने स्वामीजी को एक दिन ऐसे ही बातचीत में कहा कि स्वामीजी, जप पाँच माला होता है या छः माला या दो माला, कुछ पता ही नहीं चलता है। उन्होंने पूछा, 'मगर तुम करते तो हो न!' मैंने कहा, 'बैठते भी हैं, जप करते भी हैं और बार-बार हम अपनी जाँच भी करते रहते हैं। एक ही काम नहीं किया कि चुटिया ऊपर बाँध नहीं ली!' प्राचीन काल में ब्रह्मचारी चुटिया बाँध देते थे, लेकिन हम संन्यासी लोगों की तो चुटिया

होती नहीं। अगर गला बाँधें, तो कहीं फाँसी न लग जाए! बस, आज तक वही हाल है, इकसठ साल हो गए।

आदमी चढ़े साल साठा,
हुआ बल का घाटा,
पकड़ हाथ लाठी, चले बम का नाटा,
व्यथाओं ने लगाया मुख पर जो चाँटा,
हुई पीड़ तन में, हुआ सूख काँटा
फिर भी लेने चले जन्मदिन की बधाई।

आज भी हमारा वही चलता है, पाँच माला सवेरे, पाँच माला शाम को। लक्ष्य क्या? कुछ नहीं। और जो बोल रहा हूँ, तुम करके देखो। कहीं-न-कहीं तो तुम पहुँचोगे ही, यह गारंटी के साथ कहता हूँ। किन्तु यदि तुमने लक्ष्य बनाया, तो फिर गारंटी नहीं देता हूँ। और मन के साथ तुम लोगों ने अगर कहीं मुठभेड़ की, तो फिर गारंटी का सवाल ही नहीं, क्योंकि तुम अपने मन के साथ जो मुठभेड़ कर रहे हो, वह बहुत बड़ी गलती कर रहे हो। तुम तो एकदम पिल्ले हो और मन जो है वह *'प्रमाथि बलवद्दृढम्'*, बहुत बलवान् है। उस बलवान् के साथ मुठभेड़ नहीं करना। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–*असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्*–'अर्जुन! यह पक्की बात है कि मन को वश में करना कठिन है, क्योंकि यह बहुत बलवान् है।' इसलिए मन के साथ तो तुम मुठभेड़ करना ही मत। यह भक्तियोग और कर्मयोग का मार्ग बतला रहा हूँ तुमको, राजयोग का नहीं। राजयोग में तो वही है कि जब विचार आया, उसे रोको। मगर राजयोग सामान्य व्यक्ति के लिए नहीं है। यह बहुत ऊँचे उठे हुए व्यक्तियों और महात्माओं के लिए है।

विजयदशमी

आज विजयदशमी का दिन है और यह दो सम्प्रदायों का पवित्र उत्सव है। एक वैष्णव सम्प्रदाय का और दूसरा शाक्त सम्प्रदाय का। नौ दिन तक वैष्णव और शाक्त सम्प्रदाय वाले इस पर्व को मनाते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय वाले राम और रावण को सामने रखकर इस पर्व को मनाते हैं और शाक्त सम्प्रदाय वाले देवी जी और महिषासुर को सामने रख कर। राम और रावण एक इतिहास है, जो बीत चुका है। परन्तु इतिहास सदा इतिहास नहीं रहता, वह एक

पौराणिक दन्तकथा बनता है, और वही पुराण मनुष्य के वर्तमान में एक सत्य बनता है, एक यथार्थ बनता है। दन्तकथाओं ने राम और रावण को सत्य और असत्य का, दैवी और आसुरी शक्ति का प्रतीक माना है। अपने अन्दर जो अज्ञान है, अपने चारों तरफ जो अविद्या फैली है, अपने समाज में जो भ्रष्टाचार फैला है, सारी दुनिया में जो आंतक फैला है, वह आज का असुर है, रावण है। आज रावण का वध प्रतीक के रूप में नहीं, पौराणिक कथा के एक पात्र के रूप में नहीं, इतिहास की एक हस्ती के रूप में नहीं, बल्कि यथार्थ रूप में करना है, यही इस पर्व का मतलब होता है। अर्थात् मैं अपने मन से अविद्या और अज्ञान निकालूँगा, तब मैं कह सकूँगा कि रावण या महिषासुर मर गया।

ईश्वर को हम राम के रूप में भी देखते हैं और देवीजी के रूप में भी। देवीजी का रूप अत्यन्त प्राचीन है। मनुष्य ने आज से लाखों साल पहले, अपने जीवन के आदिकाल में, जब उसने देखना-सोचना शुरू ही किया था, सबसे पहले ईश्वर को माँ के रूप में देखा। उसे स्त्री रूप में देखा, पुरुष रूप में नहीं। संसार को बनाने वाला जो भी हो, उसकी सबसे पहले जो पूजा चली, वह स्त्री के रूप में चली। नारी पूजा, स्त्री पूजा और देवी पूजा, यहीं से पूजा की शुरुआत होती है, क्योंकि आदिकाल में हमारा समाज मातृ-प्रधान समाज था। आज हमारा समाज मातृ-प्रधान नहीं, पितृ-प्रधान है। इसलिए हमने ईश्वर को भी पुरुष के रूप में कल्पित किया है, श्रीराम, शिवजी या गणेशजी के रूप में। अब भगवान चाहे स्त्री हो या पुरुष, उससे अपने को अभी कोई मतलब नहीं है। मतलब केवल इतना है कि वह परमात्मा की शक्ति आज के दिन हम लोगों के अन्दर ज्ञान, प्रकाश, विद्या, शक्ति, सम्पत्ति और मंगल के रूप में जागृत होती है।

रावण के दस सिर थे, इसीलिए हम इस पर्व को दशहरा भी बोलते हैं। हमारे भी दस सिर हैं, पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हम संसार के सब भोगों को ग्रहण करते हैं। ये दस इन्द्रियाँ रावण का स्वरूप हैं, प्रतीक हैं और इस रावण के सिर काटते-काटते रामजी हार गए। विभीषण की तरफ देखने लगे कि यह सब क्या हो रहा है। बार-बार उसके सिर काटते थे, बार-बार वे वापस आ जाते थे। तब विभीषण ने कहा, 'महाराज, जब तक अमृत का पिण्ड सूखेगा नहीं, तब तक रावण मरने वाला नहीं है।' रावण के दस सिरों की तरह ये जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती

हैं, इनको जीतना होता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि तुम अपनी नाक काट दो या कान काट दो या गाँधारी की तरह आँखों पर पट्टी बाँध लो। इन्द्रियों को रोकने से कुछ नहीं हो सकता, जब तक कि तुम अपने मन से तृष्णा को नहीं निकालते।

तृष्णा एक प्यास है। और यह तृष्णा उम्र के साथ घटती नहीं, बल्कि बढ़ती है। लोगों के बाल जितने सफेद होते जाते हैं, उनकी तृष्णा उतनी काली होती जाती है। तृष्णा कभी बुढ़िया नहीं होती, वह हमेशा जवान रहती है।

वलीभिर्मुखमाक्रान्तं पलितेनांकितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥

तुम्हारे अन्दर में वह तृष्णा नाभि में है, जिसको कहते हैं मणिपुर। तृष्णा मनुष्य के अन्दर छुपी है और जब तक वह तुम्हारे अन्दर है, तुम रावण को मार नहीं सकते, इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। वह तृष्णा चाहे भोग की हो, चाहे योग की, आखिर हथकड़ी तो हथकड़ी है, चाहे सोने की पहनो या लोहे की। अब इस तृष्णा का क्या करना है। रामचन्द्रजी ने विभीषण से पूछा कि इस अमृत रूपी तृष्णा को सुखाने का क्या तरीका है। तब उन्होंने वायवास्त्र, पर्जन्यास्त्र, नारायणास्त्र, पाशुपतास्त्र या ब्रह्मास्त्र, इनमें से किसी अस्त्र का इस्तेमाल नहीं किया, केवल आग्नेयास्त्र का इस्तेमाल किया। अग्नि का स्वरूप है जलाना और तृष्णा है पानी। पानी को उबालते जाओ, उबालते जाओ, उसकी भाप निकलती है और थोड़ी देर में टोपिया एकदम खाली हो जाता है। यह जो आग्नेयास्त्र है, इसका वर्णन भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में किया है–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ 6.35 ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं, 'हे अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य, ये दो तरीके हैं, जिनके द्वारा तुम इस रावण को मार सकते हो, इस अमृत-कुण्ड को सुखा सकते हो।' यह तृष्णा जो तुम्हारे अन्दर है, पता नहीं कब से है। 'जनम-जनम की तृष्णा' कबीरदास कहते हैं। पता नहीं पूर्व जन्म में तुमने क्या सोचा था और वह पूरा नहीं हुआ। अब भारत में जितने गरीब लोग हैं, सब मोटर-गाड़ी और डिश टी.वी. का सपना देख रहे हैं। अगर सपना पूरा नहीं होगा, तो अगले जनम में तृष्णा तो रहेगी ही। तृष्णा पैदा होती है अधूरी इच्छा से। और यह तृष्णा

रावण की नाभि का अमृत घट है। यह सबके अन्दर है। इसलिए हम लोग राम नहीं, रावण हैं।

इस तृष्णा को दूर करने के लिए कृष्ण भगवान ने दो उपाय बतलाए, अभ्यास और वैराग्य। योग सूत्रों में भी कहा गया है–

अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन्निरोधः ॥

वैराग्य आग्नेयास्त्र है। अब वैराग्य किसको कहते हैं? इसका बिल्कुल सरल उदाहरण है। जिन विषयों को तुमने देखा या सुना, वे बार-बार तुम्हारे मन में चक्कर लगाते हैं। दादाजी को मरे पाँच साल हो गए, लेकिन अभी भी उनकी याद आती है। बीती हुई घटनाएँ मनुष्य के वर्तमान जीवन को उद्विग्न करती हैं। वर्तमान का भूतकाल से कितना सम्बन्ध हो सकता है, यह हर एक आदमी को अपने लिए निर्धारित करना पड़ेगा। हम लोग यह निर्धारित नहीं कर पाते हैं, इसीलिए हमारा मन अशान्त रहता है।

आज के युग में राम और रावण का तथा देवीजी और महिषासुर का हमारे आज के जीवन से, हमारे चारों तरफ के समाज से और विश्व की जितनी परिस्थितियाँ हैं, उनसे सम्बन्ध होना चाहिए। इसी रूप में हमको विजयदशमी के इस पर्व को देखना है। और एक बात हमेशा याद रखनी है कि अपने घर में तुम लोगों को पूजा-पाठ निरंतर करना चाहिए। इससे तुम अपने जीवन की नियति को भी बदल सकते हो। तुम नियति के गुलाम नहीं हो, उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

रिखिया के कन्या-बटुक

हम लोगों ने अभी रिखिया पंचायत के करीब छः सौ कन्या-बटुकों को दाखिल कर लिया है। अब यहाँ के सारे कार्यक्रम यही लोग करते हैं। हमारी पंचायत के लड़के-लड़कियों को कभी कम नहीं समझना। इनकी कम्प्यूटर कक्षा चालू किए अभी दो महीने ही हुए हैं, पर ये बच्चे शहर के किसी भी लड़के-लड़की से आगे जा रहे हैं और हम लोगों को काफी प्रोत्साहन मिला है। इनको कम्प्यूटर का पूरा प्रशिक्षण देंगे। बहुत से लोग कहते हैं कि पंचायत में कम्प्यूटर होना चाहिए। लेकिन पंचायत में किसी को तो कम्प्यूटर चलाना मालूम नहीं, कम्प्यूटर लाकर क्या होगा? अब तो ये बच्चे लोग ही कुछ करेंगे। इसके अलावा ये लोग कीर्तन और हवन भी कर लेते हैं। और अब तो ये नृत्य भी करने लगे हैं।

गाँव के बच्चे मस्त और बेफिक्र रहते हैं। नाच और गाना इनके लिए स्वाभाविक है। नृत्य और संगीत तो वैसे भी मनुष्य की प्राकृतिक सम्पत्ति है। इसके लिए सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। मनुष्य नृत्य और संगीत के साथ ही पैदा हुआ है, उसको सिखाने की जरूरत नहीं पड़ती है। वास्तविकता तो यह है कि हमें छोटे बच्चों को, विशेषकर सात से बारह साल तक, अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। बस, हमारा इतना ही मकसद है और इसके लिए हम इस पंचायत के करीब-करीब सब बच्चों को अपना लेंगे। इसकी सब तैयारी भी हो चुकी है।

ये बच्चे घर में रहते ही नहीं हैं। दिनभर ये लोग या तो स्कूल में रहते हैं या आश्रम में। सवेरे पाँच बजे घर से निकल जाते हैं, फिर यहाँ अँग्रेजी कक्षा में आते हैं। उसके बाद स्कूल चले जाते हैं। फिर उसके बाद दिन में यहाँ आते हैं, तब इनको कुछ और सिखाया जाता है। शाम को कीर्तन करके सात बजे सब घर चले जाते हैं। सबसे बड़ी चीज है कि इनके माता-पिता को बहुत आराम है। नहीं तो घर में ये लोग दिनभर मस्ती करते रहते और घरवालों को बहुत तंग करते रहते। अब इन सब के माता-पिता हमको धन्यवाद देते हैं!

इन बच्चों को सारे कीर्तन बहुत अच्छी तरह से आते हैं। अभी इनके लिए किताब छप रही है—सिद्ध स्तोत्र माला। देवीजी, कृष्णजी, गणेशजी आदि के जितने स्तोत्र हैं, वे सब उस किताब में रहेंगे और वह किताब इन सब को दी जाएगी। अब हम इनको शिवजी की पूजा भी यहाँ सिखाने जा रहे हैं। वैद्यनाथ जी के मंदिर में शिवजी की जो पूजा, शृंगार, अभिषेक आदि होता है, वही सब स्फटिक लिंग के साथ सिखाएँगे।

पूजा का अधिकार सब जातियों को है। भगवान को पूजने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है। उसमें जाति, धर्म, लिंग या चाल-चलन का कोई प्रतिबंध नहीं। व्यक्ति चाहे चोर, डकैत, व्यभिचारी, वेश्या या बदमाश हो अथवा साधु हो, भगवान की पूजा का अधिकार सबको होना चाहिए। इसमें किसी प्रकार से न कहा जाए कि अमुक बदमाश आदमी है, उसको मंदिर में मत जाने दो। भगवान कोई पार्टी के नेता थोड़े ही हैं, वे तो सबके माता-पिता हैं। और माँ की गोद में तो बच्चा किसी भी हालत में जा सकता है। जूठे हाथ के साथ भी और पैजामे में टट्टी पड़ी हो तो भी बच्चा माँ की गोद में जा सकता है। भगवान के सामने किसी प्रकार का भेद-भाव हम लोगों के यहाँ नहीं है। इसलिए इन बच्चों को शिवजी की पूजा सिखाने जा रहे हैं।

कल ये लड़के बड़े बनेंगे, शहरों में जाएँगे, नौकरी करेंगे। ये लड़कियाँ अपने ससुराल जाएँगी और अच्छे संस्कार आगे फैलेंगे। केवल यहीं नहीं, हम लोगों के साधु-महात्मा हर जगह ऐसा काम करते हैं। मुंगेर जिले में तो पचासी हजार बच्चे हैं। भारत के राष्ट्रपति ए.पी.जे.अब्दुल कलाम मुंगेर आए थे, वहाँ के बच्चों ने ही तो उनको बुलाया था। उन बच्चों का वहाँ पर एक संगठन है, बाल योग मित्र मण्डल। उन सबने ए.पी.जे.अब्दुल कलाम को चिट्ठी लिखी थी और वे आ गए वहाँ।

जितने कुँवारे होते हैं, उनका बच्चों में बड़ा मन लगता है! हमारा भी वही हाल है। अब हमको यहाँ रिखिया पंचायत में किसी से कोई मतलब नहीं, इन्हीं बच्चों से मतलब है, क्योंकि अपना तो बच्चा हुआ नहीं और अब तो उम्मीद भी नहीं है। ऐसे में दूसरा रास्ता निकालना पड़ता है और वह रास्ता यही है। जो संन्यासी लोग हैं, उनको दूसरा रास्ता निकालना पड़ेगा। बच्चों के साथ रहना चाहिए, क्राइस्ट ने भी यही कहा है। जिन प्रतिभाशाली लोगों की रुचि अध्यात्म मार्ग में है, जो उच्च संस्कारों को समाज में पसंद करते हैं, जो आवारा किस्म के नहीं, गंभीर मानसिकता वाले हैं, उन लोगों को इस तरह के किसी सृजनात्मक काम में लगना चाहिए।

मेरी तो अब उम्र हो गयी, इसलिए मेरे को तो अब छुट्टी दो। अब इधर स्वामी सत्संगी हैं, उधर स्वामी निरंजन। ये लोग इस मामले में काफी सक्षम हैं। मैं बाहर रहता हूँ, यहाँ रहता भी नहीं हूँ। गाँव के लोगों ने एक जमीन दी है, मैं उसी जमीन पर एक मकान बना कर रहता हूँ। दिनभर अकेला रहता हूँ। समाज, मित्रता या प्रेम से कोई लेना-देना नहीं। हालाँकि मैं जानता हूँ कि ये ईश्वर के दिए हुए दिव्य उपहार हैं, और दुनिया इन्हें चाहती है। पर एक समय ऐसा आता है जब एकान्त की साधना करनी पड़ती है।

एकान्त की साधना सबसे कठिन साधना होती है और यह तभी सम्भव होती है, जब सब बैण्ड-बाजे बन्द हो जाते हैं। जब तक बैण्ड-बाजे बजते रहते हैं, तब तक एकान्त साधना सम्भव नहीं है। हमने सोचा कि अब जब बैण्ड-बाजे बन्द हो ही गए हैं, तब एकान्त साधना करनी चाहिए। पिछले बारह साल से कोशिश कर रहे हैं। वैसे तो हम बहुत साल से कोशिश कर रहे हैं, मगर होता नहीं था। पर अब सम्भव है और हमको जीने की कोई तमन्ना भी नहीं है। हम तो सोचते हैं कि आज ही चले जाएँ तो सबसे बढ़िया रहेगा।

इन दिनों बस्तर में जो आदिवासी हैं, उनमें तंत्र-मंत्र से कुण्डलिनी जगाने की विद्या लुप्त हो रही है। मेरा आपसे अनुरोध है कि इस विषय पर कुछ किया जाए।

मेरी उमर तो अब करीब इक्यासी साल की है और मैंने मुंगेर आश्रम का सारा काम छोड़ दिया है। मेरे को कभी आश्रम में रुचि रही नहीं, परिस्थिति ने मेरे को उसमें डाला था और अब मैं एकान्त में रहता हूँ। मैं जगदलपुर और बस्तर में रहा भी हूँ, वहाँ चातुर्मास भी किया है। वहाँ के महाराजा प्रवीणचन्द्र भंजदेव का मैं मेहमान भी था। वे भी इसी प्रकार के व्यक्ति थे। आसन, प्राणायाम, ध्यान, हठ योग, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र पर बहुत बात करते थे। परन्तु ये सब काम इस युग में अब सम्भव नहीं हैं। मैं सभी लोगों से स्पष्ट बोलना चाहता हूँ। आज का युग मंत्र का युग नहीं है, यह यंत्र का युग है। एक बहुत बड़ी सभ्यता भारत में आ रही है, सब जानते हैं। उसको नकारने का कोई प्रयत्न न करे। भारत में एक बहुत बड़ी सभ्यता का प्रवेश हो चुका है। उसको चाहे तुम जो भी नाम दो। उसको तुम यंत्र-युग कह सकते हो और चूँकि यंत्र को कल भी बोलते हैं, इसलिए कलयुग भी कह सकते हो।

यह एक बहुत बड़ा युग आ रहा है, चाहे कोई आदिवासी हो या बंगाली, ठाकुर, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, आस्तिक या नास्तिक ही क्यों न हो, वह इस यंत्र युग के प्रभाव से अब मुक्त नहीं रह सकता है। आने वाले युग में जो भी काम करना होगा, वह मंत्र-शक्ति से नहीं, बल्कि यंत्र-शक्ति से करना होगा, क्योंकि मंत्र शक्ति व्यक्ति तक सीमित है। टैलीपेथी जैसी अतीन्द्रिय क्षमताएँ व्यक्ति तक सीमित हैं। लेकिन यंत्र-शक्ति व्यक्ति तक सीमित नहीं है। मोबाइल उठा कर हम अभी लंदन बात कर सकते हैं। हम टेलीफोन से न केवल तुमसे बात कर सकते हैं, बल्कि तुम्हारी तस्वीर भी टेलीफोन में आ सकती है। इसलिए हम लोगों को युग के अनुसार सोचना पड़ेगा।

युग बदलता है, सभ्यताएँ बदलती हैं, संस्कृतियाँ बदलती हैं, राष्ट्रों का नक्शा बदल जाता है। यह बात हमारे महापुरुषों ने पुराणों में लिख दी है। पुराणों में लिखा हुआ है कि इस युग में मनुष्य यंत्र-शक्ति से, कल-कारखानों की शक्ति से राज करेगा। सब पुराणों में लिखा है, चाहे भविष्यपुराण पढ़ लो या ब्रह्मवैवर्तपुराण, विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण या कूर्म पुराण पढ़ लो। सबमें यही लिखा हुआ है कि भारत में संसदीय प्रजातंत्र स्थापित होगा और सौ साल तक रहेगा। सौ साल के बाद वह टूटेगा। लेकिन तुम लोग तो पढ़ते ही नहीं

हो। तुम तो इन पुराणों को धार्मिक समझते हो। नहीं, इनमें तो ऋषि-मुनियों की सारगर्भित बातें हैं। भविष्यपुराण में तो महाराजा शालीवाहन का क्राइस्ट के साथ संवाद है। महाराजा शालीवाहन वही हैं जिनके नाम से शक सम्वत् चलता है। उनकी क्राइस्ट के साथ बात-चीत हुई है, राज दरबार में। भारत में, इस्राइल में नहीं। लेकिन कौन पढ़ता है? तुम लोगों को तो वही चीज पढ़ने की फुर्सत है, जिसमें तुम्हारी इन्द्रियों को कुछ माल-मसाला मिले। ज्ञान की बातों से तुमको कोई मतलब नहीं है।

यंत्र इस युग का आधार है। मनुष्य जीवन की जितनी सुविधाएँ हैं, चाहे आवास की या स्वास्थ्य की या अध्ययन की या युद्ध की, वे सब यंत्र पर निर्भर रहेंगी। इसलिए मैं सबसे बोल रहा हूँ कि कुण्डलिनी वगैरह सीखो-पढ़ो जरूर, पर याद रखो कि यह व्यक्ति तक सीमित है। इसका उपयोग दूसरे नहीं कर सकते। पर मोबाइल का उपयोग सब कर सकते हैं। यह यंत्र है, वह मंत्र है। हमारे ऋषि-मुनियों ने मंत्र विद्या को जीवित रखकर आज उसको दूसरा रूप दिया है।

गुरु से मंत्र लो और रोज नियम के मुताबिक सवेरे-शाम जप करो। उससे तुम्हारी चेतना विकसित होगी और चेतना के विकसित होने के बाद उसका असर तुम्हारी बुद्धि, कर्मों, उपलब्धियों और निर्णयों पर पड़ेगा। गुरु से प्राप्त मन्त्र के द्वारा जब मनुष्य का मन उठता है, तब वह एक प्रतिभाशाली व्यक्ति बन जाता है। वह एक अच्छा संगीतज्ञ बन सकता है या एक अच्छा राजनीतिज्ञ, अच्छा कलाकार या अच्छा वीरप्पन भी बन सकता है। एक शक्तिशाली ओसामा बिन लादेन भी बन सकता है, जो राष्ट्र को चुनौती दे सकता है। उठे हुए मन से चाहे तुम इधर खिसको या उधर। रावण भी तो बड़ा प्रभावशाली था! उसने शिवजी की पूजा की थी, तभी तो उठा हुआ मन था उसका।

मंत्र की शक्ति से हर एक आदमी अपने व्यक्तिगत जीवन को उठा सकता है और अपनी योग्यताओं को प्रस्फुटित कर सकता है। आखिर ईसा मसीह कौन थे? एक बढ़ई के बेटे। मुहम्मद साहब कौन थे? ढाबा में काम करने वाले। विवेकानन्दजी कौन थे? विवेकानन्दजी जैसे कॉलेज के बहुत-से लोग तो यहाँ बैठे ही हुए हैं। रामकृष्ण परमहंस की तरह पण्डित-पुजारियों की तो हमारे हिन्दुस्तान में कोई कमी नहीं है। पर जिसका मन, जिसकी प्रतिभा उठी हुई रहती है, उसको कहते हैं विभूति या जीनियस।

माईकलेन्जलो ने वेटिकन में क्या काम किया! मेरे को विश्वास ही नहीं हुआ कि आदमी ऐसा कर सकता है। उसने वहाँ की छत पर बाइबिल का पूरा

चित्रण किया है। वह सवेरे पानी ले जाता था और वहाँ भाड़ा लगा देता था। भाड़े पर लेटकर दिनभर चित्रकारी करता था और शाम को नीचे उतरता था। इतिहास का उसने एक अद्भुत चित्रण किया है। उसको कहते हैं जीनियस। फोर्ड गाड़ी का नाम सब जानते हैं। फोर्ड एक किसान का बेटा था। और डेल कार्नेगी की पुस्तक 'लोगों को कैसे प्रभावित करें और उन्हें मित्र कैसे बनाएँ' विश्व-विख्यात है, करोड़ों की संख्या में बिकती है।

वह एक गरीब घर का लड़का था, जो गाँव से आया था। उसके पास मात्र एक जोड़ी कपड़े थे और वह एक छोटे-से होटल में ठहरा था। वह रात को सोता था, तो अपनी पतलून को कम्बल के नीचे लगा देता था, ताकि वह तह में रहे। रोज़ सवेरे उठ कर वह काम पर जाता था। आज अमरीका की सरकार समिति वगैरह गठित नहीं करती है, बस डेल कार्नेगी की संस्था को बोल देती है। वह संस्था अपने विशेषज्ञों से, चाहे वे राजनीतिज्ञ हों या अर्थशास्त्री या अन्य कोई हों, श्वेत पत्र तैयार करवा कर सरकार को दे देती है और साथ में पाँच करोड़ डॉलर का एक बिल भी दे देती है!

यह ठीक है कि जगदलपुर और बस्तर में बहुत-से लोग कुण्डलिनी को जगा सकते हैं। लेकिन वे आज की सभ्यता के किसी काम के नहीं। वक्त के मुताबिक उनको भी बदलना होगा। आज इस देश पर बहुत दबाव है और उसके लिए बुद्धिमान् एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की जरूरत है। अनाड़ी और जाहिल लोगों की जरूरत नहीं है। इस महान् देश को हमें अगर उठाना है, तो यंत्रों का सहारा लेना होगा। हम लोग मंत्रों में जरूर विश्वास रखें, अपने गुरुजी से मंत्र लेकर अपने को उठाएँ। अपनी प्रतिभा को उठाकर एक अच्छे आदमी बनें, एक अच्छे गायक, कलाकार, अभिनेता या अधिकारी बनें। मैं यह नहीं कहता हूँ कि नहीं हो सकता है।

मैं जगदलपुर और बस्तर में बहुत रहा हूँ। उधर के लोगों से मेरा काफी सम्पर्क हुआ है। मैं छत्तीसगढ़ में ही तो रहता था, रायपुर के तो मैं घर-घर को जानता हूँ। भिलाई तो मेरे सामने बना है, सुपेला भाटा उसका नाम था। वह एकदम छोटा-सा गाँव था, रिखिया से भी छोटा। व्यक्ति के अन्दर शक्ति जरूर है, पर उस शक्ति को आज हम अपने राष्ट्र के उत्थान के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकते हैं। केवल व्यक्ति के उत्थान के लिए इसका प्रयोग हो सकता है। राष्ट्र के उत्थान के लिए यंत्र-शक्ति का ही प्रयोग करना होगा।

– 23 अक्टूबर 2004



अध्याय 13

कर्म और कर्त्तव्य

जैसे-जैसे आदमी की उम्र बढ़ती है, वैसे-वैसे उसके शरीर के अंग और इन्द्रियाँ कमजोर होती जाती हैं। इसलिए आदमी की उम्र जब पचास साल की हो जाए, चाहे वह संन्यासी हो या गृहस्थ, उसको धीरे-धीरे कर्म का त्याग करना चाहिए। लेकिन कर्त्तव्य का त्याग नहीं कहा है। कर्म एक चीज है और कर्त्तव्य दूसरी चीज। पचास साल के बाद चाहे घर बनाओ, आश्रम बनाओ, मंदिर बनाओ, अस्पताल बनाओ या कोई भी सत्कर्म करो; उसे कर्त्तव्य रूप में कर सकते हो, कर्म के रूप में नहीं।

जब आदमी अपने को कर्त्ता मानता है, तब जो कुछ भी वह करता है, उसको कर्म कहते हैं। और जब कोई अपने को निमित्त मानता है, तब जो कुछ भी वह करता है, उसे कर्त्तव्य कहते हैं। यह मुझे करना है, मेरे ऊपर यह एक दायित्व है, बस इतना ही भाव रहता है। जबकि कर्म आसक्ति की वजह से, अहंकार की वजह से होता है। यह ख्याल रखना होगा। छोटी उम्र में ठीक है। कर्म में लग सकते हैं, दौड़-भाग भी कर सकते हैं, चिन्ता भी कर सकते हैं, फायदे और नुकसान का असर भी झेल सकते हैं। यह साधु का जीवन है।

शतचण्डी यज्ञ की तैयारी

एक हफ्ते में यहाँ अनाज के ट्रक पर ट्रक आने शुरू हो जाएँगे–गेहूँ, चावल, जौ, मक्का और बाजरा के। उन्हें पहले साफ करना होगा, प्लास्टिक थैलों में भरना होगा, फिर मुहरबंद करना होगा। और आज से एक महीने और एक

दिन बाद, 13 दिसम्बर को उन्हें यज्ञ में अर्पित किया जाएगा। तब इस पवित्र अनाज को हमारे अट्ठारह-बीस हजार पड़ोसियों को दान-स्वरूप दिया जाएगा। अनाज के साथ-साथ उनके बीबी-बच्चों के लिए कपड़े और गैता, कुदाल, कुल्हाड़ी जैसे खेती-मजदूरी में काम आने वाले औज़ार भी देंगे। और जो परिवार की मुख्य औरत होती है, माँ होती है, उसके लिए कुछ अच्छा-सा जेवर भी देंगे। यह कहने-सुनने में आसान लगता है, लेकिन करना कठिन है। एक झोले का वजन पन्द्रह-बीस किलो होगा और उसकी कीमत करीब बीस हजार रुपये होगी।

दीपावली

यज्ञ का बहुत बड़ा कार्यक्रम होने जा रहा है और आज दिवाली का दिन एक तरह से उसी की शुरुआत है, क्योंकि यह लक्ष्मी का दिन है। लक्ष्मी धन की नहीं, बल्कि समृद्धि की देवी है, ऋद्धि-सिद्धि की देवी। दोनों में फर्क है। धन ज्यादा दिन नहीं टिकता, जबकि समृद्धि सदाबहार है। समृद्धि का क्या मतलब होता है? वह जो हमेशा बढ़ती जाए। जैसे छोटा बच्चा पैदा होता है, तो एक महीने के बाद बड़ा हो जाता है, छः महीने के बाद और बड़ा हो जाता है और फिर साल दर साल बढ़ता जाता है। उस बढ़ोत्तरी को कहते हैं समृद्धि। विद्या, धर्म और धन—इन तीनों में आदमी को समृद्धि की कामना करनी चाहिए। विद्या में भी समृद्धि होती है, मैं बी.ए. या एम.ए. की बात नहीं बोल रहा हूँ। विद्या का तो कोई अन्त नहीं है। धर्म भी बेअन्त है और धन भी बेअन्त है। इसलिए लक्ष्मी जो समृद्धि की देवी है, उनकी आज हम लोग पूजा करते हैं।

आज कार्त्तिक की अमावस्या है और वैज्ञानिकों के मुताबिक आज की रात सबसे अंधेरी रात होती है। जैसे जून के महीने में प्रकाश का घनत्व बहुत होता है, उसी तरह से अंधेरे का घनत्व आज की रात को बहुत ज़्यादा होता है। फिर कल से धीरे-धीरे अंधेरा कम होने लगता है। आज यहाँ अखाड़े में मोमबत्तियाँ जलाई जाएँगी। पहले अपने यहाँ सरसों के तेल से दिया जलाते थे, अब मोमबत्ती आ गई है। अब तो आश्रम तीन किलोमीटर तक फैल गया है, शिवानन्द आश्रम से ऋषिकुंज तक। शाम को सब जगह मोमबत्ती जलेगी और कन्या-बटुकों को लाइ-खिलौना का प्रसाद दिया जाएगा। धान अब तैयार हो गया है, आज ये लोग उसको लक्ष्मी जी को चढ़ाएँगे।

भारत में चार मुख्य त्योहार होते हैं। पहला दिवाली, दूसरी होली, तीसरा दशहरा और चौथा रक्षाबंधन। हिन्दुओं के इन त्योहारों में एक बहुत बड़ा अंतर है। इस्लामी मस्जिदों या ईसाई गिरजाघरों के बाहर कुछ भी दुकानदारी करने नहीं दी जाती। लेकिन भारत में मंदिरों के बाहर फूल, मिठाई, माला वगैरह बेचने वालों का होना जरूरी है, क्योंकि हम लोगों का मानना है कि धर्म और सामान्य जीवन को साथ-साथ चलना चाहिए। उन्हें जबरन अलग नहीं किया जाना चाहिए।

गृह-लक्ष्मी

दिवाली व्रत-उपवास का नहीं, बल्कि भोज और आनन्द का दिन होता है। भारत में व्यापारी लोग आज से ही अपना नया बही-खाता शुरू करते हैं। धनतेरस को यहाँ सबसे ज्यादा बिक्री-खरीददारी होती है। हर किसी को कुछ-न-कुछ खरीदना होता है। गरीब-से-गरीब भी जरूर खरीदेगा, भले ही एक बर्तन या चम्मच ही सही। सब औरतें सोने-चाँदी के गहने खरीदती हैं। भारतीय नारी के लिए गहना ही फैशन है। जब भी पतिदेव खुश होते हैं, तुरंत ही फरमाइश कर बैठती है कि हीरे की अंगूठी चाहिए! यहाँ पत्नी को मैडम या मिसेज़ नहीं, गृह-लक्ष्मी बोलते हैं।

गृह-लक्ष्मी जो सोने-चाँदी के गहने खरीदती है, वह उसी की सम्पत्ति होती है। वह सम्पत्ति परिवार के किसी पुरुष को नहीं मिल सकती—न बेटे को, न भाई को, न पति को। संविधान में उसके लिए अलग से कानून है—स्त्रीधनम्। उस कानून के तहत स्त्रीधन न तो पुरुषों को हस्तांतरित किया जा सकता है और न ही उन्हें विरासत में दिया जा सकता है। इसीलिए भारतीय नारियाँ पुरुषों से धन लेकर उसे स्त्रीधन में बदल देती हैं। वे दफ्तर वगैरह तो जाती नहीं हैं और जाती भी हैं तो जितनी जल्दी हो सके वहाँ से बाहर निकलना चाहती हैं। उनका बस चले तो वे घर में ही रहना पसंद करेंगी।

अब यह उनकी कमजोरी है या खूबी, मालूम नहीं। हो सकता है कि बहुत पढ़ी-लिखी होने पर वे एम.डी. या सी.ई.ओ. जैसे ऊँचे पदों पर काम करें, पर देर-सबेर वे अपनी प्राथमिक भूमिका को निभाने के लिए लौटना चाहेंगी। भगवान ने मर्दों को माँ की भूमिका अदा करने के लिए नहीं बनाया। यह काम सिर्फ औरत कर सकती है। औरत बच्चे के लिए माता-पिता दोनों हो सकती है, लेकिन पुरुष सिर्फ पिता की भूमिका निभा सकता है, माँ की नहीं।

बद्रीनाथ

दुनिया में अधिकतर तीर्थ-स्थान पर्वतों पर हैं और इनमें बद्रीनाथ की गिनती अति-प्राचीन तीर्थस्थानों में होती है। एक समय वहाँ बेरों का जंगल था जिसे बदरीवन कहते थे। उसी के कारण उसका नाम बद्रीनाथ पड़ा। बद्रीनाथ में भगवान कृष्ण के मित्र, उद्धव ने अपना अंतिम समय बिताया था। उद्धव भक्त नहीं थे, वे एक वेदान्ती दार्शनिक थे, जो अमूर्त, अव्यक्त ईश्वर में विश्वास रखते थे। उनको जीते-जागते, प्रेम करने वाले भगवान में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे कृष्ण की तरह नटखट नहीं थे, उनका स्वभाव एकदम गंभीर था। वे हमेशा उस ईश्वर का चिन्तन करते थे जो देश, काल और मन के परे है। श्रीमद्भागवत में उनकी कथा आती है। कृष्ण के साथ उनका वाद-विवाद होता रहता था, पर कृष्ण उनके भीतर भक्ति के प्रति रुझान नहीं ला पाए। तब उन्होंने उद्धव को गोकुल भेजा, जहाँ बचपन में उन्होंने गोपियों के संग दिव्य लीलाएँ की थीं। गोपियों का कृष्ण के प्रति लौकिक प्रेम नहीं था, वह तो एक ऐसी तीव्र भावना थी जिसके आवेश में वे सभी सामाजिक मर्यादाओं को भूल जाती थीं।

कृष्ण के कहने पर उद्धव गोकुल गए और उन गोपियों से मिले। वहाँ वे उनको वेदान्त सिखाने लगे—अहं ब्रह्मास्मि, आत्मा अमर है, ईश्वर नाम और रूप से परे है, इत्यादि। गोपियों को यह सब समझ में नहीं आया, उन्होंने कहा, 'तुम यह क्या बोल रहे हो? हमको बस इतना बतला दो कि योग श्रेष्ठ है या वियोग?'

हाय उधो हमें बता दो
योग से क्या वियोग कम है।
योगी पहने रंगे कपड़े
वियोगियों के हृदय कफन हैं।
योगी रमाते तन में भस्मी
वियोगियों के हृदय भसम हैं।
योगियों की है बन में कुटिया
वियोगियों का छूटा बदन है।

प्रेमी से मिलने के वक्त भावना तीव्र होती है या बिछुड़ने पर? बिछुड़ने की स्थिति में। उस समय आदमी प्रेमवश पागल-सा हो जाता है! समझ में ही नहीं आता, क्या करे। मन उस वियोग को सह नहीं पाता, वह उस वियोग में ही

लीन हो जाता है। इसी प्रकार भगवान के प्रति जो प्रेम किया जाता है, उसमें इतनी गहराई और तीव्रता होनी चाहिए कि तुम उसे झेल न सको। उद्धव गोकुल से लौटे, तो पूरी तरह बदल चुके थे। आध्यात्मिक ज्ञान का, वेदान्त दर्शन का जो अहंकार था, सब नष्ट हो गया था। तब कृष्ण ने उन्हें बद्रीनाथ जाने को कहा–'उद्धव तत्र मम आश्रमम्–वह मेरा स्थान है, तुम वहीं जाओ।' बद्रीनाथ नारायण का स्थान है, कृष्ण नारायण के अवतार थे। वहाँ एक शिला है, जहाँ पर एक छोटी-सी कन्या को नारायण भगवान का दर्शन हुआ था।

बच्चों के लिए आश्रम जीवन

दुनिया में बहुत कम माता-पिता ऐसे होते हैं जो अपने बच्चे को आध्यात्मिक जीवन और योग सिखाने के लिए तैयार रहते हैं। ज्यादातर लोग क्या करते हैं, लड़के-लड़कियों को पढ़ाते हैं और बोलते रहते हैं–'पढ़ बेटा पढ़, 70-80% नम्बर लाना। आज मंदिर जाने की जरूरत नहीं है, अभी तुम्हारा इम्तिहान हो रहा है। अभी तो तुम ट्यूशन में जा रहे हो, कीर्तन-भजन में मत जाओ।' ऐसा बोलने वाले माता-पिता आज बहुत हैं। आज बच्चों का यह माहौल है। बच्चे इसलिए बिगड़े हैं कि माता-पिता उन्हें खिलौने, मोटरसाइकिल आदि सब कुछ देते हैं, किन्तु ब्रेक नहीं लगाते। गाड़ी बहुत अच्छी है, पर ब्रेक नहीं है। गाड़ी तो बहुत अच्छी है। कहाँ की है? इंग्लैण्ड की। क्या दाम है? पैंतीस लाख रुपया। पर हम बोलते हैं, 'नहीं भैया, ऐसी गाड़ी हम तो लेंगे नहीं।' क्योंकि जिस गाड़ी में ब्रेक नहीं है, वह कभी-न-कभी तो दुर्घटना-ग्रस्त होगी ही। पक्की बात है।

गाड़ी एक्सीलेटर या क्लच पर नहीं चलती, ब्रेक रहने से चलती है और आजकल लड़कों को माँ-बाप तो ब्रेक लगाना सिखाते ही नहीं हैं। इसलिए बच्चे जब थोड़े बड़े होते हैं, तब बहुत परेशानी में पड़ जाते हैं। बच्चों को एक-दो साल या छः महीने या तीन महीने के लिए ही सही, लेकिन आश्रम जरूर जाना चाहिए। पर यह बच्चों की अपनी इच्छा होनी चाहिए। अब यहाँ तो बहुत लड़के आते हैं। पर बहुत जल्दी उनका घर जाने को मन करता है। बारह दिन, ग्यारह दिन, दस दिन, नौ दिन, वे गिनते ही रहते हैं कि कब घर वापस जाना है।

छठ

अभी सप्ताह भर में एक और बड़ा त्योहार आने वाला है–छठ। यह सूर्य पूजा का बहुत महत्त्वपूर्ण दिन है। हालाँकि पुरुष भी पूरे दिल से साथ देते हैं

और पूजा में भाग लेते हैं, पर अधिकतर महिलाएँ ही यह व्रत रखती हैं। इसमें अड़तालीस घण्टे उपवास रखना पड़ता है! लोग सूर्यास्त और फिर सूर्योदय, दोनों समय किसी नदी या तालाब के किनारे जाकर सूर्यदेव को अर्घ्य देते हैं। इन दो दिनों तक गंगा किनारे हर जगह अपार भीड़ होती है। ऐसी मान्यता है कि सूर्य पूजा से सभी प्रकार के चर्म-रोग ठीक हो जाते हैं। यह सिर्फ अंधविश्वास नहीं है, हमने खुद ऐसा होते हुए देखा है। और साल के तीन सौ पैंसठ दिन में यही एक ऐसा दिन है जब कोई मनाही करने की हिम्मत नहीं करता। दिवाली के दिन भले ही कोई कह दे कि हमको विश्वास नहीं, हम नहीं करेंगे। लेकिन छठ के दिन अविश्वास या असहयोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि लोग डरते हैं कि इस दिन मना कर दें तो सूर्यदेव कोई बड़ी मुसीबत खड़ी कर देंगे।

यह बहुत शक्तिशाली पूजा मानी जाती है। अड़तालीस घण्टे का उपवास कभी करके देखना। न भोजन और न ही जल! इस दौरान मर्द लोग अपने घर की औरतों को पूरा सहयोग देते हैं, कोई माँस-मदिरा नहीं, कोई प्याज-लहसुन नहीं। ये चीजें हमारे अंदर तामसिक-राजसिक स्वभाव पैदा करती हैं, हमारे विचार और भावनाएँ सात्त्विक नहीं रहते। इसलिए इन चार-पाँच दिनों तक घर में कोई तामसिक या राजसिक चीज नहीं आती, पूरा परिवार एकदम सात्त्विक ढंग से रहता है। पूरे साल भर तुम भले ही सात्त्विक मत रहो, पर कम-से-कम दो दिन तो सात्त्विक रह ही सकते हो और यह निश्चित रूप से लाभदायक होता है। और अगर ये दो दिन भी नहीं, तो कम-से-कम अपने आश्रम प्रवास के दौरान तो सात्त्विक रह ही सकते हो।

कार्त्तिक पूर्णिमा

छठ और दिवाली के बाद तीसरा महत्त्वपूर्ण दिन होता है कार्त्तिक पूर्णिमा का। यह दिवाली के पन्द्रह दिन बाद आती है। आज से पाँच हजार साल पहले भगवान कृष्ण ने कार्त्तिक पूर्णिमा की रात को ही वृन्दावन में रास-लीला रचायी थी। रास का मतलब जीवन का रस। दुःख, विषाद, निराशा, पीड़ा–यह रस नहीं है। जीवन का रस तो आनंद है। इस रास-लीला में गोपियाँ कृष्ण के संग रात-भर नाचती रहती थीं।

श्रीमद्भागवत में वर्णन आता है कि एक बार रास-लीला में ऐसा हुआ कि नाचते-नाचते आधी रात हो गयी और सभी गोपियों के मन में आया कि वे

कृष्ण के साथ नृत्य करें। अब कृष्ण तो एक थे और वे तो बीच में राधा के साथ नृत्य कर रहे थे। पर उन गोपियों की इच्छा इतनी तीव्र थी कि कृष्ण ही व्यूहकाय हो गए! या यूँ कहें कि वे सबसे एकाकार हो गए। हर गोपी के संग एक-एक कृष्ण नृत्य करने लगे। इसी को सृष्टि का नृत्य कहते हैं, इसी को पुरुष और प्रकृति का नृत्य कहते हैं। भौतिक शास्त्र में इसे 'यूनिफाईड फील्ड थ्योरी' कहते हैं और श्रीमद्भागवत में रास-लीला। इसका मतलब प्रकृति का कण-कण पुरुष से व्याप्त है। कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ पुरुष न हो। श्रीमद्भागवत में रास-लीला का विस्तृत वर्णन आता है। गोपियों का श्री कृष्ण से प्रेम बहुत ही रोचक प्रसंग है, इसे जरूर पढ़ना चाहिए। इस साल कार्तिक पूर्णिमा की रात हम लोग भी यहाँ रास-लीला का आयोजन कर रहे हैं।

मृत्यु–जीवन का उत्सव

जीवन में एक चीज निश्चित है, वह है जाना। मृत्यु सब के लिए है, उसमें दो मत नहीं हैं। जन्म निश्चित नहीं है। आदमी आ सकता है, नहीं भी आ सकता है।

मौत का एक दिन मुअइन है ।
नींद रातभर क्यों नहीं आती ॥

पर मृत्यु सबकी निश्चित है। आदमी को जब मृत्यु का विचार आता है, तब उसको प्रसन्नता होनी चाहिए। अब हम ही को ले लो। इक्यासी साल की उम्र हो गई है। अगर आज हम इस शरीर को छोड़ कर चले जाएँ, तो हमको फायदा है कि नुकसान? या इस शरीर में हम दस साल और रुक जाएँ, तो हमको फायदा है कि नुकसान?

अब हम अपना दृष्टिकोण बतलाते हैं। हम समझते हैं कि अगर हम दस साल और जीवित रहेंगे, तो हमको नुकसान है। अगर आज हमारा शरीर छूट जाए, तो हमको फायदा होगा। फिर से किसी के पेट से निकल आएँगे और मज़े करेंगे! अगर दस साल तक और यहाँ बूढ़े की तरह रहे, धीरे-से खाना-पीना, उठना-बैठना वगैरह, उसमें क्या रखा है? अभी भगवान ने इतनी ताकत दे रखी है कि पाँच-छः किलोमीटर घूम लेते हैं। मगर आगे जाकर वह भी होगा कि नहीं, मालूम नहीं। यह सब क्यों? छोटे बच्चे बनकर दौड़ेंगे, कूदेंगे, भागेंगे, स्कूल में पढ़ेंगे, कॉलेज में पढ़ेंगे और हो सकता है कुछ बन जाएँ। नया

जीवन अगर देखना है, तो मनुष्य को मृत्यु से डरना नहीं चाहिए। किसी कवि ने लिखा है–द्रुत झड़ो जगत् के जीर्ण पत्र।

वृद्ध शरीर जीर्ण, शीर्ण, शुष्क, पुरातन होता है। यह पक्की बात है कि आदमी दुबारा जन्म लेता है, लेकिन तुमको दिखता नहीं है। उसको कोई देख नहीं सकता है। उसको कोई प्रमाणित नहीं कर सकता है। उसका कोई गवाह नहीं है। मगर जब हम इस शरीर को छोड़ेंगे, निश्चित रूप से हम को फिर से जन्म मिलेगा। जब गेहूँ का जन्म होता है, गाजर और मूली के बीज का जन्म होता है, तब हमारा क्यों नहीं होगा? हम कोई अपवाद हैं क्या? अजीब बात है। उनका पुनर्जन्म हम देख सकते हैं, लेकिन अपना पुनर्जन्म नहीं देख सकते, इसलिए विश्वास नहीं है। मगर मूली से पूछो, वह बोलेगी कि स्वामी सत्यानन्द का पुनर्जन्म होगा ही, क्योंकि मेरे को उसका पुनर्जन्म दिखता है। मगर मूली को अपना पुनर्जन्म नहीं दिखता और स्वामी सत्यानन्द को अपना पुनर्जन्म नहीं दिखता। पुनर्जन्म सच्ची बात है। आदमी तो मरता ही नहीं है।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ 4.5 ॥

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को कहा है, 'हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत से जन्म बीत चुके हैं। तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।'

सब लोग कह रहे हैं, पर मेरे को नहीं दिखता है। मेरे को तो आसमान में उपग्रह भी नहीं दिखता है। अब मेरे को उपग्रह नहीं दिखता है, इसका मतलब यह तो नहीं कि वहाँ नहीं है। बहुत-सी चीजें ऐसी होती हैं जो आँखों से नहीं दिखतीं, दूरबीन से ही दिखती हैं। बहुत-सी चीजें होती हैं जो सूक्ष्मदर्शी से ही दिखती हैं। और बहुत-सी चीजें होती हैं जो सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं दिखती हैं, जैसे एड्स वगैरह।

अभी तो हमको दूसरा जन्म होना माँगता है। जब तक चने, गेहूँ, धान या गाजर के बीज को तुम भूँजते नहीं हो, तब तक वह जन्मता ही रहेगा, क्योंकि उसको हवा भी मिलेगी, पानी भी मिलेगा और धूप भी मिलेगी। जब जीवात्मा वैराग्य के द्वारा अपने कर्मों को भून देता है, तब जाकर वह सच्चिदानन्द की अवस्था में पहुँचता है। तब उसका पुनर्जन्म नहीं होता। मूली के बीज को भूँज दो और फिर रोप दो, वह जन्मेगा ही नहीं। चने के बीज को भूँज दो और उसको

गमले में डाल दो, खूब पानी डालो, खूब खाद और यूरिया डालो, लेकिन वह नहीं जन्मेगा। जब तक जीव में जीवन की आशा, अभीप्सा और कामना है, तब तक वह जन्मेगा ही। और कामना एक ऐसी चीज है जिसको तुम खत्म नहीं कर सकते, वह खुद खत्म होती है। मोक्ष पुरुषार्थ-साध्य नहीं है। मोक्ष ईश्वर के अनुग्रह और अपने कर्मों की पूर्ति पर निर्भर रहता है।

मृत्यु केवल मकान बदलना होता है। 'हयातो मयात कुछ भी नहीं, आदमी पैरहन बदलता है।' समझ में आए या न आए। यह तुम्हारी समझ में भी नहीं आएगा, मेरी समझ में भी नहीं आएगा। यहाँ जितने लोग बैठे हैं, मेरी बात से राजी होंगे, पर समझ में किसी के नहीं आएगा। इसकी एक कहानी है, जो कठोपनिषद् में आती है। वाजश्रवा नाम का एक ऋषि यज्ञ कर रहा था और यज्ञ में नियम होता है दान करना। यज्ञ में दान प्रमुख तत्त्व है, बिना दान के यज्ञ पूर्ण नहीं होता। केवल 'स्वाहा, स्वाहा' करने से यज्ञ नहीं होता। यज्ञ में जाकर परिक्रमा करने से काम नहीं चलता है। यज्ञ में दान देना पड़ता है और दोनों को देना पड़ता है। यजमान को भी देना पड़ता है और यज्ञ में जो भाग लेते हैं, उनको भी देना पड़ता है।

तो वाजश्रवा नाम का जो ऋषि था, वह भी यज्ञ में गायों का दान कर रहा था। उसका एक बेटा था, जिसका नाम नचिकेता था। नचिकेता ने देखा कि मेरा बाप दान में बूढ़ी और लंगड़ी गायों को भी दान कर रहा है। ऐसी गायें जिनका दूध खत्म हो गया, जो बांझ हो गई हैं, मरने के लिए तैयार हैं, उनको भी दान कर रहा है। नचिकेता ज्ञानी था। उसने अपने पिता से कहा, 'कस्मै मां दास्यसि?' मुझे किसको दोगे? आखिर नचिकेता भी उसका पुत्र होने के नाते उसकी सम्पत्ति था। उसके बाप ने देखा कि बेटा पूछ रहा है, पर वह चुप रहा। उसने दुबारा पूछा, 'कस्मै मां दास्यसि?' मुझे किसको दोगे दान में। फिर भी वह चुप रहा। जब उसने तीसरी बार पूछा, तब उसका बाप गुस्से में आ गया और बोला, 'मृत्यवे त्वां ददामि।' मैं तेरे को मौत के हवाले करता हूँ, यमराज को दान करता हूँ!

कहते हैं कि बाप के वचन के बल पर नचिकेता के प्राण निकल गए और उसकी आत्मा चलकर यमराज के घर पहुँच गई। यमराज तो वहाँ थे नहीं, कहीं निरीक्षण पर गए हुए थे। तो नचिकेता दरवाजे पर बैठा रहा। तीन दिन के बाद यमराज लौटे, तो उनको पता चला कि ब्राह्मण का बेटा मेरे दरवाजे पर तीन दिन से बैठा हुआ है। यह तो बड़ा गजब हो गया। उन्होंने कहा, 'देखो बेटा,

तुम्हारे बाप ने तुम को मुझे दान में दे दिया, ठीक है। तुम यहाँ मेरे दरवाजे पर तीन दिन से बिना खाए बैठे हो। उसके बदले में मैं तुमको तीन वरदान देता हूँ। माँगो जो माँगना है।'

नचिकेता ने तब तीन वरदान माँगे। एक तो यह वरदान माँगा कि जब मैं वापस अपने पिता के पास जाऊँ, तो वे मेरे को पहचान लें और स्वीकार कर लें। यमराज बोले, 'तथास्तु।' दूसरा वरदान माँगा कि 'मेरे को पंचाग्नि के बारे में बतलाओ। पंचाग्नि क्या होती है? उसमें ईंटों को कैसे संजोते हैं? आग कैसे तैयार होती है?' तब पंचाग्नि का विवरण भी यमराज ने उसको बता दिया। अब तीसरा वरदान उसने यह माँगा कि 'मैंने सुना है कि तुम जीवन के इस पार में भी रहते हो और उस पार में भी जाते हो। दोनों तरफ तुम्हारी गति है। क्या यह सच है कि आदमी दुबारा पैदा होता है? क्या वाकई दूसरा जनम होता है?' नचिकेता ने यमराज से यही प्रश्न पूछा कि पुनर्जन्म होता है कि नहीं!

यमराज ने कहा, 'बेटा! पत्नी, हाथी, घोड़ा, अन्न, साम्राज्य या धन-धान्य, इनमें से कुछ भी माँगो, पर यह प्रश्न नहीं माँगना, क्योंकि इसका उत्तर किसी को मालूम नहीं है। देवी-देवताओं को भी इसका उत्तर मालूम नहीं है। न इन्द्र को, न वरुण को, न अग्नि को, न वायु को, किसी को भी इसका उत्तर मालूम नहीं है। स्वयं जिसने यह नियम बनाया है, उसको भी इसका उत्तर नहीं मालूम!' पर नचिकेता अड़ गया, उसने कहा, 'धन-धान्य या हाथी-घोड़े वगैरह लेकर मैं क्या करूँगा? क्या मैं उससे अमर हो जाऊँगा? मेरे को तो इसी प्रश्न का उत्तर चाहिए, क्योंकि यही श्रेय है।'

जीवन में दो रास्ते हैं—श्रेय और प्रेय। जो अच्छा लगता है, वह प्रेय है। जो श्रेयस्कर है, वह श्रेय है। नचिकेता ने कहा, 'मुझको प्रेय का रास्ता नहीं चाहिए। तुम बोलते हो हाथी, घोड़ा, धन-धान्य, लड़की, लड़का, परी, अप्सरा, सुन्दरी, हीरा-मोती, बंगला या साम्राज्य चाहिए, पर ये सब तो प्रेय हैं। जैसे आदमी भोजन करता है और वह टट्टी बनकर गिर जाता है, वैसे ही संसार की जितनी भी भोग की चीजे हैं, वे एक दिन जरूर नष्ट हो जाती हैं। संसार की जितनी चीजें हैं, उनकी तीन में से एक गति होती है। या तो वह चीज किसी को दे दो, या उसका भोग करो, या फिर वह नष्ट हो जाएगी। दानम्, भोगः, नाशः, यह तीन तरह की गति होती है संसार की सारी चीजों की, विशेषकर धन-सम्पत्ति की। इसलिए मेरे को यह रास्ता नहीं चाहिए, मेरे को श्रेय का रास्ता ही चाहिए।'

तब यमराज और नचिकेता के बीच संवाद और परिसंवाद चला, क्योंकि यमराज मान नहीं रहे थे। और नचिकेता भी अड़ गया था। अंत में यमराज को झुकना पड़ा। कब झुकना पड़ा? जब नचिकेता ने कहा–

श्रेयश्च, प्रेयश्च, मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥

'दो रास्ते हैं, एक है श्रेय का और दूसरा है प्रेय का। आप मेरे को प्रेय का रास्ता दिखा रहे हैं, पर मेरे को वह नहीं चाहिए। मेरे को श्रेय का रास्ता चाहिए। बताना हो तो बताओ। नहीं तो हम वापस जाते हैं।' यमराज ने फिर कठोपनिषद् में पूरे का पूरा शास्त्र बतलाया है नचिकेता को।

यह संसार चिता है। 'अंधेरी निशा में नदी के किनारे धधकती किसी की चिता जल रही है।' पिछले हज़ारों सालों का इतिहास देखो। कौन रहा? क्या अशोक रहा? क्या शेक्स्पीयर या वाल्मीकि या राम या कृष्ण रहे? कोई नहीं रहा। चिरंजीवी हनुमान चले गए। क्या कोई अमर रहा? और मजे की बात तो यह है कि सब लोग अगर सौ साल या एक सौ पच्चीस साल ज़िन्दा रहें, तो हम लोगों के यहाँ महँगाई और बढ़ जाएगी। लोगों के दीर्घायु होने से, आबादी के बढ़ने से चीजों के दाम बढ़ रहे हैं। अगर कल दुनिया की आबादी पाँच अरब से तीन अरब हो जाए, तो दाम अपने आप कम हो जाएँगे। समस्या तो हम लोग दीर्घायु बनकर खड़ी कर रहे हैं।

दीर्घायुता पूरी मानवता के लिए सामाजिक समस्या बनने वाली है। इसका बाज़ार पर, प्रशासन व्यवस्था पर, सब चीजों पर असर पड़ेगा। मृत्यु दर घटती जा रही है और गरीबी, अपराध एवं आतंकवाद की दर बढ़ती जा रही है। संतुलन कायम रखने के लिए प्रकृति का अपना तरीका है। अगर मृत्यु दर घटती है, तो महँगाई और अपराध की दर बढ़ती है। हमारे ज़माने में, सन् 1940-41 में हमारे पिताजी को महीने के अठारह रुपये मिलते थे। अठारह रुपये में हमको पढ़ाते थे। एक रुपये का ग्यारह सेर गेहूँ, छः सेर घी, सात सेर चीनी मिलती थी। एक पैसे में एक डब्बी माचिस मिलती थी! और आज का हिसाब तो तुम जानते हो। ऐसा क्यों है? इसलिए कि आजकल बच्चे कम मरते हैं। मृत्यु दर गिर गयी है। पहले सौ में से बाइस-तेईस मर जाते थे, अब तो आठ-नौ ही मरते हैं। तो बाकी सब तो खाने के लिए आ गए हैं न? इसलिए दाम तो बढ़ेगा ही।

प्रकृति संतुलन चाहती है, जिसे हम लोगों ने इसलिए तोड़ा है कि हम लम्बी उम्र तक जी सकें। तुम लम्बी उम्र तक जीना चाहते हो तो बेशक जीओ, लेकिन मैं देर तक नहीं जीना चाहता। मैं अपनी बात बोल रहा हूँ। मैं देवघर में ज़िन्दा रहने के लिए नहीं, अपना शरीर छोड़ने के लिए ही आया था। अब यह छूटता ही नहीं, क्या करें? मृत्यु जीवन का उत्सव है। मृत्यु से किसी को घबराना नहीं चाहिए। मृत्यु शोक का कारण नहीं है। मृत्यु शोक का कारण दूसरों के लिए हो सकता है, मगर जो चला गया, उसके लिए तो मृत्यु मुक्ति है। मेरे लिए तो मुक्ति ही होगी। आज मैं टेनिस नहीं खेल सकता, तैराकी नहीं कर सकता। मैंने आज से दस साल पहले गाड़ी चलाना छोड़ दिया। मैं तो हवाई जहाज भी चलाता था। छोड़ दिया उसे भी। अब हवाई जहाज में ऊपर जाऊँगा तो ऑक्सीजन की कमी हो जाएगी। यह भी कोई ज़िन्दगी है कि केवल आदमी जी रहा है। केवल शरीर से आदमी ज़िन्दा नहीं रहता, आदमी के पास शक्ति भी होनी चाहिए, काम करने की ताकत होनी चाहिए। वह है नहीं, फिर भी–

आदमी चढ़े साल साठा, हुआ बल का घाटा,
पकड़ हाथ लाठी चले बम का नाटा,
व्यथाओं ने लगाया मुख पर जो चाँटा,
हुई पीड़ तन में हुआ सूख काँटा
फिर भी लेने चले जन्मदिन की बधाई।

यह क्या मज़ाक है कि इक्यासी साल की उम्र में जन्मदिन की बधाई लेने चले! इस उम्र में तो जन्मदिन पर शोक व्यक्त करना चाहिए। इस उम्र में आखिर आदमी का योगदान ही क्या है अपने सुख और आनन्द के लिए? कुछ भी तो नहीं। फिर मैं मौत से क्यों घबराऊँ? यह तो बस एक अध्याय की समाप्ति है, जिसके बाद एक दूसरा अध्याय शुरू होता है। ऐसा मेरा केवल अनुमान नहीं है, इस पर मेरा पूर्ण विश्वास है। जाना-आना अपने हाथ में नहीं है, हमने देख लिया। वह नियति पर है, उसका कार्यक्रम बना हुआ है।

कोई आदमी दो साल में चला जाता है, कोई दस साल में, कोई पचास में, और कोई इक्यासी साल तक चलता है। कर्म भोगना था, तो इक्यासी साल तक ज़िन्दा हैं। कर्म भोग लिए, अब और क्या बचा?

सब लोगों को दिवाली की सद्भावना और शुभकामना, आनन्द से रहना।

– 12 नवम्बर 2004

ॐ

अध्याय 14

रिखिया का आध्यात्मिक वातावरण

इस साल शतचण्डी यज्ञ के लिए आए सब लोगों को मैंने यहाँ एक साथ रखा है, ताकि तुम पूरा समय एक आध्यात्मिक वातावरण में बिता सको। इसलिए यहाँ अगर थोड़ी-बहुत असुविधा भी हो तो उसका ख्याल मत करना। इसे जीवन के एक अनुभव की तरह लेना। जिस उद्देश्य को लेकर तुम सब देश-विदेश के सुदूर स्थानों से यात्रा करके यहाँ आए हो, वह उद्देश्य यहाँ के पावन आध्यात्मिक वातावरण में श्वास लेना, उससे भरपूर लाभ प्राप्त करना है। भले ही इस पावन आध्यात्मिक वातावरण से तुमको अधिक ऑक्सीजन न मिले, परन्तु इतना तय मानो कि यहाँ स्वामी सत्संगी, स्वामी निरंजन और अन्य सभी लोग तुम्हारे लिए एक दिव्य-ऊर्जा-सम्पन्न वातावरण तैयार करने हेतु अथक प्रयास कर रहे हैं।

यहाँ अन्य लोगों से मेरा मतलब आस-पड़ोस के गाँव वालों से है। भारत के ग्रामीण भले ही गरीब हैं, लेकिन बहुत भले और विनम्र लोग हैं, इनका पर्यावरण के साथ पूर्ण सामंजस्य है। ये प्रकृति के साथ अपने स्वार्थ के लिए कभी छेड़-छाड़ नहीं करते। ये अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति का नाजायज शोषण नहीं करते, बल्कि उसके साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। जो जन-समुदाय प्रकृति के साथ मिल-जुलकर रहता है, उसका जीवन दिव्य हो जाता है। याद रखो, प्रकृति ईश्वर की रचना ही नहीं, बल्कि उसका एक अविभाज्य अंग है।

शान्ति, सादगी और गरीबी, यही इन लोगों का स्वाभाविक जीवन है। इनकी गरीबी स्व-आरोपित नहीं, जैसा कि अनेक संत-महात्मा लोग स्वेच्छा

से करते हैं। इनकी गरीबी परिस्थितियों के कारण है। फिर भी यह एक अच्छी चीज है, गरीबी कभी बुरी नहीं होती। यह उन्हीं लोगों के लिए अभिशाप है जो स्वभाव से लालची, शोषक, डाकू और दगाबाज होते हैं। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वालों के लिए गरीबी कभी अभिशाप नहीं हो सकती। अगर तुम गरीब नहीं भी हो, तो भी गरीब की तरह रहना सीखो। अपनी जरूरतों को कम करो, अपने लोभ का संवरण करो। मैं कोई नई बात नहीं बोल रहा हूँ, वही बोल रहा हूँ जो युगों से सभी धर्म बोलते आ रहे हैं।

मनुष्य की इच्छाएँ अंतहीन होती हैं, वे हर क्षण बढ़ती रहती हैं। कहीं-न-कहीं उन पर रोक लगानी पड़ती है। यहाँ के गरीब गाँव वाले धन्य हैं, क्योंकि ये ईश्वर के करीब हैं। बाइबिल भी तो यही कहती है। गरीब हमेशा विनम्र होते हैं। वे कभी उद्दण्ड नहीं हो सकते। अगर वे उद्दण्डता करते हैं, तो अमीर लोग उनको लात मारेंगे, ठुकराएँगे। गरीबों के लिए और कोई चारा नहीं है। उनके लिए एक ही विकल्प बचता है, नम्र तथा छोटे बने रहना।

हर साल तुम लोग यहाँ आकर जहाँ मन करता वहाँ ठहरते थे। लेकिन इस साल ऐसा नहीं है। इस साल तुम सब यहाँ मेरे साथ रहोगे और मेरे साथ रहने का मतलब है, सुविधाओं के बगैर रहना। न गरम पानी, न अपना निजी कमरा। रात को भी कोई एकान्त नहीं मिल पाएगा। इस साल मैंने सभी कार्यकर्त्ताओं को इस मामले में स्पष्ट हिदायतें दे रखी हैं और अब तुम लोगों को भी साफ-साफ बतला रहा हूँ कि इस साल एक-दूसरे से सटकर रहने के लिए तैयार हो जाओ, क्योंकि तुम सब भेड़ों के समान हो और मैं तुम्हारा गड़रिया। तुम जानते ही हो कि गड़रिया भेड़ों को कैसे सटाकर रखता है। इसलिए ऐसा मानकर चलो कि कुछ समय के लिए तुम सब भेड़ हो। जब यहाँ से चले जाओगे, तब भले ही अपने को फिर से शेर मान लेना। इसमें मेरे को कोई आपत्ति नहीं है, तुम खुद को जो चाहे समझो। परन्तु यहाँ तो तुम्हें भेड़ की तरह ही रहना होगा और यह एक बहुत बड़ा सद्‌गुण है, क्योंकि भेड़ कभी गड़रिये का विरोध नहीं करती।

यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण में तुमको कोई कमी नहीं मिलेगी। मैंने तुमको इसका कारण समझा दिया है। पहली बात तो यह कि यहाँ के मेरे सभी पड़ोसी गरीब हैं। दूसरी वजह यह कि जितने भी संन्यासी शिष्य हैं, वे भी उन्हीं की तरह सरल जीवन बिताते हैं, और तीसरी बात यह कि मैं भी इन्हीं सबके बीच रहता हूँ। अठारह-उन्नीस बरस की उम्र में जब मैं जागा, तब से मेरे जीवन

का एकमात्र उद्देश्य आध्यात्मिक जीवन रहा है। अंततः मुझे यह अनुभव हुआ कि आध्यात्मिक जीवन हमारे अंदर ही है। जहाँ हो, जिस हाल में हो, वहीं आध्यात्मिक जीवन बेरोकटोक जी सकते हो। यहाँ तो तुम केवल थोड़े दिनों के लिए आए हो, लेकिन अगर संकल्प कर लो, तो आध्यात्मिक जीवन जीना मुश्किल नहीं है।

देवोत्थान-एकादशी और तुलसी-विवाह

आज देवोत्थान एकादशी है। आज के दिन चातुर्मास व्रत समाप्त होता है। गुरु पूर्णिमा के पहले देवशयनी एकादशी को चातुर्मास शुरू होता है। ये चार महीने साधु-संन्यासी चातुर्मास व्रत करते हैं। गृहस्थ भी करते हैं। इधर-उधर जाने की मनाही रहती है। हम चातुर्मास में बाहर घूमने नहीं जाते। वैसे रोज छः-सात किलोमीटर घूमते हैं, पर चातुर्मास में एक ही जगह ठहरते हैं। आज चातुर्मास व्रत समाप्त होने पर कल से बाहर घूमना-फिरना सब शुरू हो जाएगा। इधर खेत में जाएँगे, उधर बाबुडीह गाँव की तरफ जाएँगे। आज ही तुलसीजी का विवाह भी है। यहाँ अपने आश्रम में तुलसीजी का विवाह मनाते हैं, क्योंकि वही इस अखाड़े की इष्ट देवी हैं। तुलसी एक प्रकार से डॉक्टर होती हैं। डॉक्टर शब्द तो उनकी प्रतिष्ठा के नीचे का शब्द है। यह तो केवल तुम्हें समझाने के लिए कहा। सर्दी, खाँसी, हैजा, जैसे अनेक प्रकार के रोगों और व्याधियों का निदान तुलसी से होता है। वह शरीर में उष्मा का संतुलन बनाए रखती है और पर्यावरण का भी शुद्धिकरण करती है। वैसे तुलसीजी की तो अपनी आध्यात्मिक शक्ति है ही, वे तो देवी हैं।

जब हम सन् 1989 में यहाँ आए थे, तब हमने तुलसीजी को यहाँ इष्ट देवी के रूप में स्वीकार किया था, क्योंकि उस समय हम पंचाग्नि कर रहे थे। पंचाग्नि बहुत कठिन साधना होती है, पंचाग्नि करने वाले का शरीर भी छूट सकता है। पंचाग्नि करने वाले ज्यादा बचते नहीं हैं, क्योंकि उसमें चारों तरफ आग और ऊपर सूर्य की अग्नि रहती है। पंचाग्नि याने पाँच अग्नि। यह साधना कई वर्षों तक चली। पंचाग्नि प्रायश्चित की साधना होती है। साधु-संन्यासी जब संसार में रहते हैं, तब उनको कर्म करना पड़ता है। आश्रम चलाना पड़ता है, पैसा रखना और खर्चना पड़ता है। इन सब कार्यों में कुछ गलतियाँ हो जाती हैं, जिसका प्रायश्चित संन्यासी को पंचाग्नि द्वारा करना पड़ता है और वह तब जब उसकी उम्र सत्तर के ऊपर हो जाए। कम उम्र के लोगों

के लिए पंचाग्नि का विधान नहीं है। सत्तर-पचहत्तर की उम्र जब हो जाए, तब संन्यासी संन्यास जीवन का पालन न भी करे तो चलेगा। उस अवस्था को कहते हैं–परमहंस। यह संन्यास की एक ऊँची अवस्था होती है।

कोई ऐसा माई का लाल आज तक न हुआ है न होगा, जो यह दावा कर सके कि उसने अपने जीवन में कोई गलती नहीं की है। गलतियाँ करना हमारा स्वभाव है, क्योंकि हमें सत्य का अता-पता ही नहीं है। अब तुम इसे भूल-चूक कहो या गलती कहो या पाप कहो, यह तुम्हारे ऊपर है। जब व्यक्ति संन्यास लेता है तो वह नाम, यश या प्रतिष्ठा के लिए नहीं होता। वह तो एक नए, बिल्कुल अलग जीवन की तलाश में संन्यास के मार्ग पर उतरता है। मैं सत्य की खोज के लिए समर्पित ऐसे जीवन को आध्यात्मिक जीवन की संज्ञा देता हूँ।

संन्यास में चार अवस्थाएँ होती है–कुटीचक, बहुदक, हंस और परमहंस। जब संन्यासी अपने गुरुजी के पास दस-बारह साल रहता है, वह कुटीचक हुआ। बहूदक का मतलब होता है, इधर से उधर घूमते रहना, अर्थात् परिव्राजक। कभी इस तीर्थ में तो कभी उस तीर्थ में, कभी यहाँ तो कभी वहाँ, उसको कहते हैं बहूदक। हंस अवस्था में वह आश्रम, अस्पताल, मन्दिर वगैरह बनाता है और परमहंस अवस्था में उसे यह सब छोड़ना पड़ता है। उस समय वह पंचाग्नि साधना करता है। वैसे और भी बहुत साधनाएँ हैं, किन्तु हमने अपने लिए पंचाग्नि चुनी, क्योंकि हमारा शरीर स्वस्थ रहता था। हम जीवन में कभी बीमार नहीं रहे। हमें बीमारी नाम की कोई चीज रही ही नहीं। कमर दर्द, पीठ दर्द, पेट दर्द, पैर दर्द, सर्दी या खाँसी, समझ में ही नहीं आता था। इसलिए हमने पंचाग्नि साधना का संकल्प लिया।

पंचाग्नि के समय शरीर में कई प्रकार की विकृतियाँ आती हैं। गर्मी में सबसे पहले निर्जलीकरण हो जाता है। हम तो सुबह से शाम तक पाँच अग्नियों के बीच बैठते थे। निर्जलीकरण होने की पूरी सम्भावना होती थी। पंचाग्नि साधना मकर संक्रान्ति (चौदह जनवरी) से कर्क संक्रान्ति (सोलह जुलाई) तक की जाती है। यह साधना केवल गरमी के दिनों में होती है, ठण्ढी के दिनों में नहीं। ठण्ढी के दिनों में तो मजा आ जाए, हाथ सेंक रहे हैं! बैसाख, चैत्र, जेठ के महीने में तो तापमान पचास डिग्री सेन्टीग्रेड पहुँच जाता था! एक दिन तो तापमान नब्बे डिग्री सेन्टीग्रेड हो गया! इतने तापमान में निर्जलीकरण हो जाता है, जिससे कई प्रकार की बीमारियाँ हो सकती हैं। दस्त, उल्टी, यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है।

उस समय हमने सोचा कि अब अपने को एक निजी चिकित्सक की जरूरत है। प्रश्न था कि निजी चिकित्सक किसको रखें? तब एकदम अन्दर से प्रेरणा आई–तुलसी। तुलसी से बेहतर व्यक्तिगत चिकित्सक तुम्हारा कौन हो सकता है? हमने तब यहाँ तुलसी लगाई और तब से आज तक, दोनों समय उनकी पूजा होती है। सन् 1998 तक मैं खुद करता था, उसके बाद अब वह परम्परा दूसरे व्यक्ति को दे दी गई है। प्रातःकाल तुलसी को जल चढ़ाया और प्रणाम किया, शाम को आरती की और दीपक जलाया। दोनों वक्त गोयठे के धुएँ से उनकी आरती भी होती है। यहाँ तुलसी का एक विशेष स्थान है।

तुलसी जी हमारी निजी चिकित्सक हैं। निजी चिकित्सक बोलना कुछ गलत थोड़े ही है। माँ बच्चों की निजी चिकित्सक नहीं होती क्या? तुलसी हमारी माँ भी हैं और हमारी निजी चिकित्सक भी। माँ बच्चे को केवल खाने-पिलाने वाली थोड़ी होती है, वह उसके स्वास्थ्य का भी ध्यान रखती है। बस वही सम्बन्ध यहाँ पर हमारा तुलसी जी के साथ है। माँ तुलसी इस स्थान की इष्ट देवी हैं। आज इन्हीं का विवाह होने जा रहा है। हम लोग देवोत्थान एकादशी को ही तुलसी जी का शालीग्राम जी से विवाह करते हैं।

हम शालीग्राम नेपाल से लाए थे। ये सब अन्दर की बातें हैं। जो शालीग्राम को पत्थर मानते हैं, वह बाहर की बात है। जो तुलसी जी को विधवा मानते हैं, वह भी बाहर की बात है। लेकिन जो तुलसी जी को माँ मानते हैं, देवी मानते हैं, वह अन्दर की बात है। इसी तरह शालीग्राम को जो देवता मानते हैं, वह भी अन्दर की बात है। अन्दर की बात का मतलब होता है हमारी व्यक्तिगत भावना। तुम देवघर में शिवजी को पत्थर मानते हो या देवता मानते हो, वह तुम्हारी अपनी भावना है, अन्दर की बात है। हम देवघर के शिवलिंग को पत्थर नहीं मानते, देवता मानते हैं, तुलसी को विधवा नहीं, माँ मानते हैं, यह हमारी व्यक्तिगत भावना है। तुम मानो या ना मानो, तुम्हारी मर्जी।

तुलसी के लिए अंग्रेज़ी में बैसिलिका शब्द प्रयुक्त होता है। जो लोग यूनान गए हैं, उन्होंने वहाँ देखा होगा कि अनेक घरों के सामने एक छोटा-सा तुलसी चौरा होता है और वहाँ तुलसी के साथ-साथ ईसा मसीह की मूर्ति भी रखते हैं। आज हम तुलसीजी का विवाह संपन्न करने जा रहे हैं। या यूँ कहिए कि उनके विवाह की सालगिरह मना रहे हैं। तुलसी का विवाह शालिग्राम के साथ हुआ था, जो शिवलिंग की तरह ही एक पत्थर होता है।

शिवलिंग के पत्थर मध्यप्रदेश की नर्मदा और उत्तर प्रदेश की गोमती नदी में पाए जाते हैं। शिवलिंग अण्डाकार होता है।

वैज्ञानिकों का शिवलिंग कैसा होता है, आपने कभी इस पर विचार किया है? जो परमाणु रिएक्टर होते हैं, वे न तो त्रिकोणाकार होते हैं और न ही गोल। उनका ढाँचा भी अण्डाकार होता है। अब आप ही सोचिए कि शिवलिंग और परमाणु रिएक्टर के बीच क्या सम्बन्ध हो सकता है। एक बात और, सभी का चेहरा भी शिवलिंग के जैसा होता है, किसी का चेहरा त्रिकोणाकार नहीं होता। सब के चेहरे, परमाणु रिएक्टर और शिवलिंग, ये सभी अण्डाकार होते हैं।

यह तो शैवों की बात हुई। लेकिन वैष्णव शालिग्राम को पूजते हैं। शालिग्राम एक सजीव प्राणी होता है, जो नेपाल के मुक्तिनाथ में पाया जाता है। मुक्तिनाथ में एक झील है, जहाँ केकड़े जैसा जीव पाया जाता है। लोग उसे झील से निकालकर, उसके बाहरी आवरण को जब अलग करते हैं, तब भीतर एक पत्थर मिलता है। वह अन्य पत्थरों की भाँति ही होता है। उसी पत्थर को शालिग्राम कहा जाता है। शालिग्राम विविध प्रकार के होते हैं।

भगवान जाने वह जीव पत्थर के साथ कैसे रहता होगा! अब उस जीव के फेफड़े, हृदय तथा अन्य अंग कहाँ होते होंगे, मुझे नहीं मालूम। नेपाली लोग केकड़े को सुखा लेते हैं और उसके बाहरी खोल को फेंककर, भीतर का पत्थर रख लेते हैं। केकड़े के भीतर से प्राप्त ऐसे शालिग्राम में जन्मजात सोने की पट्टी पाई जाती है। इसलिए नेपाली पुलिस और चुंगी विभाग शालिग्राम लेकर आने वाले लोगों को रोकते हैं और उनसे शालिग्राम लेकर उसमें से सोना निकाल लेते हैं। इसके बाद ही वह उन्हें शालिग्राम ले जाने की अनुमति देते हैं। इसलिए तुमको जो शालिग्राम मिलता है, वह स्वर्ण विहीन होता है। मैंने खुद कभी ऐसी सोने की पट्टी नहीं देखी, क्योंकि जो भी शालिग्राम मैंने देखे हैं, वे सब-के-सब सोना निकालने के बाद ही के रहे हैं। जो कुछ मैंने तुमसे कहा, वह लोगों से सुना-सुनाया है। शालिग्राम तुलसी के पति कहलाते हैं और वैष्णव लोग शालिग्राम को वैसे ही पूजते हैं जैसे शैव शिवलिंग को।

वैदिक धर्म में तुलसी का अहम् स्थान है। हिन्दुओं में, विशेषकर महिलाओं में तुलसी की बहुत मान्यता है। भारत के हर घर में आप तुलसी चौरा अवश्य पाएँगे। यहाँ प्रतिदिन सवेरे तुलसी के पौधे को जल चढ़ाया जाता है और शाम को दीपक जलाकर पूजा जाता है। आज उसी तुलसी का विवाह होने जा रहा है। संन्यासी भले ही शादी न करे, परन्तु उसके भगवान कुँवारे कैसे

रह सकते हैं? अगर वे शादी न करते तो हम-तुम यहाँ कैसे होते? हम सभी उस परमेश्वर की संतान हैं, जिसकी कोख ही नहीं है। अगर भगवान हम सबके पिता हैं, तो माता कौन है? तुलसी हमारी माता है और आज हम सब उसी माँ की पूजा-अर्चना करने जा रहे हैं।

प्रतिदिन सुबह गोयठे की आग में जौ, तिल, सरसों, घी और अन्य सुगंधित द्रव्य डालकर हम अपनी तुलसी माँ की पूजा करते हैं। इससे पर्यावरण भी शुद्ध होता है। यूनान से भी कुछ लोग हवन की ऐसी ही सामग्री लाए हैं। तुलसीजी का पूजा में जो सुगंधित द्रव्य इस्तेमाल होता है, वह यूनान से भी आता है, क्योंकि वहाँ भी तुलसी की पूजा होती है। यूरोप के कई देशों में तुलसी की पूजा होती है। हम यहाँ की सामग्री, जौ, तिल, वगैरह सब डालते हैं और बाहर की सुगंधित सामग्री भी डालते हैं। रोज़ सुबह-शाम उससे आरती होती है। सुबह स्नान करा देते हैं और शाम को दीपक जला देते है। इसमें दस मिनट से ज्यादा समय नहीं लगता। सन् 1989 से आज तक यह परम्परा बनी हुई है। जैसे हर स्थान में मंदिर होता है, देवी-देवता होते हैं, वैसे ही यहाँ की देवी तुलसी हैं और तुलसीजी की पूजा ही इस स्थान का मुख्य आचार है।

– 22 नवम्बर 2004





अध्याय 15

क्रिसमस और क्राइस्ट कुटीर

रिखिया की क्रिसमस पूरी दुनिया में मशहूर है। पिछले साल के क्रिसमस कार्यक्रम को भक्तों ने इंटरनेट के माध्यम से दुनियाभर में प्रसारित किया। पूरे संसार में रिखिया ही एकमात्र स्थान है जहाँ क्राइस्ट की अपनी कुटिया, अपना घर है और वह जगह है क्राइस्ट कुटीर। भारत में कुटीर का सिद्धान्त बहुत पुराना है। कुटीर कोई गिरजाघर या मंदिर जैसा पूजा का स्थल नहीं होता। कुटीर का तात्पर्य निवास स्थान से है। अब पूजाघर और निवास स्थान के बीच तो बड़ा फर्क होता है न। वैसा ही फर्क जैसा तुम अपने कार्यालय और निवास के बीच मानते हो। भले ही तुम अपने दफ्तर, बैंक या कारखाने में दस घण्टे काम क्यों न करते हो, लेकिन वह तुम्हारा घर नहीं माना जा सकता। इसी तरह एक मंदिर या चर्च भी भगवान का स्थायी निवास नहीं माना जा सकता। निवास स्थान तो उसे कहते हैं जहाँ तुम आराम कर सकते हो, इच्छानुसार खान-पान कर सकते हो, जहाँ बिना किसी औपचारिकता के जैसे चाहे रह सकते हो। ऐसी ही जगह को कुटीर माना जाता है।

रिखिया में क्राइस्ट कुटीर ही एकमात्र कुटीर नहीं है। अभी जहाँ तुम लोग बैठे हो, वह गणेशजी का स्थान है, गणेश कुटीर। और सामने में है रघुनाथ कुटीर। इस तरह तुमको यहाँ राम, गणेश और क्राइस्ट, इन तीनों की कुटीर मिलेंगी। अभी तुम लोग शतचण्डी यज्ञ, तत्त्व शुद्धि सत्र और क्रिसमस, इन तीन महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में शामिल हुए हो। ये तीनों तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन का मार्ग अवश्य प्रशस्त करेंगे। इन तीनों का संदेश एक समान है– अपने भीतर देखो, अंतिम सत्य वहीं है।

ईसा मसीह

अपने संन्यास जीवन के दौरान ही नहीं, मैंने अपने स्कूल के दिनों से ही क्राइस्ट के बारे में बहुत कुछ पढ़ा था। धीरे-धीरे मैंने उनसे सम्बन्धित अपनी जानकारी और ज्ञान को और व्यापक बनाया। मैंने उनसे सम्बन्धित हर प्रकार के साहित्य का अध्ययन किया है, जिसे पढ़कर मेरे को इस तथ्य का पता चला कि ईसा मसीह ने अपने जीवन के बारह साल एक संन्यासी की तरह भारत में बिताए थे। तुम लोगों में से भी तो कइयों ने यहाँ एक संन्यासी की तरह जीवन बिताया है। इसी प्रकार क्राइस्ट भी बारह वर्षों तक भारत में संन्यासी की तरह रहे। इस दौरान वे अनेक महापुरुषों के संपर्क में आए और अनेक ऐतिहासिक स्थलों में घूमे। कुछ समय वे लद्दाख के हेमीस मठ में भी रहे। इसका उल्लेख वहाँ के अभिलेखों में मिलता है, जिनकी कई पाश्चात्य विद्वानों ने जाँच-पड़ताल की है और अपने निष्कर्षों को प्रकाशित भी किया है।

अपने भारत भ्रमण के दौरान क्राइस्ट उस समय के शक सम्राट, शालिवाहन से भी मिले थे। इस समय शक सम्वत् 1926 चल रहा है। इस सम्वत् को शालिवाहन ने अपने राजतिलक के वर्ष से शुरू किया था। जैसे पश्चिम में ग्रेगोरियन कैलेण्डर है, चीनवासियों का अपना चीनी कैलेण्डर है, अपने यहाँ चान्द्रमास कैलेण्डर है, वैसे ही यह शक कैलेण्डर है। और यहाँ भारत में शक कैलेण्डर को सरकार की मान्यता प्राप्त है। क्राइस्ट और शालिवाहन की भेंट का उल्लेख भविष्य पुराण में मिलता है, जो हमारे यहाँ के अट्ठारह पुराणों में से एक है। भविष्य पुराण भविष्यवाणियों का ग्रन्थ है। इसमें क्राइस्ट और महाराज शालिवाहन की भेंट का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसमें ईसा मसीह को 'ईश-पुत्र' के नाम से सम्बोधित किया गया है। 'ईश-पुत्र' माने ईश्वर का बेटा। क्राइस्ट ईश्वर के पुत्र थे, यह तो तुम सब लोग जानते ही हो। बाइबिल भी इस सत्य की घोषणा करती है।

अपने जीवन के बारह वर्ष क्राइस्ट भारत में एक संन्यासी की तरह रहे। भारत में संन्यास परम्परा तीन-चार सौ साल पुरानी नहीं है, यह तो हजारों सालों से चली आ रही है। इसका उल्लेख वेदों में और सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों में पाया जाता है। यह महात्मा बुद्ध के भी पहले से चली आ रही है, क्योंकि बुद्ध का काल तो आज से लगभग ढाई हजार साल पहले ही हुआ। तब भी इस परम्परा को संन्यास ही कहा जाता था। लेकिन उन दिनों लोग जीवन के अंतिम चरण में, पचहत्तर वर्ष की आयु होने के बाद ही संन्यास

आश्रम में प्रवेश करते थे, आज की तरह पचीस वर्ष की युवावस्था में नहीं। उस समय संन्यास शरीर त्यागने से पहले पूर्ण निवृत्ति का समय माना जाता था। आगे जाकर संन्यास का अर्थ व्यापक हुआ, इसे जीवन का एक उच्च पथ माना गया। अब यह केवल मरणासन्न व्यक्तियों तक सीमित नहीं रह गया है। अब संन्यास उन लोगों के लिए है जो दूसरों के लिए जीना चाहते हैं और अपना सब कुछ समर्पित करके आध्यात्मिक मार्ग पर चलना चाहते हैं। आदि शंकराचार्य ने तो आठ साल की उम्र में ही संन्यास ले लिया था, बुद्ध छत्तीस वर्ष की आयु में जीवन के इस राजमार्ग पर चल पड़े थे और क्राइस्ट भी सोलह वर्ष की आयु में संन्यासी बन गये थे।

हम कोई सम्प्रदायवादी व्यक्ति तो हैं नहीं। यहाँ मैं किसी सम्प्रदाय विशेष के बारे में मनगढ़ंत बातें नहीं कह रहा हूँ, बल्कि क्राइस्ट के बारे में तुमको कुछ सच्ची जानकारियाँ दे रहा हूँ। मैं तो उनको अपना मानकर और अपने को उनका मान कर यह सब कह रहा हूँ। सच तो सच है, मैं उसे कहने से नहीं हिचकता। मैं अपने गुरु और ईश्वर के बारे में भी तुमसे खुलकर चर्चा करता हूँ। भगवान श्रीकृष्ण ने तो आठ विवाह किए थे न। क्या यह बात मेरे को छिपानी चाहिए? बिल्कुल नहीं। अब यह अलग बात है कि उन्होंने सही किया या गलत, उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं। मेरा सरोकार सिर्फ उनके प्रति श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और पूजा से है। अगर मेरे को उनका व्यवहार रास न आए, तो मेरा उनसे कोई लेना-देना नहीं और अगर उनके प्रति भक्ति है, तो फिर भले ही उन्होंने हजार विवाह क्यों न किए हों, मेरे को उससे क्या मतलब? वैसे अगर कोई आदमी आठ-आठ बीबीयों को सम्हाल पाता है, तो वह अवश्य ही महापुरुष कहलाने लायक है! आजकल तो एक बीबी के साथ गुजारा करना भी भारी पड़ता है। श्रीकृष्ण की तो एक नहीं, आठ पटरानियाँ थीं और उन सबके अलग-अलग महल और अलग-अलग व्यवस्था थी। फिर भी वे सबके साथ बिना किसी झंझट के रहते थे।

क्या मेरे को यह सब छिपाना चाहिए? क्या मेरे को यह कहना चाहिए कि यह सब झूठ है, उनकी एक ही पत्नी थी या और भी अच्छा होगा यदि कहूँ कि वे शादी-शुदा ही नहीं थे। क्या कुँवारे भगवान की ही पूजा होनी चाहिए? नहीं, वैवाहिक जीवन का आध्यात्मिकता से कोई मतलब नहीं है। आध्यात्मिकता तो जीवन का प्रकाश है। तुम्हारा मतलब सिर्फ उस प्रकाश से है, चाहे वह तुम में, मुझ में या ईसा मसीह में हो।

क्राइस्ट जब एसीन लोगों के संपर्क में आए, तब उन लोगों ने क्राइस्ट को भारत जाकर आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। आध्यात्मिक ज्ञान नहीं, आध्यात्मिक अनुभव। आध्यात्मिक जानकारी तो किताबों से, शिक्षकों से मिल सकती है, लेकिन अनुभव एक अलग चीज है। जैसे मैं मांसाहार के बारे में बहुत कुछ भले ही बोल लूँ, लेकिन अनुभव के मामले में तो बिल्कुल कोरा हूँ। ज्ञान और अनुभव के बीच जमीन-आसमान का अंतर होता है। किताबी ज्ञान भले ही तुमको किसी चीज की जानकारी दे दे, पर वह उसका अनुभव प्रदान नहीं कर सकता। इसलिए वहाँ के एसीन लोगों ने क्राइस्ट को भारत भेजा।

सबसे पहले क्राइस्ट लद्दाख गए। उस समय भारत में बौद्ध धर्म सबसे अधिक प्रभावी था और साथ-ही शक्तिशाली संस्कृति भी, कश्मीर से कन्याकुमारी तक उसका बोलबाला था। हालाँकि उस समय भारत में भक्ति आन्दोलन गति पकड़ रहा था और बौद्ध धर्म का पतन शुरू हो चुका था। बौद्ध धर्म में भक्ति का कोई स्थान नहीं है। वह तो सम्यक् जीवन, सम्यक् आचरण, सम्यक् चिन्तन, आदि अष्टांग मार्ग की शिक्षा देता था। ऐसी बहुत कुछ शिक्षा ईसाई धर्म में भी दिखाई देती है। पर साथ-ही-साथ उस समय भारत में भक्ति मार्ग का उदय भी हो रहा था।

भगवान को किसी ने देखा नहीं है, फिर भी तुम उन पर विश्वास करते हो। सही आचरण और व्यवहार अपनी जगह ठीक हैं, लेकिन वैष्णव धर्म की आधारशिला इससे जरा हट कर है। ऊपर कहीं कोई भगवान है, जिसने पूरी सृष्टि को बनाया और जब कहीं कोई गड़बड़ होती है, तब वह खुद आता है या अपने किसी पैगम्बर को भेजता है। यह वैष्णव सिद्धान्त भी तो ईसाई मत में पाया जाता है। उन बारह सालों में क्राइस्ट को यह सब कुछ जानने और अनुभव करने को मिला। लद्दाख के बाद वे मद्रास पहुँचे। उस समय मद्रास को चेन्नापुरी नाम से जाना जाता था। उसके बाद वे जगन्नाथपुरी गए। वहाँ के भव्य मंदिर में काष्ठ की तीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्रा की। क्राइस्ट कुछ समय तक वहाँ रहे और उन्होंने वहाँ की रथयात्रा में हिस्सा भी लिया। वे वाराणसी और नेपाल की राजधानी काठमाण्डू भी गए। काठमाण्डू हिमालय की गोद में बसा एक बहुत प्राचीन शहर है।

भारत से जब क्राइस्ट इस्राइल लौटे, तब उनकी उम्र तीस साल थी। तब तक उनके माता-पिता, जोसेफ और मरियम, मिस्र से इस्राइल वापस आ चुके

थे, जहाँ उन सबका पुनर्मिलन हुआ। बस यहीं से उनके जीवन की जानी-पहचानी कहानी शुरू होती है। उनके जीवन के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक संघर्ष तो सर्वविदित हैं। चूँकि क्राइस्ट दिव्य ज्ञान से आलोकित हो चुके थे, उन्होंने इन सब संघर्षों का साहस के साथ सामना किया। आगे की कहानी तो तुम सब को मालूम ही है।

क्राइस्ट का असली नाम था ईसा मसीह। ईसा शब्द हमारे यहाँ भगवान के लिए आता है। हमारे यहाँ वेदों में ईसा शब्द है, यजुर्वेद के अंतिम अध्याय का नाम ईशावास्योपनिषद् है। मसीह का मतलब होता है संदेशवाहक, खबर पहुँचाने वाला। उनका नाम असल में ईसा ही था। अब यह क्राइस्ट शब्द कहाँ से आ गया, यह भी बहुत विचित्र चीज है। और फिर मजे की बात यह है कि भगवान श्री कृष्ण और ईसा मसीह के जन्म की कुछ घटनाएँ बहुत समान हैं। ईसा मसीह जब पैदा हुए, उनको वहाँ से हटा कर मिस्र देश ले जाया गया क्योंकि वहाँ का जो राजा था, उसको पता चल गया कि उसको मारने वाला कोई पैदा हो रहा है। तो उस दिन पैदा हुए जितने भी बच्चे थे, उसने सब को मरवा डाला। कृष्ण भगवान के साथ भी वही हुआ। जब भगवान कृष्ण पैदा हुए, तो उनको उठाकर गोकुल में ले गए। मथुरा में कंस ने उस रात को पैदा हुए सभी बच्चों को मरवा डाला। ये कहानियाँ बहुत समान हैं। और यदि यह मानकर चला जाए कि उनका नाम क्राइस्ट था, तो क्राइस्ट को क्रिस्टो भी बोलते हैं। क्रिस्टो और कृष्ण नाम बहुत मिलते-जुलते हैं।

पर समान होने पर भी दोनों एक ही व्यक्ति नहीं थे, क्योंकि भगवान कृष्ण का जन्म आज से करीब साढ़े पाँच हजार साल पहले हुआ था, जबकि ईसा मसीह आज से लगभग दो हजार साल पहले पैदा हुए थे। जब भगवान कृष्ण महाभारत के युद्ध में सारथी के रूप में गये थे, उस समय उनकी उम्र नब्बे साल की थी। नब्बे साल की उम्र में उन्होंने महाभारत में अर्जुन का रथ हाँका था— *महाभारत में जाके कन्हैया, अर्जुन को रथ हाँक्यों राम।* और महाभारत युद्ध के बाद छत्तीस साल वे जिन्दा रहे। उस समय उनकी उम्र एक सौ पचीस साल और कुछ महीने रही होगी। यह सब ज्योतिष के मुताबिक बोल रहा हूँ तुमको। भगवान कृष्ण की जो जन्म कुण्डली है, वह सब देखने के बाद भगवान श्री कृष्ण की पूर्ण आयु एक सौ पचीस साल और कुछ महीने निकलती है। इसलिए क्राइस्ट और कृष्ण में यद्यपि काफी समानता है, फिर भी दोनों एक व्यक्ति नहीं हैं। दोनों को एक नहीं मानना।

भगवान का घर

ईसाई धर्म में मुझे कुछ अजीब नहीं लगता। अगर मैं उसे अजीब कहता हूँ, तो वही बात तो मेरे धर्म में भी मिलती है। मनुष्य के जीवन में दो ही ऐसी चीजें हैं, जो उसके भाग्य और सुख-दुःख को निर्धारित करती हैं। एक है धर्म, माने उसकी जीवनशैली तथा आचार-व्यवहार और दूसरा है भक्ति, अर्थात् किसी ऊँचे आदर्श के लिए भावना। और यही दोनों चीजें ईसाई धर्म का आधार हैं। जब मैंने यहाँ क्राइस्ट कुटीर की स्थापना की थी, तब मेरे मन में यही विचार था कि क्राइस्ट का कहीं-न-कहीं अपना घर जरूर होना चाहिए। इस्राइल में तो वे एक कारखाने में काम करते हैं। जितने भी कैथोलिक या प्रोटेस्टेंट चर्च हैं, वे कारखाने ही तो हैं, जहाँ क्राइस्ट थोड़ी देर के लिए काम पर चले जाते हैं। रविवार के दिन वे काम पर निकलते हैं और फिर लौट आते हैं! लेकिन कहाँ लौटते हैं? यूरोप-अमेरिका में तो उनके लिए कोई घर है ही नहीं। कभी कहीं पर क्राइस्ट मिल जाएँ, तो उनसे कहना कि आप रिखिया जाइए, वहाँ आपके लिए एक सुंदर-सी कुटिया बनी है!

हमारे देवी-देवताओं के लिए तो कोई घर है ही नहीं। जहाँ भी जाते हैं काम पर जाते हैं। लोग शिव जी पर पानी चढ़ाते जाते हैं और बेचारे शिव जी चौबीस घण्टे पानी के नीचे बैठे रहते हैं। अरे भई, उनकी भी तो अपनी कोई जिन्दगी होनी चाहिए न! क्या तुम चौबीस घण्टे अपने दफ्तर या बैंक में ही रहते हो? दफ्तर में काम करने वाले आदमी की भी तो अपनी जिन्दगी होती है। बैंक या दुकान तुम्हारा घर नहीं है। तुम्हारा घर कहाँ है? अपनी कुटीर में। चाहे छोटा हो या बड़ा, वहाँ तुम आराम के साथ बैठ सकते हो, सो सकते हो, टी.वी.देख सकते हो, रेडियो सुन सकते हो, बच्चों के साथ खेल सकते हो और अपने नाती-पोतों से बदमाशियाँ भी कर सकते हो, क्योंकि वह तुम्हारा अपना घर है।

भगवान का अपना घर कहाँ है? दो जगह है। गणेश जी का अपना घर एक तो यह है, गणेश-कुटीर, जहाँ हम अभी बैठे हैं। और उनका दूसरा घर हर एक आदमी के दिल में है। पर तुम्हारे दिल में गणेश जी को बहुत तकलीफ होती है, क्योंकि वह बड़ा गंदा रहता है। कहीं प्लास्टिक तो कहीं जूठन तो कहीं पर टट्टी-पेशाब पड़ा है। सब जगह मच्छर-मक्खी हैं। अगर दिल गन्दा हो, तो भगवान को तकलीफ नहीं होगी क्या?

गणेश जी कहते हैं, 'मैं मानता हूँ सबका दिल मेरा घर है, मगर वहाँ जाने को मन नहीं करता है। इससे अच्छा है कि देवघर में गणेश जी का जो मन्दिर

है, वहीं रह जाऊँ। खैर, अभी तो अच्छा है कि रिखिया में एक गणेश कुटीर बन गयी है, चलो, वहीं जाकर रहेंगे।' गणेश जी यहीं गणेश कुटीर में रहते हैं। उनकी हम पर बड़ी कृपा है। वैसे तो रघुनाथ जी की भी हम पर बहुत कृपा है। और क्राइस्ट की भी। क्राइस्ट की कृपा से तो हमने दुनिया के हर ईसाई देश में अपना डंका बजा दिया, झण्डा गाड़ दिया। किसी ने जरा भी विरोध नहीं किया। तुम्हारे यहाँ किसी को ईसाई बना दो, तो हंगामा हो जाता है, गाड़ियाँ जला दी जाती हैं। लेकिन हमारे साथ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, क्योंकि उनकी कृपा है। जब भगवान की कृपा होती है तब—*मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिं।* मैं तो एक छोटे-से किसान के घर में पैदा हुआ हूँ। लेकिन कोई भी ऐसा नगर या देश नहीं है, जहाँ पर मैंने योग का झण्डा न गाड़ा हो। यह अपनी शक्ति से नहीं होता है।

चरण कमल बंदौ हरि राई
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कुछ दर्शाई।
बहरो सुनै, मूक पुनि बोले, रंक चले सिर छत्र धराई॥

कोई आदमी कितना भी कमजोर क्यों न हो, तथाकथित छोटी जात में पैदा हुआ हो, सूरदास की तरह कामासक्त और तुलसीदास की तरह औरत के पीछे दीवाना क्यों न हो, पर यदि एक बार भगवान की कृपा हो गई, तो तकदीर बदलते देर नहीं लगती। लोहा सोना बन जाता है, कोयला हीरा, तुलसी तुलसीदास और अंधा सूरदास बन जाता है।

यह हमेशा याद रखने की बात है कि भगवान का घर साफ होना चाहिए। अगर तुम बोलते हो कि भगवान मेरे दिल में बसते हैं, तो मैं उससे सहमत हूँ, पर मकान तो गंदा है तुम्हारा। उस गंदे मकान में तुम भगवान को रखोगे तो वे बीमार पड़ जाएँगे! भगवान को अगर अपने हृदय में रखना चाहो, तो अपने दिल की रोज किसी भी तरह से सफाई कर दिया करो। दो बार न सही, कम-से-कम एक बार झाड़ू तो दे ही सकते हो।

हृदय की शुद्धि

सवाल उठता है, दिल की सफाई कहते किसको हैं? यह कैसे पता चलेगा कि हमारा दिल साफ है या नहीं? रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे, 'जहाँ गंदगी होती है, वहाँ मक्खी अपने आप आती है। जहाँ मीठा होता है, वहाँ चीटी

अपने आप आती है। जहाँ सम्पत्ति होती है, वहाँ चोर अपने आप आता है। और जहाँ सुन्दर बगीचा, सुन्दर तालाब, सुन्दर फूल, बड़ा अच्छा सुरम्य ललित वातावरण होता है, वहाँ सब लोग अपने आप आते हैं।' बस, हृदय भी ऐसा होना चाहिए।

दिल और दिमाग दो अलग चीजें हैं। दिल कहते हैं भावना को और दिमाग कहते हैं विचार को। विचार दिमाग से पैदा होता है और भावना हृदय से। लेकिन भावना दिमाग को भी प्रभावित करती है। अगर तुम्हारे अन्दर भय, निन्दा, हिंसा, काम, क्रोध, ईर्ष्या जैसे बुरे विचार आते हैं, तो समझ लो कि जरूर तुम्हारी भावना में गड़बड़ है। अगर तुम्हारा हृदय शुद्ध है, तो तुम्हारे विचार भी वैसे ही शुद्ध और मलिनता से मुक्त होंगे। यही जीवन में पवित्रता की कसौटी है। तुम कदापि नहीं कह सकते कि तुम एक भले और नेक इंसान बन गए हो। विचार नहीं, भावना आदमी को भला बनाती है। तुम कोई अच्छी किताब पढ़कर एक-आध नेक विचार सोच लेते हो, पर वह कोई मायने नहीं रखता। जो भी किताब तुम पढ़ोगे उससे प्रभावित तो होगे ही। बुद्ध, क्राइस्ट, विवेकानन्द और सत्यानन्द तो सही बात कहते ही हैं, उनके विचार नेक हैं ही। लेकिन क्या तुम भी वैसा अनुभव कर सकते हो?

भक्ति का आधार हृदय होता है। दिमाग नहीं, भावना आधार होती है। बिना भावना के भक्ति हो ही नहीं सकती। बिना भावना के काम-वासना, क्रोध, भय, ईर्ष्या, सुख-दुःख या चिन्ता हो ही नहीं सकती। इसका मतलब यह हुआ कि अशुभ रास्ते से जाने वाली भावना को ही शुभ मार्ग की ओर ले जाना है। यह जो वासना की नदी बह रही है, इसको शुभ मार्ग की ओर ले जाओ और शुभ मार्ग पर नियोजित करके क्षीण करो।

'शुभाभ्यां अशुभाभ्यां वहन्ति वासना सरित'

इसी वासना की नदी को हम भावना बोलते हैं। यह हर मनुष्य के अन्दर बह रही है। इसको किसी ने देखा तो नहीं है, पर अनुभव जरूर हुआ है। अब इस नदी को हम लोग नियोजित करते हैं, इसका मार्ग बदलते हैं। इसका मार्ग बदल कर नहर बना देते हैं, खेतों की तरफ ले जाते हैं और बिजली पैदा करने के लिए इसका इस्तेमाल करते हैं। जो नदी कभी अपने तट को तोड़कर गाँवों, बस्तियों और खेतों को बर्बाद कर रही थी, वही नदी आज निर्माणकारी हो गई है।

उसी प्रकार भावना की जो नदी है, जिससे तुममें क्रोध, काम-वासना या ईर्ष्या पैदा होती है, जिसके कारण तुम किसी को गोली मार देते हो, किसी को मुकदमे में फँसा देते हो, अपनी बीबी-बच्चों की पिटाई करते हो, दूसरी औरत के पास जाते हो या दूसरे का धन हड़प लेते हो, वह भावना अलग-अलग नहीं होती। अगर तुम्हारी जेब में बीस रुपये हैं, तो ऐसा नहीं हो सकता कि दस रुपये इस जेब में रहें और दस दूसरी जेब में। भावना में आधे-आधे की बात लागू नहीं होती। अगर मनुष्य को अपने जीवन की दिशा बदलनी है, तो भावना का शत-प्रतिशत मार्ग परिवर्तन जरूरी है। आखिर विवेकानन्दजी क्या थे? ज्यादा-से-ज्यादा कॉलेज से पढ़-लिखकर वकील वगैरह बने होते। पर आज तो वे युग-पुरुष हो गए न, लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के लिए एक प्रेरणास्रोत बन गए हैं।

हम तो अपने बारे में भी बोलते हैं, हमको उसमें शर्म नहीं लगती है। हम तो एक साधारण घर के व्यक्ति हैं। हमारे जैसे लोग क्या बनते हैं? मैट्रिक पास कर लिया, कुछ यहाँ, कुछ वहाँ बदमाशी करते हैं। कभी सिनेमा में जाते हैं, कभी बोतल की तरफ जाते हैं। यही हाल हमारा भी होता। परन्तु हमारे गुरु ने हमारी भावना की पूरी दिशा ही बदल दी। जहाँ आज हिन्दुस्तान में चार ईसाई बनते हैं, तो हंगामा हो जाता है, वहाँ विदेश में हम तो दिन-रात यही काम करते थे, लेकिन कहीं कोई बोलता ही नहीं था। किसी की हिम्मत नहीं कि कुछ बोले। हम तो नाम बदल देते हैं, कपड़ा बदल देते हैं, मंत्र बदल देते हैं। और मजे कि बात यह कि जब हम वहाँ जाते हैं, किसी कंगाल को चेला नहीं बनाते। वैसे वहाँ कंगाल हैं भी नहीं। कोई इन्जीनियर है, तो कोई डॉक्टर, तो कोई वैज्ञानिक। यानि कि वहाँ गरीब-से-गरीब आदमी के पास भी इतना पैसा है कि वह हिन्दुस्तान घूम कर आ सकता है। लेकिन यहाँ कैसे लोगों का धर्म परिवर्तन होता है? फोकट राम, लफंगा राम, निरक्षर राम और कंगाली राम जैसों का वे लोग धर्म परिवर्तन करते हैं।

बुरे विचार तो सबमें होते हैं। समझदार व्यक्ति उन्हें सहेज कर नहीं रखते, कचरे की टोकरी में डाल देते हैं। ज्ञानी के मन में भी बुरे विचार आते हैं, लेकिन वह उनको सेप्टिक टैंक में भेज देता है। जबकि अज्ञानी तो रसोईघर में ही टट्टी करके आ जाता है और वह वहीं पर पड़ी रहती है। उसको सफाई का कोई अंदाज ही नहीं है। सोने की जगह में बैठ कर खाना खाओगे तो चूहा नहीं आएगा क्या? लोगों को मर्यादा का ज्ञान नहीं है।

सत्त्व गुण, रजो गुण और तमो गुण—सारी प्रकृति इन तीन गुणों से नियंत्रित है। सतो गुण तो थोड़ी बहुत मात्रा में सभी में होता है। जो त्रिगुणातीत हो गया, वह जीवनमुक्त हो गया। मैं तो यहाँ बैठकर, जैसे विचार आते जा रहे हैं, बोलता जा रहा हूँ। लेकिन जीवनमुक्त पुरुष ऐसे नहीं होते। वे तो शून्य के पार तुरीयातीत अवस्था में होते हैं।

सन्तो, अब चौथा पद पाया॥
नाभि-कमल से सुरता चाली, सुलटा दम उलटाया।
त्रिकुटि महल की खबर पड़ी जब, आसन अधर जमाया॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती जानी, तुरिया तार मिलाया।
अन्तर अनुभव ताली लागी, शून्य मण्डल में समाया॥
चाली सुरता चढ़ी गगन पर, अनहद नाद बजाया।

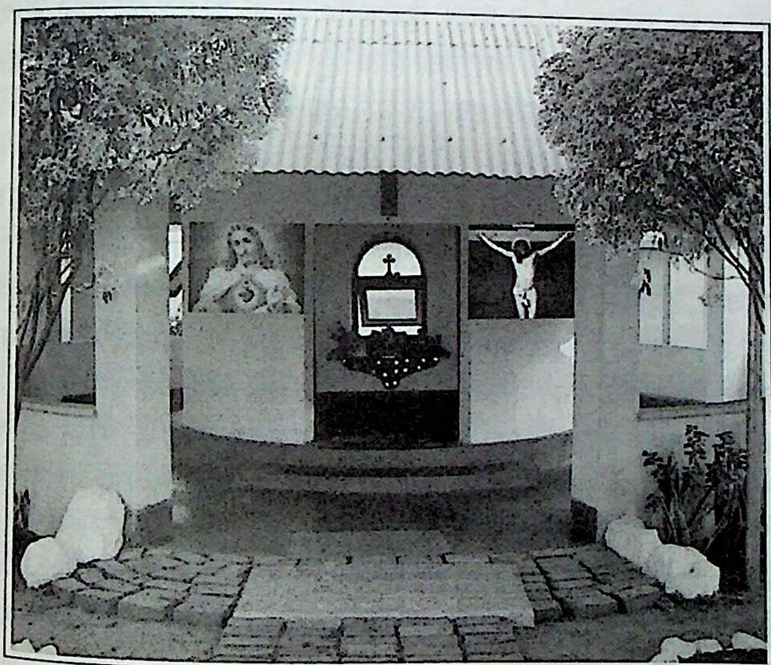
वह अवस्था बहुत ऊँची है। तीन गुण तो सब में रहते हैं और उन तीन गुणों को समन्वित करना धर्म के द्वारा सम्भव है। धर्म सबसे बड़ी चीज है। धर्म व्यवहार को, चेष्टा को, व्यावहारिक जीवन को कहते हैं। धर्म पति और पत्नी के बीच, मित्र और शत्रु के बीच, समाज के व्यक्तियों के बीच परस्पर व्यवहार का नाम है। घण्टी, आरती वगैरह धर्म में नहीं आते हैं। ये भक्ति में आता हैं। यह कर्म-काण्ड है, यह तन्त्र है। लेकिन धर्म एकदम अलग चीज है। धर्म जीवन से शुरू होता है, जबकि भक्ति में जीवन की कोई जरूरत नहीं है। भक्ति भावना से पैदा होती है। चाहे काम वासना हो या भक्ति भावना हो, यह अन्दर से पैदा होती है।

जब मनुष्य के अन्दर तीनों गुण विद्यमान हैं, तब वह इन तीन गुणों को किस तरह से समन्वित करता है? उदाहरण के तौर पर तुम्हारे घर में भी तो ये तीनों गुण हैं। घर में सुन्दर कमरा, सुन्दर कपड़े, सब चीजें सुन्दर हैं। साथ-ही-साथ भोग की चीजें भी हैं और गन्दी चीजें भी हैं। इस तरह तुम्हारे घर में तीनों चीजें हुईं, शुद्ध वस्तु, भोग की वस्तु और गन्दी वस्तु। कैसे सम्हालते हो? आखिर अपने घर में भी सामान खोलते हो तो प्लास्टिक निकलता है, भोजन बनाते हो तो जूठन बचती है, सब्जी काटते हो तो छिलके निकलते हैं, जूते अन्दर लाते हो तो गन्दगी होती है। कैसे व्यवस्था करते हो? कपड़ा, चद्दर, कमरा, टॉयलेट, मकड़ी के जाले, सब साफ करने पड़ते हैं। ठीक उसी तरह से अपने हृदय की व्यवस्था करनी पड़ती है।

जब तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जाएगा, तब भगवान वहाँ आकर बैठेंगे और उसके बाद तुम देखोगे कि जीवन की पूरी की पूरी नियति भगवान के हाथ में चली गयी है। हमारे यहाँ बचपन में कहा करते थे—दीन बंधु दीनानाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ। वही अवस्था आनी चाहिए।

जब अपनी डोरी पूरी उनके हाथ में दे दी, तब वे चाहे तुमको कसाई घर ले जाएँ या मंदिर में तुमको देवता बना दें, तुमको क्या? भगवान को अगर अपना पूरा-का-पूरा जीवन दे दोगे, तो दुनिया में कुछ भी नामुमकिन नहीं। बस, भगवान के सामने शर्त नहीं रखना। वह तो ज्ञानी है, तुम्हारे दिमाग, हाथ-पैर और प्राणों को संचालित करता है। जब वही तुम्हारे जन्म-मृत्यु का फैसला करता है, तब उसको तुम क्या सिखाने चले हो? भगवान को बोलने की क्या जरूरत कि मेरा दुःख दूर करो। उसी भगवान ने तो सारा सुख-दुःख, धन-गरीबी, रोग-शोक दिया है। वह तो सब जानता है। भगवान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक हैं। जब तुम मानते हो कि परमात्मा में ये तीन गुण हैं, तब उनको सुझाव देने की हिमाकत कैसे करते हो? बल्कि वे तुमको सुझाव देंगे कि बेटा, एक अच्छे संन्यासी बनो या एक अच्छे पति बनो।

– 25 दिसम्बर 2004





अध्याय 16

आज नया साल है, वैसे देखा जाए तो हर दिन हमारे लिए नया साल होता है, क्योंकि सब आदमी एक ही दिन तो पैदा नहीं हुए न? जो जिस दिन पैदा हुआ है, वह उसका नया साल है। जो बीस दिसम्बर को पैदा हुआ, वह उसका नया साल है। जो इक्कीस को पैदा हुआ, वह उसका नया साल। हम लोग आज जनवरी का नया साल मना रहे हैं। इसका मतलब हुआ कि आज साल का जन्म हो रहा है। बड़ी ठण्ढी ऋतु में इस अँग्रेज़ी साल का जन्म होता है!

एक जनवरी के नये साल को सारी दुनिया में मनाते हैं। इसे वैश्विक नया साल कहना चाहिए। परन्तु हमारे हिन्दुस्तान में जो नया साल होता है, वह चन्द्र और सौर पंचांग के मुताबिक होता है। सबसे ज़्यादा प्रचलित विक्रम सम्वत् है, जो अभी दो हजार इकसठ चल रहा है। जिसका पूष का महीना है। पूष के बाद माघ आयेगा, माघ के बाद फाल्गुन और फाल्गुन के बाद चैत का महीना नया साल माना जाता है, जो करीब-करीब मार्च महीने में आता है। तब दो हजार बासठ शुरू हो जाएगा। हमारे हिन्दुस्तान में जितने पर्व हैं, रामनवमी, शिवरात्रि, जन्माष्टमी, होली, दिवाली, सब इसी के अनुसार मनाते हैं। यह नया साल शुरू होता है मार्च महीने में, बसन्त ऋतु जिसको कहते हैं। बसन्त ऋतु का मतलब ही होता है कि नये साल का जन्म हुआ। जब नया साल जन्म लेता है, तब वह मुलायम-मुलायम होता है, फूल की तरह होता है, इतना कड़ा नहीं रहता, जितना अभी है। वह चैत्र का महीना होता है। उस दिन को हम लोग सम्वत्सर कहते हैं।

हम लोगों के यहाँ एक और सम्वत् है, जो सौर पंचांग के मुताबिक चलता है। यह बहुत प्राचीन है और सरकारी कैलण्डरों में भी आता है। इसमें अभी

उन्नीस सौ छब्बीस चल रहा है। राजा शक शालिवाहन था, उसके नाम से यह सम्वत चला है। यह सौर सम्वत है। सरकारी कैलण्डर के मुताबिक आज पूष मास की ग्यारहवीं तारीख है। भारत का जो मान्य कैलण्डर है, उसको कहते हैं शक सम्वत्। इसका भी नया साल मार्च में ही होता है। विक्रम सम्वत् के नये साल से पाँच-छ: दिन के अन्तर पर होता है। सूरज से सम्बन्ध रखने वाले जितने पर्व होते हैं, उसी का संकेत करते हैं। जैसे चौदह जनवरी को सौर कैलण्डर की मकर संक्रान्ति है। और कर्क संक्रान्ति होगी, सोलह जुलाई को। याने कि पृथ्वी और सूर्य का आपस में सम्बन्ध तथा पृथ्वी और चन्द्रमा का आपस में सम्बन्ध, इन दोनों के आधार पर हमारे यहाँ के कैलण्डर चलते हैं।

अब चूँकि यह नया कैलण्डर जो दो हजार पाँच वाला चला है, इतना शक्तिशाली है कि सभी लोग इसको मानते हैं। यह इसलिए शक्तिशाली कैलण्डर है कि जो राजा कहे वही सच। चक्रवर्ती जो कहता है, वही सच। चक्रवर्ती का मतलब क्या होता है? जिसके पास अधिक धन, शक्ति, विद्या और जबर्दस्त सत्ता हो, वह चक्रवर्ती होता है। अत: उसके मुताबिक नया कैलण्डर जो हम लोग मनाते हैं, वह तो मनायेंगे ही, क्योंकि मौज का यह मौका भी हम लोग छोड़ेंगे नहीं। आनन्द मनाने का कोई भी मौका इन्सान को छोड़ना नहीं चाहिए। अब यह कहकर कि अँग्रेज़ों का नया साल है, मायूसी के साथ बैठना तो नहीं चाहिए। अँग्रेज़ों का साल क्या है? आखिर मनाना तो हमको है। आनन्द तो हमको उठाना है। इस वजह से हम हिन्दुस्तान के लोग ग्रेगोरियन कैलण्डर भी मनाते हैं। और विक्रम का नया साल भी मनाएँगे। फिर होली की पूर्णमासी के दूसरे दिन जो नया साल होता है, उसको भी मनायेंगे, मिठाई खायेंगे, माल-पुआ खायेंगे। उसके बाद शक सम्वत् आयेगा। शक सम्वत् में ज़्यादा नहीं मनाते हैं। अपने यहाँ विक्रम सम्वत् को मनाते हैं। किन्तु शक सम्वत् बहुत महत्त्वपूर्ण है।

मेरे को याद पड़ रहा है, अभी थोड़ा मैं विषय के बाहर जा रहा हूँ। शक सम्वत् राजा शालिवाहन का है। सम्राट् शालिवाहन ने आज से उन्नीस सौ छब्बीस साल पहले राजगद्दी इख्तियार की थी। और उसी दिन उन्होंने यह कैलण्डर चलाया था। शक राजा शालिवाहन की ईसामसीह के साथ भेंट हुई थी, जिसका भविष्य पुराण में उल्लेख है। इसका मतलब यह है कि ईसामसीह उन्नीस सौ छब्बीस साल के आस-पास भारत में थे। भविष्य पुराण में जो संदर्भ दिया है, वह है–ईश पुत्र! ईश पुत्र का मतलब क्या होता है? ईश्वर का पुत्र।

ईसामसीह को तो ईश्वर का पुत्र ही मानते थे न? शालिवाहन ने सम्बोधन किया है–'ईश पुत्र! आप क्या उपदेश देते हैं?' भविष्य पुराण में इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसका मतलब यह हुआ कि उन्नीस सौ छब्बीस साल पहले ईसामसीह निश्चित रूप से भारत आए थे। नहीं तो भविष्य पुराण वाले को सपना आया था क्या? कोई भी शास्त्र लिखने वाला जब लिखता है, सपने पर तो कुछ लिखता नहीं, कहीं न कहीं पर कुछ चीज़ पड़ी रहती है, उसी के आधार पर तो लिखेगा न। आखिर ईसामसीह या ईश पुत्र का उसने नाम सुना। इसलिए यह जो नया साल है, इसको वे लोग ईसामसीह के जन्म से जोड़ते हैं। उसमें कोई गलती की बात तो हम लोगों को दिखाई नहीं देती, क्योंकि हमारे देश की यह परम्परा रही है कि सन्त-महात्माओं की, जिनको भगवान का अनुभव है, जिनको आत्मा का अनुभव है, जिन्होंने अपनी आत्मा को पवित्र कर उसमें परम ज्योति देखी है, उनकी कोई जाति या धर्म या सम्प्रदाय नहीं होता है, वे विश्वव्यापक होते हैं। भले ही कुछ लोग उन पर एकाधिकार कर लें, वह बात दूसरी है। हम लोगों ने शिव जी पर एकाधिकार कर लिया, तो किसी ने क्राईस्ट पर एकाधिकार जमाया, मगर जितने भी महापुरुष हैं, सब के सब विश्वव्यापक होते हैं। इनका सारे संसार से सम्बन्ध होता है।

विदेशों में योग और अध्यात्म

ऑस्ट्रेलिया अच्छी जगह है। पर्थ के पास गरम जगह है। लोग भी अच्छे हैं। ऑस्ट्रेलिया में योग का इतना अधिक प्रचार है, जितना ऋषिकेश में। ऋषिकेश में किसी के भी पास जाइये, भण्डारे से पूछिये, तो पेट्रोल पम्प वाले से पूछिये, खोम्चा वाले से पूछिये, अध्यात्म के बारे में कुछ न कुछ गप्प लगाना जानता है वह। ठीक वही हाल ऑस्ट्रेलिया में है। हम किसी भी पेट्रोल पम्प में गाड़ी भरते थे, तो हमसे पूछते थे, 'आप योग शिक्षक हैं?' हम कहते, 'हाँ।' फिर पूछते, 'आज आपका सेमिनार कहाँ है?'

ऑस्ट्रेलिया में अपने बाईस आश्रम हैं। सब संन्यासी लोग चलाते हैं। संन्यास पहले भारत तक ही सीमित था। प्राचीनकाल में तो केवल ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करते थे। बाद में क्षत्रियों में आया। स्वामी विवेकानन्द जी के बाद संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय हुआ। उनके बाद वह धुरी टूट गई। ऑस्ट्रेलिया में आंग्ल-सैक्सन जाति के लोग हैं। विद्या विनोदी, मनोरंजन प्रिय, हल्का दिमाग और उदार चरित्र। ऑस्ट्रेलिया के लोग कंजूस नहीं हैं, वे बहुत उदार हैं। अंग्रेज़

लोग बहुत कंजूस हैं। फ्रेंच लोग भी दुकान में जाते हैं, सामान का दाम पूछते हैं, कुछ ज़्यादा हो तो बोलते हैं, बहुत महँगा है। ऑस्ट्रेलियन कभी नहीं पूछेगा। उसको माल पसन्द नहीं है, दाम ज़्यादा है, तो चुपचाप वापस चला जाएगा। यह नहीं बोलेगा कि बहुत महँगा है। और वहाँ लड़कियाँ सिर मुड़ा कर, गेरु कुर्ता और तहमत पहन कर स्कूल में पढ़ाने जाती हैं। आप हिन्दुस्तान में उसकी कल्पना कर सकते हैं? जिस देश की यह संस्कृति है, उस देश के लोगों को गेरु कपड़ा पहनकर, सिर मुड़ाकर पब्लिक में आने में शर्म लगती है। यह हीनता की भावना है। केवल हमारा नहीं, ऑस्ट्रेलिया में तो हर एक स्वामी का एक न एक चेला है। महर्षि महेश योगी, आनन्दमयी माँ, स्वामी शिवानन्द, अयन्गार, जितनी भी आध्यात्मिक संस्थायें हैं, सबसे जुड़े हुए लोग वहाँ हैं। एक भारतीय को अगर विदेशों में किसी संस्था में जाना है, तो योग एक रास्ता है। बहुत बड़ा समुदाय है और सैकड़ों योग शिक्षक हैं। इतने योग शिक्षक हैं कि आप यकीन नहीं करेंगे। मुंगेर से इतने लोग योग सीख कर गये हैं, उन्नीस सौ चौसठ से आज चालीस साल हो गए न? उनमें बहुत से लोग बूढ़े हो गए हैं।

उन लोगों का यह कहना है कि जब आदमी भोग के रास्ते में जाता है, तब उसके जीवन में असन्तुलन आता है। इन्द्रियों और विषयों के बीच जो सम्बन्ध होता है, उसको भोग कहते हैं। आप लोगों को रोज़ होता है, सबेरे से शाम तक, महीने में तीस दिन, साल में तीन सौ पैंसठ दिन। अस्सी साल जिए, तो अस्सी साल आपका क्या होता है? इन्द्रियों का और इन्द्रियों के विषयों का सम्पर्क बना रहता है। और जब यह सम्पर्क बना रहता है, तब मनुष्य के शरीर के अन्दर नकारात्मक परिवर्तन होते हैं, बीमारियाँ होती हैं।

जीवन में सुख आता है, दुःख आता है। क्या सुख और दुःख से मनुष्य के शरीर में परिवर्तन नहीं होता? कार्डियोग्राम देख लो, मस्तिष्क को देख लो, शरीर के अन्दर जो रक्तचाप है, उसको देख लो। सुख और दुःख से मनुष्य के शरीर में परिवर्तन होते हैं। लेकिन अगर आदमी योग करेगा, तो संतुलित हो जाएगा। यह तो सम्भव है नहीं कि तुम इन्द्रियों के जगत् में रहो नहीं। रहना तो तुमको पड़ेगा, तुम्हारी मजबूरी है, तुम्हारी विवशता है। इस सुख-दुःख की दुनिया में हर एक आदमी को रहना है। दुनिया के किसी भी कोने में तुम जाओ, सुख, दुःख, काम, क्रोध, ईर्ष्या, मोह के बिना रह सकते हो क्या? यह प्रकृति का स्वभाव है। मृत्यु एक सत्य है। जीवन एक सत्य है। कोई व्यक्ति अपने

जीवन में कभी पूर्ण सुख का अनुभव नहीं कर सकता है। यह प्रकृति का नियम है ही नहीं। अगर कोई आदमी पैदा होने से मरने तक केवल सुख और सुख का ही अनुभव करेगा, वह तो पागल हो जाएगा। दुःख, सुख को संतुलित करने के लिए आता है और सुख, दुःख को संतुलित करने के लिए आता है। जैसे कि दिन रात को और रात दिन को संतुलित करने के लिए आती है, उसी तरह योग की आवश्यकता पड़ती है मनुष्य के शरीर में भोग को संतुलित करने के लिए।

आज हम लोगों के समाज में जो दशा है, उसके बारे में आप लोगों को बहुत शिकायत रहती है, दिनभर शिकायत ही तो करते रहते हो। अखबारों में, टी. वी. में, बातचीत करते वक्त, हर समय अफसरों की, बनिये लोगों की, साधुओं की, कर्मचारियों की, चोर की शिकायत ही तो करते रहते हो। क्या तुम किसी से भी खुश हो? नहीं! सबकी शिकायत करते हो–साधु ठग, अफसर भ्रष्ट, नेता चोर, बनिया ठग, ब्राह्मण सबको बेवकूफ बनाता है–यह तो हम लोगों का दृष्टिकोण है। दुनिया में हम लोगों को एक ऐसा जीवन देखना होगा, जिसके द्वारा हम लोगों की मानसिकता सकारात्मक बने। यह सकारात्मक मानसिकता केवल व्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि एक समाज, परिवार और राष्ट्र के लिए भी ज़रूरी है। अगर तुम दोष खोजते रहोगे, तो अपने घर, समाज और राष्ट्र में तुमको दोष ही दोष दिखलाई देंगे, क्योंकि इस दुनिया में कोई आदमी दोषरहित होकर नहीं आया। हर एक आदमी कलंक के साथ पैदा हुआ है, ऐसा मानना पड़ता है। हम सब दोषपूर्ण हैं। योग के द्वारा अगर हम लोग अपने मानसिक चिन्तन की धारा को बदल सकते हैं, तो एक सकारात्मक विचारधारा हमारे भीतर आ सकती है।

हम दुनिया में सब जगह गए हैं, कोई देश तो छोड़ा नहीं। और जो कुछ लोगों को सिखाया, वह एक निर्विवाद दर्शन है। जो मैंने सिखाया, उस पर कहीं कोई विवाद नहीं है। मैंने दो ही चीज़ें सिखायी हैं। योग और अध्यात्म। मैंने आज तक किसी को धर्म नहीं सिखाया। क्या खाना क्या नहीं, शराब पीना कि नहीं, मांस खाना कि नहीं, शादी करना कि नहीं, वह मैंने किसी को सिखाया नहीं है। ऐसे ही गपशप में बोल देता हूँ। सिखायीं केवल दो चीज़ें–योग और अध्यात्म। पाकिस्तान में योग करते हैं लोग। भुजंगासन, उत्तानपादासन, आदि पाकिस्तान के सभी टी.वी. चैनल में आते हैं। ईरान में उन्नीस सौ अड़सठ में जब मैं पहली बार गया, तब मैं ईरान के शाह का मेहमान

था। मुझे टी.वी. चैनल में बुलाया, पन्द्रह मिनट का समय दिया व्याख्यान के लिए। उसके बाद प्रश्न और उत्तर होने लगे, जो डेढ़ घण्टे तक चले। विषय था कुण्डलिनी, भक्ति माने प्रेम की ऊँची अवस्था और चेतना की दूसरी अवस्था। एक तो चेतना की यह अवस्था है, जिसमें हम सब लोग यहाँ बैठे हुए हैं। जिसमें कान से सुनाई देता है, नाक से सूँघते हैं, आँख से देखते हैं, पैर से चलते हैं, हाथ से पकड़ते हैं और मुँह से खाते हैं। पर चेतना की एक और अवस्था है—

बिन पद चले सुने बिनु काना, बिनु कर कर्म करे विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी।

वे लोग बहुत खुश हुए। मुसलमान हैं सब। मुसलमान को छूकर तुम लोग खाना भी नहीं खाते हो, छुआ मानते हो। उन लोगों ने डेढ़ घण्टे हमारी बात सुनी। कहीं कोई विवाद नहीं। स्वामी सत्यानन्द कोई विवादास्पद बात कहता है? नहीं। हम न विवादों में पैदा हुए, न विवादों में पले और न ही विवादों में मरेंगे। हम वही बात करते हैं, जो विश्व सत्य है—योग और अध्यात्म। योग और अध्यात्म में तो कोई विवाद नहीं है। वेटिकन में, ईसाइयों के देशों में, प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक देशों में योग और अध्यात्म को इतनी अच्छी तरह से रखा। क्यों रखा? इसलिए कि धान वहीं पैदा होता है, जहाँ उसके अनुकूल ज़मीन होती है। योग और अध्यात्म के लिए सारी दुनिया एक उर्वरा धरती है। प्रत्येक आदमी इसको स्वीकार करेगा। तुम आसन भले न करो, पर कभी बोलोगे नहीं कि आसन करना खराब होता है। कोई कहे कि आसन करना खराब है, प्राणायाम से नुकसान होता है या अध्यात्म फालतू चीज़ है, कोई नहीं कहेगा। नास्तिक हो अथवा आस्तिक, यह निर्विवाद धर्म है।

जब हम पहली बार ऑस्ट्रेलिया गये, तो हमने इस चीज़ को जाना कि 'तुम तो एक ऐसी बात बोल रहे हो, जिसको दुनिया माथे पर लगाएगी।' और तुमको मैं एक बात बतला दूँ, मैंने योग का अध्ययन नहीं किया। गुरु आश्रम में रहकर बारह साल मैंने वेदान्त का अध्ययन किया है, शंकर भाष्य, रामानुज का भाष्य, विज्ञानभिक्षु का भाष्य और संस्कृत पढ़ी। अंग्रेजी नहीं, संस्कृत। वेदान्त को छोड़ा, नहीं सिखलाया; संस्कृत को छोड़ा। जिस विषय को मैं नहीं जानता था, वही मैंने सिखलाया। वह क्या था? जो मेरा विषय ही नहीं रहा और किस भाषा में बोला? मैं अंग्रेजी ज़्यादा नहीं जानता हूँ। मगर सीखी। मैं

तो बटलर अंग्रेज़ी जानता हूँ, 'आई गो यू गो, यू इट फूड, आई डू नॉट इट फूड। 'टेक, टुक, टेकन' के बाद मैंने बोल दिया 'मेक मुक मेकन'। तर्क संगत तो यही है–Cut कट, But बुट। लेकिन नहीं। तो अंग्रेज़ी नहीं, हम संस्कृत और हिन्दी बहुत अच्छी बोलते हैं। किन्तु हमने अंग्रेज़ी और योग को स्वीकार किया है।

यह आप लोगों को इसलिए बोल रहा हूँ कि आज नये साल के समय हर एक व्यक्ति को दो चीज़ों को ध्यान में रखना चाहिए। पहला, नित्यप्रति पन्द्रह मिनट आसन करना चाहिए। बूढ़ों को भी करना चाहिए, बूढ़ों को तो बल्कि ज़रूर करना चाहिए। हम तो अस्सी से ऊपर हैं! मैं 1923 का मॉडल हूँ, आज का, 1953 या 1947 का मॉडल तो मैं हूँ ही नहीं। पर अपना पन्द्रह मिनट आसन कर ही लेता हूँ। दूसरी चीज़ भूलना नहीं, रोज़ सवेरे और रात को कम-से-कम पाँच मिनट एकचित्त से अपने गुरुजी के द्वारा कान में दिया हुआ मन्त्र जपना। मैंने पन्द्रह मिनट नहीं कहा, केवल पाँच मिनट कहा। अगर तुम कम करना चाहो, तो तीन भी कह सकता हूँ। मनमर्जी से नहीं जपना, मन्त्र गुरु-मुख होता है, मन-मुख नहीं।

सब विद्याओं में गुरु की आवश्यकता है, तो योगविद्या में भी गुरु की आवश्यकता है। डॉक्टरी, क्रिकेट और हॉकी के लिए भी गुरुजी चाहिए। योग के लिए गुरुजी ज़रूरी नहीं हैं, ऐसा लोग सोचते हैं। नहीं, गुरु की आवश्यकता है। और जपते वक्त अपने मन में यही सोचना चाहिए कि इतनी देर मैं दुनिया के बारे में न सोचूँ, एकाग्रचित्त रहूँ। यह आवश्यक बात बोल रहा हूँ यहाँ। मन्त्र ज़रूरी नहीं है, मन्त्र आधार है। असली चीज़ है मन को एकाग्र करना। मन को एकाग्र करने का मतलब होता है जीवन की 'मास्टर की' अपने हाथ में लेना। चोर हो, बदमाश हो, सन्त हो, महात्मा हो, व्यापारी हो, बूढ़ा हो, सदाचारी हो, ब्रह्मचारी हो, व्यभिचारी हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। जिसका चित्त थोड़ी देर के लिए शून्य में चला जाए। शून्य माने, जहाँ सांसारिक चेतना न रहे। और इस शून्य को तीन बार पाना पड़ता है, एक बार नहीं। यह जो अभी तुमको बता रहा हूँ, यह पहले शून्य की बात है। ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, मन में और कुछ नहीं है, उसको कहते हैं प्रथम शून्य। कबीरदास कहते हैं कि जिस परम चीज़ को तुम पाना चाहते हो, वह तीन शून्य के पार है–शून्य शून्य शून्य के पारा। और इसी पर एक मुस्लिम सन्त ने कहा है–*जागृत स्वप्न सुषुप्ति जानी, तुरीया तार मिलाया*–जाग्रत अवस्था में एक शून्य की प्राप्ति करो, स्वप्न

अवस्था में दूसरे शून्य की प्राप्ति करो, सुषुप्ति अवस्था में तीसरे शून्य की प्राप्ति करो—ये तीन शून्य हैं। तब चौथी अवस्था आती है।

अब इसको और अच्छी तरह से समझाता हूँ। अभी तुम जिस अवस्था में हो—आँखें खुली हैं, दिमाग चल रहा है, दिमाग का सम्पर्क पाँच इन्द्रियों से हो रहा है, इस अवस्था को कहते हैं जागृत अवस्था। पाँच इन्द्रियाँ कौन-सी हैं? कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और नाक। इनमें से पाँच विषय निकलते हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। जब तक तुम लोगों को इन पाँच विषयों की जानकारी रहती है, उस अवस्था को कहते हैं जागृति। इस जागृति की अवस्था में इन पाँचों से थोड़ी देर के लिए पूरी तरह सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ता है। थोड़ी देर का मतलब पाँच मिनट बहुत हैं। बन्दूक की गोली ठीक लग जाए, तो एक काफी है। एक क्षण के लिए भी अगर तुम शून्य अवस्था में चले जाओ, तो गजब हो जाएगा, क्योंकि हमने सुना है हमारे अन्दर परमात्मा है।

इस घट अंतर बाग-बगीचे, इसी में सिरजनहारा ।
इस घट अंतर सात समुन्दर, इसी में नौ लख तारा ॥
इस घट अंतर पारस मोती, इसी में परखनहारा ।
इस घट अंतर अनहद गरजै, इसी में उठत फुहारा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इसमें साईं हमारा ॥

दिखता तो कहीं नहीं है। डॉक्टर साहब देखते हैं, तो कुछ दिखाई नहीं देता है—सरजनहारा नहीं दिखाई देता, सात समुन्दर भी नहीं दिखाई देता, हाँ, मैरो दिखलाई देता है, खून दिखलाई देता है, हड्डियाँ दिखाई देती हैं। और यहाँ महात्मा कहता है कि इस घट भीतर नौ लख मोती, कोई पन्ना, कोई हीरा। इस घट भीतर सात समुन्दर, कोई मीठा, कोई खारा। इस घट भीतर बैठा है सरजनहारा। अवधु अंधाधुन्ध अंधियारा। यह कबीर का वचन है। लेकिन आपको तो अन्दर कुछ दिखाई नहीं देता है। सवाल यह उठता है कि आपको क्यों दिखलायी नहीं देता। इसलिए दिखाई नहीं देता कि आपकी आँख नहीं है। बिना आँख के वस्तु नहीं दिखती, बिना बुद्धि के विचार नहीं दिखता। बिना सूक्ष्मदर्शी के कीटाणु नहीं दिखते। अगर तुम आणविक विकिरण को देखना चाहो, तो वह भी आँख से नहीं दिखाई देता है, सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं दिखाई देता, उसका संवेदक दूसरा होता है।

हर वस्तु की जानकारी के लिए उसका संवेदक होना चाहिए। संवेदक रेडियो तरंगों को पकड़ता है, लेसर किरणों को पकड़ता है, आणविक विकिरण को पकड़ता है, ये चीजें दिखायी तो नहीं देतीं। उसी तरह से जो चीज़ दिखाई नहीं देती, वह चीज़ नहीं है, ऐसा नहीं बोलना। जो चीज़ दिखायी नहीं देती, परन्तु सन्त-महात्माओं ने कहा है कि है, सब कहते हैं कि है और तुम बोलते हो नहीं है, इसका मतलब है कि तुम्हारे पास आँख नहीं है। उस आँख को खोलने के लिए एकाग्रता ही चाबी है, रास्ता है। उसी रास्ते से तुम अन्दर जा सकते हो। अन्दर जाने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। मंदिर उसका रास्ता नहीं है, मस्जिद उसका रास्ता नहीं है, गिरिजे उसके रास्ते नहीं हैं, बाइबिल उसका रास्ता नहीं है, गीता उसका रास्ता नहीं है, रामायण उसका रास्ता नहीं है। केवल एक रास्ता उसका है–केवल एक क्षण के लिए एकाग्र होओ।

बहुत देर चित्त की वृत्ति को एकाग्र नहीं करना। यह चेतावनी दे रहा हूँ तुम लोगों को, खतरे का संकेत। बहुत देर जो चित्त की वृत्ति को एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, घण्टा-डेढ़ घण्टा, उनके मस्तिष्क में विषाद आना शुरू होता है। इसलिए तुमने देखा होगा, जितने लड़के अच्छे नम्बर पर पास होते हैं, 90-95% लाते हैं, बहुत होशियार रहते हैं, सबकी खोपड़ी डूबी हुई रहती है, क्योंकि जो लड़का बहुत होशियार रहता है, उसकी चेतना की एकाग्रता उच्च होती है। अत: एकाग्रता के लिए गुरुजी का बताया हुआ जो मन्त्र होता है, पाँच मिनट वाला, उतना ही करो।

दिन में किसी भी समय ध्यान लगाने या एकाग्र होने का प्रयास मत करना। पद्मासन लगा लिया और बैठ गये। नहीं! क्योंकि जिस एकाग्रता की बात मैं कर रहा हूँ, उसका तीन जगह पर असर होता है। एक असर होता है पूरी शारीरिक प्रक्रिया पर। एन्जाइम, हार्मोन, डी.एन.ए, हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क, इन सब पर इस प्रभाव को देखा गया है। हमारी किताबें पढ़ो। उनमें सब साफ लिखा है कि एकाग्रता का अभ्यास करने से किस प्रकार से शरीर के अन्दर में क्या-क्या परिवर्तन होता है। दूसरा, मनुष्य की ग्रहणशीलता और प्रतिक्रियात्मक स्तर पर भी बहुत बड़ा फर्क पड़ता है। उसकी प्रतिक्रियायें और ग्रहणशीलता बहुत तेज होती है। और तीसरी चीज़, उसकी कार्यक्षमता।

वाह! क्या कार्य रहा स्वामी विवेकानन्दजी का। तीस-बत्तीस साल तक ज़िन्दा रहे। अट्ठारह साल तक तो कालेज में ही पढ़ते रहते थे। कितने साल मिले उनको? दस-बारह साल मिले। पर कमाल कर दिया! क्योंकि उनके

कार्य उच्च स्तर के थे। उनके विचार पक्के थे। उन्होंने अपनी योजना बिल्कुल ठीक बनाकर रखी थी। उसके पहले भी एक आदमी पैदा हुआ है, आज से अट्ठारह-उन्नीस सौ साल पहले, आदि शंकराचार्य। आठ साल की उम्र में उसने संन्यास लिया। आठ साल की उम्र में तो बच्चा दूध पीता है। आठ साल की कोई उम्र होती है संन्यास की! ऐसे ही स्वामी निरंजन चार साल की उम्र में मेरे पास संन्यास लेने के लिए आया था। और दस साल की उम्र में विदेश चला गया। यह असाधारण है।

आदि शंकराचार्य ने आठ साल की उम्र में संन्यास लिया और नर्मदा तट पर आए। गोविन्दपाद से उन्होंने दीक्षा ली और दीक्षा लेने के बाद वे कुछ समय वहाँ रहे। उसके बाद में वे चले गए व्यास चट्टी। और व्यास चट्टी में बैठ कर उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर सटीक भाष्य लिखे, जो आज दुनियाभर में प्राचीन उच्च साहित्य माने जाते हैं। दुनिया के किसी भी विश्वविद्यालय में चले जाइये, उन्हें सर्वश्रेष्ठ उच्च साहित्य की श्रेणी में रखा गया है। ऐसा भाष्य किसी ने किसी विषय पर नहीं लिखा है। न बाइबिल पर किसी ने भाष्य लिखा, न कुरान पर, न वेदों पर, न उपनिषदों पर। केवल एक आदमी ने ऐसा कार्य किया, जो मात्र सोलह साल का बच्चा था!

यह क्या है? वह आध्यात्मिक चेतना से परिपूर्ण व्यक्ति था। जिसका बुद्धिमतापूर्ण, विवेकपूर्ण, ठोस कार्य आज हम लोग देख रहे हैं। तीस साल की उम्र में शंकराचार्य का देहान्त हो गया। आठ साल की उम्र में घर छोड़ा, बाईस साल में कश्मीर से कन्याकुमारी तक और जगन्नाथ पुरी से द्वारिका तक वैदिक धर्म को जागृत किया। उस समय भारत में बौद्ध धर्म का पतन हो रहा था। उन्होंने एक नया तरीका निकाला। उन्होंने विद्वानों को पकड़ा, सड़क छाप वालों को नहीं। कहा कि तुम बौद्ध लोग या जैन लोग या पंडित लोग या वैदिक लोग मेरे को समझा दो कि जो भी तुम कहते हो, सही है, मैं तुम्हारी बात मान लूँगा और बौद्ध हो जाऊँगा। लोगों ने सोचा, चेला मिल गया, हरायेंगे इसको। अब उसके बाद उनका डट कर सामना हुआ था मण्डन मिश्र से। मण्डन मिश्र कौन थे? जब शंकरचार्य मण्डन मिश्र के गाँव गए, तो उन्होंने किसी लड़की से पूछा कि मण्डन मिश्र का घर कहाँ है। तो उसने संस्कृत में बोल दिया–

जगत् ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौक:॥

जगत् नाशवान है या अविनाशी, वेद स्वतः प्रमाणित हैं या उनको प्रमाणित करने की ज़रूरत पड़ती है, जिसके दरवाजे पर मैना यह चर्चा करती है, तुम जानो यह मण्डन मिश्र का घर है।

मण्डन मिश्र का उनके साथ शास्त्रार्थ हुआ। मण्डन मिश्र हारने लग गये, तब उनकी पत्नी सरस्वती–शारदा उनकी मदद के लिए आई। कहा, 'आचार्य! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार शास्त्र होते हैं। तुमने धर्म शास्त्र और मोक्ष शास्त्र को लेकर मेरे पति से शास्त्रार्थ किया और वे हार रहे हैं और तुम जीत रहे हो। पर दो शास्त्रों–काम शास्त्र और अर्थ शास्त्र पर मैं तुमसे प्रश्न पूछती हूँ।' शंकराचार्य ने कहा, 'पूछो। काम शास्त्र पर जो भी प्रश्न बोलोगी मैं जवाब दूँगा।' शारदा ने कहा, 'नहीं, तुमको काम शास्त्र का ज्ञान है, अनुभव नहीं। तुम तो ब्रह्मचारी हो। ब्रह्मचारी क्या जाने? किताब पढ़कर कोई काम शास्त्र के बारे में मुझसे क्या शास्त्रार्थ करेगा। मैं अनुभव ज्ञानी से काम शास्त्र के बारे में शास्त्रार्थ करना चाहती हूँ।' उन्होंने कहा–'देवी जी, समय दीजिए। उस पर भी मैं करूँगा।' तब वह कहानी आती है कि राजा अम्रू के शरीर में प्रवेश करके, काम शास्त्र का अनुभव प्राप्त करके, आचार्य शंकर जब वापस आए, तो उन्होंने शारदा देवी को हराया और हराकर शारदा देवी को अपने श्रृंगेरी मठ की अधीश्वरी बनाया। वहाँ शारदा देवी की पूजा होती है। उसको शारदा पीठ बोलते हैं।

बात चल रही थी, चित्त की वृत्ति को थोड़ी देर के लिए गुरुजी के मंत्र को आधार बनाकर एकाग्र करने की। किसी धर्म, किसी आचार-विचार, किसी कर्म-काण्ड से कोई मतलब नहीं, केवल एक बात। करते जाओ, एक साल, दो साल, तीन साल, चार साल, पाँच साल, दस साल। पन्द्रह-बीस साल तो एम.बी.बी.एस. डॉक्टर बनने में लगते हैं! अन्य विद्याओं में भी इतना समय लगता है। अगर पन्द्रह-बीस साल में तुम्हारा दरवाजा ही खुल जाए, तो कितना बढ़िया। चाबी हाथ लग जाए, दरवाजा बाद में खोलते रहेंगे। एक बार अन्दर जाना सीखो।

मैं तुमको आज नए साल के उपलक्ष्य में केवल यही बात बतलाने के लिए बैठा हूँ। एक बार अन्दर जाना सीखो, और अन्दर जाना बहुत मुश्किल है। जब रात को तुम सपने में जाते हो, तो क्या अपने सपनों को नियंत्रित कर सकते हो? जब तुम अपने विचारों को ही नियंत्रित नहीं कर सकते, तो अपने सपनों को कैसे नियंत्रित कर पाओगे? जब तुम अपने स्थूल मन को ही नियंत्रित नहीं कर सकते, तो अपने सूक्ष्म मन को कैसे नियंत्रित करोगे? जब तुम्हारा स्थूल

शरीर पर नियंत्रण नहीं है, तो सूक्ष्म शरीर पर नियंत्रण कहाँ से होगा? और सूक्ष्म शरीर पर तुम्हारा नियंत्रण नहीं है, तो कारण शरीर पर तुम्हारा नियंत्रण कैसे होगा? कारण शरीर तब जागता है जब तुम सोते हो, निद्रा की अवस्था में। स्वप्न की अवस्था में सूक्ष्म शरीर, जागृत अवस्था में स्थूल शरीर।

तीन शरीर होते हैं–स्थूल, सूक्ष्म और कारण। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति, तीनों का सम्बन्ध है स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से। निद्रा की अवस्था में जीवात्मा कारण शरीर में चला जाता है। और निद्रा पर भी तुम्हारा नियंत्रण नहीं है। स्वप्न पर भी तुम्हारा नियंत्रण नहीं है। गुस्सा नहीं करना चाहिए, मगर गुस्सा आ जाता है। गुस्सा अच्छा है क्या? नहीं। फिर गुस्सा करते क्यों हो? इसलिए कि नियंत्रण नहीं है। जैसे, लंगड़ा आदमी है, वह जानता है कि सीढ़ी पर चढ़ा जा सकता है, पर चढ़ नहीं सकता। वह जानता है कि दौड़ा जा सकता है, मगर दौड़ नहीं सकता। उसी तरह से हम लोग जानते हैं कि क्रोध को नियंत्रित किया जा सकता है, मगर कर नहीं सकते। मन की जितनी वृत्तियाँ होती हैं, उन पर हमारा नियंत्रण नहीं है।

एक बात याद रख लो। मैं बात कर रहा था एक ही विषय पर। उसी को ले-देकर मैं घुमा-फिरा कर बोल रहा हूँ, समझाने की कोशिश कर रहा हूँ। पाँच मिनट एक ही मन्त्र को जपो, बस। यह एकाग्रता जब तुमको प्राप्त हो जायेगी, तब तुमको अन्दर जाने का रास्ता मिलेगा। और जब अन्दर जाने का रास्ता मिलेगा, तब तुम्हारी कार्यक्षमता, तुम्हारी प्रतिक्रियाएँ बहुत सुधरेंगी, चाहे पढ़ने-लिखने में हो, या कहीं पर भी हो। दो व्यक्तियों का उदाहरण तुमको दिया है। इसके अलावा कई लोगों का उदाहरण दे सकते हैं। दुनिया में बड़े-बड़े संगीत विशारद हुए हैं। बहुत बड़े-बड़े कलाकार हुए हैं। तुमने सुना होगा माइकलएंजेलो के बारे में। वेटिकन में ऊपर छत में क्या बढ़िया बनाया है। वह सवेरे चढ़ जाता था पानी की बोतल लेकर, और वहाँ भाड़े में वह लेट जाता था और बस बनाता जाता था। शाम को नीचे उतरता था। न टट्टी, न पेशाब, न भूख, न कुछ और। वह कौन सी चीज़ है? यह साधारण कार्य नहीं है, असाधारण कार्य है।

केवल अध्यात्म मार्ग में नहीं, हर मार्ग में लगन की जरूरत होती है। अध्यात्म मार्ग तो ऐसा मार्ग है, जिस पर चल कर तुम बहुत अच्छे संगीतज्ञ, एक अच्छे खिलाड़ी, एक अच्छे योगी, एक अच्छे प्रशासक, एक अच्छे कवि, एक अच्छे लेखक, एक अच्छे नेता और एक अच्छे बदमाश भी बन सकते हो।

हाँ! दुनिया में अच्छे लोगों की ज़रूरत है और बदमाशों की भी ज़रूरत है। अगर एक दिन तुम्हारे पास जादू का मन्त्र हो जाए, और दुनिया में जितने बदमाश हों, सब स्वाहा, सब मर जायें, तो दुनिया असुरक्षित हो जाएगी। बुरा नहीं मानना। मैं जो बोलता हूँ, शास्त्र की बात बोलता हूँ। अपने ऋषि-मुनियों की पुस्तकों को पढ़ने के बाद बोलता हूँ।

यह दुनिया सतोगुण पर कायम नहीं है। यह दुनिया सत्त्व, रज और तमो गुण पर कायम है। जितने बदमाश लोग हैं, तमो गुण प्रधान होते हैं। और जितने काम करने वाले होते हैं, ये नेता-कार्यकर्ता, हम-तुम, सब रजो गुणी हैं। सत्त्व गुणी महात्मा तो कहीं हिमालय पर बैठता है या कहीं कमरे में—गौरी-गणेश में दिनभर बैठा रहता है। हाँ, हम सत्त्व गुण में हैं। हम रजो गुण में नहीं हैं। हम थे। तमो गुण में कभी थे ही नहीं। इस जीवन में यह एक कमी रह गयी, क्योंकि तमो गुण भी एक गुण है। रजो गुण में हम बहुत रहे, पर अब सतो गुण में रहते हैं। रजो गुण से कोई मतलब नहीं है। इसीलिए इन चीज़ों को मैंने आपके सामने रखा, बहुत चीज़ें नहीं, केवल एक छोटी चीज़ पकड़ कर जाओ।

गुरु है, तो बहुत अच्छा। गुरु नहीं है, तो गुरु बनाने में शर्माओ मत, हिचको मत। गुरु धोखा देते हैं। धोखा तो कोई भी किसी को देता है। उसकी चिन्ता मत करो। गुरु बनाने में हिचको मत, डरो मत। और गुरुजी से कभी कोई बुरा अनुभव भी हुआ, तो फिर चलेगा। आखिर शादी करके सबको अच्छा अनुभव हुआ है क्या? फिर भी तो सब किये ही जा रहे हैं। यह तो कोई बोलता नहीं कि शादी करने से बाप रे बाप! ऐसे ही गुरु के साथ भी लगा लो, गुरु बनाओ, धोखा खाओ। और जिस तरह से तकलीफ होने पर भी शादी ज़रूरी है, वैसे धोखा खाने पर भी गुरु ज़रूरी है।

हमसे भी कई लोगों ने कहा। हमने भी तो गुरु खोजा न! एक बार हम बरेली से सहारनपुर के रास्ते में एक ट्रेन में थे, हमने एक महात्मा से पूछा, 'गुरु कैसे खोजें?' उसने कहा, 'समय बर्बाद मत कर, जो भी गुरु बनना चाहे, उसको गुरु बना लेना तू।' मैंने कहा, 'अगर धोखा दे दिया तो?' उसने कहा, 'अगर गुरुजी धोखा दे, बड़ा अनुभव है। तुम धोखा मत देना उसको। एक दिन उसका ईनाम तुमको मिलने वाला है।' हम ऋषिकेश गए, सीधे स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम पहुँचे। हमने कहा, 'शरणम्।' उन्होंने कहा, 'बैठ जाओ।' हमने कहा, 'हम आपके पास रहना चाहते हैं।' उन्होंने कहा, 'रहो।' हमने कहा, 'हमको आप ज्ञान दीजिये।' बोले, 'ज्ञान हम तुमको क्या देंगे

बेटा, ज्ञान लेकर तो तुम आए हुए हो। ज्ञान तुम्हारे ही अन्दर है। ज्योत तुम्हारे ही अन्दर है। ईश्वर तुम्हारे ही अन्दर है। आत्मज्ञान तुम्हारे अन्दर है। समाधि तुम्हारे अन्दर है। सब तो तुम्हारे ही अन्दर है। तुमको क्या ढूँढना है? एक काम करो, आश्रम में रहो, जमकर काम करो। इतना काम करो, इतना काम करो कि रात को नींद, नींद नहीं समाधि बन जाए। और इसी थकान का नाम आनन्द है।' हमने ऐसे ही किया बारह साल तक। कितना काम किया ऋषिकेश में जाकर देखो, पूछो किसी से। कहने का मतलब यह है कि गुरुजी बनाने में घाटा नहीं है। मैं तो सबको बोलता हूँ। अगर तुमको गुरु नहीं बनाना, तो मत बनाओ, शादी भी मत करो। पर बुरे अनुभव होने से भी, तुम उस अनुभव के कारण क्रिया का त्याग नहीं करते हो, सम्बन्धों का त्याग नहीं करते हो, अपनी परम्परा का त्याग नहीं करते हो, तो फिर इस परम्परा का त्याग किसलिए किया?

प्राचीनकाल में हम लोगों के यहाँ परम्परा थी। अब तो नाम की है। सात साल में उपनयन कराते थे, जनेऊ देते थे और गायत्री मन्त्र पढ़ाते थे। पर अब ऐसा नहीं है। अब ब्राह्मण करते हैं, पर शादी-ब्याह केवल एक रीति-रिवाज की तरह हो गया है। उसका अर्थ ही नहीं रहा है। वैसे तो आप लोगों में बहुत लोग शिष्य बने हुए हैं, उसमें कोई बड़ी बात नहीं है, पर यदि आपका गुरु मन्त्र है, तो आज से पहला कार्य उसको नियम से एकाग्रतापूर्वक जपना शुरू कर दो। इसको नया साल मान लो। दिनभर खूब मौज करना, जहाँ जाना हो जाओ। आज से सोच लो कि रात को पाँच मिनट निकालना है। कितना भी तुम्हारा काम हो, कितनी भी तुम तकलीफ में हो, कितना भी तुमको बुखार हो, आखिर पेशाब-टट्टी, सब कुछ तो करते ही हो, तो इसको भी कर लिया करो।

मेरे को गुरुजी ने जिस दिन मन्त्र दिया, कहा, 'पाँच माला जपना सवेरे और पाँच माला शाम को।' तो मैंने उनसे पूछा, 'सिर्फ पाँच माला।' उन्होंने कहा, 'हाँ।' मैंने कहा, 'बढ़ाना नहीं है क्या?' उन्होंने क्या कहा, 'रोटी रोज़ बढ़ती जाती है? आज तीन, तो कल चार, फिर पाँच, सात, आठ, नौ, दस, मरते दम तक पाँच सौ।' नहीं, भोजन का एक नियम होता है। आज तीन माला, अगले महीने में दस, फिर पचीस, फिर चालीस, तब तो अपच हो जाएगी। ज़रूर अपच हो जाएगी। यह बात मान कर चलो। स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, पाँच।' तब हमने कहा, 'स्वामीजी, फिर हमारी उन्नति कैसे होगी?' उन्होंने कहा, 'जो निशाना मारना जानता है, वह एक गोली मारे तो काफी है। जो निशाना

मारना जानता नहीं है, वह सौ गोलियाँ भी मारे तो कोई मरने वाला नहीं है। तुम सौ माला जपकर क्या करोगे?'

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख मांहि।
मनुवा तो दस दिशि फिरे ये तो सुमिरन नांहि॥

नहीं, ऐसा नहीं। पाँच माला गुरुजी ने हमको कहा। पर बाद में मुझको मालूम चला कि पाँच माला कितना मुश्किल होता है। मैं बैठता था। एक माला के बाद मेरा मन डूब जाता था, माला गिर जाती थी। और मेरे को पता नहीं चलता था कि मैंने सुमेरु पार किया है कि नहीं। मेरे को अच्छी तरह से याद है। और मेरी तरह अगर आप लोगों ने भी अनुभव किया हो कभी, या आगे कभी अनुभव करोगे, तो आप को पता नहीं चलेगा कि माला पूरी की कि नहीं। मुझे याद नहीं है कि मैंने कभी पाँच माला पूरी की कि नहीं। बीच में गिर जाती थी, फिर उठाना पड़ता था, फिर सोचता था, कहाँ से शुरू करूँ। फिर पहले से शुरू करते थे। फिर माला गिर जाती थी, क्योंकि जब मन एकाग्र होता है, तब इन्द्रियों का मन से सम्बन्ध कट जाता है। ऊँगली अपने आप खुलने लगती है और माला गिर जाती है। सच्ची बात है, आप मन लगाकर करके देख लो। उस वक्त केवल मैं, और कुछ नहीं।

मैंने कभी पाँच माला की नहीं। और देखो मेरी उम्र हो गई, फिर भी पाँच ही माला चलती है। मैं पाँच माला के ऊपर जाना ही नहीं चाहता, क्योंकि गुरुजी बोलते थे कि अगर तुम पाँच माला ठीक से करोगे, तो पाँच माला की भी ज़रूरत नहीं है, केवल एक माला करोगे, तो एक माला की भी ज़रूरत नहीं है। अगर तुम सचमुच में मान गए कि संसार की चीज़ों में हमेशा मन लगाना ठीक है, मगर एक मिनट के लिए मन लगाना गलत है। एक मिनट के लिए तुम अपने मन को हटाओ वहाँ से, ताकि सौ तीर छोड़ने की अपेक्षा, केवल एक तीर छोड़ो, पर तीक्ष्ण भेदक की तरह, जो अपना लक्ष्य भेदे। एक माला काफी है। और मेरे जीवन में ऐसा ही हुआ। मेरे को याद नहीं है कि मैंने पाँच माला कभी पूरी की कि नहीं की, माला गिर जाती थी। एक बार तो हम पद्मासन में बैठे, माला ही गिर गई। और माला गिरी इसका भी मुझको पता नहीं चला। अपने अनुभव की बात बोल रहा हूँ तुमको। कई बार बोलता हूँ इस बात को। आठ-नौ बजे बैठा होऊँगा। सवेरे जब होश आया, तब चार बजे थे। बड़ी खुशी हुई, समाधि लग गई। आठ से चार बजे तक आठ घण्टे होते हैं। आठ घण्टा पद्मासन में

बैठे, न बदन हिला, न मैं, माला गिर गई। न हम, न तुम, दफ्तर गुम। बड़ी खुशी की बात है, तो हमने स्वामीजी को पुर्जा भेजा। स्वामीजी ने कहा, 'देखो, समाधि बच्चों का खेल नहीं है। जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं, अन्त राम कहि आवत नाहीं। अनेक जन्मों में सिद्धि को प्राप्त करते-करते, अन्त में एक बार आदमी को परम गति की प्राप्ति होती है। उसको तुम कहते हो, एक रात में तुमने पा लिया। तुम सो गये थे बेटा।' उन्होंने कहा, मैंने मान लिया।

इस नए साल के उपलक्ष्य में आपकी शुभकामनाओं को मैं स्वीकार करता हूँ। और अपनी भी सद्भावनाएँ आप सबको देता हूँ। आप लोग इसी तरह से समय-समय पर आते रहिये। पहले तो यहाँ रहने की जगह नहीं थी, इसलिये आप लोगों को मैं देवघर में ठहरने को बोलता था। पर अभी अपने पास बहुत जगह हो गई है। मकर संक्रान्ति, अक्षय तृतीया, शिवरात्रि, जन्माष्टमी को आइये और अपने मित्रों को भी साथ लाइये। आराम के साथ यहाँ खिचड़ी, साम्बर-चावल खाइये और दूसरे दिन वापस चले जाइये। आश्रम रहने की जगह नहीं है। आश्रम तो केवल आकर एक वातावरण प्राप्त करने की जगह है।

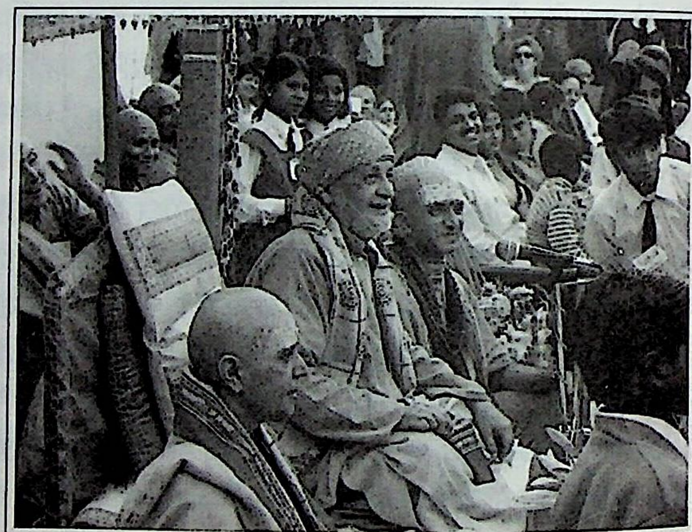
नवरात्रि में नौ दिन हमारे बच्चे रामचरितमानस का पाठ करते हैं। नवान्ह पारायण होता है। आप लोग आराम के साथ यहाँ आकर रहिए। हाँ, पर एक चीज़ है, पंखा हम नहीं देंगे। गाँव की संस्कृति में, गाँव के परिवेश में पंखा उचित नहीं है और हीटर भी उचित नहीं है। यह गाँव है, गाँव के परिवेश में शुद्ध वायु होती है। यहाँ हवा में प्राण शक्ति बहुत अच्छी है अभी। आगे जाकर भगवान जाने। पर अभी यहाँ की प्राण शक्ति तरोताजा है। आपको पंखा या हीटर लेना है, तो फिर देवघर में रहिये। यहाँ आपको केवल शीतल जल मिलेगा।

फिनलैण्ड की एक राष्ट्रीय संस्कृति है, राष्ट्रीय परम्परा है, वहाँ हर घर में एक 'सौना' होता है। हर घर में लकड़ी का छोटा सा कमरा होता है। नीचे पत्थर लगा देते हैं। अब पत्थर नहीं, अब तो बिजली होती है। और गर्मी कमरे में जाती है। उस गर्मी में सब लोग कपड़े उतारकर बैठते हैं, फिर पसीना उतारते हैं। उसके बाद सीधे बाहर जाते हैं, एकदम बर्फीले पानी में नहाते हैं। पहली बार हमने सौना के बारे में सुना, तो कहा, यह तो बड़ा विचित्र है। इतनी गरमी में, इसके बाद ठण्ढे पानी में, फिर उसके बाद गरम पानी में। पर वही स्वाभाविक है, पहले ठण्ढे पानी में और फिर गरम पानी में। इसमें ठण्ढा पानी स्वास्थ्य के लिए अधिक तत्त्व रखता है। गरम पानी में स्वस्थ तत्त्व नहीं होते। अब कोई कमजोर हैं, मजबूर हैं, तो वह बात दूसरी है।

आश्रम में जगह बहुत है, आराम के साथ रहो और कीर्त्तन करो। हमारी इस पंचायत में जितनी कन्यायें और बटुक हैं, वे सब लोग कीर्त्तन में मस्त हैं। आश्रम के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हैं। सवेरे पाँच बजे से निकलते हैं, शाम को घर में पाँच बजे जाते हैं। और घर में भी चिल्लाते रहते हैं–असतो मा सद्गमय। माने हमारी पंचायत में हर घर में मन्त्र का उच्चारण, गीता पाठ और रामचरितमानस चला गया है। और हर घर में आश्रम का नमक भी चला गया है। इसलिए इस पंचायत के लोग नमकहराम नहीं हो सकते। सबको नमक देते हैं, ताकि नमकहराम नहीं बनें।

छोटी सी पंचायत है, अट्ठारह-बीस हज़ार की शायद आबादी होगी। बहुत छोटी है। आनन्द के साथ रहते हैं। न जात-पात का कोई भेद है, न धर्म का कोई भेद है, न स्त्री-पुरुष का कोई भेद है, न सधवा-विधवा का कोई भेद है। बहुत अच्छी तरह से रहते हैं। हाँ, आर्थिक दृष्टि से इन लोगों को थोड़ी और उन्नति करनी चाहिए, ज़्यादा नहीं, क्योंकि ज़्यादा पैसा आने से व्यसन आता है। ज़्यादा पैसा आने से, आदमी सावधान नहीं रहा तो व्यसन आते हैं और ज़्यादा अधिकार होने से घमण्ड अपने आप आता है। इसलिए थोड़ा और सुधार ज़रूरी है और शिक्षा लड़कियों के लिए ज़रूरी है। लड़कियों को थोड़ा और पढ़ाना चाहिए, क्योंकि लड़कियाँ तो देवघर जाकर पढ़ नहीं सकेंगी, अब इतना तो समाज तैयार नहीं है। वह हो जाए तो बहुत अच्छा रहेगा।

– 1 जनवरी 2005





अध्याय 17

सारे भारत वर्ष में संक्रान्ति का पर्व मनाया जाता है। कहीं इसको खिचड़ी संक्रान्त बोलते हैं, कहीं तिल संक्रान्ति और कहीं मकर संक्रान्ति। दक्षिण भारत में इसको पोंगल बोलते हैं। पोंगल का मतलब खिचड़ी। जिसको हिन्दी में हम लोग खिचड़ी बोलते हैं, दक्षिण भारत में पोंगल बोलते हैं। आज के दिन केरल देश में, मलाबार में, गाँव-गाँव के सब लोग हज़ारों की संख्या में एक जगह मंदिर में इकट्ठे होते हैं। वहीं पर अपना चूल्हा जलाते हैं, हण्डिया लाते हैं और उसी हण्डिया में पोंगल बनाते हैं। जैसे कि रिखिया गाँव है, तो यहाँ का हर परिवार आज एक ही जगह पर अलग-अलग खिचड़ी बनायेगा। तुम्हारे और हमारे परिवार की खिचड़ी अलग बनेगी। सब अपने घर से हण्डिया ले आते हैं। औरत-आदमी सब आते हैं। पूजा होती है, पाँचों वाद्य बजते हैं, ढोल बजता है, वीणा बजती है। हाथी भी आते हैं। केरल में तो हाथी बहुत होते हैं। पूजा के बाद खिचड़ी बनाकर हण्डिया में सब घर ले जाते हैं और फिर वहाँ खाते हैं, मंदिर में नहीं।

श्रीलंका में भी संक्रान्ति मनाते हैं। कश्मीर, उत्तरांचल, कुमाँऊ, गढ़वाल, सब जगह मनाते हैं। यह भारतवर्ष का सबसे बड़ा ऐसा त्योहार है, जिसका सम्बन्ध सूर्य से है। बाकी जितने पर्व यहाँ मनाये जाते हैं, सब चन्द्रमा के गणित पर मनाये जाते हैं। चाहे शिवरात्रि हो, जन्माष्टमी हो या नवरात्रि हो, ये सब चन्द्रमा के गणित पर मनाये जाते हैं। संक्रान्ति ही एक ऐसा त्योहार है, ज़ो सूर्य के गणित पर मनाया जाता है। क्यों? इसलिए कि आज से सूरज मकर राशि पर रुक कर कर्क राशि की तरफ वापस आयेगा। पृथ्वी सूरज के चारों तरफ घूमती है। अभी तक नीचे घूम रही है, घूमते- घूमते आज से ऊपर आना चालू करेगी। मतलब आज

से हमारा दिन एक-एक तिल बढ़ेगा रोज़, दिन बढ़ेगा और रात छोटी होगी। आज से दिन का बढ़ना और रात का घटना शुरू हो गया।

यह बहुत बड़ा त्योहार है। इसका मुख्य सम्बन्ध एक तो मकर राशि से है और दूसरा गंगाजी से। गंगाजी गोमुख से निकलती हैं। गोमुख हिमालय में है। गोमुख एक ग्लेशियर का नाम है। ग्लेशियर मतलब हिमनद्। गंगाजी गोमुख से गंगोत्री में उतरती हैं। गंगोत्री में गंगाजी का मंदिर है और उसी के पास भगीरथ की शिला है, जहाँ महाराजा भगीरथ ने गंगाजी को उतारने के लिए तप किया था। कथा आती है कि महाराजा सगर के सात हजार पुत्र थे, जिनको कपिल मुनि ने शाप से भस्म कर दिया था, उनकी आत्मा को तारने के लिए गंगाजी को लाना पड़ा।

गंगाजी को लाने के लिए अनेक राजाओं ने प्रयत्न किया। किन्तु अन्त में महाराजा भगीरथ, जो इक्ष्वाकु वंश के थे, सफल हुए। गंगोत्री में उनकी शिला है और वहाँ से बीस किलोमीटर ऊपर है गंगोत्री ग्लेशियर, वहाँ से गंगाजी निकलती हैं और बहती हुई प्रयागराज, वाराणसी, मुंगेर और कलकत्ता होती हुई वे पहुँचती हैं गंगासागर। गंगासागर एक छोटा-सा द्वीप है एकदम कोने में, जहाँ गंगाजी समाप्त होती हैं, समुद्र में मिलती हैं। इसलिए उसको कहते हैं—गंगासागर। गंगा और सागर का संगम। वह एक द्वीप है, वहाँ कपिल मुनि का मंदिर है। आज के दिन वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है, गंगासागर का मेला। गंगासागर से गंगोत्री तक आज गंगा जी के किनारे हजारों भारतवासी स्नान करेंगे। आज के दिन सबसे अधिक महत्त्व स्नान, खिचड़ी और दही-चूड़े का है।

योग में यह बतलाते हैं कि आज के दिन से सूर्य उत्तरायण होता है और कर्क संक्रान्ति के दिन से सूर्य दक्षिणायन होता है। ये दो मार्ग हैं, उत्तरायण–ऊपर, दक्षिणायन–नीचे। जो योग के बारे में जानना-समझना चाहते हैं, उनको मालूम होना चाहिए कि उत्तरायण और दक्षिणायन, दो मार्ग हैं। जो योग करता है, उसकी आत्मा इन दो रास्तों में से किसी एक से होकर जाती है। किसी की आत्मा उत्तरायण से होकर जाती है, किसी की दक्षिणायन से। यह सब ध्यान की अवस्था में होता है। इस ज़िन्दा शरीर में होता है। जब तुम ध्यान करते हो पद्मासन में या सिद्धासन में, ये दो आसन हैं ध्यान के, आराम कुर्सी पर ध्यान नहीं होता है, क्योंकि ध्यान के लिए बन्ध, मुद्रा, आसन और प्राण, इन चारों का योग ज़रूरी है। जिस तरह से हलवा बनाने के लिए सूजी और चीनी का योग ज़रूरी है। चीनी अलग खा लो, सूजी अलग खा लो, मज़ा

आयेगा क्या? नहीं आयेगा। इसी प्रकार ध्यान के लिए इन चार चीज़ों का योग ज़रूरी है। पद्मासन और सिद्धासन, ये दो आसन हम लोगों के यहाँ ऋषि-मुनियों ने आदिकाल से बतलाये हैं।

ध्यान की अवस्था में तुम क्या करते हो? ध्यान की अवस्था में क्या होता है? ध्यान की अवस्था में, कोई चीज़ हमारे अन्दर है, जो या तो इधर से उधर भागती है या विषाद की अवस्था में रहती है या उत्तेजना की अवस्था में रहती है या चंचलता की अवस्था में रहती है या निद्रा की अवस्था में रहती है या एकाग्रता की अवस्था में रहती है। ध्यान की अवस्था में तुम्हारा मन पाँच अवस्थाओं में से एक अवस्था में रहता है–मूढ़ अवस्था में या क्षिप्त अवस्था में या विक्षिप्त अवस्था में या फिर एकाग्र अवस्था में अथवा निरुद्ध अवस्था में। यह जो मन है, ध्यान की अवस्था में किसी न किसी बिन्दु पर, किसी न किसी क्रिया में, किसी न किसी स्थान पर, किसी न किसी मनोवस्था में रहता है। इस मन की दो अवस्थायें महत्त्वपूर्ण हैं–एक उत्तरायण और दूसरी दक्षिणायन। श्रीमद्भगवद्गीता में उत्तरायण और दक्षिणायन का उल्लेख है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ 8.24 ॥

यह उत्तरायण के बारे में कहा गया। दक्षिणायण के बारे में कहते हैं–

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ 8.25 ॥

और एक लाइन हमने आगे जोड़ी है–

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ 8.26 ॥

एक रास्ते से जाने से योगी नहीं लौटता और दूसरे रास्ते से जाने से वह फिर आवागमन में आता है। ये तीन श्लोक गीता में अच्छी तरह से लिखे गए हैं, इनके बारे में पढ़ो। साधकों के लिए आज की मकर संक्रान्ति उत्तरायण का संकेत देती है। उत्तरायण क्या होता है? उत्तरायण के मार्ग से कौन जाता है? और दक्षिणायन के मार्ग से कौन जाता है? नाद, बिन्दु और कला, ये तीन स्वरूप होते हैं। नाद माने आवाज। अभी मैं बोल रहा हूँ, मेरे नाद का स्वरूप

है कि नहीं? है, पर उस स्वरूप को तुम आँखों से नहीं देख सकते। बिन्दु क्या है? मैं बिन्दु हूँ। मंदिर में शिव जी बिन्दु हैं। गुरु बिन्दु हैं। ये सब बिन्दु बैठे हैं। कला क्या होती है? मन के अन्दर उठने वाली अनुभूति को कला कहते हैं।

नाद, बिन्दु और कला, ये स्वरूप हैं। जो इन तीन रास्तों को पकड़ कर ध्यान, योग, अध्यात्म या धर्म के मार्ग में आगे बढ़ता है, वह उत्तरायण से जाता है। उसको हमेशा ज्योति दिखती है। अन्दर में कुछ दिखता है, उसको ज्योति कहते हैं; अन्दर में कुछ नहीं दिखता, उसको अंधकार कहते हैं। हमारे वैदिक साहित्य में परमात्मा को निराकार, अगोचर, त्रिकालातीत और शब्दातीत माना है। उसका कोई मुख नहीं है, उसका कोई स्थान नहीं है, उसका कोई नाम नहीं है, किन्तु साधना के लिए उस रूप-विवर्जित भगवान को भी रूप दिया है। *रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत् कल्पितं।* उसके रूप की कल्पना की जाती है। इसमें कभी गलती नहीं करना। आज मकर संक्रान्ति के उपलक्ष्य के बहाने यह बात बोल रहा हूँ। रूप साधना और अरूप साधना, अनुभव का रास्ता है।

गीता में कहा–*अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।* मूलाधार से अनाहत तक दक्षिणायन है। अनाहत से आज्ञा चक्र तक उत्तरायण है। अनाहत चक्र में कुण्डलिनी पहुँच गई, तो लौटती नहीं है उसके बाद। मणिपुर में पहुँचकर भी लौट जाती है।

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥

फिर अपनी जगह, अपने घर में जाकर सो जाती है। स्वाधिष्ठान माने? अपने अधिष्ठान में सो जाती है। अनाहत के बाद कुण्डलिनी अव्याहत्, अप्रतिहत् रहती है। फिर वहाँ से उसकी वापसी नहीं होती। अनावृत्तिम्–वह लौटती नहीं है। अनाहत के बाद विशुद्धि, विशुद्धि के बाद आज्ञा। आज्ञा तक गंगा जी हैं। उसके आगे गंगा जी नहीं हैं, सागर है। वही गंगा-सागर है। गंग-जमुन बिच मुरली बाजे। गंगा और जमुना के बीच मुरली बजती है आज्ञा चक्र में। सन्त लोग कहते हैं–

मुरली कौन बजावे गगन मण्डल के बीच।
गंग जमुन बिच मुरली बाजे, उत्तर दिशि धुनि होहि।

वा मुरली की टेरहिं सुनि-सुनि रहीं गोपिका मोहि।
मुरली कौन बजावे।

यह जो तुम्हारा आज्ञा चक्र है, यह है प्रयागराज, जहाँ गंगा, जमुना और सरस्वती का संगम होता है। इसे त्रिवेणी संगम कहते हैं। ठीक यहाँ पर तुम लोग टीका लगाते हो, पण्डित लोग चन्दन या भस्म का टीका लगाते हैं। इस टीके के पीछे छोटे मस्तिष्क में, रीढ़ की हड्डी के सबसे ऊपरी भाग में आज्ञा चक्र का स्थान हैं। वहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती, तीनों का मेल होता है। और उसके बाद फिर गंगासागर शुरू होता है।

उत्तरायण मार्ग में जाने वाले अनाहत से चलते हैं। दक्षिणायन मार्ग से जाने वाले मूलाधार से चलते हैं। हम लोगों के यहाँ जो मकर संक्रान्ति मनाई जाती है, इसके अनेक आयाम हैं। एक आयाम है खिचड़ी और दही-चूड़े का, दूसरा आयाम है स्नान करने का, तीसरा आयाम है सूरज की भौगोलिक स्थिति का और चौथा आयाम है योग का। और यह चौथा आयाम, जो योग का है, बहुत ही गूढ़ है, क्योंकि इस बात को तुम अच्छी तरह से मान लो कि मनुष्य की पहचान योग है, बाकी जितनी चीज़ें तुम्हारे पास हैं, वे जानवरों के पास भी हैं। जो कुछ तुम करते हो, जानवर भी करते हैं।

आहार निद्रा भय मैथुनं च, समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो, ज्ञानेन हीना: पशुभि: समाना:॥

मनुष्य की विशेषता केवल एक है, वह है योग। योग का मतलब यही हुआ कि मनुष्य अन्दर में जाकर उत्तरायण की तरफ अपने चित्त को लगाए। हमारे धर्म, हमारी परम्पराओं और गुरुजनों के उपदेशों में बराबर आपको सुनने को मिलता रहता है। कोई नयी बात मैं आपको नहीं बतला रहा हूँ। आज के दिन एक छोटा सा रिमाइन्डर भर दे रहा हूँ।

मकर संक्रान्ति का महत्त्व छोटे बच्चों को बताना है। छोटे बच्चे भगवान के बहुत निकट रहते हैं। परन्तु उनके माता-पिता उनसे काम निकालने के लिए उनको भगवान से थोड़ा दूर खींच कर ले जाने की कोशिश करते हैं, कर रहे हैं। इसलिए धीरे-धीरे क्या होता है कि बच्चे भगवान से दूर होकर शैतान के पास पहुँच जाते हैं। जब हम लोग झूठ बोलते हैं, शैतान हैं। भगवान झूठ नहीं बोलते। तब फिर जो झूठ बोलता है, वह कौन है? सीधी-सीधी बात, जो चोरी करता है वह झूठ बोलता है। शैतान के काम तो तुम

गिन लो। छोटे बच्चे भगवान के पास होते हैं, वे बढ़िया होते हैं। हमारे यहाँ कहते हैं कि पिताजी कहते हैं कि पिताजी घर में नहीं हैं। टेलीफोन पर जवाब दिया बच्चे ने। किसी ने कहा बाबूजी को बुलाओ, तो बोला कि बाबूजी कहते हैं कि बाबूजी घर में नहीं हैं। बच्चे इतने सीधे होते हैं कि उनको झूठ बोलना भी नहीं आता। और जिसको झूठ बोलना नहीं आता, वह या तो बच्चा है या बेवकूफ है या साधु है।

सुनामी लहर

अभी कुछ दिन पहले फुकेट में सुनामी लहर के आने से जो अवस्था हुई, ठीक यही अवस्था आज से सवा पाँच हज़ार साल पहले द्वारिका में हुई थी, जब सारी द्वारिका सुनामी लहरों में समुद्र में चली गई। श्रीमद्भागवत पढ़ना अच्छी तरह से। महाभारत युद्ध के करीब छत्तीस साल बाद जब भगवान श्री कृष्ण एक सौ पचीस साल के थे। उस समय की बात है। यह तब हुआ जब भगवान कृष्ण को प्रभास क्षेत्र में व्याध का बाण लगा था। उनका देहान्त होने के बाद द्वारिका पूरी की पूरी सुनामी लहरों की चपेट में आ गई।

कहते हैं कि ये ऐसी लहरें होती हैं जो धक्का कम देती हैं, खींचती ज़्यादा हैं। एक तो होता है, जब लहर आती है तो यहाँ से धक्का मारकर उधर फेंक देती है। सुनामी इतना ज़्यादा धक्का नहीं देती, यह दूर-दूर तक बढ़ जाती है, पानी की परत बोलते हैं उसको। और जब खींचती है, फिर तुम्हारे पास कोई उपाय नहीं है। लगता है कोई राक्षस नीचे से खींच रहा है। फिर किसी की हिम्मत नहीं, चाहे तुम जंजीर पकड़ो, चाहे कुछ भी पकड़ लो। वह द्वारिका को ले गई। जब सुनामी वाली घटना हुई, तो मैंने कहा कि पाँच हज़ार सालों के बाद फिर यह हो रहा है। ऐसा कहते हैं कि यह इस युग की बहुत बड़ी घटना है। भारत में तो अभी हम लोगों को ज़्यादा पता नहीं चल रहा है। बहुत बड़ी घटना है। इसके बाद पृथ्वी में जो ज्योतिष गणित है, उसमें पूरा परिवर्तन होगा।

– 14 जनवरी 2005



अध्याय 18

सत्संग आध्यात्मिक जीवन का द्वार है। भगवान के घर या परमात्मा के घर, यानि आन्तरिक जीवन में जाने के लिए एक दरवाजे की जरूरत पड़ती है। दरवाजा अगर नहीं रहा, तो बहुत लोग झरोखे से घुसने की कोशिश करते हैं। जब हर घर में जाने के लिए दरवाजे की जरूरत है, तब भगवान के घर में जाने के लिए भी दरवाजे की जरूरत होगी या नहीं? सत्संग वही दरवाजा है। संत-महात्मा, ऋषि-मुनि, सब धर्म के फकीर और अच्छे दिमाग वाले जितने लोग हैं, वे यही कहते हैं कि सत्संग परमात्मा तक जाने के लिए द्वार है।

रिखिया की बाल मण्डली

हमारे कन्या और बटुकों की संख्या बहुत है। जैसे भगवान श्रीकृष्ण की बाल मण्डली मटके फोड़ कर मक्खन चुरा कर खाती थी और लड़कियों को छेड़ा करती थी, उसी तरह रिखिया की बाल मण्डली भी है। आश्रम के पेड़ फल से लदे रहते हैं। आम, लीची, अमरूद, सीताफल, जामुन, अनार इत्यादि यहाँ भरपूर रहता है। और यह बाल मण्डली जब यहाँ अंग्रेज़ी और कम्प्यूटर सीखने आती है, तब इनकी पूरी नज़र इन फलों पर रहती है। मौका मिलने पर तोड़ कर खा लेते हैं। जैसे बाल गोपाल ने यशोदा से कहा था, वैसे ही ये भी कहते हैं, 'मैंने नहीं किया।' और हम संन्यासियों को बोलते हैं, थप्पड़ मत मारो, मजा लो, क्योंकि बच्चे भगवान श्रीकृष्ण का रूप होते हैं।

रिखिया आश्रम का एक बहुत जबरदस्त तरीका है। यह तरीका साधु-महात्माओं ने आज तक नहीं पकड़ा है। वे लोग माँ-बाप को पकड़ने की कोशिश करते हैं और हम लोग बाल-बच्चों को पकड़ने की कोशिश करते हैं,

क्योंकि सब लोग हमेशा कहते हैं कि बच्चे कल का भविष्य हैं। मगर उस भविष्य में तुम बड़े लोग ही बैठ जाते हो और भविष्य को भूतकाल में डाल देते हो। जब स्वामी निरंजन ने मुंगेर का प्रभार लिया, तो बुढ्ढे लोग यानि मेरी पीढ़ी का प्रभार लिया। सब 'अंगं गलितं पलितं मुण्डं' वाले थे, और यह बेचारा दूसरी पीढ़ी का। इसलिए इसको जमा नहीं। तो स्वामी निरंजन ने छोटे बच्चों को इकट्ठा करना शुरू किया और सारे मुंगेर के बच्चे इससे जुड़ गये। चालीस हजार सदस्यों को इसने तैयार किया और बाल योग मित्र मण्डल की आज अगर मुंगेर में कोई मीटिंग होती है, तो माता-पिता को आमंत्रण देने की जरूरत ही नहीं है। बच्चों को बोल दो कल मीटिंग होगी, दोनों को पकड़ कर ले आना। तो एक लाख बीस हजार हो जाते हैं–चालीस हजार बच्चे, चालीस हजार बाप, चालीस हजार माँ। यह तरीका है लोगों तक पहुँचने का।

हमने भी यहाँ ऐसे ही किया है, क्योंकि यहाँ के जो बच्चे हैं, इन सबके माता-पिता मजदूरी करते हैं। कोई ठेला या रिक्शा चलाता है तो कोई खेती करता है। सबेरे सात-आठ बजे घर से निकल जाते हैं और रात को सात-आठ बजे तक घर पहुँचते हैं। बहुत लोग तो घर वापस भी नहीं आते हैं, कोई धनबाद, कोई आसनसोल, कोई गिरिडीह में काम करता है। उनके बच्चों की हाजिरी यहाँ हो जाती है और इनके द्वारा आश्रम का प्रसाद हर घर में निश्चित रूप से पहुँच जाता है। इस तरह इस पंचायत की अगली पीढ़ी तैयार हो रही है। पिछली पीढ़ी को हमें नज़रअंदाज करना पड़ रहा है, क्योंकि मजदूर लोग काम करने के लिए जाते हैं। अब ये लोग सत्संग में आएँगे कि पैसा कमायेंगे। इसलिए ये छोटे बच्चे, जिनको हम कन्या और बटुक कहते हैं, यहाँ आते हैं। ये बच्चे देवस्वरूप हैं। बच्चे देवस्वरूप इसलिये होते हैं कि इनको झूठ बोलना नहीं आता। घर में टेलिफोन आने से बच्चा बोलता है, 'बाबूजी कहते हैं कि बाबूजी घर में नहीं हैं।' ये ऐसे झूठ बोलते हैं। झूठ को भी ये सच से ओढ़ाकर दे देते हैं। इसलिए ये भगवान के स्वरूप अवतार कहलाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण

आज से पाँच-साढ़े पाँच हजार साल पहले एक ऐसा बालक इस देश में पैदा हुआ, जो आज भी बच्चा है। किसी ने भगवान कृष्ण की दाढ़ी-मूँछ देखी है क्या? जब भगवान श्रीकृष्ण महाभारत के युद्ध में अर्जुन का रथ हाँक रहे थे, उस वक्त उनकी उम्र नब्बे साल थी, मेरे से सात साल बड़े थे। भगवान श्रीकृष्ण

सदा एक बालक रहे। आज साढ़े पाँच हज़ार साल बीतने पर भी हम उनको बालक के रूप में ही याद करते हैं। अगर कोई बेवकूफ चित्रकार भगवान श्रीकृष्ण की एक तस्वीर दाढ़ी-मूँछ के साथ बना दे, तो क्या तुम उसको पसंद करोगे? नहीं!

भगवान कभी वृद्ध नहीं होते हैं। वे जब पैदा हुए, तब भी किशोर थे और जब तक इस धरती पर रहते हैं, तब तक वैसे ही रहते हैं। जब वे पैदा नहीं होते हैं तब भी भगवान रहते हैं, क्योंकि भगवान हमेशा मूल रूप में विद्यमान हैं। भगवान कभी बड़े नहीं होते हैं। वे कभी बुढ्ढे नहीं होते हैं। पैदा होने पर उनका जन्म और जीवन एक लीला होती है। साढ़े पाँच हजार साल पहले एक बच्चा इस देश में जन्मा और वह इतिहास का एक पृष्ठ बन गया। हर मुल्क या देश में विजेता आते हैं और उस देश के इतिहास को फिर से लिखते हैं। जैसा भारत के इतिहास के साथ भी किया गया है। जो इतिहास तुम लोग पढ़ते हो, वह फिर से लिखा गया है। वह हमारे देश या राष्ट्र का असली इतिहास नहीं है। हमारे देश का इतिहास पुराणों में कोटिबद्ध है। इस देश का इतिहास पुराण, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत में कोटिबद्ध है। इतिहास को हमेशा तोड़ा जाता है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण को आज बहुत से लोग काल्पनिक भी कह देते हैं। इतिहास दन्त कथा बन जाती है। और दन्त कथाओं को लोक-नृत्य, लोक-संगीत, लोक-कला के रूप में फिर से दुहराया जाता है।

रास लीला

भगवान श्रीकृष्ण आज जनता के बीच भी हैं, इतिहास में भी हैं और पुराणों में भी हैं। उन्होंने आज कार्तिक पूर्णिमा के दिन एक अद्भुत लीला की थी, जो इस संसार के लिए प्रतीक बन गई। यह मंचन था सृष्टि का। सृष्टि की प्रक्रिया में दो मूल तत्त्व आते हैं—पुरुष और प्रकृति। वे दो तत्त्व अपनी आठ प्रकृतियों के साथ मिलते हैं। इन आठ प्रकृतियों को भगवान श्रीकृष्ण गीता में प्रकृति का स्थूल रूप बतलाते हैं, जिसको अपरा प्रकृति कहते हैं। और राधा परा प्रकृति या अलौकिक प्रकृति हैं।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥7.4॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥7.5॥

गीता में कहा है–भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, बुद्धि और मन, ये आठ अपरा प्रकृति हैं। इनसे सारे जगत् की सृष्टि और स्थापना होती है। इन आठ प्रकृतियों और एक परा प्रकृति, राधा के साथ परम पुरुष का जो उस समय खेल हुआ जब सृष्टि रची गई थी, उसी सृष्टि की रचना को भगवान श्रीकृष्ण ने कार्तिक पूर्णिमा के रोज मध्य रात्रि में गोपियों और राधा के साथ मंचन किया। वह रास-लीला पॉप डान्स नहीं था। वह माइकल जैक्सन की कृति नहीं थी। वह एक ऐसी घटना थी, जिससे भगवान श्रीकृष्ण ने सारी दुनिया वालों को सृष्टि प्रकरण बतलाया, 'देखो, सृष्टि ऐसे पैदा होती है।' पदार्थ और ऊर्जा के योग से क्या होता है? आइन्स्टीन का समीकरण पढ़ लो।

वह रास-लीला आज के ही दिन हुई थी। इसके अलावा भी आज का दिन बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आज भीष्म पंचक है। हमारे यहाँ भीष्म पितामह के लिए पाँच दिन रखे जाते हैं, जिसको भीष्म पंचका या भीष्म पंचकम् कहते हैं। यह एकादशी को शुरू होता है और आज समाप्त हो रहा है। उस एकादशी को कहते हैं देवोत्थान एकादशी। आषाढ़ की पूर्णिमा के पूर्व जो होती है, वह देव शयनी एकादशी है। देवोत्थान एकादशी के बाद भीष्म के लिए पाँच दिन होते हैं। भीष्म पितामह हमारी संस्कृति के एक महान् पुरुष माने जाते हैं। संयम, तपस्या, शक्ति और शौर्य के वे एक जीते-जागते उदाहरण थे।

आज शाम को यहाँ रास-लीला होगी। भगवान श्रीकृष्ण की रास-लीला करीब साढ़े पाँच हज़ार साल से इस देश में आई है। और हर प्रान्त में इसे लोगों ने स्वीकार किया है। गुजरात में अपने ढंग से होती है, आदिवासियों में अपने ढंग से और व्रज में अपने ढंग से। इसके अलग-अलग तरीके हैं, क्योंकि यह सृष्टि का प्रकरण है। यह सृष्टि कैसे पैदा हुई? ये तत्त्व आपस में कैसे मिले? किस प्रकार से जल पैदा हुआ? किस प्रकार से अग्नि पैदा हुई? किस प्रकार से वस्तुएँ पैदा हुईं? कैसे चौरासी लाख योनियों का विस्तार हुआ? ये सब चीज़ें रास-लीला का विषय हैं। वैसे तो रास लीला देखने में मज़ा जरूर आता है, वह अपनी जगह पर ठीक है, क्योंकि उसको लोग नृत्य, संगीत और रस के साथ जोड़ते हैं। उसमें कोई हर्ज नहीं है। पर जब भी तुम रास-लीला के बारे में सोचो, तो विचार करो कि रास-लीला वास्तव में एक ब्रह्माण्डीय नृत्य है। और यह नृत्य बतलाता है कि सारी सृष्टि नाच रही है।

तुम आँख बन्द करके एक बार सोच कर देखो कि किस तरह हमारा सौर-मण्डल घूम रहा है। सूर्य के चारों ओर ग्रह घूम रहे हैं। और यह सूर्य फिर दूसरे

सूर्य के चारों ओर घूम रहा है। फिर वह सूर्य दूसरे सूर्य के चारों ओर घूम रहा है। इस प्रकार से एक-दो सूर्य नहीं, बल्कि कोटि-कोटि सूर्य इस सृष्टि में हैं। और ये कोटि-कोटि सूर्य स्थिर नहीं, चलायमान हैं। इस अनन्त ब्रह्माण्ड में, इस अनन्त शून्य में, तुम्हारी पृथ्वी कल जिस बिन्दु पर थी आज उस बिन्दु पर नहीं है।

अगड़ बम् अगड़ बम् बाजे डमरू।
नाचे सदा शिव जगत गुरु॥
हम भी नाचें, तुम भी नाचो, नाचे संसार।
रास रचा कर रसिया नाचे ब्रजवासिन के साथ॥

हम सभी नाच रहे हैं, पता नहीं चल रहा है। संत-महात्मा बोलते हैं, सारा संसार पागल हो गया है। इन्द्रियों के भोगों के पीछे तो हम नाच ही रहे हैं। पर साथ-ही-साथ हम लोग इस अनन्त कोटि सृष्टि में भी नाच रहे हैं। यह भगवान की वही रास-लीला है, जिसको हम देख या सोच नहीं सकते और न ही हृदयंगम कर सकते हैं। यह रास-लीला भगवान श्रीकृष्ण ने साढ़े पाँच-छ: हज़ार साल पहले राधा और गोपियों के साथ की थी, यह बतलाने के लिए कि सृष्टि कैसे चलती है।

बच्चों के लिए आध्यात्मिक जीवन

यह सारा आयोजन हमारे रिखिया की कन्याओं और बटुकों द्वारा किया गया है। इन छोटे बच्चों का पुरुषार्थ बहुत ऊँचा है। यहाँ के बच्चों में संस्कार जागे हैं। और इनके अन्दर आत्म-तत्त्व जाग रहा है। इनका जीवन बहुत तेजी के साथ बदलता जा रहा है। और इनकी वजह से इस पंचायत का स्वरूप पहले से ज्यादा खिल गया है। हम यह नहीं बोल रहे हैं कि इस पंचायत के बड़े लोग, चाचा-दादा लोग बहुत ज्ञानवान् हो गए हैं। ऐसा नहीं है। वे बेचारे तो नौकरी में रहते हैं। पर बच्चों ने एक चीज़ से यहाँ की पूरी-की-पूरी व्यवस्था और रोशनी बदल दी है, और वह है–कीर्तन, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता और हवन। हफ्ते में ये लोग तीन-चार हवन करते हैं। हमारी पंचायत के जितने छोटे लड़के-लड़कियाँ हैं, उस हवन में भाग लेते हैं। हवन में समिधा भी वही डालते हैं। हम लोग केवल उसके लिए स्थान तैयार करके रखते हैं। आश्रम तो इसीलिए बनता है।

आश्रम संन्यासियों के लिए नहीं होता है। आश्रम परिसर उस इलाके के रहने वालों के लिए होता है। मगर इसका मतलब यह नहीं कि यहाँ आकर जब चाहो ताश खेल लो। जैसे हमारे बगल वाले हनुमान मन्दिर में दिन-रात ताश ही खेलते हैं। हम तो कहते हैं कि वह हनुमानजी का मंदिर नहीं, ताश वालों का मंदिर है। मैं यहाँ बगल में ऊँचाई पर रहता हूँ और दूरबीन से देखता हूँ। मेरे पास रात में देखने वाली दूरबीन भी है। वे लोग रात को भी बत्ती जलाकर ताश खेलते हैं। बिजली खर्चा करके हनुमानजी के मंदिर में ताश खेलते हैं, जहाँ औरतों को मासिक धर्म के बखत जाना मना है! पहले तो औरतों को हनुमानजी के मंदिर में जाना मना था। मासिक धर्म के समय में तो बेचारी भूल कर भी नहीं जाएगी और ये लोग हनुमान मंदिर में ताश खेलते हैं! ये तो बड़े लोगों का हाल है। उनसे तो कोई उम्मीद नहीं है। दुनिया का जितना छल-फरेब होता है, वह बड़े लोग ही करते हैं।

ये छोटे बच्चे शनिवार शाम को यहाँ महामृत्युञ्जय का हवन करते हैं। हर एकादशी को अखण्ड गीता पाठ करते हैं। साल में दो बार इनको सम्पूर्ण रामचरितमानस का पाठ करने का मौका मिलता है। एक तो चैत महीने में और दूसरा आश्विन महीने में। दो बार पूरी रामायण ये पढ़ते हैं, आदि से अन्त तक। इनके लिए यह छोटी-मोटी बात नहीं है, बड़ी उपलब्धि है। इसके अलावा यहाँ लक्ष्मी हवन, सरस्वती हवन, गुरु और गणेश का हवन, विष्णु और शिवजी के हवन बराबर होते रहते हैं। गुरुजी का हवन करें, तो ज्ञान की प्राप्ति होगी। लक्ष्मी का हवन करें, तो समृद्धि बढ़ेगी। और सरस्वती का हवन करें, तो बढ़िया डिग्री मिलेगी।

इन बच्चों की उपलब्धि से इनके आस-पास का वातावरण उल्लासमय हो गया है। मुझे इनके घर के लोगों से पूरी रिपोर्ट मिलती है। ये दिनभर घर में केवल आश्रम की ही चर्चा करते हैं। अपने घर में माता-पिता, चाचा-चाची को बोलते हैं, 'ऐसा क्यों करते हो, आश्रम में तो ऐसा नहीं होता है।' खाने में भी अब इनकी पसन्द बदल रही है, क्योंकि आश्रम में तो धीरे-धीरे हम लोग बिना तेल की सब्जी बनाने की फिराक में हैं। हिन्दुस्तान के लोग समझते हैं कि बिना छौंक दिए दाल-सब्जी बनती ही नहीं है। बिना बादाम, किसमिस, खजूर और अखरोट डाले खीर बनती ही नहीं है। लेकिन खीर केवल चावल और दूध से बनती है। सब्जी केवल सब्जी डालने से बनती है। अब गरीब लोगों को तो बहुत बढ़िया है। तेल का तो दाम तुम जानते ही हो

कितना बढ़ गया है। इसके अलावा दिनभर ये घर में कीर्त्तन करते और अंग्रेजी बोलते हैं। जब मैं सबेरे घूमने जाता हूँ, तो ये बच्चे गाँव में मुझे 'गुड मार्निंग! हाउ आर यू? फाइन' बोलते हैं।

अब हर एक व्यक्ति को अपने बच्चों को भगवान का स्वरूप मानकर उन्हें ऐसी बातें सिखानी चाहिए जिससे कि उनके अन्दर प्रतिरोधक क्षमता आए। आगे जाकर ये बच्चे दूसरे समाज में जाएँगे। और उस दूसरे समाज से अगर कोई नकारात्मक संस्कार इनके ऊपर आएगा, तो ये उसका प्रतिरोध कर सकेंगे, क्योंकि विवेक के लिए दो तरफा ज्ञान होना जरूरी है। बिना दो तरफा ज्ञान के विवेक हो ही नहीं सकता। क्या सही है और क्या गलत, इन बच्चों के लिये यह जानना बहुत जरूरी है। यह गलत है तुमको कैसे पता चलेगा, जब तक कि तुमको पता नहीं चले कि सही क्या है।

बच्चों को बचपन से ही आध्यात्मिक जीवन में ले जाने के लिए उनका आश्रम वातावरण से परिचय होना बहुत जरूरी है, क्योंकि वे घर में तुम्हारी बात तो सुनने वाले हैं नहीं, घर का जोगी जोगड़ा। तुम तो माता-पिता हो और माता-पिता गुरु नहीं हो सकते। वैसे तो पति को भी परमेश्वर कहते हैं, मगर पति परमेश्वर नहीं होता है। पति, पति होता है। पति गुरु नहीं हो सकता है। गुरु, गुरु ही हो सकता है। अगर पति गुरु है, तो घर ही में भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र उसी से पढ़ लो। यूनिवर्सिटी क्यों जाते हो? पति केवल पति है। उसका एक विभाग है, पति। अब उसको दूसरे विभाग में क्यों उलझाते हो कि वह शिक्षक भी है, तो परमेश्वर भी है, तो गुरु भी है। यह बहुत ज़्यादा काल्पनिक और असत्य सोच है। पति को पति और पत्नी को पत्नी तक सीमित रखो। अब पत्नी को चेली बना लोगे, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। हम लोगों के विभागों की मर्यादाएँ होती हैं। बहन, बहन ही होती है, दूसरी नहीं हो सकती है। बेटी, बेटी ही होती है, दूसरी नहीं हो सकती है। अब बेटी को कुछ और बोलने लगोगे तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि विभागों की मर्यादाएँ होती हैं।

इसी प्रकार से आश्रम की मर्यादा होती है और घर की भी मर्यादा होती है। हर मर्यादा में व्यक्ति को कुछ-न-कुछ मिलता है। हमारे देश की संस्कृति में आश्रम बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह नहीं समझना कि आश्रम में जाने से साधु बन जाओगे। नहीं, आश्रम कभी साधु बनाने का अभियान लेकर नहीं बनते हैं। आश्रमों में बच्चों को भेज कर, वहाँ हर तरह से आध्यात्मिक जीवन में उनको दीक्षा दी जाती है। यह आध्यात्मिक जीवन की दीक्षा बड़े होने

पर उन बच्चों के काम आएगी, चाहे वे जहाँ भी रहें। संसार में बड़े होने पर अनेक परस्थितियों से गुजरना पड़ता है। नौकरी, व्यापार, देश-विदेश या दूसरे धर्म वालों के देश में रहना, गरीबी झेलना या किसी बहुत बड़ी दुर्घटना का सामना करना, इन अनुभवों से मन पर बहुत तरह का असर पड़ता है। मानो कि तुम एक बहुत सम्पन्न व्यापारी बन गए हो, इसका क्या तुम्हारे मन पर असर नहीं पड़ेगा? मन पर हर घटना का असर पड़ता है। शादी हो गई, नहीं पट रही है, मन पर असर पड़ता है। सुख, दु:ख, सफलता, विफलता का मन पर गहरा असर पड़ता है। बाहर की बातों को तो छोड़ दीजिए, अपने मन में जो विचार आते हैं, उसी से हम प्रभावित हो जाते हैं। विज्ञान का मत है कि मन में जो ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, अपराध, भक्ति, ज्ञान या सत्संग का ख्याल आता है, वह मन पर प्रभाव डालता है और यह अध्यात्म का भी मत है। हमारे वेद-पुराणों में यही लिखा है।

आज का मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान यही कहता है। हर एक व्यक्ति का मन जब भावावेश में होता है, तुरन्त रसायन, हॉर्मोन्स चलने लगते हैं। यदि किसी दुश्मन को देखो जिसने अपने को नुकसान पहुँचाया हो, तुरन्त शरीर में ग्रन्थियाँ–एड्रीनल ग्रन्थि, थायरॉइड ग्रन्थि, थाइमस ग्रन्थि, जनन ग्रन्थि, अण्ड ग्रन्थि काम करने लगती हैं। शरीर के अन्दर इतने सूक्ष्म प्रभाव क्षेत्र हैं कि एक विचार तुम्हारे मन में आया और तुरन्त तुम्हारे शरीर में से टप एक बिन्दु आकर खून में मिलता है। खून में मिलकर पूरे शरीर में चक्कर लगाता है। एक छोटी-सी बूँद कहीं से गिर गयी। सूई की नोक में जितना पानी अटकता है, उससे भी कम। उदाहरण के लिए, तुम्हारे मन में भय का ख्याल आया, तुरन्त वह एड्रीनल ग्रंथि से निकलकर खून में मिलेगा। एक क्षण में तुम्हारा हृदय टुक, टुक, टुक करने लगता है। एड्रीनल ग्रंथि से निकला हुआ जो एड्रीनलिन हार्मोन होता है, तुरन्त असर करता है।

शरीर के अन्दर जो द्रव्य, तत्त्व, ऊर्जा, शक्तियाँ, अमृत और विष हैं, वे हर विचार से प्रभावित होते हैं। तुम्हारा मन कभी किसी विचार से प्रभावित न हो, इसका मतलब है तुम सिद्ध योगी हो गए हो। निश्चित रूप से योग में एक अवस्था ऐसी है, परन्तु वह सबको प्राप्त नहीं हो सकती। योग में एक अवस्था है जहाँ सुख, दु:ख, ईर्ष्या, भय का असर नहीं होता है। कहते हैं कि जब मिथिला जल रही थी, महाराज जनक बोले, *'मिथिलायां न मे किंचित् विनश्यति।'* शुकदेव से उन्होंने कहा, 'मिथिला जल रही है, मेरा क्या जल

रहा है?' शुकदेव व्यासदेव के पुत्र थे और उन्होंने शुकदेव को गुरु-दीक्षा के लिए जनक के पास भेजा था, क्योंकि जनक राजा होते हुए भी विदेहमुक्ति की अवस्था प्राप्त कर चुके थे। इसीलिए जनक महाराज को कहा जाता है विदेह, जो देह से परे हैं। पर यह स्थिति सब की नहीं है, क्योंकि हर एक को यह स्थिति प्राप्त नहीं होती है। तुम्हारा व्यापार बहुत बड़ा है। दसों दिशाओं में तुम्हारी कम्पनियाँ चल रही हैं। तुम यह मत सोचो कि तुम्हारे अन्दर परिवर्तन नहीं हो रहे हैं। सुख और दु:ख, दोनों में परिवर्तन होते हैं और हम उन परिवर्तनों से कभी दूर नहीं रह सकते। केवल समाधि अवस्था यानी जीवनमुक्त या विदेहमुक्त अवस्था में वह परिवर्तन थमता है।

श्रीमद्भगवद्गीता

क्या तुम जानते हो भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में क्या कहा है? जिन्होंने गीता नहीं पढ़ी है, उनको आउटलुक और इण्डिया टुडे के बदले गीता पढ़नी चाहिए, क्योंकि यह तुम्हारी, तुम्हारे परिवार की, तुम्हारी आगे की पीढ़ियों की और तुम्हारे देश की भी मदद करेगी। अगर गीता और दूसरे शास्त्रों से तुमको, तुम्हारे परिवार और देश को मदद मिलती है, तो इससे अन्तत: पूरी संस्कृति को मदद मिलेगी। गीता पढ़ो और जानो उसमें क्या लिखा है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि एक ऐसी स्थिति होती है, जब मनुष्य का मन स्थिर हो सकता है। गीता के दूसरे अध्याय में पचपन-छप्पन श्लोक से आगे पढ़ना। अर्जुन ने कहा, 'हे भगवान, तुम कहते हो मन को स्थिर करो। मन को स्थिर करना क्या होता है? स्थितप्रज्ञ यानि जिस मनुष्य का मन स्थिर हो गया, उसकी परिभाषा क्या है? समाधि में जिस मनुष्य का मन डूब गया, उसकी परिभाषा क्या है? जब किसी आदमी की बुद्धि स्थिर हो जाती है, वह कैसे बोलता है? कैसे बैठता है? कैसे वह दुनिया के काम करता है? कैसे रोटी बेलता है? कैसे हिसाब-किताब देखता है? कैसे वह कम्पनी को देखता है?'

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधी: किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥2.54॥

तब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'अर्जुन, तुझे मैं अब बतलाता हूँ किस तरह से वह व्यक्ति जिसने अपने मन को स्थिर कर लिया है, इस दुनिया में व्यवहार करता है।'

इस बात को याद रखो, गीता व्यावहारिक जीवन में फँसे हुए लोगों के लिए है। यह सत्य है कि गीता सर्वत्यागी संन्यासी के लिए है, परन्तु जो संसार में आकण्ठ डूबे हुए लोग हैं, गीता उनके के लिए भी है, क्योंकि गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्य की मूल समस्याओं को समझाया है। श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य की मूल समस्याओं को न केवल समझाती है, उनका समाधान भी देती है। मनुष्य की असली समस्या क्या है? पैसा, घर, अच्छे बच्चे, अच्छी बीवी, अच्छा पति, अच्छा पड़ोसी, ये समस्याएँ नहीं हैं।

गीता का पहला अध्याय कहता है कि अर्जुन को विषाद हो गया। मनुष्य की असली बीमारी विषाद ही है। विषाद केवल हम सबकी मूल बीमारी नहीं, यह अर्जुन की भी मूल बीमारी थी। अर्जुन को उन्होंने एक प्रतीक के रूप में रखा है। गीता में श्रीकृष्ण, अर्जुन, दुर्योधन, कौरव, पाण्डव, महाभारत एक प्रतीक, एक उदाहरण हैं। अर्जुन ने एक कम्पनी खोलने की तैयारी की। बाद में बोलता है, 'खोलूँ कि नहीं खोलूँ, छोड़ देता हूँ।' उसको विषाद हो गया। तो भगवान ने कहा, 'तू पहले अच्छा भला खोल रहा था, बंद क्यों कर रहा है, तेरे को विषाद हो गया है।' यह कम्पनी की बात तुमको समझाने के लिए बोल रहा हूँ, मगर अर्जुन की समस्या कम्पनी नहीं थी।

जब अर्जुन लड़ाई के मैदान में गया, उसकी उम्र पचासी साल की थी। जब महाभारत युद्ध हुआ, अर्जुन मेरे से तीन साल बड़ा था। अर्जुन की समस्या थी कि अस्सी साल तक वह दुर्योधन के यहाँ अन्यायों को सहता गया। कभी लाक्षागृह, तो कभी द्रौपदी चीर-हरण। हर समय बदले की आग अर्जुन में प्रबल होती गई और उसने युद्ध में कौरवों को मारने का प्रण ले लिया। पर जब मारने का समय आया, तो उसका मन घबरा गया और उसने कहा, 'नहीं, मुझे तो बहुत दु:ख होता है। मेरे चाचा, दादा, बाबा, मामा मर जाएँगे। हे भगवान! मैं लड़ना नहीं चाहता।' भगवान कृष्ण ने कहा, 'सत्तर-पचहत्तर साल तक तू यही सोच रहा था न कि इनको मारूँगा? अचानक क्या हो गया तेरे को? यह मोह तेरे को पचहत्तर साल तक क्यों नहीं आया? और जब लड़ने का मौका आया, इसको अंजाम देने का समय आया, तब बोलता है, मेरे हाथ से धनुष गिर रहा है–

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मन:॥ 1.30॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ 1.31 ॥

अर्जुन कहता है, 'मेरा बदन काँप रहा है, मेरे हाथ में पसीना छूट रहा है, मेरे रोम-रोम काँप रहे हैं, गाण्डीव मेरे हाथ से सरक रहा है, मेरे से खड़ा नहीं हुआ जाता, मेरे को सब चीज़ें उल्टी मालूम पड़ रही हैं।'

यह है–'अर्जुन विषाद योगो नाम प्रथमोऽध्याय:।' मैं अनुवाद नहीं कर रहा हूँ। सच्ची बात बोल रहा हूँ। उसके बाद भगवान श्रीकृष्ण ने सत्रह अध्यायों में अर्जुन को समझाया कि मनुष्य को अपने मन की इस विषादमयी परिस्थितियों से कैसे लोहा लेना चाहिए, कैसे इनका निदान ढूँढना चाहिए, कैसे इनका समाधान करना चाहिए। यह मन जो छलिया है, अब तुम इसको छलो। जो छल करता है, उसके साथ छल करना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने सत्रह अध्यायों में मन को छलने की विधि बतलाई है।

गोपियों ने कहा था, 'उधो मन नाहीं दस-बीस।' मन दस-बीस नहीं होते हैं, मन एक होता है। अर्जुन का भी एक ही मन था, तुम्हारा भी एक ही मन है, जो अवसाद में जा रहा है। एक मन अवसाद में जा रहा है और वही मन अवसाद से निकलने की कोशिश कर रहा है। मनोविज्ञान में इसको कहते हैं, खण्डित मनस्कता। अहं और अहंकार के बीच संघर्ष, लड़ाई। वही मन जो विषाद से भरा है, दल-दल में डूबा है, बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है। *'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो:।'* मन ही है जो मनुष्य के बंधन अथवा मोक्ष का कारण है। जो मन करुणामय है, वही मन क्रूर भी है। जिस मन में ईर्ष्या होती है, उसी मन में प्रेम होता है। मन का एक स्वरूप प्रेम का है और दूसरा स्वरूप ईर्ष्या-द्वेष का। मन का एक स्वरूप भोग का है और दूसरा स्वरूप त्याग का।

विषाद योग के बाद दूसरा अध्याय सांख्य योग आया। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सब चीज़ें समझाईं। बाकी गीता तुम खुद पढ़ लेना। मैंने केवल तुमको गीता का परिचय दिया है। यहाँ हम लोग हर एकादशी को सबेरे तीन घण्टे जम कर गीता पढ़ते हैं। हमारे बच्चे भी जमकर पढ़ते हैं और उस पर चिन्तन भी करते हैं। वैसे गीता पर चिन्तन करने की भी ज़रूरत नहीं है। जिस तरह से हलवा खाते हो तो यह जानने की भी ज़रूरत नहीं है कि मीठा क्या होता है, तो किसमिस क्या होती है, क्या रसायन है। खा लो, मजा आ जाएगा। दुनिया में ज्ञान जो है, वह अनुभव की वस्तु है, विश्लेषण

की वस्तु नहीं। सुख, आनन्द और ईर्ष्या-द्वेष भी विश्लेषण की वस्तु नहीं हैं, ये केवल भावना की वस्तु हैं। गुस्सा कोई ज्ञान की वस्तु है क्या? गुस्से का अनुभव होता है। वासना का अनुभव होता है। लोभ, ईर्ष्या, द्वेष और क्रूरता का अनुभव होता है। ज्ञान की जरूरत नहीं है। उसी तरह से भगवद्गीता को पढ़ो। उसका अर्थ भी पढ़ो। वह सब पढ़ना बिल्कुल ठीक है। अगर गीता का अर्थ नहीं भी पढ़ो, केवल प्रति एकादशी उसका नियम से पाठ करो, तो भी फल निश्चित रूप से मिलेगा।

हमारे पूर्वजों ने हमको बहुत चीजें विरासत में दी हैं। देश तो विरासत में उन्होंने दिया ही है, जिसको तुम सम्भाल पाते हो कि नहीं वह तुम जानो। गंगा, यमुना, सरस्वती, वेद-शास्त्र, पुराण आदि विरासत में दिए हैं। परन्तु गीता, रामायण और श्रीमद्भागवत—ये तीन हमारे पूर्वजों की असली विरासत हैं। इन तीनों में हमारा इतिहास, हमारी संस्कृति और हमारा मोक्ष भी है।

यह जो मन है, जिसके बारे में अभी मैं समझा रहा था, वह विषाद में है। लेकिन इसके लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। मन के विषाद को दूर करने के लिए मनुष्य को केवल एक रास्ता अपनाना है और वह रास्ता है योग का। योग से ही विषाद दूर होगा। विषाद पर चिन्तन करने से विषाद दूर नहीं होगा, क्योंकि जो आदमी अंधा है, उसको कितना ही अच्छा चश्मा दे दो, वह देख नहीं सकता है। उसी तरह से जो अज्ञानी है, उसको कोई भी चीज़ मदद नहीं कर सकती है। परन्तु यदि गीता या रामायण के द्वारा उसको किसी अच्छी वस्तु की जानकारी होगी, तो अपने विषाद के कारणों को तो वह दूर कर सकता है।

गुरु सेवा

अब यहाँ पर एक छोटी-सी व्यक्तिगत बात कह देता हूँ। सन् 1943 में हम एक ऐसे गुरु की शरण में गए और एक ऐसे आश्रम में पहुँचे जहाँ गुरु, गुरु था और आश्रम, आश्रम था। मेरा मतलब जैसा आश्रम होना चाहिए, वैसा था। और जैसे गुरु होने चाहिए, वैसे गुरु थे। वहाँ लालटेन भी नहीं थी। लैट्रिन-बाथरूम भी नहीं थे। परन्तु मच्छर और बिच्छू बहुत थे और साँप भी बहुत थे। और बन्दर की तो पूछो मत, हनुमान जी हरे राम! ऋषिकेश की बात कह रहा हूँ। आज का ऋषिकेश नहीं, 1943 का ऋषिकेश। दिन में दो आदमियों के दर्शन हो गए, तो समझ लो कि आज दिन अच्छा है। आदमी के दर्शन ही नहीं होते थे।

वहाँ बारह साल मैं रहा हूँ। कोई किताब नहीं पढ़ी और न पढ़ने की इच्छा हुई। कोई शास्त्र नहीं पढ़ा, न पढ़ने की इच्छा हुई। योग पर कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ा, न पढ़ने की इच्छा हुई। न संस्कृत पढ़ी, न पढ़ने की इच्छा हुई। दिनभर रसोई घर के लिए पानी लाओ, खाना हो गया तो बड़े बर्तन माँजो। इतने बड़े बर्तन माँजने पड़ते थे कि मैं आधा उसी में डूब जाता था। जंगल से मंदिर की पूजा के लिए बेल के पत्ते लाने पड़ते थे। गंगाजी से बाल्टी में पानी भरकर ऊपर पहुँचाना पड़ता था। जिन्होंने ऋषिकेश में शिवानन्दजी का आश्रम देखा है, वे जानते हैं मैं क्या कह रहा हूँ। जवानी थी, बचपन था, कोई दिक्कत नहीं थी। केवल कर्म ही कर्म करना पड़ता था और कुछ नहीं।

तो बारह साल वहाँ रहने के बावजूद, कुछ पढ़ा नहीं। यह बात साफ है, इसको रेखांकित कर लो, कुछ पढ़ा नहीं। बारह साल पूरे हुए, तो गुरुजी ने कहा, 'अब तुम जाओ, दुनिया में घूमो।' हमने कहा, 'स्वामीजी, हम तो कहीं बाहर नहीं जाएँगे, हम यहीं रहेंगे।' उन्होंने कहा, 'यहाँ रहोगे तो तुम बोनसाई हो जाओगे। बौने के बौने रहोगे। तुम तो बरगद का पेड़ हो। तुमको बाहर ही रहना चाहिए, किले में नहीं।' तो हमने कहा, 'फिर बाहर क्या करें?' उन्होंने कहा, 'योग को सारे विश्व में सिखाओ।' मैंने कहा, 'स्वामीजी, योग पर तो हमने कोई किताब ही नहीं पढ़ी है।' स्वामीजी ने कहा, 'जब तुम मेरी किताब टाइप करते थे, तब योग पर ही टाइप करते थे। फिर तुम संकलन करते थे, वह भी पढ़ाई ही थी। फिर उसको संकलित करने के बाद पहला प्रूफ आता था, उसको तुम पढ़ते थे। हिन्दी में अनुवाद करते थे, उस समय भी तुम पढ़ते थे। फिर मशीन प्रूफ पढ़ते थे। तुमने तो मेरी एक-एक किताब आठ-आठ बार पढ़ी है।' मैंने कहा, 'स्वामीजी, पढ़ी नहीं है; केवल आपकी किताब छाप दी थी।' मेरे को तो कुछ भी पढ़ने का ख्याल ही नहीं था। टाइप करता था, हिन्दी में अनुवाद करता था, पहला प्रूफ पढ़ता था, मशीन प्रूफ पढ़ता था। स्वामीजी हँस कर बोले, 'वह पढ़ना नहीं था तो क्या था।'

मेरा दूसरा काम लाइब्रेरी में किताबों की सूची बनाने का था। हर एक किताब का पूरा विवरण पढ़कर नोट करता था, किताब का विषय, इत्यादि। गुरुजी ने कहा, 'तुम तो पूरी लाइब्रेरी चाटे हुए हो।' मैंने कहा, 'नहीं, मैं तो केवल किताबों की सूची बनाता था।' न तो पढ़ने की वासना थी, न पढ़ने की जानकारी थी, केवल गुरुजी के लिए मैंने वह काम किया। यह सूक्ष्म चीज़ बता रहा हूँ। 'आहा! गुरुजी ने मेरे को लाइब्रेरी में भेज दिया है, अब तो सारी किताबें

पढ़ूँगा', यह शास्त्र-वासना है। गुरुजी ने मेरे को लाइब्रेरी में भेज दिया है कि ये सब किताबें देख कर पढ़ो, सूची बनाओ। अब तो मुझे वेद भी मालूम हो जाएँगे, पुराण भी मालूम हो जाएँगे, मेक्समूलर भी मालूम हो जाएगा। मेरे को ये सब ख्याल नहीं थे। गुरुजी ने सूची बनाने को कहा है, सूची बनाना ही मेरे ध्यान में था। टाइप करने को कहा है, टाइप करना ही मेरा लक्ष्य था। ठीक उसी तरह जैसे गुरु द्रोण के कहने पर अर्जुन ने उस चिड़िया की आँख देखी। उसी पर मेरी नज़र थी कि गुरुजी ने यह काम करने को कहा, काम करना है। उन्होंने मेरे को याद दिलाया कि बेटा तू तो सब पढ़ चुका है, तेरे को पता नहीं, जैसे हनुमान को जाम्बवन्त ने याद दिलाया था न कि तुम्हारे भीतर अलौकिक शक्तियाँ हैं। गुरुजी ने मेरे को याद दिलाया कि तू सब पढ़ चुका है, सारी लाइब्रेरी तूने चाटी हुई है। मेरी सारी किताबें तूने चाटी हुई हैं, आठ-आठ बार। आठ-आठ बार कोई किताब पढ़ना कोई छोटी-मोटी बात है क्या? तब मेरे को पता चला, यह तो सच्ची बात है।

कम-से-कम बारह साल तक गुरु की सेवा करना, यह शिष्य का धर्म होता है। आश्रम में रहकर संस्कृत पढ़ेंगे, साहित्य पढ़ेंगे और विद्वान् बनेंगे, यह भाव आचार्य के आश्रम में करना चाहिए। आचार्य के यहाँ विद्या, सिद्धान्त कौमुदी, महाभाष्य वगैरह पढ़ी जाती हैं। पर जो गुरु होते हैं, जो अध्यात्म और अनुभव के धनी होते हैं, जिन्होंने अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया है, ऐसे गुरु के साथ अगर तुमको रहना है, तो मुसल्ला फाड़, तस्वीह तोड़, किताबें डाल पानी में। फिर किसी चीज की जरूरत नहीं है, क्योंकि एक बात तुम याद रख लो, अगर परमात्मा तुम्हारे अन्दर में है, तो तुम सर्वज्ञ हो। कहते हो न कि परमात्मा मेरे ही अन्दर में है, मैं सर्वज्ञ हूँ। और पानी पीने के लिए धोबिन से सुराही मँगवाते हो। अरे! सीधे पी लो पानी।

धोबिया जल बीच मरत पियासा,
खासा जल पियत नहीं,
मूरख करे धोबिनिया की आसा।

अगर मैं सर्वज्ञ हूँ, तो ज्ञान मेरे अन्दर है। यदि मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, तो परमात्मा और सब शक्तियाँ मेरे अन्दर हैं। और यदि परमात्मा मेरे अन्दर हैं, तो मैं सर्वशक्तिमान ही नहीं, सर्वव्यापक भी हूँ। भगवान के तीन ऐश्वर्य या तीन गुण हैं–सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक। और अगर तुम कहते हो

कि परमात्मा मेरे घट में बैठे हुए हैं, तब फिर तुमको यह विचार कैसे आता है कि मुझे कुछ नहीं मालूम है। तुम केवल अपने अन्दर का खजाना खोलो। केवल अपने अन्दर की किताब खोलो।

काहे रे वन खोजन जाई।
सर्वनिवासी, सदा अलेपा तोहे संग समाई।

सब तुम्हारे अन्दर में है। जब हम बारह साल तक स्वामीजी के आश्रम में रहते थे, तब हम एक शिष्य की तरह नहीं, नौकर की तरह रहते थे। नौकर की तरह कपड़े पहनते थे। नौकर की तरह जीवन बिताते थे। यह कभी नहीं सोचा कि मैंने गुरुजी की सेवा की तो मेरे को लाइफबॉय साबुन, कोलगेट टूथपेस्ट और चप्पल बढ़िया मिलनी चाहिए, ऐसा कुछ नहीं। कभी आश्रम में हमको चप्पल नहीं दी जाती थी। तुमको यकीन नहीं होगा, बारह साल तक आश्रम ने हमारे लिए चप्पल कभी खरीदी ही नहीं। केवल मेरे लिए नहीं, किसी के लिए नहीं खरीदी। गीता प्रेस, कल्याण वाले जयदयाल गोयनका का गीता आश्रम गंगा के उस पार था। वे हर साल साधुओं को बाँटने के लिए कैनवास का जूता लाते थे। वही जूता हम पहनते थे। हमारे गुरुजी भी वही जूता पहनते थे और जयदयाल गोयनका उनके लिए विशेष जूता बनवा कर लाते थे, क्योंकि हमारे गुरुजी के पैर बहुत बड़े थे।

चाहे वे संन्यासी शिष्य हों या गृहस्थ शिष्य, गुरु आश्रम की सभ्यता और संस्कृति के अनुसार रहने की कोशिश करनी चाहिए। आश्रम को तुम बदलो मत, क्योंकि तुम आए हो बदलने के लिए। आश्रम के अनुसार तुमको रहना होगा, तुमको बदलना होगा। तुम आश्रम को नहीं बदलोगे, आश्रम तुमको बदलेगा। आश्रम श्रम की जगह है। श्रम यानि कि मेहनत। मेहनत कितने प्रकार की होती है? शारीरिक, आध्यात्मिक और मानसिक। इसमें शारीरिक मेहनत सबसे ऊँची है, क्योंकि शारीरिक मेहनत करके इतनी थकावट आ जाती है कि जब तुम रातभर सोकर सवेरे उठते हो—एक नींद और एक पेशाब। रात में बहुत लोग दो-तीन बार पेशाब जाते हैं, क्योंकि उनकी प्रोस्ट्रेट ग्रन्थि गड़बड़ हो गयी है, उत्तेजित हो गयी है। जो शारीरिक मेहनत करते हैं, उनके अन्दर ऊर्जा पैदा होती है, गर्मी पैदा होती है। जिससे फिर चयापचय की गति पैदा होती है और वह शरीर के अन्दर उत्पन्न होने वाले उन विकारों को, जो प्रोस्ट्रेट को गड़बड़ करते हैं, जला डालती है। जो पेशाब की मात्रा सबेरे एक गिलास होती

थी, अब वह आधा ही गिलास रहेगी। अच्छी नींद, एक नींद। एक बार सोये, एक बार उठे।

शारीरिक श्रम आश्रम की विशेषता है। मैं इसलिए बोल रहा हूँ कि हमारे भारतवर्ष में हिमालय से कन्याकुमारी तक आश्रमों की कमी नहीं है। छोटे-बड़े सब प्रकार के आश्रम हैं। अब यह कहना कि सब गुरु ढोंगी होते हैं, यह बतलाता है कि शायद तुम्हारा चश्मा बिगड़ा हुआ है। उसको ठीक करा लीजिए। हमारी परम्परा पचास-साठ हजार सालों से चली आ रही है। ये गेरु वस्त्र जो हमने पहने हुए हैं, ये आज के हैं क्या? वेदों का रंग है। वेदों में आता है गैरिक वस्त्र। इतने हजार वर्षों से यह परम्परा तुम्हारे देश में जो चली आ रही है, इसमें ढोंगी, पाखण्डी दो-चार जरूर होते हैं। वैसे तो तुम देखोगे फूल में कीड़े हो ही जाते हैं। परन्तु ऐसा तो नहीं कि सब फूलों में कीड़े ही पाओगे। हमारे देश में वैष्णव सम्प्रदाय, शैव सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय, सिक्ख सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय, बौद्ध सम्प्रदाय, इत्यादि सबके आश्रम हैं। अपने बच्चों को वहाँ भेजो। उनको कीर्तन बहुत पसंद आता है। यह बच्चों की कमजोरी है। अब अगर बच्चे कीर्तन भी सीखें, कृष्ण, राम, हनुमानजी का कीर्तन करें, तो क्या होगा? उनका जीवन बदलेगा।

सृष्टि की लीला

आज कार्तिक पूर्णिमा के दिन, जो रास-लीला का उत्सव शाम को होने जा रहा है, यह परमात्मा की सृष्टि की लीला का एक मंचन है। जो साढ़े पाँच-छः हज़ार साल पहले हिन्दुस्तान में एक बालक ने की थी। उस बालक का नाम था श्रीकृष्ण, जो नर्सिंग होम में पैदा नहीं हुआ। बेचारे को पैदा होते ही हटा दिया गया। उस परमपुरुष को हम लोग रास-लीला के बहाने आज के दिन याद करते हैं। साथ-ही-साथ उनसे भी श्रेष्ठ हैं उनकी आत्मा, जिनके बिना वे कुछ नहीं कर सकते, वे हैं राधा। राधा, कृष्ण की शक्ति है। जैसे कोई मोटर या पम्प बिना इंधन के नहीं चल सकता। कोई हीटर बिना बिजली के चलता है क्या? कोई वातानुकूलन बिना बिजली की ऊर्जा के चलता है क्या? उसी तरह से भगवान श्रीकृष्ण की शक्ति राधा है। सौन्दर्य लहरी में पहला श्लोक यह बात स्पष्ट रूप से कहता है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।

शिवजी भी शक्ति के बिना कुछ नहीं कर सकते, जड़ हैं। राधा, परा प्रकृति है और वह श्रीकृष्ण की शक्ति है। परा प्रकृति, यानि कि अलौकिक प्रकृति। भगवान के ब्रह्माण्डीय स्वरूप को राधा कहते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण का सारा जीवन प्रतीकात्मक था। हर सूक्ष्म चीज़, जो भी भगवान श्रीकृष्ण ने की, वह एक अध्यात्म का मंचन था। मक्खन-दही चुराते थे, यह चोरी है क्या? यह मंचन है। उन्होंने गोपियों का वस्त्र हरण किया, यह भी प्रतीक है। एक आध्यात्मिक घटना का मंचन है, जो आज भी चल रहा है। इस सृष्टि में जो आध्यात्मिक क्रियाएँ चल रही हैं, उनका मंचन चोरी और वस्त्र हरण द्वारा किया गया है। सब राक्षसों का नाश किया, पूतना और अनेक असुरों का नाश किया, यह मंचन है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, वह सब तुम्हारे अन्दर में भी घट रहा है। हमारे अन्दर पूतना आदि असुर भरे हुए हैं। ये सब प्रतीकात्मक हैं। जैसे भगवान श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं, वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण को लीला पुरुषोत्तम कहा जाता है। लीला का मतलब होता है नाटक। किसी भी विचार को तुम एक नाटक के द्वारा प्रस्तुत कर सकते हो। कोई भी विचार, जैसे कि इतिहास का विचार हो या जीवन का विचार हो या समाज में होने वाली घटनाओं का विचार हो, उसका जब तुम मंचन करते हो, तो प्रतीकात्मक रूप से करते हो। उसको लीला कहते हैं। जीवन की आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का मंचन। वह सब भगवान श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में करके बतलाया था।

–15 नवम्बर 2005



ॐ

अध्याय 19

मैंने नृत्य बकायदा सीखा है और काफी समय तक लोगों के बीच प्रदर्शन भी किया, पर अब नृत्य छोड़ दिया। हमने कहा, ज्यादा उम्र हो रही है, योग सिखाओ, क्योंकि बुड्ढा आदमी जब योग सिखाता है, तब उसकी इज्जत होती है। हमारे गुरुजी साहित्य और कला प्रेमी थे। आश्रम में भरतनाट्यम नृत्य दिखाने कलाकार आते थे और वेद पाठ होता था। मशहूर गायिका एम.एस.सुब्बलक्ष्मी हर साल अपने पति के साथ ऋषिकेश आती थी। और दस-पन्द्रह दिन रहती थी। दक्षिण भारतीय संगीत और संस्कृत स्तोत्रों का कार्यक्रम होता था। वे एक ऐसी संगीतकार थीं, जिन्हें मैं आज भी याद करता हूँ। उनका क्या कमाल का गला था! उनका गाया हुआ भज गोविंदम् और विष्णु सहस्रनाम का पाठ बहुत ही मशहूर है। हिन्दुस्तान में प्राय: सभी वैष्णव मंदिरों में प्रात:काल सुब्बलक्ष्मी का शुद्ध संस्कृत उच्चारण वाला विष्णु सहस्रनाम पाठ होता है। हिन्दी में भी उन्होंने मीरा के भजन गाये हैं। सुब्बलक्ष्मी की साधु-महात्माओं के प्रति बहुत अधिक भक्ति थी।

यहाँ इस आश्रम में भी कन्याएँ भजन और कीर्त्तन बड़े प्रेम और उत्साह के साथ करती हैं। इन कन्याओं को कीर्त्तन, श्रीमद्भगवद् गीता, रामचरितमानस और संस्कृत के अनेक स्तोत्र आते हैं। ये यज्ञ और होम भी करती हैं। शनिवार को मृत्युञ्जय होम, शुक्रवार को देवीजी का हवन और गुरुवार को गुरुजी का हवन करते हैं। शनिवार का मृत्युञ्जय होम उन लोगों के लिए किया जाता है जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करते हैं। हमारे यहाँ इन बच्चों के लिये कम्प्यूटर की कक्षा भी होती है और इनको बहुत कुछ आता है। ये वर्ड, पावर पॉइन्ट, एक्सेल और ग्रॉफिक्स जानते हैं। अभी हम स्कैनर

भी मँगवा रहे हैं। जल्द ही इनको स्कैनर भी मिलने वाला है। ये कन्याएँ बहुत सृजनशील हैं।

इन लोगों को यहाँ अच्छी तरह से कम्प्यूटर सिखाया जाता है। बाद में चाहें तो ये आराम से नौकरी में जा सकती हैं। अभी छब्बीस विद्यार्थी हैं, पर हम यह संख्या सौ तक ले जाने वाले हैं। ज्यादा जोर लड़कियों पर है। लड़कों को तो मौका मिल जाता है, वे देवघर में भी सीख सकते हैं, आसनसोल, धनबाद, कलकत्ता भी जा सकते हैं। पर लड़कियाँ घर से बाहर नहीं निकल सकतीं। इसलिए वे घर में ही सीखें तो अच्छा है।

ये छोटी जात के लोग बहुत गरीब हैं। इनका अपने बल पर ऊपर उठना सम्भव नहीं है। जब तक हमारी और तुम्हारी मदद नहीं मिलेगी, ये लोग उठ नहीं सकेंगे। यह कहना कि वे अपने बल पर उठें, सम्भव नहीं है। और मदद भी बहुत बड़ी चाहिए। फीस बड़ी लगती है। इतनी फीस लगती है कि अच्छे-अच्छे आदमियों का पसीना छूट जाए। और जहाँ तक बुद्धि का सवाल है, हमारी समझ में इन लोगों के मस्तिष्क में जो ग्रे मैटर है, उसका अन्वेषण होना चाहिए, क्योंकि बुद्धि का सम्बन्ध जाति से नहीं होता है। बुद्धि का सम्बन्ध होता है ग्रे मेटर से, जो दिमाग की वस्तु है। वह ग्रे मेटर इनका अभी ताजा है। और उस ताजे ग्रे मेटर में ज्यादा बुद्धि की सम्भावना है। ये लोग ज्यादा काम कर सकते हैं और अगर इनको मदद मिले, तो ये लोग बहुत अच्छे आविष्कार कर सकते हैं। अभी जो ऊर्जा के स्रोत हैं, बहुत महँगे हैं, हो सकता है कि ये ऊर्जा का कोई ऐसा स्रोत पता करें जो बहुत सस्ता हो। पर उसके लिए तो शोध की सुविधा चाहिए और पढ़ाई की एक पृष्ठभूमि चाहिए। वह इनके पास अभी नहीं है।

दूसरी बात है कि लड़कियों में स्थिरता ज्यादा रहती है। स्थिर रहना इनका संस्कार है, जिस कारण इनका दिमाग व्यवस्थित रहता है। किसी कम्पनी या फैक्ट्री या बहुत बड़े कार्पोरेट हाउस को चलाने में सबसे बड़ी कठिनाई जो आज हिन्दुस्तान में आ रही है, वह व्यवस्था की है। स्त्रियों में व्यवस्थित बुद्धि होती है। यह तो हम सब सदियों से देखते आ रहे हैं। करोड़ों घर उन्हीं के भरोसे तो चल रहे हैं। स्त्रियाँ व्यवस्थित होती हैं और उनमें जो योगदान की क्षमता है, वह आदमी के मुकाबले दुगुनी है। आदमी जितना योगदान कर सकता है, स्त्री उससे दुगुना दायित्व ले सकती है और लेती भी है। आज की लड़कियाँ शादी के बाद पत्नी की भूमिका, माँ की भूमिका और एक व्यवसायी की

भूमिका भी अदा करती हैं। प्राकृतिक तौर पर उनका मन भटकता नहीं है। इसलिए लड़कियों को बचपन से ज्यादा मदद करनी चाहिए। यह बहुत जरूरी है कि उनको ज्यादा खुलापन और विभिन्न परिस्थितियों का अनुभव मिले।

जब स्वामी सत्संगी ने बी.ए. पास किया, तब इसने नौकरी के लिए आवेदन भेजा। बारह या तेरह जगह आवेदन किया और सब जगह से इसको बुलावा आ गया। अब इसको मुश्किल हो गयी कि बारह-तेरह जगहों में से कहाँ कार्य आरंभ करे। तो इसने हमसे पूछा। कहीं बीस हज़ार, कहीं तेरह हज़ार, कहीं अठारह हजार रुपये महीने का इसको ऑफर आया। ऑस्ट्रेलियन कमीशन या अमेरिकन काउँसलेट में ज्यादा पैसा मिलता है। हमने कहा, 'देखो, सबसे पहली चीज़, लड़की को अकेले रहना सीखना चाहिए, बिना टेक के। और दुनिया में हर परिस्थिति की जानकारी उसको होनी चाहिए। अच्छे लोग होते हैं और बुरे भी। ऐसे भी होते हैं, वैसे भी होते हैं। अलग-अलग संस्कृति को देखो। एयर इण्डिया में कार्यभार ले लो।' और उसमें घर से तो बिल्कुल सम्बन्ध ही कट गया। एयर इण्डिया की नौकरी में माँ-बाप के भरोसे रहना तो सम्भव नहीं था। अलग मकान लेकर रहना पड़ता था। लंदन में प्रतिनियुक्ति हो रही है, तो छः महीने लंदन में ही मकान लेकर रहो। न्यूयॉर्क में नियुक्ति हो, तो वहाँ छः महीने रहो, फिर जापान में छः महीने रहो। इस प्रकार उसे वहाँ की संस्कृति, भोजन, रिश्ते और लोगों के बारे में सब जानकारी हो गई। और यह ज्ञान उसको आज मदद कर रहा है। वह असल में उसकी शिक्षा थी।

शिक्षा में आदमी को एक खुलाव मिलता है, वह उसको अनुभव देता है। इसलिए लड़कियों का बाहर की दुनिया के सम्पर्क में आना और अनुभव प्राप्त करना बेहद जरूरी है। हमारे यहाँ की लड़कियाँ और औरतें जब किसी दूसरे के घर जाती हैं, तो अपने साथ एक छोटा-सा सुरक्षा अधिकारी लेकर जाती हैं। एक छोटे बच्चे को साथ ले जाने की क्या ज़रूरत है? देश की ये जो परिस्थितियाँ हैं, बदलनी चाहिए। किसी भी तरह की परिस्थिति हो या कुछ भी हो जाए, लड़का हो या लड़की, गरीब हो या अमीर, यह ज़रूरी है कि वह अकेले जीवित रह सके।

मैं एक बार फ्रांस गया, तो मेरे से मिलने एक पैंतीस साल का वैज्ञानिक आया। वह दोनों आँखों से अन्धा था। उसके साथ हमारी काफी देर तक बात हुई और विषय था योगाचार दर्शन, जो बौद्ध दर्शन के चार दर्शनों में से एक

है। बौद्ध धर्म के चार दर्शन हैं–माध्यमिक, स्वतांत्रिक, वैभाषिक और योगाचार। उसमें योगाचार दर्शन यह कहता है कि सब कुछ तुम्हारे अन्दर हो रहा है। अभी तुम मेरी बात जो सुन रहे हो या मेरे को जो देख रहे हो, जो बोध हो रहा है, जो सुनाई दे रहा है, वह यहाँ बाहर नहीं हो रहा है, वह तुम्हारे अन्दर हो रहा है। हर अनुभव, जो तुम्हें इन्द्रियों के माध्यम से होता है, वह वस्तुनिष्ठ नहीं है, आत्मनिष्ठ है। जो तुम देख रहे हो, वह बाहर में नहीं, बल्कि सारी क्रियायें तुम्हारे अन्दर हो रही हैं। तुम्हारा मस्तिष्क तुम्हारे भीतर ही सब कुछ देख रहा है। बोध का मतलब होता है ज्ञान। देखना, सुनना, समझना, सूँघना, स्पर्श करना, ये बाहर के अनुभव नहीं हैं, अंतरंग अनुभव हैं। यह योगाचार का सिद्धान्त है।

तो मेरी उस फ्रेंच वैज्ञानिक से योगाचार की बात चल रही थी और मैं उसको यही सिद्धान्त बता रहा था। उसने कहा, 'स्वामीजी, आप बिल्कुल सही हैं।' फ्रांस के सुरक्षा विभाग से उसको एक छड़ी मिली, इतनी बड़ी, हंटर की तरह। उसमें सब मशीनें थीं। अन्धा होने पर भी वह बिल्कुल अकेले ही जाता था। उसकी आँखें देख नहीं सकती थीं, पर वह कहता था, 'मुझे अंदर में सब दिखाई देता है, गाड़ी आ रही है, गाड़ी जा रही है, आदमी आ रहा है, आदमी जा रहा है, सीढ़ी है, सीढ़ी नहीं है।' वह कहता था, 'मुझे कोई मुश्किल नहीं है।' वह पूरी तरह शत-प्रतिशत अन्धा था। लेकिन उसको सीढ़ी या लिफ्ट से उतारने वाला कोई नहीं था, सिवाय उसके एक हंटर के।

उस हंटर के अन्दर इलेक्ट्रॉनिक माया थी। वह इलेक्ट्रॉनिक माया शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, पाँचों अनुभवों को उसके मस्तिष्क से जोड़कर बोध करा देती थी। बहुत बड़ा वैज्ञानिक होने के कारण सुरक्षा विभाग ने वह हंटर उसको खास तौर से बनाकर भेंट दिया। वह अपने देश के लिए बड़े-बड़े आविष्कार करता था। उसने मेरे को बतलाया कि आप जो योगाचार के बारे में कहते हैं, बस, ठीक उसी चीज़ के साथ मैं जी रहा हूँ। मेरे को सब चीज़ें अपने ही अन्दर में दिखाई देती हैं। केवल वह डण्डा उसके लिये आँख, नाक, कान और त्वचा का काम करता था।

इसका मतलब यह होता है कि तुम दुनिया की किसी भी घटना को आँख बंद करके भी देख सकते हो, केवल जादू की छड़ी तुम्हारे पास होनी चाहिए। और वह जादू की जो छड़ी है, उसे बोलते हैं आज्ञा चक्र। जानते हो आज्ञा चक्र कहाँ पर होता है? जहाँ रीढ़ की हड्डी खोपड़ी से मिलती है, उसके अन्दर एक

छोटा मस्तिष्क होता है। उस छोटे मस्तिष्क के अन्दर, पीछे की तरफ एक छोटी-सी ग्रन्थि है। आज्ञा चक्र तिल से भी छोटी ग्रन्थि है। इस चक्र को पीनियल ग्रन्थि कहते हैं और जितने भी बोध हमें होते हैं, उनको यह पीनियल ग्रन्थि नियन्त्रित करती है। जैसे कि अभी तुम मुझे देख रहे हो, मेरी बात समझ रहे हो, साथ-साथ गर्मी या ठण्ढी भी लग रही है, तुमको कुछ अच्छा लगता है, कुछ खराब, यह बोध जो तुमको कई स्तरों पर साथ-साथ हो रहा है, इसको कहते हैं ज्ञान। यह पीनियल ग्रन्थि के द्वारा होता है। और जैसे-जैसे पीनियल ग्रन्थि का क्षय होता है, अनुभव क्षीण होते जाते हैं। तंत्र शास्त्र में इस ग्रन्थि का नाम आज्ञा चक्र है।

कहा जाता है कि औरतों का आज्ञा चक्र बहुत विकसित रहता है। अब पता नहीं विदेशी औरतों का रहता है कि नहीं, यह तो मैं नहीं जानता, परन्तु भारतीय औरतों का विकसित रहता है। मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। हमारे यहाँ सबसे मुख्य चीज़ यह है कि सब लड़कियाँ यहाँ पर टीका लगाती हैं। कभी आपने गौर किया कि ये टीका क्यों लगाती हैं? पहला जवाब है, शादी का ट्रेड मार्क। दूसरा जवाब है, सुंदरता के कारण। इस प्रश्न के जवाब बहुत हैं, पर असली जवाब हमारा है कि यहाँ पर कोई चीज़ लगाने से यहाँ दबाव बराबर बना रहता है। वह आज्ञा चक्र पर इतना हल्का दबाव होता है कि कई सालों में जाकर असर करता है। मर्द लोग नहीं लगाते हैं। इसलिए मर्द लोगों की पीनियल ग्रन्थि ठप्प रहती है। ये चीज़ें एक दिन में काम नहीं करती हैं। इस चीज़ को काम करने में पन्द्रह-बीस या पचीस साल लगते हैं। एक-दो दिन टीका लगा लिया, आज्ञा चक्र जाग गया, ऐसा नहीं होता है। इसमें समय लगता है। इसलिए तुम सब लोगों को बोल रहा हूँ, शादी के बाद लाल टीका लगाओ न लगाओ, मगर अभी लगा लेना चाहिए।

आश्रम, मठ और कीबूत्स

हम परिव्राजक जीवन में छत्तीसगढ़, जगदलपुर बहुत जाते थे। उस समय महाराजा प्रवीणचंद भंजदेव बस्तर के राजा हुआ करते थे। वे योग, तंत्र और कुण्डलिनी के बारे में बहुत जानते थे। घण्टों बातचीत होती थी। उन्होंने इसके बारे में पुस्तकें भी लिखी थीं। वहाँ हम काफी दिन रहे। फिर हम नाँदगाँव के दक्षिण में मोहल्ला पानबारस के राजा लाल श्याम शाह के यहाँ रहे। उनके साथ इतिहास की चर्चा होती थी कि हिन्दू सभ्यता कहाँ से शुरू हुई। इतिहास

में लिखा है कि यूरोपियन लोग अमेरिका गए और वहाँ के निवासियों को उन्होंने खदेड़ दिया। वहाँ के मूल अमरीकियों ने जमकर विरोध भी किया, पर उनकी चली नहीं, वे हार गए। कहीं उन्होंने जमीन पैसे देकर ली, कहीं जबरदस्ती ली। अमेरिका को उन्होंने ले लिया। और रेड इण्डियन, जो वहाँ के मूल निवासी थे, वे आज वहाँ शरण-क्षेत्र में रहते हैं। आज भी वे जादू-टोना, भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र पर चलते हैं। और जो लोग यूरोप से अमेरिका गए, वे पढ़े-लिखे, वैज्ञानिक और तकनीशियन हैं। इस कारण पचास सालों से उन पर शासन कर रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया में रहने वाले आदिवासियों को भी खदेड़ दिया किनारे। उनके लिए शरण-स्थली बना दी। अपने डॉक्टर को वहाँ भेजते हैं, स्कूल खोलते हैं, वहीं रहो बोलते हैं। और वे आदिवासी अभी भी उसी हालत में हैं, कोई फर्क नहीं। जीवन की मुख्य धारा में आए ही नहीं अभी तक। अजीब रीति-रिवाज हैं उनके।

इस्राइल 'सन एण्ड सैण्ड' का देश है। वहाँ दो ही चीज़ें मिलेंगी, कड़कती धूप और रेत। वहाँ हरा नहीं दिखता है। पर यहूदी लोग बहुत पुरुषार्थी हैं। उन्होंने हेलिकॉप्टर से मिट्टी लाकर ज़मीन में गड्ढा बना कर भरा और उसमें पेड़ लगाये। सेब के पेड़ बहुत लगाये हैं। वह एक प्रकार से रेगिस्तान के बीच में मरुद्यान है। छोटा देश है, वहाँ जगह-जगह पर कम्यून या कीबूत्स हैं, जहाँ लोग रहते हैं। लड़के-लड़कियाँ जाते हैं और अपना खर्चा उठाते हैं। पर उन कम्यून में आश्रम की व्यवस्था नहीं है कि आध्यात्मिक जीवन हो, कुछ रोक-टोक हो। यहाँ तो आश्रमों में प्रतिबंध हैं। माँस नहीं खा सकते, अण्डा नहीं ले सकते, शराब नहीं पी सकते, यहाँ बहुत प्रतिबंध हैं। वहाँ कोई प्रतिबंध नहीं है। हॉस्टल के जैसा जीवन रहता है। वे लोग दो-तीन या चार-छः महीने रहते हैं और दिनभर वहीं बगीचे में काम करते रहते हैं। सेब का पत्ता काटते हैं, कुछ घास-सब्जी लगाते हैं और शाम को मौका हुआ तो गिटार लेकर नाचने लगते हैं। विदेशियों की आदत होती है, गिटार ले लिया और इधर से उधर पैर मारा, तो नाचना हो गया उनका।

हम वहाँ कीबूत्स में रहे हैं। हमको वहाँ की प्रथा में आश्रम का धर्मनिरपेक्ष और भौतिक हिस्सा दिखा। जैसे यहाँ लोग आकर रहते हैं, खाते-पीते हैं और जाते समय कुछ डाल-डूल कर चले जाते हैं, जिसके बस में नहीं हुआ, वह तो ऐसे ही चला जाता है, कोई बात नहीं। ऐसा ही वहाँ भी है, पर यहाँ मर्यादाएँ हैं। इन्हें प्रतिबंध नहीं, मर्यादा बोलते हैं। आश्रमों में मर्यादा होती है। पर वहाँ

नहीं है, वहाँ जितने लोग बेरोजगार होते हैं, वे कीबूत्स में चले जाते हैं और उनको जो सामाजिक पेंशन मिलती है, उसी पर दो-चार-छ: महीने खर्चा चला लेते हैं। फिर उसके बाद कहीं काम मिल गया, तो चले जाते हैं। वह एक प्रकार से मध्यवर्ती क्षेत्र की तरह रहता है। आश्रम भी एक मध्यवर्ती क्षेत्र की तरह होते हैं।

इसके अलावा थाईलैण्ड और विषेशकर कम्पूचिया में एक और चीज़ है, वह है मठ। हर एक बौद्ध मतावलम्बी का एक-एक गुरु आश्रम होता है। अपने जीवन के पन्द्रह दिन थाइलैण्ड के हर बौद्ध निवासी को अपने गुरु मठ में रहना अनिवार्य है। चाहे वह थाईलैण्ड का महाराजा हो या वहाँ की राजकुमारी या राजकुमार हो। सब के अलग-अलग मठ हैं। राज परिवार के अपने मठ हैं, धनपतियों और गरीबों के अपने अलग-अलग मठ हैं। पैदा होते ही हर बच्चे का एक मठ हो जाता है। जैसे पैदा होते ही सबकी एक माँ और बाप बन जाते हैं, वैसे ही उनका मठ हो जाता है।

आज भी थाइलैण्ड का यह रिवाज है। बच्चा जब बड़ा होता है, दस-बारह, पन्द्रह-बीस या पच्चीस-तीस साल का, उसको उस मठ में कम-से-कम पन्द्रह दिन अनिवार्य रूप से रहना पड़ता है। गुरु मठ में सबको संन्यासी की तरह रहना पड़ता है। भगवा, काषाय वस्त्र पहन कर, सिर मुड़ाना पड़ता है, चाहे लड़की भी हो तो भी। उनको कमरा दे दिया जाता है। कमरे में चटाई दे दी जाती है। पानी का बर्तन दे देते हैं। वह आदमी उस खोली में अपने संकल्प के अनुसार रहता है।

वहाँ किसी मठ में खाना नहीं बनता है। सबेरे दस बजे वह चीवर याने थैली और पात्र या बर्तन अपने हाथ में ले लेता है और बगल के गाँव के पाँच घरों में जाता है। पाँच घरों में उसको एक चम्मच चावल और उतनी ही दाल मिल जाती है। उसके बाद किसी पेड़ के नीचे बैठकर खाकर वापस मठ लौट जाता है। वह पन्द्रह दिन एकाहार, निरामिष भोजन और ब्रह्मचर्य का पालन करता है। निरामिष भोजन इसलिए कि वे लोग आमिष भोजी हैं। वे तो मेंढक, चींटी, साँप, छिपकली भी खा जाते हैं। और तो और, झिंगुर और बिच्छू को भी तल कर खा जाते हैं। पर पन्द्रह दिन उनको एकदम निरामिष भोजन और ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना पड़ता है और सिर मुड़ाना पड़ता है। लड़कियों के लिए तो यह सबसे मुश्किल है। सिर मुड़ाने का मतलब नया जन्म। सबेरे दस-ग्यारह बारह बजे के पहले भोजन करना पड़ता है। यह भगवान बुद्ध का बनाया हुआ नियम है।

भगवान बुद्ध जब राजगीर के गृद्धकूट पर्वत की तलहटी, जेतवन में विहार करते थे, वे एक वैद्यराज, अनाथपिण्डक के यहाँ जाते थे। ये उनके भिक्षा माँगने के दिन थे, जिसके लिए वे गाँव में जाते थे। यह ढाई हजार साल के ऊपर की बात है, आजकल की बात नहीं। आजकल जाओगे तो गाली मिलेगी। उस समय उनको भात और दाल, ये दो चीज़ें मिलती थीं, तीसरी चीज़ नहीं। भिक्षा में मिष्ठान्न वर्जित है, माँसाहार वर्जित है, साग-सब्जी वर्जित है। केवल दाल और भात, अन्न और दाल, क्योंकि ये दोनों चीजें आहार विषाक्तता से मुक्त रहती हैं। सब्जी में थोड़ी भी गलती हुई तो आहार विषाक्तता हो जाती है। माँस में तो होता ही है। दाल और अन्न आहार विषाक्तता से मुक्त पदार्थ माने जाते हैं, इसलिए भिक्षा में इन दो सामग्रियों का रिवाज आज भी है। मीठा, मिष्ठान्न, हलवा, खीर, सब वर्जित है। जब दरवाजे पर कोई भिक्षा के लिए आता है, तब घर से अविवाहित कन्याएँ अपने सिर को ढाँक कर बाहर आकर एक चम्मच डाल देती हैं। पाँच घरों से पाँच चम्मच दाल, पाँच चम्मच चावल भिक्षु को मिलता है। कुएँ के पास बैठ कर उसको खा लेता है और मठ वापस आकर पात्र को उल्टा करके खोली के सामने रख देता है और चीवर को टाँग देता है। यह भगवान बुद्ध की ढाई हज़ार साल पुरानी प्रथा है ।

एक बार भगवान बुद्ध निरीक्षण के लिए गए। उन्होंने देखा भिक्खुओं ने भिक्षा का कुछ बचा हुआ भोजन शाम के लिए रख लिया था। आखिर आदमी तो आदमी ही है। आदमी की तो आदत होती है, थोड़ी-सी भी अगर चूक हो गई, तो वह उसका फायदा उठाकर सब कुछ कर लेता है। थोड़ी-सी भी परिवार, समाज या कानून की चूक हो गई, तो वह मौका देखकर अपनी मनमर्जी अवश्य करेगा, क्योंकि मुख्यत: मनुष्य एक जानवर है। तो उन्होंने उस दिन से नियम बनाया, भिक्खु भोजन के बाद अपना पात्र साफ करके खोली के सामने उल्टा करके रख देंगे और चीवर को टाँग देंगे, उसका मतलब है कि अन्दर में कुछ नहीं है। वह प्रथा बौद्धों में आज भी है। जब बौद्ध राजा मठ में जाते हैं, उन पर भी ये नियम लागू होते हैं।

हम तो बौद्ध नहीं हैं, पर उन मठों में हम कई बार गए हैं। हम वैदिक धर्म मानने वाले, सनातन धर्मी, हिन्दू हैं। हमें वे लोग ब्राह्मण कहते हैं, क्योंकि वैदिक धर्म ब्राह्मण धर्म के रूप में माना जाता है। बौद्ध धर्म की भाषा में इसको ब्राह्मण धर्म कहते हैं। वे पूछते हैं, 'आप ब्राह्मण हैं?' हमने कहा, 'हाँ हैं।' ब्राह्मण दूसरे के हाथ का खाना नहीं खाएगा। पहले जमाने में वह अपना खाना

खुद बनाता था या उसकी पत्नी बनाती थी। अब एक ब्राह्मण और बौद्ध में कितना अंतर हो गया कि बौद्ध भिक्षा ले सकता है, पर ब्राह्मण भिक्षा नहीं लेगा, ब्राह्मण लेगा चीरा। चीरा माने सूखा अन्न। बहुत जगह से दबाव डालने पर थाइलैण्ड के मठ में हमको ठहरने की इज़ाजत मिल गई। फिर दूसरे दिन हम भी गए थे भिक्षा माँगने के लिए। हमको तो आदत है। पर वहाँ की भिक्षा बड़ी इज्जतदार है। बड़ा अच्छा लगा। भारत में पता नहीं भिक्षा मिलेगी कि गाली मिलेगी!

एक बार हम रायगढ़ गए। आज से पचास साल पहले की बात कर रहा हूँ। करोड़ीमल जी की गद्दी पर पालूमल जी बैठे थे। हमने कहा, 'भिक्षा।' तो मेरे को उन्होंने कहा, 'हट्टा-कट्टा भिक्षा माँगता है, जाकर काम करो, पैसा कमाओ।' तो इसलिए बड़ा डर लगता था भीख माँगने में। हमको वह अपमानजनित भीख पसंद नहीं थी। अच्छा है मंदिर के दरवाजे पर कटोरा लेकर बैठ जाओ, थोड़ा पैसा पड़ जाता है, इज्जत के साथ दो रोटी खाओ। हम भिक्षा साधना के रूप में माँगते थे, वह मेरी एक तपस्या थी। बनारस में कई जगहों पर मंदिरों में बैठ जाते थे। उन दिनों पाँच रुपया भी बहुत था। पाँच रुपये मिलने पर, उठकर खा लेते थे और धर्मशाला में सो जाते थे। पर थाइलैण्ड जब गए, हमको बहुत अच्छा लगा। हम जब जाते थे, तब घर के अन्दर से बच्ची निकलती थी, पात्र में भोजन डाल देती थी।

तो इस्राइल के कीबूत्स, थाईलैण्ड के मठ और भारत के आश्रम, ये तीन अलग-अलग त्रिकोण हैं। कीबूत्स के आश्रम में वही होता है जो यहाँ होता है, मगर वहाँ कोई मर्यादा नहीं है। सिगरेट भी पीते हैं, शराब भी पीते हैं, माँस भी खाते हैं और शाम को गिटार लेकर नाचते भी हैं। उसको कहते हैं कीबूत्स। थाईलैण्ड में बौद्ध मठ होते हैं, जहाँ अनुशासन में रहना पड़ता है। और भारत की जो आश्रम प्रथा है, बहुत अच्छी प्रथा है।

अब आश्रम जीवन का ज्यादा महत्त्व होगा। योगाश्रम ज्यादा दिन चलने वाले नहीं हैं, क्योंकि शहरों में योग सिखाने वाले इतने लोग हो गए हैं कि छोटे-छोटे समूहों में दस-पाँच को लेकर निजी शिक्षक अपनी-अपनी कक्षा चला रहे हैं। कुछ दिनों के बाद आश्रमों को अपना कार्यक्रम बदलना पड़ेगा और रिखिया के तौर-तरीकों में आना पड़ेगा। रिखिया योग नहीं सिखाता। आश्रम की सुविधा देता है। यह तो ऋषिकेश के ढंग का आश्रम है। जो आश्रम ऋषिकेश, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड में पहले होते थे, यह उसी के तौर पर चल

रहा है। अब शहरों में एक भवन बना लिया, एक हॉल हो गया, दो टॉयलेट हो गये, वहाँ पर अच्छी तरह से सब लोग योग सीखते हैं। अब वैसे आश्रमों का जमाना जा रहा है। सब आश्रमों में चालीस-पचास लाख का मकान खाली पड़ा रहेगा, क्योंकि अब योग की जो बीमारी या योग की जो हवा या योग की जो क्रान्ति आई है, इतनी जबरदस्त है कि लोग जगह-जगह इसको सिखाना शुरू कर रहे हैं।

यह शब्द योग से 'योगा' हो गया। अकारान्त नहीं, आकारान्त लिखते हैं, हिन्दी में भी योगा ही लिखते हैं। अब योगा का मतलब केवल बीमारी को दूर करना हो गया है, बाकी से उनको कोई मतलब नहीं। मोक्ष या चित्तवृत्ति निरोध से किसी को मतलब नहीं है। आम आदमी अब बीमारी से बहुत पीड़ित है। बीमारी को लेकर यहाँ इतनी चिट्ठियाँ आती हैं, किसी का पेट सड़ रहा है, तो किसी का कंधा सड़ रहा है, किसी का दिमाग सड़ रहा है, किसी का बच्चा विकलांग है। बहुत मुश्किल है और डॉक्टर कुछ कर नहीं पा रहे हैं, क्योंकि डॉक्टर के पास इलाज है ही नहीं। केवल यहाँ के डॉक्टर नहीं, यूरोप में भी इलाज नहीं है। डॉक्टर कहते हैं सब्जी खाओ, फल खाओ। पर सब्जी और फल में कितना कीटनाशक रहता है, कितने जहरीले पदार्थ रहते हैं, वह खाकर स्वास्थ्य देगा कि कैंसर देगा, कोई कह नहीं सकता है।

आजकल बाजार में इतने बड़े-बड़े सेब आते हैं। यहाँ जब स्वामी बाजार जाते हैं, हम इनसे बोलते हैं छोटा वाला टमाटर लाना, बड़ा वाला मत लाओ। बड़े वाले टमाटर में जरूर कुछ दवाई डाली गई है। हम इनको बराबर बोलते हैं कि आलू भी छोटा लाना चाहिए। बड़े आलू का मतलब ज़्यादा कीटनाशक डाला गया है, परन्तु इन सब पढ़े-लिखे लोगों को कुछ पता नहीं है। जिन्दगी का सार इन पढ़े-लिखे लोगों को स्कूल-कॉलेजों में बिल्कुल नहीं सिखलाते। इनको यही चीज़ सिखाई जाती है कि औरंगज़ेब की बेटी का क्या नाम था। इनको टमाटर या सेब में क्या गुण होते हैं, नहीं मालूम। वह इनको अखबारों में पढ़ना पड़ता है। स्कूल में कोई पढ़ाता नहीं है। इतना बड़ा आलू मेरे को दिखाया, मैंने कहा, 'यह सब मत लाओ, पैसा बेकार खर्चा मत करो, बीमार हो जाओगे। छोटा वाला पहाड़ी आलू लाओ, जिसमें बेचारे किसान ने सिवाय पानी के और कुछ नहीं डाला है। और सस्ता भी है। केवल देखने में अच्छा नहीं है।' यह तुम लोगों को एक संकेत दे रहा हूँ। हमेशा बड़ी चीज़ के पीछे मत भागो।

तमिल भाषा

मैं अट्ठारह-बीस साल की उम्र में जब गुरुजी के आश्रम गया, तब वहाँ क्या अजीब भाषा बोलते थे। हमने सोचा, यह कौन-सी भाषा है इतनी कड़ी-कड़ी! बाद में पता चला कि तमिल है। फिर मैंने भी तमिल सीखी और तमिल साहित्य का अध्ययन किया। तिरुवाचकम्, अलवार, नायनार, पूरे के पूरे शैव सिद्धान्त का अध्ययन किया।

सबसे विचित्र चीज़ क्या है कि द्रविड़ लिपि या द्रविड़ भाषा में संस्कृत के केवल कोमल व्यंजन हैं, कठोर व्यंजन नहीं। क, ख, ग, घ, ङ। इसमें क होता है कोमल, ख, ग, घ होते हैं कठोर। च, छ, ज, झ, ञ। च होता है कोमल और छ, ज, झ होते हैं कठोर। द्रविड़ भाषा में जो भी व्यंजन हैं, सब कोमल हैं। जब बोला जाता है, बड़ा कड़ा लगता है। द्रविड़ लिपि और द्रविड़ शब्द परम्परा में कोमल व्यंजन का ही संयोग होता है। कोमल+कोमल+कोमल, सब मिलकर कठोर बन जाते हैं, संतुलन नहीं है। क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, खतम। बस, इतने ही व्यंजन हैं इनके। और स्वर विचित्र हैं—अ, आ, इ, ई, इ, उ, ऊ, उ, ए, ऐ, ए।

इनके यहाँ स्वर विस्तार में है, ए,इ,उ, तीन प्रकार के हैं। और ये जब गोपाल बोलते हैं, गोपाल लिख नहीं सकते हैं, क्योंकि वहाँ गोपाल लिखने की कोई सुविधा है ही नहीं। ग तो है ही नहीं वहाँ। तो वे कोपाल लिखते हैं। हम वहाँ जब गए, एक स्वामीजी, जो हमारा मॉनीटर था, उसका नाम था कोपाल स्वामी। तो हम कहते थे, 'तुम्हारा नाम गोपाल स्वामी है।' वह कहता, 'हाँ! एनोड पेर कोपाल स्वामी।' वे नमः शिवाय नहीं बोल सकते हैं, नमः छिवाय बोलते हैं। मजाक नहीं कर रहा हूँ, विचित्र भाषा है।

तमिल लिपि, संस्कृत के पूर्व की है। इसी पर संस्कृत ध्वनियों का विस्तार हुआ। ख, ग, घ को जोड़ा गया। छ, ज, झ को जोड़ा गया। इसीलिए उस भाषा को कहते हैं 'सम्स् कृतम्।' सम्स्कृतम् का मतलब होता है, सुधारा हुआ। संस्कृत शब्द का मतलब होता है परिमार्जित, परिष्कृत। उसका शाब्दिक मतलब होता है कि उसका शुद्धिकरण, परिष्करण हुआ है। संस्कृत भाषा का विकास तमिल से हुआ है। और यह तमिल भाषा या लिपि संस्कृत से काफी पुरानी है। मैं दक्षिण भारत के सब भोजन साम्भर, रसम, इडली, दोसा, अड़ै, बड़ै बना सकता हूँ। आश्रम में मेरी ड्यूटी थी। एक-दो आदमियों का नहीं, दो-तीन सौ आदमियों का बनाता था। पहले के ज़माने

में दक्षिण भारत में लड़की के लिए पाक शास्त्र, पूजा शास्त्र, नृत्य शास्त्र और संगीत शास्त्र, इन चारों का प्रशिक्षण अनिवार्य था। लड़की जब बड़ी हो जाती थी, उसको बढ़िया नाचना, गाना आता था और पूजा का पूरी विधि-विधान जानती थी।

क्या भारत में मंदिर अपना अस्तित्व बनाए रख पायेंगे?

कबीरदास कहते हैं, यह दुनिया तो बाजार है। यहाँ सस्ता भी मिलता है, महँगा भी मिलता है और फोकट में भी मिलता है। और नहीं मिलता है, तो जबरदस्ती ले लो, बाजार है। कबीर का पद है–

रमैय्या की दुलहिन ने लूटा बाजार।
सुर पुर लूटा, मधुपुर लूटा,
मचा तीनों लोक हाहाकार।
रमैय्या की दुलहिन ने लूटा बाजार।

मंदिर अभी जल्दी यहाँ टूटने वाले नहीं है और न आश्रम यहाँ टूटने वाले हैं। जब तक मंदिरों और आश्रमों में लोगों के जीवन का वास्तविक ब्रेक्थ्रू नहीं होगा, तब तक ये टूटेंगे नहीं। अब मंदिरों के सामने कोई समोसा, पकोड़ी, पाठा, तो कोई फूल बेच रहा है। ईसाई धर्म के ईसा मसीह ने इस पर आपत्ति जताई। हम लोग आपत्ति नहीं करते हैं। नहीं, क्योंकि हम जानते हैं कि मंदिर केवल आध्यात्मिकता और श्रद्धा के केन्द्र नहीं हैं, बल्कि ये जनहित के केन्द्र भी हैं और इसलिए मंदिर टूटेंगे नहीं। हाँ, यह बात जरूर है कि अब जहाँ कहीं कोई देखनहारा नहीं हो, वहाँ लोग उसको हड़प लेते हैं। चाहे वह कोठी या बंगला हो, चाहे मंदिर हो।

ऋषिकेश से बद्रीनाथ जाते समय एक स्थान है–जोशी मठ। आज से करीब दो हज़ार साल पहले, केरल में जन्मे जगत्गुरु शंकराचार्य ने वहाँ पर एक मठ खोला। उस वक्त उसे आश्रम नहीं, मठ कहते थे, जिसका नाम उन्होंने ज्योतिर्मठ रखा। टेहरी के महाराजा ने उस मठ को जमीन दी थी। दो हज़ार एक सौ साल पुरानी बात बोल रहा हूँ। शंकराचार्य के बाद वहाँ छः आचार्य हुए। उसके बाद एक समय ऐसा आया कि वहाँ आचार्य नहीं हुए और वहाँ की परम्परा टूट गई। शिष्य लोग नहीं आए, कोई वजह हुई होगी। कई शताब्दियों तक वहाँ कोई नहीं था। तो जोशी मठ के खेत, मकान, सब जगह

पर पूरा अतिक्रमण हो गया। सिर्फ नाम रह गया इतिहास में, जोशी मठ। पर कहाँ है किसी को पता नहीं था, सिवाय इतिहास के।

हम लोगों की परम्परा में चार मठ आते हैं। ज्योतिर्मठ, जिसको जोशी मठ भी कहते हैं, गोवर्धन मठ, शृंगेरी मठ और द्वारका मठ। इस इतिहास की वजह से सब जगह लिखा रहता है कि जोशी मठ कहाँ है। आज से करीब डेढ़ सौ साल पहले एक व्यक्ति का जन्म हुआ, जो संन्यासी बने और उन्होंने सब जगह से कागज इकट्ठे किये, कानूनी अधिकार पत्र और जायदाद के कागज इकट्ठे करके टेहरी के राजा के दरबार में उन्होंने उसको प्रस्तुत किया। स्वामी ब्रह्मानन्द जी उनका नाम था। उनके अनेक शिष्य थे। उनमें एक महर्षि महेश योगी हैं, जो अभी हॉलैण्ड में रहते हैं। महाराजा ने फिर अपने आदमी भेजे, अतिक्रमण की जमीन का पता लगाया, जमीन नपवाई, खसरा खाता-खतिहान सब देखा। आखिर वह जमीन मठ को वापस मिल गई। आज वह मठ चलता है। जोशी मठ उसको कहते हैं। यह तो चलता रहता है, ऐसा हाल बहुत जगह का हुआ है।

दो हज़ार पाँच सौ साल पहले भगवान बुद्ध ने इस देश में जन्म लिया। वे बहुत प्रतिभाशाली थे, इसलिए उन्हें बहुत सफलता मिली। भगवान बुद्ध जब मरे, उस समय उनके सम्प्रदाय में दस हज़ार भिक्षु थे और उनके शिष्य लाखों की संख्या में थे। बहुत सफल संन्यासी के रूप में उनकी मृत्यु हुई। उसके बाद बौद्ध धर्म फैला। बौद्ध धर्म मुख्यतः युद्ध का विरोध करता था और अहिंसा का उपदेश देता था। युद्ध तो होना ही नहीं चाहिए, मगर युद्ध करने पड़ते हैं। राष्ट्र युद्ध करें या न करें, युद्ध की पूरी सामग्री उनके पास होनी चाहिए, क्योंकि दुनिया ऐसी है। सब एकदम अच्छा चल रहा था, गोलकुण्डा से दक्षिण तक उन्होंने भारत को एकदम एक संघ में पिरो दिया। एक संघ बन गया भारत का।

करीब छठी शताब्दी की बात है कि हुणों ने भारत पर आक्रमण किया और हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का अपहरण कर लिया। छठी शताब्दी में ह्वेन सांग भी भारत आये थे। उसके बाद हिन्दुस्तान की आम जनता ने कहा, यह क्या हो रहा है? सेना कहाँ है? प्रजा ने प्रश्न उठाया, 'तुम तो कहते हो कि लड़ाई जरूरी नहीं है, हिंसा जरूरी नहीं है, सेना जरूरी नहीं है, अहिंसा जरूरी है, पर यह क्या हो रहा है?' सरकार जवाब देती है। अपने औचित्य को सिद्ध करती है।

उसके बाद मुगलों का आक्रमण शुरू हुआ, नादिर शाह आया, चंगेज़ खाँ आया। लोगों ने कहा, क्या हो रहा है? और फिर लोगों ने बौद्ध धर्म की पिटाई करनी शुरू की और बौद्ध धर्म ने मार खाई। इसी आधार पर बौद्ध धर्म इस देश से पूरा मिट सा गया। लोगों ने कहा, 'नहीं, हमें नहीं चाहिए। ये लोग देश को नहीं बचा पा रहे हैं। वह चंगेज़ खाँ बढ़ा चला आता है, नादिर शाह दिल्ली में कत्ले आम कर देता है और ये लोग बोलते है अहिंसा-अहिंसा। मारो सबको।' सब मारे गये, सब भागे। बाल बढ़ा कर भागे, भगवा उतार कर मठ से भागे।

ईसा मसीह को जब मारा गया, तब पीटर ने कहा, 'नहीं-नहीं, मेरा इससे कोई मतलब नहीं है, मैं इस आदमी को नहीं जानता।' मुर्गा तीन बार कुकड़ूँ कूँ बोला जब पीटर ने ईसा मसीह के साथ अपने सम्बन्ध से इन्कार किया। बाइबिल में लिखा है। जब ईसा मसीह के मरने के पहले लास्ट सपर में पीटर ने कहा, 'गुरुजी, मैं आपका सच्चा सेवक हूँ', तब ईसा मसीह ने कहा, 'तीन बार तू मेरे को पहचानने से इन्कार करेगा, जब मुर्गा बांग देगा।' जब ईसा मसीह को उन्होंने सूली पर चढ़ाया, तो किसी ने कहा, 'सर, यह भी इन्हीं के साथ था।' तब पीटर ने कहा, 'नहीं, मैं इसको जानता नहीं।' तो मुर्गा तीन बार बोला कुकड़ू कूँ। उसी तरह से सब बौद्ध लोग इन्कार करने लगे। यहाँ तो बौद्ध मंदिर टूटे हैं। यह बात सच्ची है। और जब बौद्ध आए, तब उन्होंने हिन्दू मंदिरों को तोड़ा और बौद्ध धर्म के मंदिर बनाए। तो यह तो चलता रहेगा। पर श्रद्धा अपनी बनी रहनी चाहिए।

जेलों मे योग

आज दुनियाभर की जेलों मे योग का प्रयोग हो रहा है। सन् 1968 में जब मैं न्यूयार्क गया था, तब मुझको वहाँ की जेल में आमंत्रित किया गया था। पहली बार हमको पता चला कि जेलों में भी योग की आवश्यकता है। हम वहाँ गए और दस-पन्द्रह दिन कक्षा ली, जिसे कैदियों ने बहुत पसन्द किया। और आज इक्कीसवीं शताब्दी में योग वहाँ व्यापक हो गया है। केवल अमेरिका नहीं, मैंने इंग्लैण्ड की जेलों में भी योग सिखाया है। परन्तु हिन्दुस्तान में अभी भी बहुत काम बाकी है।

भारत की बहुत जेलों में अभी योग का परिचय हुआ है और इसके लिए सरकार और समाज की स्वीकृति भी है। और कैदी भी इस बात को मानते हैं। भले सब न मानें, मगर काफी लोग मानते हैं, क्योंकि जो आदमी गलती करता

है, किसी-न-किसी बिन्दु पर तो पछताता ही है। अब जिस वजह से भी पछताए, एक क्षण हर एक आदमी के मन में पश्चाताप और पछतावा आता है। भारत की काफी जेलों में आज योग सिखाया जाता है। वह नियमित नही है, क्योंकि जेल में तो एक अस्थायी जनसमूह है। वहाँ कैदी ज्यादा दिन तो नहीं रहते हैं। कोई दो साल, कोई तीन साल, कोई छः महीने। तो मेरी समझ में अस्थायी जनसंख्या के मुताबिक शिक्षकों को लगातार रहना चाहिए, मगर ऐसा नहीं हो पाता है। एक कक्षा होती है, फिर उसके बाद अनुसरण नहीं हो पाता है।

यद्यपि हम अपने हिन्दू धर्म को विज्ञान मानते हैं, परन्तु दुनिया में लोग दर्शन और विज्ञान में अंतर देखते हैं। विज्ञान उसको कहते हैं जब तुम कुछ करते हो और उसका परिणाम दिखाई देता है। विज्ञान को वस्तुनिष्ठ परिणाम की जरूरत होती है। अब जब तुम जेलों में योग सिखाते हो और उसमें अगर कीर्त्तन-भजन चालू करते हो, तो बुरा तो नहीं है। भारत में तो चलेगा। पर बाहर के देशों में यह नहीं चलेगा। वे बोलेंगे, हम 'हरे राम, हरे कृष्ण' क्यों गाएँगे? 'हालेलुइया, हालेलुइया, हेल मेरी, हेल जीसस' गाएँगे, तब धर्म बीच में आ जाता है। योग के बीच में धर्म को नहीं लाना है।

अब तुम जैसे जीव विज्ञान सीखते हो, तो हरे राम, हरे कृष्ण करते हो क्या वहाँ? भौतिकी, रसायन शास्त्र और माइक्रो बॉयोलोजी सीखते हो, ये विज्ञान हैं कि धर्म? ये विज्ञान हैं, धर्म नहीं। विज्ञान को विज्ञान के मुताबिक उचित व्यवहार करना पड़ेगा। जब तुम किसी भी कैदी को ठीक करने की बात करते हो, तो केवल भावनाओं के स्तर पर नहीं, अपराध का आधार वंशानुगत होता है। अपराध का जन्म डी.एन.ए. में होता है। अपराध डी.एन.ए में समन्वित रहता है। डी.एन.ए. एक स्थूल तत्त्व है। यह भावनात्मक तत्त्व नहीं है। और योग में ये सम्भावनाएँ हैं कि प्राणायाम, मुद्राओं, बंधों और आसन के द्वारा वे इसको प्रभावित कर सकते हैं।

हम बहुत साल पहले सागर गए थे। जहाँ चम्बल के सब डाकू थे। वहाँ करीब पूरा दिन हमने उन लोगों के बीच में बिताया और उन लोगों से हमने योग के बारे में बात की। वे कहते थे कि स्वामीजी आप श्रीमद्भागवत की कहानी कह दीजिए, बड़ा अच्छा लगता है। तो हमने दो-तीन घण्टे श्रीमद्भागवत की गोकर्णोपख्यान से कृष्णावतार तक की पूरी कथा बताई। वे लोग बहुत खुश हो गए, हालाँकि एकदम कठोर लोग थे!

– 17 मई 2006



अध्याय 20

दिन में विश्राम लेना चाहिए या नहीं?

यह तो मौसम पर निर्भर है। गर्मी के दिन में विश्राम लेना चाहिए, परन्तु बरसात में नहीं। यूरोप में इसके लिए एक खास शब्द है, 'सिएस्ता'। सबसे पहली बार जब हम ग्रीस गए, तब दोपहर को देखा गाड़ियाँ ही नहीं चलती हैं। हमने स्वामी शिवमूर्ति से पूछा, 'क्या हो गया? क्या कोई कर्फ्यू है?' उसने कहा, 'नहीं, यहाँ दो से चार बजे तक सब लोग सिएस्ता लेते हैं और चार बजे के बाद ऑफिस फिर खुलते हैं।' इटली में भी सिएस्ता की प्रथा है। जिन देशों में गर्मी होती है और बाहर का तापमान ज़्यादा होता है, वहाँ पर दिन में डेढ़ घण्टा सोने की प्रथा निश्चित है।

यद्यपि स्वर्णिम नियम के मुताबिक दिन में सोना नहीं चाहिए। यह आदर्श है कि दिन में सोना नहीं चाहिए। दिन में सोना अस्वस्थ आदत मानी जाती है। मगर गर्मी के दिनों में एक घण्टा दिन में आराम करना जरूरी है। छोटी उम्र वालों को नहीं बोल रहा हूँ, ज्यादा उम्र के लोगों के लिए बोल रहा हूँ, क्योंकि दिन में सोने का सम्बन्ध हृदय से ज़्यादा होता है। खून में तरलता बढ़ती है और हृदय पर जोर पड़ता है। हृदय को आराम मिलना चाहिए, इसलिए ज़्यादा उम्र वालों को दिन में सोने से कोई बुराई नहीं है, पर बरसात में बिल्कुल नहीं सोना चाहिए और जाड़ों में तो कतई नहीं। वैसे जाड़ों में तो गर्मियों की अपेक्षा दिन बहुत छोटे होते हैं।

भारत में दिन की लम्बाई अधिकतर तेरह या साढ़े तेरह घण्टे होती है। पर अगर तुम बेल्फास्ट जाओगे, तो दिन की लम्बाई कभी-कभी अठारह-बीस घण्टे होती है। फिनलैण्ड में बीस घण्टे का दिन होता है और वहाँ सूरज रात

को दो बजे दिखता है। नॉर्वे में जाड़ों के दिनों में दिन के समय बाहर में अंधेरा हो जाता है, बत्ती जलाकर पढ़ना पड़ता है, जबकि गर्मी के दिनों में रात को भी बिना बिजली के पढ़ सकते हो।

हमने तो स्वास्थ्य का सबसे बड़ा रहस्य इतना ही जाना है, सवेरे और शाम घूमो, सैर करो और पानी पियो। इसके साथ हफ्ते में एक दिन उपवास करो। चाहे धार्मिक या नैतिक उपवास हो, कोई फर्क नहीं पड़ता है। हम हर एकादशी और बुधवार को उपवास करते हैं। कुल मिलाकर महीने में छः बार उपवास करता हूँ। काफी है, हर पाँच दिन में एक बार कमरे की सफाई हो जाती है। हमने तो अपनी जितनी उम्र भोगनी थी, उतनी भोग ली। कलयुग की उम्र है हमारी, तिरासी बहुत मुश्किल की उम्र होती है। पर सबको इसी तरह से रहना चाहिए। सवेरे कहते हैं घूमना, शाम को कहते हैं सैर करना। कभी इस दुकान, तो कभी उस दुकान में बैठ गए, कभी सिनेमा, तो कभी मल्टीप्लेक्स में चले गए, इसको सैर करना कहते हैं। कहीं किसी के घर चले गए, हाल-चाल पूछने के लिए, वह सैर है।

प्रेम और भक्ति

भगवान एक नहीं हैं, भगवान सब जगह हैं। जल में, थल में, जहाँ देखो वहाँ राम। मैं तुमसे एक ही प्रश्न करता हूँ भगवान के बारे में। जो तुम्हारी एक की कल्पना है, वह गणित की कल्पना है। पर एक का मतलब होता है अनन्त। भौतिक विज्ञान में शब्द आता है, उसको हमारे यहाँ कहते हैं पूर्णम्।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

पूर्ण का मतलब है अनन्त। दूध में मक्खन कहाँ पर है? सब जगह है। काठ में आग कहाँ पर है? बीज में या वृक्ष में, कहाँ पर है? सब जगह है न? सृष्टि में भगवान कहाँ पर हैं? सब जगह हैं। फिर यह क्यों बोलते हो कि भगवान एक है। बोलो भगवान सब हैं।

भगवान एक भी हैं, पर भगवान एक ही नहीं हैं, क्योंकि ये जो देवी-देवता होते हैं, ये भगवान के अंश हैं, जैसे तुम। तुम कौन हो? तुम आँख हो क्या? कान हो क्या? हड्डी हो क्या? नहीं, तुम सब हो। तुम्हारे शरीर के सभी अंगों को कुल मिलाकर तुम हो, ठीक? उसी तरह से भगवान जो है,

वह सृष्टि की तमाम शक्तियों का एक सम्मिलित केन्द्र है। वह जो आसमान, बादल, पानी, मुझे और तुम्हें, दोनों को देखता है। लोगों को मार भी देता है, जिन्दा भी कर देता है, सब कुछ करता है। भगवान बहुत बड़ी शक्ति है, जो अभी बोल भी रही है और सुन भी रही है। पर तुम्हारी समझ में भी नहीं आ रहा है और मेरी समझ में भी नहीं आ रहा है। यह सब दिमाग के, खोपड़ी के बाहर की चीज़ है। एक बार खोपड़ी को रोक दो, भगवान समझ में आ जायेंगे। खोपड़ी को रोकना है।

प्रेम और भक्ति में केवल इतना ही फर्क है, दूध में नींबू और दूध शुद्ध। एक फट जाता है, दूसरा दूध रहता है। मगर किसी भी हालत में दोनों दूध ही रहते हैं। पदार्थ दूध है। जब तुम संसार की चीज़ों से, सांसारिक भावना से प्रेम करते हो, उसको वासना कहते हैं। और वही प्रेम जब भगवान की तरफ पवित्र और अच्छे भाव से करते हो, तब उसे भक्ति कहते हैं, क्योंकि तत्त्व एक ही है।

राधा-कृष्ण का प्रेम, ईश्वर और ईश्वर की शक्ति का पुनरावतार था। राधा कोई वृन्दावन की लड़की नहीं थी और न कृष्ण वसुदेव के बेटे थे। दोनों शक्तियाँ इस सृष्टि में अवतार के रूप में आयीं। और उन्होंने बचपन के दस या ग्यारह की उम्र में जो लीला की, वह लोगों को यह बतलाने के लिए की कि परस्पर जो प्रेम होता है, वह गलत नहीं है। और उन्होंने यह भी बतला दिया कि मेरा राधा के साथ जो सम्बन्ध है, वह आध्यात्मिक सम्बन्ध है। यह रुक्मिणी वाला नहीं है। रुक्मिणी वाला सम्बन्ध मैंने घोषित किया है। सत्यभामा वाला मैंने घोषित किया है, जाम्बवती वाला मैंने घोषित किया है। उनकी आठ पटरानियाँ थीं। उनको कोई राधा की जगह देता है क्या? क्या राधा की जगह बिठलाया है किसी को? राधा और कृष्ण का जो प्रेम सम्बन्ध था और कृष्ण का आठ पटरानियों के साथ जो प्रेम सम्बन्ध था, वह क्या एक समान था? नहीं। अब उसको तुम भक्ति कहो या प्रेमा भक्ति कहो या अनुराग भक्ति कहो, जो नाम देना है दे दो।

आध्यात्मिक प्रेम में आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध होता है। देह का देह के साथ सम्बन्ध होने से जिस आनन्द की उत्पत्ति होती है, उससे कहीं गहरा आनन्द आत्मा के आत्मा के साथ जुड़ जाने से होता है। उसमें ज़्यादा गहराई होती है। देह से देह का सम्बन्ध होने के बाद जो आनन्द प्राप्त होता है, उसका अन्त है, और तुम्हें उसकी पुनरावृत्ति चाहिए, वह है विषयानन्द। पर आत्मा का जो आत्मा के साथ सम्बन्ध होता है, तुम्हें उसकी पुनरावृत्ति की जरूरत नहीं

होती, वह है ब्रह्मानन्द। एक बार हो गया, हरि ॐ तत्सत्। हमेशा उसमें डूबे रहो, जैसे मधुमक्खी शहद में डूब जाती है और वहीं रह जाती है।

खोपड़ी को कैसे बंद करेंगे?

खोपड़ी को कहाँ बन्द करोगे, कोई छेद तो दिखता ही नहीं है। खोपड़ी में कोई छेद हो तो वहाँ से बन्द करो उसको। पहले छेद को ढूँढो। खोपड़ी को कैसे बंद करें, यह जो तुम पूछ रहे हो, यह खोपड़ी ही तो पूछ रही है। श्री अरविन्द ने भी यही कहा है, खोपड़ी को बंद करो, तर्क बंद करो। उपनिषदों में भी यही लिखा है। आत्मा को बुद्धि, बल, मेधा और धन के द्वारा प्राप्त करना सम्भव नहीं। और बुद्धि को रोकना मुश्किल है, क्योंकि यह अव्यावहारिक है। आदमी अपनी बुद्धि को बंद कर नहीं सकता है, यह सम्भव नहीं है। इसके बारे में पुराणों और उपनिषदों में विस्तार से समझाया है। और जितने भी बड़े-बड़े भक्त हुए हैं, जैसे, चैतन्य महाप्रभु, मीरा बाई, गुरु नानक, संत कबीर, संत तुलसीदास, तुकाराम, ऐसे बहुतों का नाम गिना सकते हैं, इन लोगों ने खोपड़ी को बंद करने की कोशिश नहीं की। इनको शुरू से ही भगवान का कुछ पता मिल गया था और उसी पते पर ये चले।

गुरु नानक की कथा सुनाता हूँ। उनको भण्डार प्रभारी रखा गया और कहा गया कि जितना माल बाहर जाता है, उसको गिनते जाओ। तो एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, ग्यारह, बारह, तेरह–तेरह बोरा। तेरा के बाद चौदहवाँ बोरा आया ही नहीं, सब बोरे निकल गए। सिक्खों में कहते हैं, तेरा माने तुम्हारा। अब उनको वहीं पर भगवान का रास्ता या पता मिल गया। बारह तक उनको भगवान का पता शायद नहीं मिला। तेरह बोलते ही सब तेरा, तेरा बोलते ही भगवान में रम गए। इस प्रकार बहुतों की अलग-अलग कहानियाँ हैं। तुलसीदास को कैसे पता चला?

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसे तिलक देत रघुबीर॥

चन्दन का तिलक लगाने पर उनको पता चला, ये तिलक लेकर जो दो नवयुवक गए, वे तो भगवान थे। हो गया, उन को पता चल गया।

भगवान का पता कैसे हाथ लगे? और लोग चाहते भी नहीं हैं कि पता लगे, क्योंकि अगर भगवान का पता हाथ लग गया, फिर घर-बार सब छूट जाएगा।

उसी से सब लोग डरते हैं। बीबी-बच्चों का क्या होगा। बीबी-बच्चों की इतनी चिन्ता लगी है और भगवान खोजने जा रहे हैं। वाह भाई साहब वाह! हँसना भी चाहिए और गाल फुलाना भी चाहिए। दोनों चीज़ें एक साथ करना चाहते हैं। यह रास्ता बहुत बड़ा है। इसके बारे में जितनी बात करो, अच्छा है। मगर इस रास्ते में जाना इतना आसान नहीं है। कोई-कोई शूरवीर इस रास्ते में जाते हैं, बहुत कम।

चैतन्य महाप्रभु तो बहुत पढ़े-लिखे थे। आज के युग के मुताबिक अगर चैतन्य महाप्रभु की डिग्री को आँका जाए, तो वे एम.बी.ए. थे। उन्होंने अपना जितना भी शोध-पत्र लिखा था, नदी में डाल दिया। कहा, मारो गोली। वे बीच नदी में नौका में बैठे थे, अपना पूरा शोध-पत्र उन्होंने नदी में डाल दिया। भगवान को खोजने में नहीं लगे, वे भगवान के नाम में लगे, क्योंकि भगवान को पाना और भगवान के लिए तड़पना, दो अलग-अलग चीज़ें होती हैं। और तड़पने में सबसे ज़्यादा मजा आता है। भगवान को पाने में उतना मजा नहीं है, क्योंकि वहाँ तो मजा ही खतम हो जाता है। प्रेमिका को न मिलने पर जो तड़प आती है, वह ज्यादा अच्छा लगता है, हाँ या नहीं? तकलीफ ही सही, मगर अच्छा तो लगता है। पर मिल गई, तो मजा नहीं है। मीरा का वही हाल था।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति

मेडिकल के साथ आयुर्वेद भी पढ़ना चाहिए। मेडिकल बहुत अच्छी चीज़ है, पर कोर्स में पूर्ण दक्षता हासिल करनी चाहिए, क्योंकि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान कला तो है नहीं। यह तो शोध विज्ञान है। किन्तु यह सम्पूर्ण विज्ञान नहीं है। बीमारी का जो स्रोत होता है, वह एक नहीं होता। कुछ बीमारियाँ होमियोपैथी से दूर हो जाती हैं और कुछ नहीं होती। कुछ एक्युपंक्चर से ठीक होती हैं। पर उसको सम्पूर्ण नहीं कह सकते। अत: एलोपैथी चिकित्सा पद्धति, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ-साथ सर्वधारा चिकित्सा पद्धति का भी अध्ययन होते रहना चाहिए। वे भले ही तुम्हारे कोर्स में हों या न हों, किताबें पढ़ो। आखिर निजी वक्त तो मिलता है। लाइब्रेरी में जाकर पढ़ो। बाबूजी के पास पैसा हो तो किताब खरीद कर पढ़ो। पर जिस विज्ञान में हो, उस विज्ञान में महारत हासिल जरूर करनी चाहिए। और जहाँ तक आमदनी का सवाल है, दूसरों के लिए उपयोगी होने वाला व्यक्ति कंगाल नहीं रहेगा। नहीं, जो डॉक्टर बीमारी का इलाज ठीक से कर सकता है, उसके पास बैंक में पैसा रखने

के लिए जगह नहीं रहेगी। पर वह अगर पैसे को ही डॉक्टरी का लक्ष्य बनाए, तो दिक्कत आ सकती है।

एक्युपंक्चर की पद्धति हमने आँखों से देखी है। बहुत साल पहले सन् 1968 में मैंने हाँगकाँग के एक क्लिनिक में एक लड़के का एपेंडिक्स ऑपरेशन देखा। आधुनिक डॉक्टर का क्लिनिक था। चीनी डॉक्टर ने आकर उसको कई जगह सुई मार कर पंक्चर कर दिया, जिसके द्वारा वह संवेदन-शून्य हो गया और डॉक्टर ने ऑपरेशन कर दिया। ऑपरेशन के पहले उस स्थान को सुन्न करना पड़ता है। इस मरीज को एक्युपंक्चर के द्वारा, जहाँ-जहाँ से संवेदना गुजरती थी, वहाँ-वहाँ अवरुद्ध कर दिया, क्योंकि दिमाग ही संवेदना महसूस करता है। नाक में जो दर्द होता है, वह नाक में महसूस नहीं होता, दर्द होता है दिमाग में। अगर हम तुमको एक चाँटा मारते हैं, तुमको दर्द चाँटे की जगह नहीं, बल्कि मस्तिष्क में होगा।

सारी की सारी संवेदनाएँ, सारा का सारा दुःख-सुख मनुष्य का कहाँ पर रहता है? मस्तिष्क में रहता है। मस्तिष्क को शक्तिहीन कर दो, न सुख, न दुःख। रात को नींद में कभी सुख-दुःख पता चलता है क्या? तो उस मरीज को निश्चेतक देने के बदले एक्युपंक्चर कर दिया। ऑपरेशन पूरा हो गया, सिलाई के बाद उसको स्ट्रेचर पर ले गये और उसने पाव रोटी, मक्खन इत्यादि खा लिया। अब आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में तो हम ऐसा सोच ही नहीं सकते हैं। निश्चेतक का असर उतरने पर मरीज को आइ.सी.युनिट में देख-भाल पर रखते हैं। और ट्यूब द्वारा उसे भोजन दिया जाता है। यह गलत नहीं है, परन्तु इस मामले में एक्युपंक्चर इससे भी अच्छी पद्धति है। किन्तु यह मानना कि एक्युपंक्चर से सारी बीमारियाँ दूर होती हैं, यह भी ठीक नहीं। एलोपैथी की अपनी बहुत सीमाएँ हैं, पर साथ-ही एलोपैथी की अपनी बहुत बड़ी उपलब्धियाँ भी हैं। इतने जबरदस्त शोध के स्थान दुनिया में हैं, जिनमें अरबों, खरबों रुपये लगते हैं और बहुत पढ़े-लिखे लोग, बड़े-बड़े शोधकर्ता उनमें काम करते हैं। सारी ज़िन्दगी उसमें लगाते हैं। वे चूहे, खरगोश, मछली, गाय, आदि पर कई प्रकार के प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेद बहुत विकसित औषधि पद्धति है। आयुर्वेद की औषधियाँ अनेक प्रकार की होती हैं, जो एलोपैथी में नहीं हैं। एलोपैथी की जो दवाई तुम लेते हो, उसके बाद उसका अवशेष शरीर में जमा होता है। वह शरीर में कई प्रकार की बीमारियाँ पैदा करता है, जिसको पार्श्व प्रभाव कहते हैं। और आयुर्वेद की

दवाइयों का जो अवशेष रहता है, वह चयापचय प्रक्रिया द्वारा टट्टी-पेशाब से निकल जाता है। एलोपैथिक दवाइयों के चयापचय में बहुत दिक्कत रहती है। और कभी-कभी ये दवाइयाँ तीस-तीस साल के बाद कोई दूसरी बीमारी पैदा कर देती हैं। पूरे अनुवांशिक तंत्र को बदल देती हैं।

आयुर्वेद की औषधि पद्धति बहुत विकसित है। चाहे इस पद्धति में भस्म, आसव, रस, रसायन या अवलेह हों। इलाज की कई पद्धतियाँ हैं और साथ-साथ उनका अध्ययन जरूर करना चाहिए। जहाँ तक शोध की बात है, एलोपैथी की तुलना में आयुर्वेद में वह ज्यादा नहीं होता है। आयुर्वेद में औषधि पद्धति पर जो अनुसंधान हुए हैं, वे एलोपैथी की तुलना में न के बराबर हैं। परन्तु यह जो आयुर्वेद की औषधि की पद्धति है, यह अनुसंधान की देन नहीं है, यह अनुभव की देन है। तुम्हारी दादी, माँ, बहन, बेटी, चाचाजी ने तुलसी खाई, फायदा रहा। अनुभव इसको कहते हैं। अब अनुसंधान को इसके साथ क्यों न जोड़ा जाए। अनुभव भी तो एक तरह का अनुसंधान है।

एलोपैथिक विज्ञान पर शुरू से ही ग्रहण लगा हुआ है। अमेरिका, इंग्लैण्ड में सब कहते हैं, नहीं भैया, दवाई से बचो। वे लोग दवाई से बहुत डरते हैं। बोलते हैं, इसका पार्श्व प्रभाव बहुत खराब होता है। यह उन देशों की बात है, जहाँ कि हर एक आदमी को दवाई खाना कानूनी तौर पर अनिवार्य है। इंग्लैण्ड, अमेरिका में कोई बच्चा घर में बीमार हुआ, अगर तुम उसको तुलसी पानी ही पिलाओगे, तो यह कानून का विरोध है। कहेंगे, 'डॉक्टर को क्यों नहीं बोला?'

हम अमेरिका और इंग्लैण्ड जैसे देश में तुमको आज की सचाई बतला रहे हैं, घर में तुलसी चुपचाप खाओ, दवाई वगैरह मत लो, मगर डॉक्टर साहब को बोल दो। भले ही उसकी दवाई मत खाओ, तुलसी ही खाओ, मगर डॉक्टर साहब को बोलना पड़ेगा तुमको। हम लोगों के यहाँ आश्रम में किसी को बुखार आ गया, तो पूछने पर बोलते हैं, नहीं, डॉक्टर नहीं चाहिए। गरम पानी लेंगे, ठण्ढा पानी ले लेंगे, आराम करेंगे, काढ़ा पी लेंगे, पर डॉक्टर नहीं। सब अंग्रेज़ लोगों की, गोरों की बात बोल रहा हूँ तुमको। हमारे यहाँ तो बहुत आते हैं।

पर आयुर्वेद में शुरू से ही ग्रहण नहीं है। आयुर्वेद की दवाइयाँ बहुत बढ़िया होती हैं। शुरू से ही उसको बहुत बड़ा समर्थन प्राप्त है। आयुर्वेदिक दवाइयों के बारे में किसी की कोई प्रतिकूल सोच नहीं है। यह बहुत बड़ी

उपलब्धि है चिकित्सा विज्ञान में। आयुर्वेद जरूर पढ़ना। पर एलोपैथी ने जो शल्य-चिकित्सा का विकास किया है, यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसमें दो मत नहीं हैं। यद्यपि आयुर्वेद ने शल्य-चिकित्सा को बहुत नजरंदाज करने की कोशिश की है। वे कहते हैं कि शरीर के अन्दर और बाहर में जो नसें होती हैं, अन्दर में जो ट्युमर होता है, उसको दवाई से गलाया जा सकता है। बायोकेमिक भी तो यही बोलता है कि गलाया जा सकता है, उसको विघटित किया जा सकता है और ऑपेरशन की जरूरत नहीं पड़ती है। यद्यपि शल्य-चिकित्सा और शालाक्य-चिकित्सा में पहले से ही ऑपेरशन है।

चर्म की व्याधियाँ अनुवांशिक भी होती हैं क्या?

अब तुमने एक नया विषय छेड़ दिया। स्त्री और पुरुष का जो सम्बन्ध होता है, उससे संतान की उत्पत्ति होती है। संतान की उत्पत्ति को हम लोग विज्ञान की भाषा में जैविक हस्तांतरण बोलते हैं। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लैंगिक रिश्ते के बदले जैविक हस्तांतरण बोलना बेहतर रहेगा। इस रिश्ते के द्वारा तुम जीन का हस्तान्तरण करते हो। उसी जीन के हस्तांतरण से तुम्हारे बच्चे हुए हैं। यौन शब्द का उपयोग क्यों करना? शादी का उद्देश्य जैविक हस्तांतरण होता है। यह सब में होता है, पशु, पक्षी, वृक्ष और हम सब में भी। इसका एक कानून है। एक समूह के जीन्स, दूसरे समूह के जीन्स से समान हो जाने के बाद बीमारियाँ और रोग पैदा होते हैं। इसलिए हम लोगों के यहाँ हमेशा नजदीक के रिश्ते में शादी करना मना है। फुफेरे और ममेरे रिश्ते में शादी करते हो क्या? अगर करते हो, तो कभी न कभी अनुवांशिक समस्या आती है।

हमारे शरीर में जीन्स एक सचाई है, इसीलिए हमारे हिन्दू धर्म में गोत्र शब्द आता है। गोत्र अनुवांशिक कोड का नाम है। मैं इस विषय को बहुत विस्तार से जानता हूँ, क्योंकि मैंने गोत्र सम्बन्ध का बहुत अध्ययन किया है। हम मेडिकल छात्र नहीं रहे, मगर हमने अनुवांशिकी का बहुत अध्ययन किया है। जीन्स एक तत्त्व है, जिसका हस्तांतरण होता है और इस हस्तांतरण के लिए स्त्री और पुरुष को प्रकृति ने उपादान बनाया है। स्त्री और पुरुष इसमें माध्यम हैं।

तुम एक लड़की को प्रेम करते हो, चूँकि यह लड़की बड़ी पैसे वाली है, चूँकि यह बहुत अच्छे घर का, बुद्धिमान् लड़का है, इन सबके आधार पर शादी नहीं होती। शादी लंगड़े, लूले, कोढ़ी, किसी से भी हो सकती है। वह बदमाश

आदमी से भी हो सकती है। महाबदमाश आदमी से भी हो सकती है, किन्तु उसका जीन्स ठीक रहना चाहिए। मेरा पति बहुत शराब पीता है। वह मेरी बिल्कुल परवाह ही नहीं करता। मेरी औरत तो हमेशा मायके भाग जाती है। वे सब सामाजिक और भावनात्मक बिन्दु हैं, वह अपनी जगह पर ठीक है। पर स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों का एक ही बिन्दु मैं जानता हूँ, जैविक बिन्दु। और वही सचाई है। तुम और हम, सब उसी जैविक दुर्घटना के उत्पाद हैं।

जो जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध होता है, वह क्या है स्वामीजी?

अभी किस जनम की बात बतलाऊँ मैं? हमारे यहाँ जो पूरण है, यह पूर्व जन्म में भी कुत्ता था और यहीं मेरे ही साथ रहता था। उसका जीवन पूरा हो गया, वह मर गया। उसके बाद दुबारा जन्मा, फिर यहीं आ गया। तो ऐसे ही जनम-जनम की बात हम औरों की भी कह सकते हैं। साधु होने के नाते हम लोगों का जनम-जनम भी जानते हैं, पर बोलने से क्या फायदा कि तुम्हारा बाप लंदन में एडवर्ड हेनरी था। कोई फायदा नहीं। तुम्हारी दादी मेरी, क्वीन ऑफ स्कॉट थी बोलने से क्या फायदा है? आखिर तुम तो आज मध्य प्रदेश के ही रहने वाले हो न। पूर्व जन्म से मनुष्य का सम्बन्ध उसी दिन कट जाता है, जिस दिन वह शरीर छोड़ देता है। पूर्व जन्म से तुम्हारा अंतिम वैधिक, संवैधानिक रिश्ता तभी खत्म हो जाता है। जिस दिन मरने के बाद का अंतिम श्राद्ध कर दिया जाता है, उसके बाद मैं और तुम वह नहीं रहे। इसलिए पूर्वजन्म के बारे में तुम जानने की न कोशिश करना, न कहना।

अभी इस जन्म में जो स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है, केवल उसी की बात हो रही है। अब पूर्वजन्म में पता नहीं वह तुम्हारी माँ थी कि बहन कि बाप या हो सकता है तुम्हारी दुश्मन ही रही हो। स्त्री स्त्री होगी, पुरुष पुरुष होगा, ऐसा कोई जरूरी तो नहीं है। स्त्री और पुरुष तो शरीर का नाम है। आत्मा तो स्त्री-पुरुष नहीं होती है। जीन्स औरत या पुरुष होते हैं क्या? डी.एन.ए. का रूप क्या है?

तो ये जो बीमारियाँ होती हैं, जैसे खुजली की बीमारी, वह अनुवांशिक भी होती है और बाहर के संक्रमण से भी आती है तथा जानवरों के साथ रहने से भी आती है। हम लोग उसको एलर्जी कहते हैं। यह दो विपरीत प्रकार के भोजन करने से भी होती है, खासकर जो मछली खाते हैं, वे भोजन में विपरीत भोजन न करें। अतः खुजली कई कारणों से होती है। पर एक सामान्य बात यह है कि खुजली अनुवांशिक भी होती है। खुजली ही नहीं, बहुत-सी

बीमारियाँ हैं जो जैविक हस्तांतरण में गलती होने से हम लोगों को होती हैं। जैसे कहते हैं न तुम्हारी एक पीढ़ी आयी फैक्ट्री से, तो एक त्रुटि के साथ आयी। थोड़े दिन में देखते हैं कि उसके नीचे की सील खुल जाती है। उसको फिर मरम्मत कर देते हैं। डॉक्टर यही तो करते हैं। अनुवांशिक चूक की मरम्मत करते हैं बेचारे।

जब आदमी का भाग्य पूरा निश्चित है, तब उसको किस वजह से काम करना चाहिए?

यह एक बहुत बड़ा विषय है। यह सारी दुनिया तो भाग्य पर ही कायम है। बाहर में सारे पेड़ जो हैं, इनका एक भाग्य है—ये आम ही देने वाले हैं। किसी दिन अगर ये बादाम के पेड़ हो जाएँ, तो कितना बढ़िया होगा। फिर इनमें हर साल आम निकलेगा कि बादाम? हमारे यहाँ कोई-कोई पेड़ इतने आम निकालते हैं कि डालियाँ जमीन छूने लग जाती हैं! तो हमें उनमें कैंची का सहारा देना पड़ता है।

यह एक ऐसा विषय है, जिसको समझना बहुत मुश्किल है—पुरुष, पुरुषार्थ और प्रारब्ध। प्रारब्ध और पुरुषार्थ में जो वाद-विवाद छिड़ा है, वह आज से नहीं है। आदि काल से वेदों, शास्त्रों और साहित्य में इस पर गहरी चर्चा और चिन्तन किया गया है। परन्तु इस बात को हमेशा याद रख लो कि दोनों ही सच हैं। प्रारब्ध भी सच है और पुरुषार्थ भी। प्रारब्ध और पुरुषार्थ, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधात्मक नहीं। दोनों एक-दूसरे के साथ काम करते हैं। प्रारब्ध को पुरुषार्थ के साथ और पुरुषार्थ को प्रारब्ध के साथ समायोजित करना पड़ता है।

पुरुषार्थ और प्रारब्ध का सम्बन्ध अमीरी और गरीबी से नहीं लगाना। पुरुषार्थ और प्रारब्ध का सम्बन्ध मनुष्य के सामान्य जीवन से लगाना चाहिए। तुम्हारा सामान्य जीवन क्या है? क्या तुम एक व्यवसायी, बड़े सरकारी अफसर या बड़े राजनेता हो? तुम कौन हो? हर एक मनुष्य अपने ऊपर एक पहचान को अध्यारोपित करता है। मैं अपने को संन्यासी कहता हूँ। तुम अपने को व्यवसायी, डी.एम, एस.पी, मन्त्री, प्रधानमन्त्री, एम.एल.ए, एम.पी. बोलते हो, मगर ये तो सब ऊपर की टोपियाँ हैं। ये तुम नहीं हो। तुम एक मनुष्य हो। तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय भी नहीं हो। तुम हिन्दू, मुसलमान भी नहीं हो। तुम स्त्री और पुरुष भी नहीं हो। तुम एक मनुष्य हो। मनुष्य जो है, एक जीव

का नाम है, जिसका एक दिमाग और एक सामर्थ्य होता है। एक क्रियाशील यथार्थ होता है, उसको मनुष्य कहते हैं। प्रारब्ध और पुरुषार्थ का उस मनुष्य से सम्बन्ध है।

याददाश्त की पुनः प्राप्ति सम्भव है?

कभी-कभी कम्प्यूटर में मेमोरी नष्ट होने का क्या कारण है? वायरस! अगर किसी कम्प्यूटर को खराब करना हो, तो उसमें गलत फीडिंग की जाती है। आजकल तो किसी के वेबसाइट को वायरस से ठप्प किया जा सकता है। उसी तरह मनुष्य की याददाश्त कमजोर होने की मुख्य वजह है, उसके मन में किसी गलत विचार का कहीं से प्रवेश होना। आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में समझना, दर्शन नहीं बोल रहा हूँ। कोई गलत विचार जब मन में आता है, तो समझो कि कम्प्यूटर में ऐसी चीज़ भेजी गई है, जो उसके कार्य निष्पादन को परिवर्तित करती है। एक संदेश मन के अन्दर गया, जिसको बोलते हैं 'स्पन्द'।

अच्छे विचार और बुरे विचार हवा नहीं हैं। ये अभिप्राय नहीं हैं, ये ख्याल नहीं हैं। अच्छा और बुरा विचार एक स्थूल सचाई है, जो दिमाग के अन्दर रसायन से पैदा होती है और मन में गड़बड़ी पैदा करती है। विचार मस्तिष्क का उत्पाद होता है। वह मनुष्य के दिमाग के अन्दर से आता है। क़भी गौर किया है कि विचार तुम्हारे भीतर से क्यों निकलता है? इसलिए कि उसमें बाहर से कोई संवेदना आती है। एक शब्द किसी ने बोल दिया, उल्लू का पट्ठा। वह शब्द इन्द्रियों द्वारा अन्दर जाकर दिमाग को विचलित करता है।

दिमाग में रसायन और विद्युत चुम्बकीय सर्किट होते हैं। ठीक वैसे ही जैसे ट्रान्सफॉर्मर में तेल होता है, जिसको चार्ज किया जाता है। और अगर तेल चार्ज नहीं हुआ तो? उसी तरह से दिमाग में भी जो रसायन होते हैं, वे जेली की तरह हैं। उसमें विद्युत चुम्बकीय सर्किट होते हैं। जब कोई विचार कहीं से तुम्हारे मन में जाता है या तो आँख से जाता है, कहीं गू देख लिया, कहीं मरे हुए आदमी को देख लिया या टी.वी. में लंगोटी धारियों को देख लिया, वह बाहर से अन्दर जाता है। अब हम तो साफ-साफ बोलने वाले आदमियों में से हैं। हमको तुम लोगों का डर नहीं है। जो गलत है सो गलत है। तुमको अच्छा लगे या नहीं, हमको उससे कोई मतलब नहीं है। वह अन्दर जाता है आँख, कान और चमड़ी के द्वारा। ठण्ढी-गर्मी का अनुभव नहीं जाता है क्या चमड़ी के द्वारा?

पाँच इन्द्रियों के द्वारा पाँच संदेश दिमाग को पहुँचते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, याद कर लो। ये पाँच इन्द्रियों के विषय हैं, जो अन्दर जाते हैं और दिमाग को चार्ज करते हैं। अब वे तुम्हारी याददाश्त को भी खतम कर सकते हैं, जैसे तुमने पूछा। वे हमारे दिमागी संतुलन को भी बिगाड़ सकते हैं। तुम्हारे यकृत या हृदय पर भी चोट कर सकते हैं। याददाश्त का जाना एक बहुत बड़ा नुकसान नहीं है। यकृत का कार्य खराब हो जाता है। हृदय पर चोट हो जाती है। खून का कोलेस्ट्रॉल बदल जाता है, एच.डी.एल. के बदले एल.डी.एल. हो जाता है। कुछ भी हो सकता है।

एक विचार बहुत ही शक्तिशाली तत्त्व होता है, जिसके बारे में हम लोग सावधान नहीं हैं। जो तुम सोचते हो, जो मैं सोचता हूँ, जो हमको दुनिया, किताबों, अखबारों, टी.वी.से मिलता है, उसके द्वारा हम अपने मस्तिष्क को नित्य निरंतर भरते रहते हैं। उसकी वजह से न केवल तुम्हारी याददाश्त खतम होती है, बल्कि कई बीमारियाँ पैदा होती हैं और यह मैं नहीं कह रहा हूँ, विज्ञान कहता है। मैं तो सिर्फ अपनी भाषा में उसको रख रहा हूँ। आखिर लोगों को हृदयाघात क्यों हो जाता है? कई लोगों को देखा है, टी.वी.देखते-देखते हृदयाघात हो जाता है। फिल्म में किसी ने गोली मार दी, वह त्रिआयामी फिल्म होती है न, लगता है कि मेरे ऊपर ही गोली आ रही है। यह तो अभी आधुनिक विज्ञान की बात मैं समझा रहा हूँ। ऋषि-मुनि क्या कहते हैं?

आऽनोऽभद्राः क्रतवोऽयन्तु विश्वतः।

तुम्हारे पण्डित लोग पूजा में इसी मंत्र का पाठ करते हैं। जब भी तुम्हारे घर में कोई पूजा होती है, ब्राह्मण पहले ही बोलेगा—*आऽनोऽभद्राः क्रतवोऽयन्तु विश्वतः।* इसका मतलब होता है, अच्छे विचार मेरे पास सब तरफ से आएँ। पाँचों रास्तों से मेरे पास अच्छे विचार आयें। वेदों में यह पहली प्रार्थना है मनुष्य की। तब क्या होगा? अच्छे विचार तुम्हारे पास आयेंगे, तो जीवन अच्छी तरह से चलेगा। एक और मंत्र है हमारे यहाँ—*भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।* इसका मतलब होता है—कानों से हम अच्छे शब्द सुनें, आँखों से हम अच्छी चीज़ें देखें, शरीर से अच्छी चीज़ों का स्पर्श करें। उसको ये लोग कहते हैं स्वस्ति। स्वस्ति मतलब अच्छा हो।

इन सब चीज़ों का कोई इलाज नहीं है। अब डॉक्टर साहब कोई दवाई दे देंगे, दो-चार दिन के लिए काम करने वाली है, ज्यादा दिन नहीं करेगी।

इसके बाद दूसरी बीमारी शुरू हो जाएगी, तब फिर उसे छोड़ कर दूसरी दवाई लेनी पड़ेगी।

पुरुषार्थ और प्रारब्ध निर्धारित होते हैं या उनको बदला जा सकता है?

छोटी बात तो खैर छोड़ दो, बड़ी बात कहेंगे। क्या रूस के विघटन को कोई बदल सका? एटम बम थे, मिसाइलें थीं, चन्द्र-मंगल में जाने की शक्ति थी। चारों तरफ उनके लोग फैले हुए थे। उनके यहाँ बड़े-बड़े हाइड्रो इलेक्ट्रिक प्रोजेक्ट थे। फिर भी कोई बदल सका क्या? सन् 1936 में अमेरिका में भयंकर मन्दी थी। आदमी, आदमी को मार डालता था। औरतें बिकती थीं। छोकरियाँ सड़कों में आकर देह व्यापार में लग गई थीं। और सन् पैंतालीस होते-होते अमेरिका दुनिया का सर्वाधिक सम्पन्न राष्ट्र बन गया। कोई उसको रोक सका क्या?

सन् 1936 की कहानी तुम लोगों ने तो नहीं पढ़ी है। तुम तो एक अमीर अमेरिका की बात जानते हो। मैं उस गरीब अमेरिका की बात बोलता हूँ, जो हिन्दुस्तान से भी बदतर था। हिन्दुस्तान तो उतना गरीब है ही नहीं। हिन्दुस्तान में रोटी-पानी है, शौच और नहाने के लिये जगह है। औरतों के पहनने के लिए कपड़ा है, घर है, झोपड़ी है, सुखी, खुशहाल देश है। अमेरिका में तो आदमी, आदमी को खाने के लिए तैयार था। 1936 अमेरिकन मन्दी के समय से जाना जाता है। पर अमेरिका गरीबी से उठकर दुनिया का सबसे ज्यादा शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। कोई उसको रोक सका क्या? यह पुरुषार्थ का परिणाम था या प्रारब्ध का?

इंग्लैण्ड, जिसके साम्राज्य में 1942 तक सूर्य अस्त ही नहीं होता था। चार साल के अन्दर क्या हो गया? वह पुरुषार्थ का परिणाम था कि प्रारब्ध का? अब यह तो बहुत हाल की बात है। भारत ने दुनिया को विज्ञान दिया, चिकित्सा विज्ञान दिया, धर्म दिया, अस्त्र-शस्त्र दिए और जैसे आज सारी दुनिया के लोग अमेरिका जा रहे हैं, पहले सब हिन्दुस्तान आते थे। सब जगह से लोग हिन्दुस्तान रहने आते थे, क्योंकि यह स्वतंत्र देश है, जहाँ धर्म के ऊपर कुछ नहीं होता है, जिसको जो मर्जी है करे। क्या हो गया इसको? लाखों को रहने के लिए घर नहीं है। यह जो भयंकर गरीबी आज इस देश में है, जिसके बारे में तुम लोग ज्यादा नहीं जानते हो, कभी आदिवासियों के पास रहने के लिए जाओ, तब जानोगे। मैथिलीशरण गुप्त, साकेत के रचयिता हैं, उन्होंने एक पंक्ति लिखी है जयद्रथ वध में—

अधिकार खोकर बैठे रहना, यह महादुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।

इस तत्त्व पर ही कौरवों से पाण्डवों का रण हुआ, जो भव्य भारतवर्ष के कल्पांत का कारण हुआ। इसका नाम था, भव्य भारतवर्ष। पुरुषार्थ अपनी जगह ठीक है, पर पुरुषार्थ में गलती होने से ही प्रारब्ध का निर्माण होता है और प्रारब्ध पुरुषार्थ को दिशा देता है। दुनिया में कहीं भी देख लो, रोम, मिस्र, ऑटोमन, रूस, चीन, भारतवर्ष, सबका साम्राज्य देख लो। सब मिट गए। प्रारब्ध जो होता है, वह मनुष्य के पुरुषार्थ से नहीं, उसके अच्छे कर्मों से बनता है। जिस देश के लोगों में सचाई, ईमानदारी, दु:ख और कष्ट भोगने की शक्ति हो, माता-पिता का सम्मान करें, पत्नी पति का सम्मान करे, पति पत्नी की किसी भी हालत में रक्षा करे, इसको सद्गुण बोलते हैं। जब तुम समाज में रहते हो, तो इस तरह से सोचना पड़ता है। अगर समाज में नहीं रहो, तब किसी से क्या मतलब है।

तुम समाज में रहते हो, तुम्हारे घर में माता-पिता शराब पीते हैं, पीने दो। माँ बहुत कड़वे स्वभाव की है, पर वह तुम्हारी माँ है, उसके पेट से तुम पैदा हुए। उसने नौ महीने तुमको अपने पेट में रखा। अपने माता-पिता का चरित्र तुम्हारे मूल्यांकन का विषय नहीं होना चाहिए। जब तुमने शादी कर ली, कर ली। अब चुप रहो, जो है भुगतो। बदलना हो तो अगले जनम में देखी जाएगी। अब जो गलती हो गई, अगले जनम में सुधार करेंगे, इस जन्म में तो सुधार होना है नहीं। इस जन्म में तो केवल सामंजस्य होना चाहिए। अब सुधार नहीं करना। यह हमको आज पता नहीं चला। हम जब बीस साल के थे, तब हमको पता चला। हमने कहा, 'हमको न तो इस सुधारने वाली और न ही सामंजस्य वाली दुनिया में अब जीना है। अपने राम अकेले में बैठे रहेंगे। एक निरंजन, दो गड़बड़, तीन लटपट, चार चौपट।'

सत्संगी भी हमको यही बोलती थी, 'हमको इस सामंजस्य और सुधार वाली दुनिया में रहना ही नहीं है।' हमने कहा, 'आ जाओ यहाँ।' दुनिया में रहने के लिए आदमी को अपने कर्मों और विचारों को सुधारना पड़ता है। सबसे पहले अपने घर के अन्दर। फिर अपने व्यवसाय क्षेत्र में। चार आदमियों के बीच में तुम संभल कर नहीं रह सकते हो, तो तुम क्या अपेक्षा करते हो अपने प्रारब्ध को सुधारने की? अगर तुम अपने सोचने और रहने का तरीका नहीं बदल सकते, तो तुम कैसे अपना प्रारब्ध बदल सकते हो? कभी इससे झगड़ा,

कभी उससे झगड़ा। सबके साथ मिल-जुलकर रहो। तुम्हारे बारे में सब कहें कि ये मिस्टर फलाना-फलाना बहुत अच्छा आदमी है। हमेशा मुस्कुराता रहता है, किसी का बुरा नहीं चाहता। तब क्या होगा, दु:ख-सुख में वे तुम्हारे साथ रहेंगे। कभी कुछ गड़बड़ भी करोगे तो बोलेंगे, 'नहीं, वह अच्छा आदमी है, उसको तंग मत करो।'

दुनिया में आदमी को सबसे पहले अपने जो व्यक्तिगत कर्म हैं, उनको सुधारना पड़ता है। व्यक्तिगत कर्म का मतलब होता है, अपने परिवार में जिस तरीके से तुम सोचते हो। जो व्यक्ति तुम्हारे सबसे नजदीक है, वह माँ है। अब उसके साथ तुम्हारी पटती नहीं है। और मजे की बात है कि तुम उसके शरीर के अंग हो और उसके ही उत्पाद हो। और जिस बाप की बूँद से, अरबवीं कोशिका से तुम पैदा हुए हो, उसके साथ भी तुम्हारी पटती नहीं है। तुमको डिजाइन तो बाप ने दिया है और उसके साथ तुम्हारी पटती नहीं है। दिन-रात खट-पट चलती है। तो यह जो जीवन में शान्ति का आदर्श होता है, घर से शुरू होना चाहिए। जिसको जो करना है करे, हमको किसी से कोई मतलब नहीं है। हमारे लिए तुम भी ईसा मसीह, वह भी ईसा मसीह। घर के अन्दर—*ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।* सबसे पहले अपने आपको बदलो, ठीक? उसके बाद अपने परिवार में तत्काल वातावरण को बदलो। उसके बाद समाज के वातावरण को बदलो। तब जाकर पुरुषार्थ या प्रारब्ध की बात करो।

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दतिमातरम्।
तथा पुराकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति॥

प्रारब्ध को बदलना बहुत मुश्किल है। हमारे ऋषि-मुनि कहते हैं, धनुष पर चढ़ा हुआ तीर वापस आ सकता है, पर धनुष से निकला हुआ तीर वापस नहीं आता। धनुष में जो चढ़ा हुआ तीर है, उसे वापस कर सकते हो, अगर तुम्हारे पास बहुत अच्छी मानसिक ताकत है तो। तरकस में रखा हुआ तीर अभी सुरक्षित है। पर धनुष से संधान किया हुआ तीर वापस नहीं आ सकता। ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं—संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध। तुम तो प्रारब्ध की बात कर रहे हो, पहले संचित की बात करो। संचित कर्म जो है, पिस्तौल में रखी गोली है। क्रियमाण कर्म साधा हुआ पिस्तौल है और प्रारब्ध कर्म छूटी हुई गोली है, वह वापस नहीं लौट सकती। *'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्।'*

कैकेयी क्या दशरथ की प्रारब्ध थी?

हाँ, उसको प्रारब्ध कह सकते हो। पर हमारे यहाँ कहते हैं, वह पूर्व नियोजित प्रारब्ध था। रामायण कहती है कि देवताओं ने उसकी योजना बनायी थी कि ये दशरथ सम्राट् तो जरूर हैं, पर ये रावण को कुछ नहीं करेंगे, क्योंकि लंका और अयोध्या के बीच एक युद्ध निषेध संधि थी। दशरथ के पूर्व, अयोध्या और लंका के बीच युद्ध निषेध संधि हुई थी, जिसमें निश्चित हुआ कि अयोध्या लंका पर हमला नहीं करेगी। अब जब सम्राट् ही नहीं करना चाहे, जब अमेरिका ही ईरान पर हमला नहीं करना चाहे, तो कौन क्या कर सकता है?

दशरथ रावण पर हमला संधि के कारण कर नहीं सके। तो देवताओं ने कहा, ऐसा करो, इनके लड़के को भेज दो जंगल, देश निकाला। निष्कासित राजकुमार का अयोध्या से कुछ लेना-देना नहीं है। अब वे लंका पर चढ़ाई करें या रावण को मारें या आग लगाएँ, अयोध्या से उनको कोई मतलब नहीं है। अब देखो, जब लंका पर हमला हुआ, तब हिन्दुस्तान की कोई सेना वहाँ मौजूद थी क्या? सिन्धु के लोग थे क्या? नेपाल के लोग थे क्या? अयोध्या की सेना थी क्या? यह सम्राट् की सेना को क्या हो गया? क्यों नहीं गई वहाँ? क्योंकि संयुक्त राष्ट्रों ने कहा कि इराक हमले का हम समर्थन नहीं करते। किसी ने सेना नहीं भेजी। केवल सुग्रीव के बल पर पूरा काम हुआ। और सुग्रीव के बल पर जो सारा काम हुआ, वह तब हुआ जब बालि को खतम किया गया, क्योंकि बालि की भी रावण के साथ युद्ध निषेध संधि थी।

तो तीन रानियों की यह जो तुम प्रारब्ध की बात बोलते हो, कहते हैं कि यह पूर्व नियोजित था। लोगों ने इसकी कल्पना की थी कि पहले रामजी को वे मिथिला ले जाएँगे और वहाँ सीताजी से उनकी शादी करा देंगे। जब सीताजी का स्वयंवर हुआ, सब जगह तो निमंत्रण गया, केवल अयोध्या निमंत्रण नहीं गया। रावण भी आया था, फिर अयोध्या निमंत्रण क्यों नहीं भेजा था? आखिर अयोध्या बगल ही में थी। राजनैतिक कारण रहा होगा। और विश्वामित्र को मालूम था कि अयोध्या तो निमंत्रण जाएगा नहीं, इसलिए किसी बहाने वशिष्ठ जी को पटा कर वे रामजी को ले गये। तो राम जी, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म, सीता जी की शादी और राम जी का वनवास पूर्व नियोजित था। रावण को मारने के लिए।

रावण एक बहुत बड़ा पण्डित ही नहीं, बल्कि वह एक समानांतर शक्ति था। हर साम्राज्य की एक समानांतर शक्ति होती है। जैसे पहले सोवियत संघ

और अमेरिका समानांतर शक्तियाँ थे, पर अब वे तो समानांतर शक्ति नहीं रहे। अब अमेरिका की समानांतर शक्ति कौन होगा? हिन्दुस्तान और चीन की दौड़ चल रही है। देखते हैं कौन आगे बढ़ता है। वह समानांतर शक्ति तो हर युग में होती है। फिर वही होने वाला है, जो पहले हुआ था।

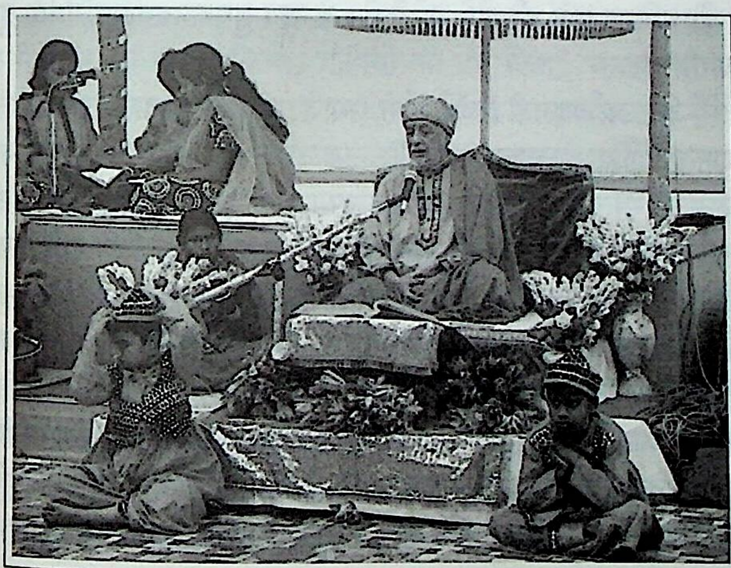
सीता के स्वयंवर में उन्होंने निमंत्रण अयोध्या क्यों नहीं भेजा था?

कहीं तो कुछ लिखा नहीं है। पर हम समझते हैं कि राजा जनक जिस कुल के थे, वे इक्ष्वाकु कुल में जो रघुकुल था उसको एक छोटी जात मानते थे, उन्हें निमंत्रण के लायक नहीं मानते थे। पर निमंत्रण गया नहीं, यह पक्की बात है। जब धनुष टूट गया, उसके बाद निमंत्रण गया।

निमंत्रण जाता दशरथ को, वे तो कितने बूढ़े थे, क्योंकि राम तो राजा नहीं थे, वे तो राजकुमार थे।

हाँ, जब निमंत्रण जाता है, तब बूढ़े लोगों को भी जाता है। जब द्रौपदी की शादी हुई, तब जरासंध को निमंत्रण गया। जरासंध तो बहुत बूढ़ा था। उसके तो पोते, परपोते हो गए थे। निमंत्रण तो राज्य को जाता है। उन्होंने निमंत्रण नहीं भेजा, इसीलिए राम को चुपचाप वहाँ से चोरी से ले गए, पूर्व नियोजित।

– 28 मई 2006





अध्याय 21

योग और बच्चे

बच्चों में योग के प्रति बहुत जागृति है। मुंगेर जिले में बच्चों की एक संस्था है, जिसका नाम है बाल योग मित्र मण्डल। उसके चालीस हजार सदस्य हैं और उसका सारा प्रबंधन बच्चे ही करते हैं। आज के बच्चे और पहले के बच्चों में बहुत फर्क है। आठ-दस साल के अन्दर और भी फर्क होगा। अंग्रेज़ी में एक कहावत है–'चाइल्ड इस द फादर ऑफ मैन' याने बच्चा आदमी का बाप होता है। यह कहावत इस शताब्दी के बच्चों के बारे में लिखी गई होगी, क्योंकि जब तुम लोग बच्चे थे, तब उस समय तुम आदमी के बाप नहीं, बच्चे ही थे। तुम लोगों का बचपन बच्चे की तरह रहा, बाप की तरह नहीं। लेकिन आज के बच्चों की भूमिका बाप की होने वाली है। ये खुद तुमको बतलाएँगे कि तुमको क्या करना है।

जैसे-जैसे उम्र बदलती है वैसे-वैसे समाज, धर्म, सभ्यता और संस्कृति को भी बदलना चाहिए। शाश्वत संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है। मान लो, तुम आठ सौ साल के हो जाते हो, तब क्या हाल होगा तुम्हारा? अभी साठ-सत्तर साल में ही शरीर जवाब दे देता है, तो कल्पना करो कि अगर तुम दो-चार सौ साल के हो जाओगे तो कैसा लगेगा? वैसे ही संस्कृति की भी एक उम्र होती है। केवल यही नहीं, राजनैतिक प्रणाली की भी एक उम्र होती है। ऐसा नहीं कि हमेशा वही संस्कृति और वही धर्म रहे। यह विचार ही गलत है।

जब भगवान बुद्ध बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे थे, तब उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था कि इसकी अवधि एक हजार साल होगी। एक हजार साल पूरे हुए और बौद्ध धर्म गया। ईसाई धर्म की उम्र एक-डेढ़ हजार साल की थी। अब

तो वह चर्च मात्र रह गया है। धर्म नाम की कोई चीज अमेरिका, इंग्लैण्ड या ऑस्ट्रेलिया, कहीं पर है ही नहीं। वहाँ जो भी है वह ईसाई धर्म नहीं, सिर्फ आधुनिक सभ्यता है। इस्लाम कितने दिन चलेगा? चौदह सौ साल पहले पैदा हुआ, अब बीमार हो रहा है। उसी तरह से हमारे धर्म में जात-पात आ गई, विधवाओं को इधर फेंक दिया, शूद्र लोगों को उधर फेंक दिया। यह बीमार धर्म का लक्षण है। जैसे बुड्ढा आदमी कभी गिरता है, कभी खाँसता है तो कभी उल्टी करता है, उसी तरह जब धर्म पुराना होता है, गलती करता है, तब ये सब गन्दी चीजें निकलती हैं। जवान आदमी दौड़कर छलांग लगाता है, जबकि बुड्ढा आदमी लाठी के सहारे चलता है। जो धर्म किसी के ठेके पर चले, राजा या पैसे के ठेके पर चले, वह धर्म बीमार है। जिस धर्म को राज्य और पैसे का आश्रय चाहिए, वह धर्म मिट ही जाए तो अच्छा है।

बच्चों के प्रति हमारे बाप-दादाओं का जो भाव रहा, वह अब बदलना होगा। हमारे जमाने में बच्चे नादान समझे जाते थे और माता-पिता समझदार माने जाते थे। अब बच्चे बहुत कुछ जानते हैं और माँ-बाप को अपने आप को उनके मुताबिक ढालना पड़ेगा। बच्चे बदमाशी कभी नहीं करते हैं। बच्चे शैतानी करते हैं। बदमाशी तो बड़े लोग किया करते हैं। बच्चे तो शैतान होते हैं, कृष्ण की तरह। भगवान श्रीकृष्ण को बदमाश नहीं, शैतान कहेंगे। मटकी फोड़ देते थे, दूध गिरा देते थे, छेड़-छाड़ करते थे। उसको बोलते हैं नटखट।

भगवान श्रीकृष्ण ने जब नन्द-यशोदा के यहाँ से मथुरा के लिए गोकुल छोड़ा, तब उनकी उम्र साढ़े ग्यारह साल थी। भगवान श्रीकृष्ण ने साढ़े ग्यारह साल में कंस को खतम किया, गोपियों को तंग किया, माखन भी चुराया, कालिय का दमन भी किया, कई आततायियों को मारा और राधा से प्रेम भी किया। और ऐसा प्रेम किया कि आज तक हर एक आदमी उन्हीं का नाम लेता है। और वह नाम मन्त्र बन गया, 'राधे-कृष्ण, राधे-श्याम'। साढ़े ग्यारह साल का आदमी नहीं, साढ़े ग्यारह साल का बच्चा! तो इसलिए बच्चों को शैतान कहना चाहिए। शैतान का मतलब होता है, जो बेमतलब कुछ-न-कुछ किया करता है, बिना किसी बुरे इरादे के। जैसे किसी का कपड़ा फाड़ दिया, किसी की चीज उठा ली। इसको बोलते हैं बेमतलब। बदमाश का बुरा इरादा होता है, बच्चों का कुछ इरादा नहीं होता है।

हमारे रिखिया पंचायत की आबादी करीब तेरह हजार है। उनमें से लगभग एक हजार तेरह साल से कम उम्र के बच्चे और बच्चियाँ रोज आश्रम आते हैं

और यहाँ अंग्रेज़ी सीखते हैं। उनको अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए ऑस्ट्रेलिया, आयरलैण्ड और भारत से अच्छी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आती हैं। रविवार छोड़ कर, रोज कक्षा होती है। सब गरीब घर के बच्चे हैं। किसी का बाप रिक्शा चलाता है, तो किसी का बाप ठेला चलाता है, किसी का बाप मजदूरी करता है, किसी का बाप हल चलाता है और कोई शायद ताड़ी बेचता है।

इन बच्चों को अंग्रेज़ी के साथ-साथ कीर्त्तन भी सिखाते हैं। अब तो ये कीर्त्तन के साथ-साथ हवन और वैदिक मंत्रों का पाठ भी करते हैं। ये ब्राह्मण नहीं हैं। इनमें एक आध ब्राह्मण होंगे, बाकी सब तथा-कथित छोटी जात के हैं। सब बहुत शैतान हैं। आश्रम के पेड़ों में जो अमरूद लगे रहते हैं, ये सब पेड़ पर चढ़ कर तोड़ लेते हैं। हम बोलते हैं कि किसी को कुछ बोलने की जरूरत नहीं है। बोलने पर भी वही काम करेंगे, लेकिन छुप कर, तो इससे बेहतर है सामने ही करने दो, क्योंकि जब तक फल हैं तभी तक तो करेंगे। जब सब आम और अमरूद चले जाएँगे, तब क्या लेंगे ये लोग? आखिर हमें अमरूद और आम बेचने नहीं हैं। किसी के खाने के लिए ही तो हैं, अच्छा है ये ही ले जाएँ।

हर रविवार को रिखिया के सब बच्चों को हम लोग फिल्म दिखाते हैं। और ये फिल्में एकदम नवीनतम होती हैं—हैरी पॉटर, होम एलोन, बेबीस् डे आउट, नार्निया, रामायण, चार्ली चेप्लिन और कार्टून्स। पिछले साल बच्चों की जो सबसे अच्छी फिल्म बनी है, लॉर्ड ऑफ द रिंग्स, वह भी दिखाई है। लॉर्ड ऑफ द रिंग्स सचमुच बहुत अच्छी फिल्म है। उसकी कहानी भी बहुत अच्छी है, पर कहानी के अलावा उसकी टेक्नॉलोजी बहुत ही बेमिसाल है।

बच्चों को कीर्त्तन और हवन करना सीखना चाहिए। कीर्त्तन का मतलब होता है भगवान के नाम को लय के साथ गाना, जिसमें आनन्द आए। ये बच्चे शनिवार को महामृत्युञ्जय हवन, शुक्रवार को देवीजी का हवन और सोमवार को शिवजी का हवन करते हैं। आर्य समाज पद्धति में हवन करना सिखाते हैं। आजकल हवन, यज्ञ इत्यादि बहुत प्रचलित हो गये हैं। हमारे देश में ये सब सीखने की बहुत सुविधाएँ हैं और मैं सोचता हूँ कि हिन्दुस्तान में बच्चों का संस्कार ठीक चल रहा है, इसमें कोई गलती नहीं है।

हमारा पूरण भगत बच्चों का दोस्त है। कुत्ते का एक ही नियम होता है, जब वह किसी चीज को बहुत ज्यादा हिलते हुए देखता है, तब घबरा जाता है। चुप बैठोगे तो कुछ नहीं बोलेगा। सब जानवरों की यही आदत है। वे किसी भी वस्तु को चलते देखते हैं, तो थोड़े चौकन्ने हो जाते हैं, नहीं तो कुछ नहीं, आराम से

सोए रहते हैं। हमारा यह कुत्ता बच्चों के साथ रहता है। इसका नाम है पूरण और इसको शिष्टाचार बहुत मालूम है। शिष्टाचार का मतलब होता है, अच्छा व्यवहार। बड़े, बूढ़े और अपनी उम्र वालों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए, उसको कहते हैं शिष्टाचार। पूरण को शिष्टाचार बहुत अच्छे से मालूम है। जब कभी यहाँ अन्दर आता है और मेरे को देखता है, तो कान नीचे कर लेता है। यह जानता है कि ये बड़े आदमी हैं, इसलिए कान को नीचे कर लेता है। और जब यह कुछ गलत काम करता है, तो तुरन्त जमीन पर लेट जाता है, कान को दबा लेता है और बोलता है सॉरी! और बोलने की तो वही उसकी भाषा है—भौं, भौं। कुत्ते के जैसा समझदार जानवर बहुत मुश्किल से मिलता है। कुत्ता बहुत अच्छा दोस्त होता है। कुत्ते का एक ही मालिक और गुरु होता है। उसकी भावना एक ही व्यक्ति पर पूरी-की-पूरी केन्द्रित रहती है। सबके साथ खेलेगा, कूदेगा, हँसेगा, पर उसकी पूरी भावना एक व्यक्ति पर केन्द्रित रहती है।

ऑस्टिन, अमेरिका में एक परिवार है, जिससे हमारी चालीस-पचास साल पुरानी पहचान है। वे अपने शिष्य हैं, उनकी एक लड़की है, नवरात्रि। उसकी माँ मुसलमान है और पिताजी हिन्दू ब्राह्मण और उसने अंग्रेज़ से शादी की है। नवरात्रि योग सिखाती है, मगर उसका योग सिखाने का ढंग हाई-टेक है। उसने योग पर कई फिल्में और कैसेट बनाए हैं और उसने उन कैसेटों को इस तरह से लॉक किया है कि जब तक तुम एक कोर्स पूरा नहीं करते हो, तब तक दूसरा नहीं खुलेगा। उसने बच्चों के लिए भी योग के कैसेट बनाए हैं। आजकल अमेरिका में योग की कक्षाओं को ज्यादा हाई-टेक करने की कोशिश कर रहे हैं, अब वहाँ से योग की कक्षा का मौसम धीरे-धीरे जा रहा है।

आधुनिक सभ्यता और उसके परिणाम

निश्चित रूप से यह मानना पड़ेगा कि आने वाले युग में समाज के लिए योग एक अनिवार्य व्यवस्था होगी, क्योंकि हिन्दुस्तान में हमारी अब तक की जो सभ्यता, संस्कृति, समाज, परिवार, नगर या गाँव थे, अगले तीस सालों में वे सब बदलने वाले हैं। हम चीनी, जापानी, अरबी या अफ्रीकी ढंग की ओर नहीं जाएँगे। हम लोग अमरीकी और यूरोपियन ढंग की ओर जाएँगे। यह हिन्दुस्तान के लोगों का चुनाव है और हमें लगता है कि यही रास्ता ठीक है। हमको मुगलों के जमाने में नहीं रहना है। अब सौ साल के बाद इसका परिणाम अच्छा होगा या खराब, यह तो कोई सोच नहीं रहा है।

हर एक संस्कृति का एक परिणाम होता है और इस आधुनिक संस्कृति का भी निश्चित रूप से एक परिणाम होगा। पानी भी पीते हो तो पेशाब उसका परिणाम होता है। परिणाम तो सब चीजों का होता है। पर यह जो पश्चिम की आधुनिक, वैज्ञानिक और हाई-टेक संस्कृति है, इसका सामाजिक और ऐतिहासिक परिणाम क्या होगा? यह तो आज कोई सोच नहीं पाता है। और किसी को सोचने की फुरसत भी नहीं है। आइन्स्टीन ने एक जगह लिखा है–'जब सबसे पहले इंसान लड़ा, तो लाठी से लड़ा था और उसकी आखिरी लड़ाई भी लाठी से होगी।' इसका मतलब क्या है, यह कहना और विश्वास करना भी मुश्किल है। अगर आज हम सोचें तो विश्वास नहीं होता कि आगे भी लड़ाई हम लाठी से लड़ेंगे।

हमारे पूर्वजों ने अट्ठारह पुराणों में सत्, त्रेता, द्वापर और कलियुग की महिमा लिखी है। तुम लोग जरूर पढ़ना। पुराणों में युगों की काल-व्यवस्था के बारे में लिखा है, उनकी अवधि भी बतायी है। कलियुग के चार लाख बत्तीस हजार, और उसके बाद द्वापर, त्रेता एवं सत् युग के साल क्रमशः दुगने होते जाते हैं। कितने युगों का एक मन्वंतर होता है, कितने मन्वंतरों का एक कल्प होता है, सृष्टि कब शुरू हुई, यह सब पुराणों में लिखा हुआ है।

चार युगों में चार पुरुषार्थ होते हैं–अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। कलियुग के केन्द्र हैं–अर्थ और काम। काम का मतलब होता है इच्छा और अर्थ का मतलब होता है काम का हेतु। धन, मकान, गाड़ी, टेलिविज़न या बाल-बच्चे, ये सब काम के हेतु हैं। कलियुग में अर्थ और काम प्रधान हैं, धर्म और मोक्ष गौण हैं। कोई भी व्यक्ति भगवान से धर्म या मोक्ष माँगने के लिए नहीं जाता है, न देवघर मंदिर में, न वैष्णव देवी में, न तिरुपति में और न ही बद्रीनाथ में। मंदिरों की तो बात छोड़ो, भगवान के पास अगर कोई गलती से जाएगा भी तो बोलेगा, 'भगवान, बस एक बेटा दे दो।' धर्म और मोक्ष का मतलब आज आदमी की समझ में नहीं आता है। न समझ सकते हैं और न ही समझा सकते हैं। लेकिन अर्थ और काम का मतलब सबकी समझ में आता है, ठीक-ठीक समझ में आता है।

संत पुरुष कहते हैं कि इच्छाओं का कोई अंत नहीं है। कोई आदमी हाई कोर्ट में वकील बनना चाहता है, बाद में वह सुप्रीम कोर्ट में जाना चाहता है, फिर वह न्यायाधीश बनना चाहता है और उसके बाद मुख्य न्यायाधीश। रामायण में सुरसा को इच्छा का प्रतीक बताया गया है। इच्छा या काम एक

ऐसी चीज है, जिसका कभी अन्त नहीं होता। और अर्थ एक ऐसी चीज है कि जहाँ धन-सम्पत्ति अधिक होगी, वहाँ व्यसन जरूर आएँगे। जिस व्यक्ति के पास सम्पत्ति और साधन हैं, उसे यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए। सम्पत्ति का क्या मतलब है? जैसे अगर हमारे पास दस लाख रुपये हों, तो हम कोई भी चीज बाज़ार से खरीद सकते हैं, किसी भी होटल में जाकर बैठ सकते हैं, कुछ भी कर सकते हैं। किसी चीज को प्राप्त करने के साधन को अर्थ कहते हैं। जब सम्पत्ति अधिक होती है, तब व्यक्ति के मस्तिष्क पर असर पड़ता है और व्यसन आते हैं। मस्तिष्क में जो विद्युत-चुम्बकीय परिपथ होते हैं, वे धीरे-धीरे कमज़ोर होते जाते हैं। जैसे बिजली में कम वोल्टेज होता है, वैसे दिमाग में भी कम वोल्टेज होने लगता है।

जब आदमी गरीब रहता है, तब वह दिमाग में बहुत आगे बढ़ता रहता है। दिन-भर ठेला चलाओ, माल ढोओ, हल जोतो, तब वोल्टेज बहुत ऊँचा रहता है। जब आदमी के पास खूब पैसा होता है, तब उसका दिमाग अलसा जाता है और उसके विद्युत-चुम्बकीय परिपथ कमज़ोर पड़ते हैं। उसको आज की वैज्ञानिक और चिकित्सकीय भाषा में विषाद कहते हैं। और वह विषाद इतना जबरदस्त होता है कि जब वह आता है, तब उसको दूर करने के लिए गांजा, कोकेन, छोकरी वगैरह चाहिए होती है। सीधी-सीधी बात बोलता हूँ। बहुत होशियार रहना पड़ता है। इसलिए हम लोगों के यहाँ ऋषि-मुनि लोग कहते हैं कि जो सम्पत्ति वाले हैं, उन लोगों को धरम-करम में मन लगाना चाहिए। नहीं तो सब सरक जाएँगे।

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥

भगवान बुद्ध ने चौंतीस-पैंतीस साल में अपना घर छोड़ा और अस्सी साल की उम्र में मरे। उनका मंत्रालय पैंतालीस साल चला। हम लोगों का भी तो मंत्रालय ही है! ईसा मसीह का मंत्रालय छः साल चला। लेकिन भगवान बुद्ध का पैंतालीस साल चला। उसी की वजह से इस देश में अहिंसा पर जोर दिया गया। युद्ध नहीं लड़ना, युद्ध नहीं करना। परिणाम आज देख रहे हो, सात सौ साल से हम हारते ही जा रहे हैं। पिछले पाँच-छः सौ सालों में कभी जीते हैं क्या? हुणों, मुगलों और अंग्रेज़ों से हम हारे, यह परिणाम है बौद्ध धर्म की अहिंसा का।

बुद्ध स्वयं इतने महान् पुरुष थे, इतनी अच्छी बातें उन्होंने बतायीं। कोई गलत बात नहीं बतलायी। वे परम पवित्र थे और उनका इरादा भी अच्छा था। जो कुछ भी उन्होंने कहा, समाज को उसकी जरूरत थी। लेकिन अच्छी बात का परिणाम भी देखो तुम। हुणों से हम हारे। हुणों के आक्रमण के बाद तो बौद्ध धर्म तबाह हुआ। बौद्ध धर्म के पतन का कारण क्या था? हुणों का आक्रमण। छठी शताब्दी में जब हर्षवर्धन राज कर रहा था, हुणों ने उसकी बहन राजश्री का अपहरण किया। यह उस समय की विचारधारा का परिणाम है, तो आज का परिणाम क्या होगा, यह कहना बहुत मुश्किल है।

पश्चिम के देशों में संवैधानिक अराजकता नहीं है, लेकिन सामाजिक अराजकता है। पश्चिम में क्या ऐसी कोई चीज है, जो समाज को नियंत्रित करती है? यूरोप, अमेरिका आदि देशों में क्या उनके परिवार और समाज को नियंत्रित करने के लिए कोई राजा या प्रणाली है? शादी की पद्धति के कायदे-कानून कैसे होने चाहिए? शादी टूटने के कायदे कैसे होने चाहिए? इन सब चीजों में अनियंत्रण को सामाजिक अराजकता कहते हैं। सामाजिक अराजकता अलग है, राजनैतिक अराजकता अलग है और बाजार की अराजकता अलग है। संवैधानिक और राजनैतिक अराजकता एक ही हैं।

तुम यह नहीं कह सकते कि पश्चिम में अराजकता नहीं है। हमारे यहाँ भी अराजकता है। देवघर में चार दिनों से बिजली नहीं है। इसको प्रजातांत्रिक अराजकता कहेंगे। पश्चिम में राजनैतिक अराजकता तो नहीं है, पर एक दूसरे स्तर पर अराजकता है। और वहाँ की अराजकता हिन्दुस्तान में न आए, बस इसका ख्याल रखना, नहीं तो यह अराजकता सब चौपट कर देगी। राजा, न्यायाधीश या पुलिस अधिकारी मर जाए, तो कुछ नहीं होता है, पर अगर परिवार का बड़ा मर जाए, तो तुम्हारा देश चौपट हो जाएगा। अगर एक देश में सब परिवारों के बड़े लोग मर जाएँगे तो क्या होगा? वही जो गीता के पहले अध्याय के अंतिम बारह-तेरह श्लोकों में अर्जुन ने कृष्ण से कहा है–

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥1.43॥

भारत में योग का भविष्य

यद्यपि योग का उद्भव भारत में हुआ है, योग आज यहाँ बहुत प्रारम्भिक अवस्था में है। यद्यपि भारत में ही लोगों ने योग के महत्त्व को पहचाना, उस

पर पुस्तकें लिखीं, लेकिन आम आदमी के जीवन में यहाँ योग का कोई स्थान नहीं रहा। भारत योग की जन्मभूमि है। योग भगवान बुद्ध के समय पर भी था और उनके पहले से भी था। वेदों में भी उसका उल्लेख आता है। करीब पाँच हजार साल पहले से योग के हिन्दुस्तान में होने का पूरा उल्लेख है। हड़प्पा में जो अवशेष मिले हैं, जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें योग के आसन मिले हैं। उनको करीब-करीब पाँच हजार साल पुराना माना गया है। हो सकता है और भी पुराने हों।

यहाँ लोगों ने योग के बारे में बहुत विचार किया। इस सम्बन्ध में योग वाशिष्ठ बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। वशिष्ठ जी का श्रीराम को योग का उपदेश ही योग वाशिष्ठ कहलाता है। पतञ्जलि ने जो लिखा, वह योग सूत्र हुआ। कृष्ण ने अर्जुन को जो कहा, वह गीता है। उसमें सब योग ही तो हैं। परन्तु हिन्दुस्तान का समाज इस तरह से संगठित था कि यहाँ योग की जरूरत पड़ी नहीं। अब गाँव में रहते हो, खुले में सोते हो, खुले में नहाते हो, खुले में टट्टी जाते हो, खुले में घूमते हो, दिनभर पसीना बहाते हो, दिन में थोड़ा खा लेते हो और दिनभर मेहनत करते हो, तो योग की क्या जरूरत है?

योग की जरूरत वहाँ होती है, जहाँ लोगों के पास भोग और रोग होता है। भोगी और रोगी को योग चाहिए। जहाँ भोग और रोग हैं, वहाँ योग ओषधि के रूप में आता है। हिन्दुस्तान के लोग गरीब जरूर थे, झोपड़ी में रहते थे, टॉयलेट इनके पास नहीं था, सेप्टिक सिस्टम इनके पास नहीं था, फिर भी गाँव में आराम से जिन्दगी गुजार लेते थे। इसी हिन्दुस्तान में तो योग की अवधारणा आयी, योग पर विचार किया गया। कुछ लोगों ने योग किया भी होगा। ऐसी बात तो नहीं कि हिन्दुस्तान में अमीर लोग थे ही नहीं। पर आम आदमी प्राकृतिक जीवन से जुड़ा हुआ था। अब उस प्राकृतिक जीवन को तुम गरीबी, पिछड़ापन, सादा और कठोर जीवन भी कह सकते हो। मगर हम उसको प्राकृतिक जीवन बोलते हैं। पश्चिम के लोग बोलेंगे, भारतीय बहुत पिछड़े हैं, ठीक बात है। रिखिया को कोई विकसित नहीं बोल सकता। यह तो पिछड़ा है ही, पर यहाँ प्राकृतिक जीवन है।

यहाँ हमारे पास बाकायदा क्लिनिक और डॉक्टर हैं। पर यहाँ कोई मधुमेह या हृदय का रोगी आया ही नहीं है। कैसे मरीज आते हैं? खाँसी, सर्दी, खुजली या दस्त के मरीज। कोई खाना बनाते जल गया या किसी के पैर में चोट लग गई। अब किसी ने मेरे को कहा कि स्वामीजी, आप यहाँ बड़ा

अस्पताल खोल लीजिए। खोल तो लेंगे, पर किसके लिए? एक आध कोई गंभीर रोगी आ भी जाए, तो उसको देवघर भेज देंगे। उसको रखने की क्या जरूरत है? यहाँ के लोग सवेरे उठते हैं, मैदान जाते हैं, वहीं नहाते हैं और नीम के दातून को आधे घण्टे चबाते रहते हैं। घर में आते हैं, चना खाते हैं और देवघर जाकर मजदूरी की लाइन में खड़े रहते हैं।

वहाँ से दिनभर की मेहनत के लिए उनको चुन लिया जाता है और शाम को सत्तर-अस्सी रुपये घर ले आते हैं। बीबी-बच्चों के साथ रहते हैं, मजा करते हैं। कोई बोतल भी पी लेता होगा, क्या मालूम। कोई फर्क नहीं पड़ता। बीड़ी भी पी लेता होगा, पर उनको मधुमेह नाम की बीमारी नहीं है। मधुमेह की बीमारी शक्कर से नहीं होती, वह खोपड़ी से पैदा होकर स्नायु-तंत्र को बिगाड़ती है। अनुकम्पी और परानुकम्पी स्नायु-तंत्र मस्तिष्क से नियंत्रित होते हैं और ये पेन्क्रियाज़, एड्रीनल एवं थायरॉइड ग्रंथियों को प्रभावित करते हैं।

हम सन् 1943 में ऋषिकेश गए थे। हमारी उम्र अट्ठारह-बीस की थी, हम एकदम जवान थे। बीस-पचीस मील दौड़ना हमारे लिए बहुत आसान था। उस समय वहाँ बिजली, पानी, अस्पताल, दवाई, कुछ नहीं था और न ही रहने के कमरे थे। हम सवेरे नौ-दस बजे ऋषिकेश शहर के काली कम्बलीवाले क्षेत्र जाते थे। हाथ में एक कपड़े का झोला और एक छोटी बाल्टी पकड़कर खड़े हो जाते थे, जिसमें चार रोटी और मूँग की दाल मिलती थी। फिर गंगा किनारे बैठ कर उसको खाते थे और वापस लौट जाते थे। पेट को फिर चौबीस घण्टे छुट्टी रहती थी। तुम लोग तो दिन में तीन-तीन बार बेचारे पेट को काम देते हो। जितनी बार भोजन करोगे, उतनी बार पाचन तंत्र काम करेगा। हमारा पाचन तंत्र एक ही बार काम करता था।

हमारे देश में योग ने अभी तक उड़ान नहीं भरी है। गाँव में तो योग का मौका है ही नहीं। अब ये जवान लड़के कभी मजाक में त्रिकोणासन या शीर्षासन कर लें तो बात दूसरी है, पर इनको इसकी जरूरत नहीं है। कैवल्यधाम ने लोनावला में महाराष्ट्र सरकार की मदद लेकर बहुत काम किया। धीरेन्द्र ब्रह्मचारी ने मदद लेकर दिल्ली में काम किया। स्वामी शिवानन्द जी ने ऋषिकेश में काम किया और हमने मुंगेर में। हमने दुनियाभर में योग का प्रचार-प्रसार किया, लेकिन हिन्दुस्तान में योग ने उड़ान नहीं भरी है।

हिन्दुस्तान में कोई योग कर भी रहा है, तो उसका एक ही कारण है। शहर में रहने वाला आदमी बीमार हो गया है, जिसके कई कारण हैं। सबसे पहली

चीज तो यह कि वह बेचारा अपनी जड़ों से उखाड़ कर किसी और जगह रोपा गया है। मद्रासी आदमी भागलपुर में, तो भागलपुर वाला आदमी बैंगलूर में और बैंगलूर का आदमी गुवाहाटी में रहने जाता है और वहीं रहता है बीस साल। गाँव का आदमी शहर में रहता है। बीबी रहती है यहाँ, मियाँ रहते हैं वहाँ। हमारे यहाँ तो कभी ऐसा सोचा ही नहीं गया था। हमारे देश में मियाँ-बीबी तो दायें और बायें हाथ की तरह एक-दूसरे के बगल चौबीस घण्टे मंडराते ही रहते थे।

भारतीयों के जीवन में एक भी पल ऐसा नहीं होता था जब बीबी कहीं और हो। केवल जब वह गर्भवती होती, तब मायके चली जाती थी। हिन्दुस्तान की संस्कृति में पति और पत्नी को 'तुम कैसी हो, मैं तुम से प्यार करता हूँ', यह सब बोलने का मौका ही नहीं मिलता था। 'मेरे को तुम्हारी बहुत याद आती है।' अरे, याद कैसे आएगी? हमेशा मेरे सामने जो खड़ी रहती हो! याद तो उसकी आती है जो अपने पास नहीं रहती है। यह यहाँ की संस्कृति थी, जहाँ पति और पत्नी को बेकार की बातें सोचने का वक्त ही नहीं मिलता था। अब वह परम्परा टूट गई है और ये लोग बीमार पड़ गए हैं। यह एक कारण है।

भोजन दूसरा कारण है। शहर में क्या चीज खाते हो? चाँदनी चौक में रस-मलाई या मेक्डोनाल्ड और केण्टकी चिकन में कुछ-न-कुछ। ठीक है, पैसा है तो खाओ। पर ये सब चीजें स्वास्थ्य के लिए अच्छी नहीं है, बल्कि नुकसानदायक हैं। पर क्या करें? किस-किस को रोकें? हिन्दुस्तान का आदमी जो आज शहर की सभ्यता में गया है, नौकरी-पैसे की वजह से या अपनी अभिलाषाओं के कारण, वह वहाँ जाकर बीमार हो गया है। योग उसके लिए जरूरी है। इसलिए बड़े शहरों में तुमको योग वाले मिल जाएँगे।

अगर हिन्दुस्तान के लोग अपने पूर्वजों द्वारा निर्धारित नीति-नियमों पर चलें, तो योग की जरूरत हिन्दुस्तान को ज्यादा नहीं है, क्योंकि हमारे वैदिक धर्म के अनुसार जो परिवार, पति-पत्नी, भाई-बहन वगैरह के सम्बन्धों की व्यवस्था है, वह शत-प्रतिशत न सही, मगर फिर भी काफी हद तक आदमी की रक्षा करती है। पश्चिम में यह नहीं है। वहाँ की पारिवारिक व्यवस्था किसी की रक्षा नहीं करती है। वहाँ के आदमी को अपना बचाव खुद करना होता है। जिसको वे लोग सामाजिक सुरक्षा कहते हैं, हम लोग उसको सामाजिक रक्षण कहते हैं। यह हिन्दुस्तान की सभ्यता में आदि काल से आज तक चली आई है, लेकिन अभी टूट रही है। जोर से तो नहीं टूट रही है, मगर टूटने लग गई

है। और इस पर हम लोगों को विचार करना चाहिए। विचार तुम लोगों को करना है। आम आदमी को विचार करना होगा कि जो-जो बुराइयाँ आज की परिस्थितियों के कारण समाज में घुस कर उसे प्रभावित कर रही हैं, उनसे समाज की रक्षा हमें किस प्रकार करनी चाहिए?

मैं ऋषिकेश आश्रम से निकलने के बाद पहले भागलपुर ही आया था। वहाँ मैं शिव भवन में रहता था। मैं सन् 1956 में वहाँ आया था, इस वर्ष पूरे पचास साल हो जाते हैं मेरे बिहार प्रवेश के। वैसे पहली बार मैं बिहार गुरुजी के साथ सन् 1950 में आया था। उसके बाद जब ऋषिकेश छोड़ा, शिव भवन के लोग अच्छे थे तो वहाँ रह गए। अब उस पीढ़ी के लोग वहाँ से सब चले गए। 1956 में भागलपुर काफी छोटा था और वहाँ बंगाली लोग बहुत रहते थे। इसलिए बंगालियों के साथ बहुत दोस्ती थी। फिर भागलपुर से मुंगेर गए। हम भागलपुर में रह सकते थे, क्योंकि भागलपुर में जो पार्टी थी, वह काफी समर्थ थी। उनके पास जमीन, पैसा और शिष्य, सभी थे। परन्तु वे लोग मेरे से बहुत चिपके रहते थे और मेरे को किसी से चिपकना पसंद नहीं है।

साधु यार किसका, दम लगाया खिसका।

साधु किसी का यार नहीं होता है। यार बनना हो तो घर ही अच्छा था। इसलिए हमने भागलपुर का विकल्प छोड़ा और मुंगेर चले गए। वहाँ हमें गोयनका जी मिले और उन्होंने हमें आनन्द भवन में ठहराया। वे हमसे कभी मिलने नहीं आते थे। बस, खाने और रहने का इन्तजाम कर देते थे। साधु को तो इतना ही चाहिए। हम को दो बार, दो रोटी मिल जाए, बस काफी है। और क्या चाहिए? बाकी किसकी यारी, किसकी दोस्ती? ऐसे आदमी चाहिए।

स्त्रियों के लिए योग के कई आयाम हैं। एक आयाम तो गर्भावस्था और प्रसव के दौरान होने वाली समस्याएँ हैं, उनको आसन से ठीक कर सकते हैं। यहाँ बगल में एक गर्भवती महिला थी, जिसको दर्द शुरू हुआ और उस समय यहाँ एक महिला योग शिक्षिका थी, जिसने उसको साधारण आसन बतलाए और वह एक दिन में ठीक हो गई। कहीं कुछ मांसपेशियों में तनाव रहा होगा। इसकी जानकारी के लिए अध्ययन करना चाहिए। गर्भवती महिलाओं और स्त्रियों की अन्य समस्याओं पर योग की बहुत पुस्तकें निकली हैं।

महिलाओं में दूसरी समस्या है मोटापा। आज के जमाने में शहर में रहने वाली लड़कियों के लिए, जो दिनभर बैठी रहती हैं, योग बहुत आवश्यक है।

वे गाँव की औरतों की तरह काम नहीं करती हैं, तो प्रसव में दिक्कत होती है। इसलिए अस्पताल में ऑपरेशन भी ज्यादा होते हैं। इसको हल करने के लिए, प्रसव को आसान बनाने के लिए, आसन, प्राणायाम और बंधों की व्यवस्था होनी चाहिए। जब तुम पहाड़ चढ़ते हो, तब जोर से हाँफते हो, क्योंकि जब तुम ऊपर चढ़ते हो, तब खून को ज्यादा संचरण करने की जरूरत पड़ती है। अगर खून की नलियाँ खून के बलपूर्वक प्रवाह को नियंत्रित नहीं कर पाती हैं, तो उस समय हाँफने से अंदर में नलियाँ फूलती हैं और खून का आसानी से संचरण होता है। जब तुम साँस जोर से अन्दर-बाहर फेंकते हो, तब उस हाँफने से तुम्हारे पूरे शरीर में जितनी भी नलियाँ हैं, वे थोड़ी-सी खुलती हैं और यह प्रसव के समय आवश्यक है, क्योंकि प्रसव के वक्त सर्विक्स का अपने आप खुलना बहुत जरूरी है।

गर्भाशय के मुँह को सर्विक्स कहते हैं। केवल रासायनिक चक्र के समय वह खुलता है, बाकी समय बन्द रहता है। अब उसके खुलने के दो कारण हैं। एक नियमित शारीरिक मेहनत, जैसे गाँव की औरतें करती हैं। बोझा ढोती हैं, जमीन में सोती हैं, नीचे झुकती हैं, उकड़ु चलती हैं। यह शहर में नहीं हो सकता, इसलिए उनको दूसरा उपाय करना होगा। वह है आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध। अश्विनी मुद्रा, मूल बंध और वज्रोली मुद्रा, ये सब गर्भाशय को संकुचित और प्रसारित करने मे मदद करते हैं। एक दिन में नहीं होगा, अभ्यास करना पड़ेगा। आसान प्रसव के अभ्यास, प्रसव की जटिलताओं के लिए अभ्यास, इन पर अनेक पुस्तकें हैं, जिनको तुम्हें पढ़ना चाहिए।

पाश्चात्य संस्कृति से यह मेडिकल सभ्यता आई है। यह चरक-सुश्रुत या धन्वन्तरी से नहीं आई है। पाश्चात्य संस्कृति में बच्चे का छठी या अन्नप्राशन नहीं कराते हैं। वहाँ पाँचवें-छठे दिन से उसको चिकन सूप पिला देते हैं। तुम्हारे यहाँ नहीं करते हैं। तुम्हारे यहाँ छः महीने तक तो बेचारे को माँ का दूध पीना पड़ता है। वह नहीं हुआ, तो गाय का दूध पीना पड़ता है। उनके यहाँ ऐसा नहीं है। वहाँ गर्भावस्था के समय में आराम करने को बोलते हैं। पर यहाँ गाँव में तो कोई जटिलता नहीं होती है।

हमारे यहाँ रेजायें आठवें-नवें महीने में भी आती हैं, क्योंकि वे मजदूर हैं, छुट्टी नहीं ले सकती हैं। तो हम उनको बोझा उठाने के बदले और कुछ हल्का काम दे देते हैं। तबियत पूछने पर कहती हैं, 'स्वामीजी, दर्द हो रहा है।' तो गाड़ी में बैठाकर नर्सिंग होम पहुँचवा देते हैं और सवेरे में वापस आ जाती हैं

बचुआ को लेकर। अब यह होना चाहिए। गर्भावस्था जीवन की एक सामान्य अवस्था होनी चाहिए। वह जन्म और मृत्यु के बीच की घड़ी नहीं होनी चाहिए। वह अवस्था भारत की ग्राम्य संस्कृति में अभी भी है। और शहरों की उन औरतों में भी है, जो दिनभर काम पर जाती हैं, पैदल चलती हैं और घर का काम करती हैं।

ऐसी औरतों को शायद गर्भावस्था में आराम करना चाहिए। पर आराम करने का मतलब यह नहीं कि आसन न करें। ये दो अलग चीजें हैं। आसन तो तुम सिर्फ आधा घण्टा करते हो, दिनभर तो नहीं करते हो। दिनभर आराम करने से कोई नुकसान नहीं है। शहर में कई लड़कियाँ हैं, सवेरे घर से निकलती हैं, बस-ट्रेन पकड़ती हैं, फिर अपने दफ्तर जाती हैं। दफ्तर में काम करती हैं, वहाँ दो-तीन मंजिल चढ़ना पड़ता है। दिनभर काम करके सब्जी लेकर घर वापस आती हैं। ऐसी औरतों को तो जरूर आराम करना चाहिए। तो इन सब चीजों का अध्ययन होना चाहिए और योग विद्या में इस विषय पर ज्यादा लेख लिखे जाने चाहिए, क्योंकि स्त्रियों के लिए योग की बहुत ज्यादा आवश्यकता है। वैसे खेल-कूद में भी योग सिखाते हैं, पर भारत में उसका मार्केट नहीं है। पाश्चात्य देशों में खेल को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं और वहाँ योग सिखाते भी हैं। पर भारत में नहीं है। भारत में औरतों को गर्भावस्था के दौरान अगर योग सिखाओगे, तो उसका मार्केट रहेगा।

विषाद की समस्या

आजकल विषाद एक बहुत बड़ी बीमारी है। जब आदमी कुछ काम नहीं करता है, उसको कुछ करने के लिए नहीं होता है, दिनभर बैठे और लेटे रहता है और उसका दिमाग बहुत जगह घूमता है, तब उसको विषाद होता है। और उस विषाद की अवस्था में वह अस्थिर हो जाता है। एक नौकरी में होगा, उसको छोड़ कर दूसरी में जाने की कोशिश करेगा। एक व्यापार कर रहा होगा, तो सोचेगा, इसको छोड़ कर दूसरे में जाएँगे तो नफा होगा। उसका मन अस्थिर हो जाता है। उसी तरह से वह अपनी बीबी के बारे में सोचता होगा। जब मनुष्य का मन अस्थिर होता है, जब उसको अपना वर्तमान अच्छा नहीं लगता, तब वह किसी काल्पनिक भविष्य में जाता है।

तुम अगर एक ही जगह पर गहरा गड्ढा खोदोगे, तो तुमको कभी-न-कभी पानी जरूर मिलेगा। लेकिन दो जगहों पर थोड़ा-थोड़ा गड्ढा करोगे, तो हो

सकता है कि कहीं भी पानी न मिले। उसी तरह से जब एक जगह पर मन स्थिर नहीं रहता, कई जगहों पर भटकता रहता है, तब कुछ भी हाथ नहीं आता। आज यह विषाद की बीमारी बहुत लोगों को है। आज ऐसे बहुत कम जवान आदमी हैं जो अपनी जगह पर हैं, बाकी सब बेजगह हैं। उनके सपने बहुत बड़े हैं, क्योंकि वे पढ़ते बहुत हैं। मन की तो कोई सीमा नहीं होती है। विचारों, अभिलाषाओं और सपनों की कोई सीमा नहीं होती है। जिनका अपने मन पर कोई नियंत्रण नहीं होता, अपने सपनों और अभिलाषाओं पर कोई नियंत्रण नहीं होता, ऐसे आम लोगों को योग सिखाना होगा।

गीता कहती है कि अर्जुन को विषाद हो गया था। गीता के पहले अध्याय का नाम है–'अर्जुन विषाद योग', यानि कि अर्जुन के विषाद का योग। भगवान को उसका इलाज करते-करते सत्रह अध्याय लगे। बार-बार भगवान उसको समझाते और बार-बार वह पूछता था। आखिर में अट्ठारहवें अध्याय में उसने कहा, 'भगवान अब समझ में आ गया।'

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥18.73॥

भगवान को इतनी कुश्ती करनी पड़ी एक विषाद को दूर करने के लिए। अर्जुन को व्यापार की वजह से नहीं हुआ होगा, परन्तु विषाद तो व्यापार, पढ़ाई या शादी, किसी भी वजह से हो सकता है। मगर अर्जुन को विषाद क्यों हुआ था? जिन्दगीभर वह कौरवों से लड़ने की तैयारी कर रहा था। जिन्दगीभर उसने वही किया। एकदम अव्वल दर्जे का तीरंदाज बना और कैलाश जाकर भगवान शिव से उसने अस्त्र भी माँग लिए थे। उसने लड़ने के लिए सब अस्त्र जमा करके रखे थे।

क्या तुम जानते हो जब अर्जुन युद्ध में उतरा उसकी उम्र क्या थी? कुरुक्षेत्र में जब लड़ाई हुई, उस समय उसकी उम्र 76 साल थी। इतने साल वह तीरंदाजी इसलिए सीखता था कि मैं लड़ाई में कौरवों को मार सकूँ। पर जब लड़ाई का समय आया, वह रोकर बोला, 'नहीं, मेरा दिल धुक्, धुक् कर रहा है। वे सब तो मेरे भाई, मामा, चाचा, ताऊ, साला, भतीजा, भांजा हैं। नहीं भगवान! मुझसे लड़ा नहीं जाएगा।' भगवान बोले, 'इतने साल तक तुम क्या कर रहे थे? तुमको यह अक्ल चालीस-पचास साल पहले क्यों नहीं आई? अब सारी तैयारी हो चुकी है, यहाँ मैदान में लड़ाई के लिए सेना इकट्ठी हो चुकी

है। सबके शंख बज रहे हैं, युद्ध शुरू होने वाला है और तुम बोलते हो लड़ूँगा नहीं। क्या हो गया तुमको?' तब अर्जुन ने कहा, 'भगवन्, मेरे को सब चीजें नकारात्मक दिख रही हैं।'

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥1.30॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥1.31॥

ये तो विषाद के ही लक्षण हैं। और यह अवसाद बहुत सामान्य बीमारी है। किसी को तो बहुत देर के लिए होती है, किसी को दिन में एक-आध बार, तो किसी को शाम को सोने के समय होती है। दिन को हो गया तो सिगरेट पी लेते हैं, शाम को हुआ तो बोतल। और बहुत बड़ा अवसाद हुआ, तो फिर गांजा और कोकेन भी आ जाता है। अमेरिका के लोग कोकेन क्यों लेते हैं? विषाद के कारण। विषाद वह अवस्था है जब मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है, क्या करूँ भगवान? कई लड़कियाँ हैं जो पढ़ती हैं, पर इम्तिहान नहीं देतीं, कहती हैं इस साल 'ड्रॉप कर जाएँगे।'

पेट, घुटने, कमर वगैरह का दर्द, ये तो छोटी बीमारियाँ हैं। इंसान की बढ़ती हुई बीमारी है विषाद। बहुत बड़ी बीमारी है। इसको दूर करने के लिए आजकल लोग कोकेन का नशा लेते हैं। कोकेन को ये लोग बोलिविया में चुनते हैं, वहाँ से उसको लाते हैं कोलम्बिया। वहाँ उसका पाउडर बनाते हैं, भूसा। फिर उसको लाते हैं अमेरिका। वहाँ बहुत सारे हवाई अड्डे हैं जहाँ हवाई जहाज से उतार लेते हैं, माल सरका लेते हैं और हवाई जहाज वापस लौट जाता है। सरकार इस मामले में सख्त है, पर उससे कुछ होता नहीं है। अमेरिका में सब लड़के-लड़कियाँ इसे लेते हैं।

हिन्दुस्तान में भी अट्ठाइस-तीस साल के जवान लड़कों को विषाद होने लग गया है। अब क्यों होने लग गया है? इस पर तुम लोगों को, जो पढ़े-लिखे हो, योग के शिक्षक हो और योग सिखाते भी हो, सोचना होगा कि इसमें आहार, ब्रह्मचर्य, संयम आदि का क्या स्थान है। यह सब जरूर सोचना चाहिए। मैं यह सब इसलिए समझा रहा हूँ कि देवघर, जामतारा या धनबाद जैसे छोटे शहरों से लोग बड़े शहरों में जा रहे हैं और वहाँ उनको इसका सामना करना पड़ रहा है।

हर कोई अवसाद से गुजरता है। साधु-महात्मा भी समाधि की एक अवस्था में ऐसी स्थिति को पार करते हैं, जिस स्थिति को एक विषादग्रस्त व्यक्ति पार करता है। सुन लो ध्यान से। समाधि की एक अवस्था होती है, जिसमें मस्तिष्क की वही स्थिति होती है जो एक विषाद वाले व्यक्ति की होती है। शरीर में कोई रासायनिक या हॉर्मोन की गतिविधि नहीं होती है। पाचन तंत्र, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायु तंत्र, सब चुप। वह स्थिति समाधि की है। उस स्थिति से जब साधक उतरता है, तब उसको सारा संसार फरेब और झूठा लगता है। माँ, बाप, बेटा, भाई, पति, पत्नी, सब झूठे हैं। सब तो मरने वाले हैं। ये कहाँ से आए हैं? ऐसे विचार आने लगते हैं। समाधि के बाद ऐसा बोध होता है। हमको हुआ है। ऐसा ख्याल आता है कि मरने दो न दुनिया को, क्यों परवाह करें। पर हमें गुरु मिल गए। गुरुजी ने कहा, 'तुम ठीक सोच रहे हो। परन्तु रोज़ मेरा हुक्का भर दिया करना वक्त पर। मेरी बीबी के कपड़े साफ कर देना।' वैसे मेरे गुरुजी की बीबी नहीं थी, वे तो साधु-महात्मा थे। मैं तो सिर्फ मजाक के लहजे से बोल रहा हूँ!

गुरुजी आगे बोलते हैं, 'मेरे बच्चे को रोज नहला देना। और ये बर्तन ढंग से साफ करना। तुम जो सोच रहे हो, ठीक सोच रहे हो। दुनिया मिथ्या है, सब बेकार है। मगर मेरा हुक्का मिथ्या नहीं है। मेरी बीबी के कपड़े मिथ्या नहीं हैं। और मेरा बबुआ मिथ्या नहीं है। ये जो भांडे-बर्तन रखे हैं, ये भी मिथ्या नहीं हैं, इनको समय पर साफ करना। और उस गैया के लिए घास भी लेते आना।' अब चेला बोलता है, 'हाँ, गुरुजी! आप ठीक कहते हैं।' और फिर बेचारा सवेरे चार बजे से शाम को आठ बजे तक गाय को नहलाता है, पानी पिलाता है, चराता है, बर्तन साफ करता है, गुरु-माता के कपड़े साफ करता है, गुरु-पुत्र का काम करता है। और बीच में गुरुजी कहते हैं, 'ए, हुक्का नहीं है। तू जा घर अपने, बेकार का है, कुछ काम नहीं करता है।' चेला कहता है, 'नहीं गुरुजी, माफ कर दीजिए।'

बारह साल तक चेला यही करता रहा, विषाद के परिणाम से बच गया। कैसे बचा? निष्काम कर्म करने के कारण। वह अपने लिए थोड़े ही करता था। गुरुजी ने कहा, इसलिए कर दिया। अगर गुरुजी कहते कि नहीं, उतना काम मत करो, तो नहीं करता। निष्काम कर्म का मतलब होता है, दूसरे की इच्छा से कर्म करना, अपनी इच्छा से नहीं। यह गीता के निष्काम कर्म का मतलब बतला रहा हूँ।

अब अपने बारे में बोलता हूँ। हमारे घर में एक हजार एकड़ जमीन थी। दो हजार एकड़ जंगल था। जंगल से भी पैसा मिलता था। हमारे दादा ने जागीर भी ली थी, बहुत मेहनत करते थे, बहुत पैसा निकलवाते थे। पर हम को ऐसा लगा कि सब बेकार है, सब छोड़-छाड़ कर ऋषीकेश आ गए। गुरुजी ने कहा, 'ठीक है, हमारी खातिर करो।' हमारे गुरुजी की बीबी नहीं थी, हुक्का वगैरह भी नहीं पीते थे। वे बेचारे तो कॉफी-चाय तक नहीं पीते थे, मिर्ची भी नहीं खाते थे। सिद्ध महात्मा थे, एम.बी.बी.एस. डॉक्टर भी थे। अंग्रेज़ी में खूब लिखते थे, जिसे हम अनुवाद और टाइप करते थे।

गुरुजी कहते, 'जाओ, लाहौर में जाकर छाप कर लाओ', तो जाकर छाप देते थे। बेचो, तो बेच देते थे। देहरादून जाकर बैंक में पैसा जमा करो, तो जमा कर देते थे। नगर निगम में जाकर सीमेन्ट और चीनी के लिए परमिट लाओ, तो हम वह भी कर देते थे। हमारा यही काम था। दुनिया में भाई, बाप, बेटा क्या है, हम सब भूल गए। गुरुजी का चेक देहरादून में जमा करना है। छब्बीस मील दूर है, कैसे जाएँगे? कितने बजे गाड़ी आएगी? उसी में दिमाग रहता था, बारह साल तक यही किया।

एक दिन हमने गुरुजी से कहा, 'महाराज जी, अगर हमको काम ही करना है, तो घर में जाकर क्यों न करें?' तब गुरुजी ने कहा, 'देखो, घर में तुम अपने लिए करते हो। वहाँ और यहाँ में बहुत फर्क है। वहाँ का पुरस्कार तुमको मिलता है, यहाँ का पुरस्कार मुझे मिलता है, तुम को नहीं।' कर्म का पुरस्कार क्या है? आसक्ति और प्राप्ति है। यह समझकर मैं फिर वहाँ टिक गया।

उन्होंने मेरे को कहा, 'तुम बहुत अच्छा बोलते, लिखते और समझाते हो, तुम जाकर योग सिखाओ।' सन् 1956 में मुझे एक सौ आठ रुपये देकर उन्होंने विदा कर दिया। अभी भी मेरे पास 1956 के वे एक सौ आठ रुपये हैं। हमने 1984 तक योग सिखलाया। उसके बाद हमने कहा, बस, हमको और सिखाना नहीं है।

बात हो रही थी विषाद की। यह बात हमेशा याद रखना कि विषाद ऐसी अवस्था है, जो प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में प्राप्त होती है और विशेषकर उनको जो ऊँची संस्कृतियों से जुड़े रहते हैं।

– 4 जून 2006

ॐ

अध्याय 22

गुरु पूर्णिमा के दिन इन कन्याओं की पूजा इतनी सुन्दर हुई कि किसी की समझ में कुछ नहीं आया, पर भरपूर आनन्द आया। जब समझ में कुछ नहीं आता है, तब उसका मतलब होता है कि बुद्धि हार गई। और जब आनन्द आया, तब उसका मतलब होता है कुछ ऊपर उठा। श्री अरविन्द घोष ने कहा था, 'बुद्धि की सीमा के बाहर जाना है।' आनन्द बुद्धि की चीज़ नहीं, वह बुद्धि के परे है। दुनिया में जितने धर्म हैं, सब में गुरु होते हैं और सब की गुरु-परम्परा है। किसी की गुरु-परम्परा दो हजार साल, तो किसी की अठारह सौ साल, किसी की चौदह सौ साल या चार-पाँच सौ साल पुरानी है। सब की अपनी-अपनी गुरु परम्परा है।

कुछ गुरु-परम्पराएँ ऐतिहासिक हैं और एक गुरु-परम्परा है, जो प्रागैतिहासिक है। हम लोग आज वही प्रागैतिहासिक गुरु-परम्परा मना रहे हैं। यह गुरु-परम्परा पाँच हजार तीन सौ पैंतीस साल पहले की है। तुमको यह इतिहास स्कूल में नहीं पढ़ाया जाएगा, क्योंकि यह प्रागैतिहासिक या पौराणिक है। परन्तु आज मैं तुमको यह बतलाऊँगा। इस गुरु-परम्परा को जन्म देने वाले व्यक्ति हस्तिनापुर और इलाहाबाद के बीच गंगा के किनारे दियारे के टापू में पाँच हज़ार तीन सौ पैंतीस साल पहले पैदा हुए थे। उनका नाम था कृष्ण। उनका नाम कृष्ण इसलिए था कि वे एकदम काले और बदसूरत थे। इतने बदसूरत थे कि जब अम्बिका ने उनको देखा, तो अपनी आँखें बन्द कर लीं। जब अम्बालिका ने उनको देखा, तो उसका शरीर ही पीला हो गया। उनका नाम था कृष्ण और द्वीप में पैदा होने के कारण उनका नाम द्वैपायन पड़ा, कृष्ण द्वैपायन। आज उन्हीं का जन्मदिन है।

यह परम्परा उन्हीं से शुरू होती है। परन्तु इसका एक दूसरा रूप हम देखते हैं। कृष्ण द्वैपायन ने वेदों का सम्पादन, संकलन एवं वर्गीकरण किया। उन्होंने अट्ठारह पुराण लिखे और समस्त वांग्मय लिख दिया। इसलिए उनको कहते हैं व्यास। आज की पूर्णिमा को व्यास-पूर्णिमा कहते हैं। प्रत्येक धर्म में गुरु की परम्परा है, क्योंकि गुरु की परम्परा बहुत आवश्यक है। क्यों आवश्यक है? इसलिए कि हर मनुष्य के अंदर एक गुरु-तत्त्व है। जैसे हर मनुष्य के अन्दर काम और क्रोध तत्त्व हैं, वैसे ही हर मनुष्य के अन्दर गुरु-तत्त्व है। उस गुरु तत्त्व को जगाने के लिए लोग आज के दिन गुरु मंत्र लेते हैं। गुरु मंत्र से उस गुरु-तत्त्व की जागृति होती है।

गुरु-तत्त्व और आकाश-तत्त्व में कोई अंतर नहीं है। इस गुरु-तत्त्व का स्थान है भ्रू-मध्य, जहाँ पर हम सब टीका लगाते हैं। भ्रू-मध्य के पीछे मस्तिष्क में एक छोटी-सी ग्रन्थि है, जिसको चिकित्सा शास्त्र की भाषा में पीनियल ग्रन्थि कहते हैं। योग की भाषा में पीनियल ग्रन्थि को आज्ञा चक्र कहते हैं। यह आज्ञा चक्र, आकाश-तत्त्व है। और आकाश-तत्त्व से ही मनुष्य अध्यात्म की ओर बढ़ता है। जब तक यह गुरु-तत्त्व प्रबल और जाग्रत नहीं होता, इसमें स्फुरण नहीं होता, तब तक मनुष्य को अंतरानुभूति नहीं हो सकती। आध्यात्मिक अनुभूति को अंतरंग अनुभूति कहते हैं और इन्द्रियों की अनुभूति को बहिरंग अनुभूति कहते हैं। इन्द्रियों के द्वारा अनुभव बहिरंग होता है और आत्मा के द्वारा अनुभव अंतरंग होता है।

यह आंतरिक आध्यात्मिक अनुभव बुद्धि, विचारों या किताबों के द्वारा प्राप्त नहीं होता। यह केवल आज्ञा चक्र के जाग्रत होने से पैदा होता है। हमारे शरीर में हर ग्रन्थि से एक प्रतिक्रिया होती है। एड्रीनल, प्रोस्ट्रेट और थायरॉइड ग्रन्थियों की अपनी-अपनी प्रतिक्रियाएँ हैं। उसी तरह से पीनियल ग्रन्थि की एक प्रतिक्रिया है, और वह एक आध्यात्मिक अनुभव है। इसीलिए इस पीनियल ग्रन्थि को लोगों ने अलग-अलग नामों से पुकारा है, जैसे कि भ्रू-मध्य, तीसरी आँख, आज्ञा-चक्र, गुरु-चक्र।

हम लोगों के यहाँ इसका स्थान बिल्कुल साफ बतलाया गया है। अगर दोनों भौहों के बीच की जगह पर सीधे एक कील ठोंक दी जाए, तो वह दिमाग के पीछे, सीधे पीनियल ग्रन्थि को छुएगी। जहाँ रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है और दिमाग शुरू होता है, ठीक वही आज्ञा चक्र का स्थान है। इस आज्ञा चक्र को जाग्रत करने के लिए हमारे यहाँ अनेक प्रकार की साधनायें की जाती

हैं। साधना करने का प्रयोजन आज्ञा चक्र को जाग्रत करना होता है, क्योंकि आज्ञा चक्र या गुरु चक्र या गुरु तत्त्व के जागृत होने के बाद ही हमारा आध्यात्मिक जीवन से सम्पर्क होने लगता है। आध्यात्मिक जीवन बौद्धिक जीवन नहीं है, याद रखो। आध्यात्मिक जीवन एक अनुभव है। आध्यात्मिक जीवन किताबी ज्ञान नहीं है। और न ही वह ज्ञान है जो हमें रामायण और गीता जैसे धर्म ग्रन्थों से प्राप्त होता है। तुम्हें गीता, रामायण, मेरी और अन्य लोगों की किताबों से भी बहुत-सा ज्ञान मिलेगा, लेकिन वह तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन से सम्पर्क को निश्चित नहीं करता। इस बात को याद रखना, बुद्धि आध्यात्मिक जीवन के बारे में जानकारी नहीं दे सकती। बुद्धि एक अवरोधक है, उसकी एक सीमा है और तुम्हें बुद्धि को पार करना होगा। बुद्धि का मतलब है तुम्हारे सोचने, तर्क करने और चिन्तन-मनन करने की प्रक्रिया।

बुद्धि जो है, वह संसार की चीज़ों को ठीक तरह से समझती है। वह तर्क-वितर्क, गणित, भौतिकी, रसायन शास्त्र, भूगोल, इतिहास और रिश्तों को समझती है। बुद्धि जनम और मृत्यु को समझती है, मगर आत्मा को नहीं समझती, जो कि ईश्वर का अंश है। परब्रह्म परमात्मा, जिसने सारी सृष्टि की रचना की, जिसने मुझको और तुमको बनाया, जलचर और थलचर बनाये, पशु-पक्षी और पत्थर बनाये, हवा और गैस बनाई, आकाश और वायु बनायी, अग्नि और पृथ्वी बनायी, उस परमात्मा का एक छोटा-सा स्फुलिंग या रूप या छोटा-सा अंश तुम्हारे अन्दर में है। तुम्हारे अन्दर वह दिव्य स्फुलिंग या दिव्य ज्योति है। हम शरीर नहीं हैं। हम टट्टी-पेशाब, सुंदरता-कुरूपता नहीं हैं। हम काले, गोरे, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, क्षत्रिय, ईसाई, मुसलमान या हिन्दू नहीं हैं। ये सब बाहर की बातें हैं। अन्दर की बात यह है कि हम परमात्मा के अंश हैं। परमात्मा के उस अंश के साथ सम्पर्क करने के लिए गुरु तत्त्व की आवश्यकता पड़ती है।

अगर तुम सोचो कि रामायण पढ़कर तुमने ब्रह्म और राम को जान लिया, श्रीमद्भागवत पढ़कर तुमने कृष्ण को जान लिया, कथा-पुराण में जाकर तुमने देवी-देवताओं को जान लिया, बाइबिल पढ़कर तुमने ईसा मसीह को जान लिया और कुरान पढ़कर तुमने अल्लाह को जान लिया, तो एकदम भूल जाओ। जब तक रसगुल्ला खाओगे नहीं, रसगुल्ले के बारे में शोध-पत्र पढ़ने से कोई फायदा नहीं है। जब तक तुमने रसगुल्ला खाया नहीं, तब तक रसगुल्ले के बारे में दो सौ किताबें पढ़ने से भी कुछ नहीं होगा। एक बार मैं लंदन से नॉर्वे

जा रहा था। हवाई जहाज में मेरी बगल में एक मेमसाहब बैठी थी। एयर होस्टेस ने मुझको रसगुल्ला लाकर दिया, तो उस मेमसाब ने मुझसे पूछा, 'यह क्या है?' मैंने उसको बताया कि यह रसगुल्ला है। उसने हिन्दुस्तानी मिठाइयों और रसगुल्लों पर किताब लिखी थी! पर क्योंकि उसने रसगुल्ला कभी खाया ही नहीं था, तो देखने पर भी वह रसगुल्ला पहचान नहीं पाई।

उसी तरह से परमात्मा के बारे में जानना, सुनना, लिखना, पढ़ना, तर्क-वितर्क और लड़ाई-झगड़ा भी करना बहुत अच्छा है, सब कुछ करो, मगर जब तक तुम बुद्धि को पार नहीं करोगे, तब तक परमात्मा के साथ तुम्हारा सम्बन्ध नहीं हो सकता। और उस परमात्मा के साथ सम्पर्क करने के लिए मैं बिल्कुल व्यावहारिक रास्ता बतला रहा हूँ, वह रास्ता है भ्रू-मध्य का। इस भ्रू-मध्य चक्र को ही गुरु-चक्र कहते हैं, भूलना नहीं। और इसकी जगह भी मैंने तुमको बतला दी। पर इसको जगायेंगे कैसे? इसको जगाने के लिए हम लोगों के यहाँ पाँच रास्ते बतलाये गए हैं। अब वे रास्ते तो बतलाऊँगा नहीं, क्योंकि बहुत अव्यावहारिक हैं, अव्यक्त हैं। पातञ्जल योग दर्शन में पढ़ लेना। पाँच रास्तों में से कोई एक रास्ता अपनाओ और धीरे-धीरे इसको जाग्रत करो।

अब तुमको एक आप बीती बतलाऊँ। आज से चौंसठ साल पहले, नैनीताल की बात है। मैं अल्मोड़े का रहने वाला था। ताल के दोनों तरफ नगर बसा हुआ है, वहाँ मैं छुट्टियों में जाता था, क्योंकि मेरे पिताजी वहाँ पुलिस विभाग में नौकरी करते थे। वहाँ दो सड़के हैं, गर्म सड़क और ठण्ढी सड़क। तो मैं ठण्ढी सड़क से होकर घूमने के लिए गया, यही कोई चौदह-पन्द्रह साल का था। मैंने देखा कि वहाँ एक पहाड़ के पत्थर पर एक मोटी-ताजी भैंस की तरह काली-कलूटी योगिनी बैठी हुई थी और खूब ज़ोर से चिलम चढ़ा रही थी। मैं वहाँ खड़ा रहा। उसने मुझसे बोला, 'ए.छोकरे, इधर आओ।' मैं उसके पास गया, तो उसने मेरे को लोटा दिया और मुझसे दूध लाने को कहा।

मैं वहाँ से थोड़ी दूर बाजार में दूध लेने गया। मेरे पास पैसा तो नहीं था, पर पुलिस वाले का बेटा था, इसलिए उसने दे दिया। उन दिनों लोग पुलिस वालों का सम्मान करते थे, आजकल कम करते हैं। उसने मुझसे पैसा लिया नहीं। मैं पावभर या आधा किलो दूध ले आया और उसको दे दिया। उसने कहा, 'बैठ!' मैं बैठ गया। और आठ-दस मर्द लोग भी थे, औरत कोई नहीं थी सिवाय उसके। उसने पूछा, 'चढ़ायेगा?' मैंने कहा, 'नहीं। बीड़ी तक भी नहीं पी आज तक।' तो उसने कहा, 'अरे, इसको चढ़ाये बिना तुम ब्रह्म कैसे

बनोगे!' मेरे को उसने चिलम दे दी। खैर, मैंने चिलम तो ली नहीं, क्योंकि हम को अपने पिताजी से बहुत डर लगता था। हमारे पिताजी सनातनी नहीं, आर्य समाजी थे। और वे बीड़ी-सिगरेट, शराब, इन चीज़ों से महा घृणा करते थे। तो मैंने सिर पर लगाकर उसको वापस कर दी।

उस दिन वह बोल रही थी और उसका विषय था, गुरु-तत्त्व। उसने दम चढ़ाया हुआ था और गुरु-तत्त्व क्या होता है बता रही थी। मैंने उसको कहा कि वह तो ठीक बात है, मगर गुरु-तत्त्व को पकड़ना कैसे। तो उसने मेरे सिर पर हाथ रख दिया। अब क्या बतलाऊँ तुमको। मुझे एक अलग स्तर के अनुभव पर पहुँचा दिया गया। मुझे दूसरा ही अनुभव होने लगा। वहाँ माता-पिता, भाई-बहन, दुनिया, अल्मोड़ा, नैनीताल, स्कूल, पढ़ाई, कुछ नहीं, सब खतम हो गया। जैसे निद्रा में सब खतम हो जाता है न, वैसे ही मेरा सब खतम हो गया।

मुझे क्या दिखाई दिया, वह याद नहीं है। मगर यह याद है कि मुझे बहुत डर लगा और मैं चिल्लाने लगा। तुम लोग कभी सपने में रोते-चिल्लाते हो न? डर लगने के कारण मैं बड़ी जोर से चिल्लाया। उसने हाथ उठा दिया और कहा, 'रोता है, रावण है। इतना क्या हो गया, डर लगा?' मैंने कहा, 'हाँ, डर लगा।' उसने कहा, 'देख, अभी तू पक्का नहीं हुआ है, क्योंकि मैंने तुझको गुरु-तत्त्व का अनुभव दिया था, परन्तु जिस तरह से काँच के बर्तन में उबलता पानी डाल दो तो वह फूट जाता है, कपड़े में पानी डालो तो छनकर नीचे गिर जाता है, उसी तरह जब तक मनुष्य का मन, जीवन, चेतना और चेतन अवस्था उसके लायक नहीं होगी, तब तक वह अनुभव टिक नहीं सकता। तुम बाहर फेंक दिये जाओगे, गेट ऑउट।' उसने मेरे को गेट ऑउट कर दिया।

मैंने उससे कहा, 'मेरे को तुम चेला बनाओ।' उसने कहा, 'चेला! नहीं, मैं किसी को चेला नहीं बनाती। तुमको गुरु ढूँढना होगा।' मैंने पूछा, 'गुरु कहाँ मिलते हैं?' उसने कहा, 'गुरु दुकान में नहीं मिलते हैं। तुमको गुरु ढूँढना होगा।' उसी दिन से मेरा दिमाग फिर गया। उस तांत्रिक योगिनी का नाम सुखमन गिरि था। यह स्थान जहाँ आप बैठे हैं, इसका नाम मैंने उसी के नाम से रखा है सुखमन। उसने पहले मेरे को शक्तिपात कराया। थोड़ी देर के लिए ऐसे सिर पर हाथ रख दिया, उसको शक्तिपात कहते हैं।

उसके बाद मैं घर-बार, पढ़ाई-लिखाई छोड़कर घूमता-फिरता राजस्थान, गुजरात होते हुए ऋषिकेश पहुँच गया। ऋषिकेश में मैं काली कम्बलीवाला धर्मशाला में रुका। तो वहाँ के कर्मचारी को पता चला कि कुमाऊँ से एक पढ़ा-

लिखा अच्छा लड़का आया है। उन्होंने मेरे पास आकर पूछा, 'तुम नौकरी की खोज में आए हो?' मैंने कहा, 'नौकरी की खोज में नहीं आया हूँ। मैं गुरु की खोज में आया हूँ।' तो उसने मेरे को बताया, 'आप कैलाश आश्रम जाइये। वहाँ स्वामी विष्णुदेवानन्द जी से दीक्षित हो जाइये।'

मैं वहाँ गया। विष्णुदेवानन्द जी गद्दी पर बैठे थे। उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या है? कहाँ से आए हो?' मैंने अपना सब परिचय दिया। उन्होंने पूछा, 'क्या चाहते हो?' मैंने कहा, 'मैं आपसे संन्यास लेना चाहता हूँ।' उन्होंने कहा, 'संन्यास तो हम नहीं देते हैं। तुम किसी गुरु से संन्यास ले लो और मेरे पास आकर रहो। तुमको वेद, उपनिषद्, व्याकरण, सिद्धान्त कौमुदी वगैरह सब पढ़ा देंगे। तुम यहीं रहो, खाने-पीने का इंतजाम कर देंगे, पर हम संन्यास नहीं देंगे।'

हमने उनसे पूछा, 'महाराज, फिर संन्यास के लिए हम कहाँ जाएँ? आप ही कोई गुरु खोजिये, हमको तो कुछ समझ में नहीं आता। जिन्दगीभर कभी गुरुओं के साथ टक्कर हुई नहीं। अभी तक तो हम लोफरों के साथ टक्कर में थे। इसलिए हमको लोफर, चोर, ठग और खूनी लोगों की जानकारी है। पर गुरुओं की जानकारी है ही नहीं। अभी तो गुरु के साथ मुठभेड़ हुई ही नहीं।' तो उन्होंने बताया कि बगल में स्वामी शिवानन्द जी महाराज हैं, जो दक्षिण भारत के हैं। वे पढ़े-लिखे डॉक्टर हैं और बहुत साधु हैं। मैं वहाँ गया और मेरी उनसे भेंट हुई। उन्होंने पूछा, 'तुमको क्या चाहिए?' वे अंग्रेज़ी में ज़्यादा, हिन्दी में कम बोलते थे। मैंने कहा, 'मैं आपके साथ रहने आया हूँ।' उन्होंने पूछा, 'किसलिए?' मैंने कहा, 'आत्म-साक्षात्कार।' उन्होंने कहा, 'ठीक है, रहो। पहली चीज, मेहनत करो; दूसरी चीज, भगवान से प्यार करो और तीसरी चीज, देना सीखो।' इन तीन चीज़ों का उन्होंने छूट मिलते ही, पहले इंटरव्यू में उपदेश दे दिया और उसके बाद फिर कुछ नहीं। फिर बारह साल तक मुझको गुरुजी ने कुछ नहीं सिखाया।

बारह साल तक मेरे गुरुजी ने मेरे को क, ख, ग, घ, कुछ नहीं सिखाया। तीन ही बातें कहीं—पहला, सेवा करो, निष्काम कर्म योग। दूसरा, भगवान से प्यार करना सीखो, दुनिया से प्यार करना तुमको जरूरी नहीं है, अपने आप आ जाता है। जैसे आदमी को हगना-मूतना आता है, वैसे ही प्यार करना भी आता है। किसी भी लड़की को देखा तो प्यार हो गया। कोई तुमको यह करना सिखाता नहीं है। नहीं, पशु जगत् में तुमने कभी किसी से प्यार नहीं किया। मनुष्य जगत् में तुमको बहुत होशियार बनना पड़ता है। तुमने प्यार करना और

मुसीबतों में पड़ना सीखा है। भगवान से प्यार करो। तुमने कभी भगवान से प्यार नहीं किया। तुमने उनकी पूजा की, प्रसाद चढ़ाया, आरती उतारी और उनके नाम पर तुमने मक्खन और मदिरा ली है, मगर तुमने भगवान को कभी प्यार ही नहीं किया है। ईमानदारी से बोलो। और ईमानदारी से कह रहा हूँ नहीं किया, क्योंकि भगवान को प्यार करने की तुमको कोई जरूरत महसूस ही नहीं होती है। भगवान को प्यार करने की क्या जरूरत है? भगवान को प्यार करने से मिलता क्या है? तो भगवान से प्यार करना सीखो, यह दूसरी बात।

तीसरी बात उन्होंने कही–देना सीखो। देना बहुत मुश्किल है। अपने को देना सब जानते हैं, अपने बेटे, बेटी, दोस्त को सब देते हैं, लेकिन अगर दरवाजे पर कोई भिखारी आ जाए, तो वही आदमी कहता है, 'सब ठग हैं।' बेटा-बीबी ठग नहीं हैं। अठन्नी या एक रुपये के लिए उस बेचारे भिखारी को कितनी गालियाँ मिलती हैं। एक रुपये में तो कोई चीज़ नहीं आती, एक कप चाय भी नहीं। आज एक रुपये का महत्त्व क्या है? भिखारी को एक रुपये देकर उस आदमी को दर्शन-शास्त्र याद आता है, नैतिकता याद आती है। बोलेगा, 'सब धोखेबाज और झूठे हैं। पूरे देश को इन लोगों ने बर्बाद कर दिया है। देखो, इंग्लैण्ड, अमेरिका में भिखारी नहीं होते।' केवल एक रुपये के लिए वे इतना बड़ा पाठ सुनाने लगते हैं।

एक बार की बात है, देवता, राक्षस और मनुष्य बैठे थे। ऊपर से एक हवाई जहाज गया। उसमें से आवाज निकली, द द द। तो उन लोगों ने गुरुजी से पूछा, 'यह क्या है?' गुरुजी ने कहा, 'इसका अर्थ इस बात पर निर्भर है कि तुम कौन हो।' तो उन्होंने कहा, 'हम देवता हैं।' गुरुजी ने कहा, 'इसका मतलब होता है आत्म-नियन्त्रण करो', क्योंकि देवता लोग हमेशा भोग में रहते हैं। इन्द्र भगवान हमेशा उर्वशी को ही नचाते रहते हैं। कभी आरती करते देखा है इन्द्र भगवान को? जब चित्र आता है तो लड़कियाँ नाच रही हैं और सोम रस पी रहे हैं। देवता भोग प्रिय होते हैं, इसलिए उनके लिए 'द' का मतलब होता है 'दमध्वम्'। राक्षसों के पूछने पर महाराज बोले, 'दयध्वम्', क्योंकि राक्षस लोग क्रूर होते हैं। किसी को छुरा मार दिया, किसी को गोली मार दी। हम लोगों में राक्षस बहुत हैं। तो उनको उपदेश मिला, 'दयध्वम्।' दया करो, दया भाव रखो, रहमदिल बनो, मारो मत। और मनुष्य ने जब पूछा, 'महाराज 'द' का क्या मतलब होता है?' तो उन्होंने कहा, 'ददध्वम्।' दो, दो, दो, क्योंकि मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है, उसको देना भर नहीं आता है। भगवान को एक कटोरा

दूध चढ़ाता है और पूरे चालीस हजार की नौकरी माँगता है। भगवान को अठन्नी का बेल पत्ता चढ़ाता है और लड़की की शादी करवा लेता है। झूठ नहीं बोल रहा हूँ। लड़की की शादी हो, मुकदमा हो, बेटा हो, तलाक हो, हज़ारों चीज़ों को अठन्नी-चवन्नी में कराता है। यह नहीं कि भगवान को उसने कम-से-कम अपनी ग्रेच्युटि दे दी। मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है कि देने में जी जलता है। देने के पहले सोचते हैं कि यह मेरा क्या लगता है।

मेरे गुरुजी ने मुझको तीन उपदेश दिये—सेवा, प्रेम और दान। सेवा करना सीखो, भगवान को प्यार करना सीखो और देना सीखो। उसके बाद उन्होंने कहा, 'तुम ये तीन चीज़ें करते जाओ, तो तुम्हारा आइना और दिल साफ हो जाएगा। फिर जैसे ही तुम आँख बन्द करोगे, तुम्हारा ध्यान लग जाएगा। ध्यान के लिए सम्मोहन और कसरत करने की जरूरत नहीं। थके हुए आदमी को अपने आप नींद आ जंाती है। उसी प्रकार जिस आदमी का चित्त, आत्मा और हृदय शुद्ध हो जाते हैं, उस आदमी को ध्यान लगाने के लिए आसन लगाने की जरूरत नहीं।'

'यत्र यत्र मनोऽयाति', जहाँ-जहाँ उसका मन जाता है, *'तत्र तत्र समाध्य:'*, वहाँ-वहाँ उसको समाधि लग जाती है। तीन बातें उन्होंने मेरे को बताईं और बारह साल के लिए मुझको बैल की तरह छोड़ दिया। मैं अपनी उस उन्नीस-बीस की उम्र की बात बोल रहा हूँ, जिस समय खून गरम होता है। मैं ऋषिकेश से बद्रीनाथ पैदल जाता था और तीसरे दिन वापस। केवल वही नहीं, दिनभर गंगा पार करता ही रहता था। गुरुजी ने और कुछ नहीं सिखाया। मैंने वहाँ जो कुछ सीखा, स्वयं सीखा। उपनिषद्, गीता, वेद, बाइबिल, कुरान, सब पढ़ा। बारह साल जब हो गए, तब उन्होंने मेरे को बुलाया और कहा, 'अब तुम जाओ, पूरी दुनिया घूमो।' और पाँच मिनट में उन्होंने मुझे क्रिया योग सिखाया।

मेरे गुरुजी और मेरे बीच इतना ही साधना का सम्पर्क रहा और कुछ नहीं। अब यहाँ जो बात हो रही थी कि परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए रास्ता क्या है, भगवान से सम्बन्ध जोड़ने का तरीका क्या है, और भगवान कौन और कहाँ हैं। मैंने पहले ही बोल दिया, जो तुम्हारे अंदर में है—गुरु-तत्त्व। इस गुरु-तत्त्व को धारण करने के लिए पहली आवश्यकता है, मन्त्र और जीवित गुरु। गुरु हो, गुरु मन्त्र हो, फिर दुनिया में जहाँ भी रहे, उसको रास्ता मिल जाएगा।

—11 जुलाई 2006



अध्याय 23

आज के समाज में लड़कियों को किस प्रकार जीना चाहिए?

लड़कियों को अपनी जिन्दगी उज्ज्वल बनाने के लिए अपने अन्दर कुछ गुणों को लाना जरूरी है। उनमें कुछ गुण होने चाहिए, जिससे वे स्वयं अपने जीवन को दिशा दे सकें, और इसके लिए व्यक्ति में योग्यता आनी बहुत जरूरी है। योग्यता के लिए दो चीजें बहुत आवश्यक हैं–शिक्षा और स्वावलम्बन। और शिक्षित होने के लिए केवल बी.ए., एम.ए. की डिग्री ले लेने से बात नहीं बनेगी। शिक्षा के बाद स्वावलम्बन भी आना चाहिए। स्वावलम्बन का मतलब होता है अपने पैर पर खड़े होना, अकेले रहना, आना-जाना करना, अकेले ही अपने आप को सम्भालना, अपना खर्चा वहन करने की क्षमता होना।

जिस देश की औरत कमज़ोर है, वह देश ऊँचा नहीं उठ सकता। ऊँचा उठने के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है। इस देश में लड़की की एक ही निश्चित नियति है, वह है विवाह। विवाह तो होगा ही, परन्तु जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए शिक्षा और योग्यता विवाह से भी अधिक आवश्यक है। नहीं तो हिन्दुस्तान कभी ऊँचा उठ नहीं सकता है। सुपर पॉवर तब तक नहीं बनेगा, जब तक कि इसके दोनों पैर बराबर ताकतवर नहीं होंगे। अब लंगड़ा आदमी कितना सुपर पॉवर बनेगा?

हिन्दुस्तान तो लंगड़ा आदमी है, क्योंकि इसकी औरत कमज़ोर है। यदि कहीं अकेले जाती है, तो छोटे बच्चे को साथ लेकर जाती है, उसे चौकीदार बनाकर, क्या विडम्बना है–एक मर्द साथ होना चाहिए, भले ही एक छोटा-सा बच्चा ही क्यों न हो!

शादी का जो संस्कार है, वह तो निश्चित है ही। जैसे मरना अनिवार्य है, वैसे शादी भी अनिवार्य है। हम जैसे अभागे लोगों को छोड़ कर, सब सौभाग्यवानों की शादी तो हो ही जाती है। क्या है, किसी-न-किसी नुक्कड़ पर कोई-न-कोई लोफर तो मिल ही जाता है। हम जैसे छूट गए तो छूट गए। परन्तु व्यक्तित्व के विकास के लिए शादी हो जाने से काम नहीं बनता, उसके लिए शिक्षा और योग्यता होनी बहुत आवश्यक है। और शिक्षा का कोई अन्त नहीं है। ऐसा नहीं कि बी.ए. पास कर लिया, तो शिक्षा हो गयी।

योग्यता प्राप्त करने के लिए दस-पन्द्रह साल बहुत होते हैं। आइ.ए.एस., आइ.पी.एस. या और कुछ भी बन सकते हैं। लेकिन उसके लिए अपने संसार की जो रीति है, उस पर थोड़ा-सा नियन्त्रण करना पड़ेगा। सांसारिक विचारधारा को बदलना पड़ेगा। जैसे किसी की शादी हो रही है और तुम वहाँ जा रहे हो। बोलो, हम शादी में नहीं जायेंगे। शादी में एक बार जायेंगे जब हमको करनी होगी। नहीं तो मन पर संस्कार पड़ते हैं। जब शादी में जाते हैं तो देखते हैं कि जिसकी शादी हो रही है, वह कैसे सज-धजकर, वी.आइ.पी. बनकर जा रही है, तब मन में अपने से विचार आता है कि हम भी उसकी तरह कब वी.आइ.पी.बनेंगे। पर पता नहीं है कि वह दो दिन की वी.आइ.पी.है। फिर उसके बाद वह वी.आइ.पी. नहीं रहती, नौकरानी हो जाती है। नौकरानी माने घर की नौकरानी। बुरा नहीं मानना, लेकिन यह हकीकत है। शादी में नहीं जाने से मन इन संस्कारों से बचता है और अपने विकास पर ध्यान दे पाता है।

इन गहरी सामाजिक विचारधाराओं को बदलने के लिए आश्रमों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए जहाँ भी रहो, आश्रमों से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जहाँ आश्रम हैं, बाकी सब जगह तो क्लब हैं। और ऐसा नहीं कि इस देश में केवल यही एक आश्रम है, नहीं। इस देश में अनेक आश्रम हैं। किसी भी आश्रम में जा सकते हो, क्योंकि आश्रम में जाने से एक सकारात्मक वातावरण मिलता है, जिससे व्यक्ति के विकास में मदद होती है। बहुत मेहनत करके आश्रमों में ऐसा वातावरण बनाकर रखा जाता है।

कीर्त्तन और दान के महत्त्व पर थोड़ा प्रकाश डालें।

अभी इन कन्याओं ने जो कीर्त्तन किया, वह तुम लोगों को अच्छा लगा न? 'अच्छा लगा' का अर्थ क्या है? अच्छा लगा की परिभाषा क्या है? अच्छा क्यों लगता है? इसलिए अच्छा लगता है कि उस समय तुम आत्मा के नज़दीक थे।

जब तुम प्रकाश के नज़दीक होते हो तो उजाला रहता है और जैसे-जैसे प्रकाश से दूर होते जाते हो, अन्धेरा बढ़ता जाता है, कुछ नहीं दिखता। वैसे ही कीर्त्तन करने से तुमको जो आनन्द आता है, वह सिद्ध करता है कि कीर्त्तन करते समय तुम आत्मा के बहुत नजदीक हो। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में भी इसका स्पष्ट संकेत है। तुलसीदास जी कहते हैं कि कलयुग में नाम और दान, इन दो चीज़ों में आनन्द मिलता है। नाम का मतलब होता है, भगवान का नाम-संकीर्तन करना, भगवान का नाम लेना। खुद भगवान ने नारदजी से कहा है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता: यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

'हे नारद, मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता, योगिजनों के हृदय में भी नहीं रहता, जहाँ कहीं भी मेरे भक्त मेरा नाम गाते हैं, मैं वहीं रहता हूँ।'

इसी को कहते हैं कीर्त्तन। चैतन्य महाप्रभु कहा करते थे कि इस युग में जीवन की गन्दगी को धोने के लिए सबसे अच्छा डिटर्जेन्ट है कीर्त्तन। न निरमा और न ही अन्य कोई डिटर्जेन्ट काम करते हैं। सबसे बड़ा डिटर्जेन्ट है– भगवान का नाम लेना, एक बार लगा दो तो एकदम साफ। एकदम साफ का मतलब होता है, जब थाली साफ होती है तो चमकती है और तुम्हारा चेहरा उसमें दिखता है न। बस, वैसे ही। और कीर्त्तन करके जो आनन्द की अनुभूति होती है, वही आत्म-दर्शन है।

अब इसमें दो बातें जानने की हैं। मनुष्य दु:खी है, कीर्त्तन करता है तो उसको आनन्द मिलता है। कहा भी गया है कि संसार में अनेक प्रकार के दु:ख हैं–*जन्म दु:खं, जरा दु:खं, जाया दु:खं, संसार-सागर दु:खं।* इसी को एक कवि ने मर्मात्मक ढंग से कहा है–

जग चार घड़ी का मेला है।
कुछ तू कह ले, कुछ मैं कह लूँ॥
आराम नहीं, ना चैन यहाँ, अरमान तड़पते रहते हैं,
दु:ख-दर्द-मुसीबत के पौधे दिन-रात पनपते रहते हैं।
मोती जो लुढ़कते दुनिया में, कुछ तू ले ले, कुछ मैं ले लूँ॥
है तंग गली मन-जीवन की, उम्मीद कराहा करती है,
पलकों की दुनियाँ में बैठी, तकदीर रुलाया करती है।
स्व-लक्ष्य पर है तूफान उठा, कुछ तू सह ले, कुछ मैं सह लूँ॥

इस बात को तो सब जानते भी हैं और मजे की बात है कि दुःख नहीं भी हो, तो भी आदमी को अपने ऊपर दुःख आरोपित करना अच्छा लगता है। यदि तुम दुःखी नहीं भी हो, तो भी तुम अपने ऊपर दुःख को आरोपित कर लेते हो। यह कोई मनगढ़ंत कहानी नहीं है, यह आधुनिक मनोविज्ञान की राय है। इसका नतीजा यह निकलता है कि तुम दुःखी रहते हो और जब कीर्त्तन में तल्लीन हो जाते हो, तब अपने ऊपर लदे हुए दुःख के परे तुम अपनी आत्मा, परमात्मा या ईश्वर के निकट पहुँचते हो, इसलिए अच्छा लगता है। अपने सिर पर जो हमेशा दुःख का सौ किलो का बोझ लिए रहते हो, वह थोड़ी देर हट जाए तो हल्का तो लगना ही है। यही है नाम या संकीर्त्तन का रहस्य।

नाम के बारे में तो संक्षेप में बतला दिया। अब रह गया दान के बारे में। इंसान स्वभाव से दानी नहीं होता। इंसान स्वभाव से परिग्रही होता है। लाओ, लाओ, लाओ। और जो कुछ भी करता है, वह अपने लिए या अपनों के लिए करता है। दूसरों के लिए जब करता है, तब भी वास्तव में वह अपने लिए ही करता है। इस पर एक कथा है। एक बार देवता, मनुष्य और दैत्य बैठे हुए थे। उस समय आसमान से एक बादल गरजता हुआ, द,द,द बोलता हुआ निकल गया। इन तीनों ने सोचा, इसका मतलब क्या है? चलो ब्रह्माजी से पूछते हैं। देवताओं ने जब पूछा, तब ब्रह्माजी ने कहा, 'दमध्वं–दमन करो, निग्रह करो, नियंत्रण करो।' राक्षसों से कहा, 'दयध्वं– दया करो, करुणावान बनो, मारो मत।' और इंसान को कहा, 'ददध्वं–दो, दो, दो।'

यह सुनकर वे बोले, 'महाराज! आपने तीनों को तीन अलग-अलग बातें कैसे बतला दीं?' इस पर ब्रह्माजी बोले कि जिसमें जिस विटामिन की कमी होती है, वही गोली उसको दी जाती है। देवताओं में संयम की कमी होती है, वे भोगप्रिय होते हैं। जहाँ मौका मिले, उर्वशी और मेनका को नचाना और सोम रस पीना शुरू कर देते हैं, अच्छे बढ़िया कपड़े पहनते हैं, शृंगार करते हैं, लिप्स्टीक लगाते हैं, आभूषण धारण करते हैं। यही देवताओं की रीत है। भोग की अति हो जाती है और संयम की कमी होती है। इसलिए उनको कहा है, थोड़ा-सा नियन्त्रण करो।

राक्षस लोग जहाँ भी जाते हैं–यहाँ गोली मारो, वहाँ गोली चलाओ, इधर गाड़ी को जला दिया, उसके घर में बम डाल दिया, उसको कत्ल कर दिया, उसकी लड़की को भगा कर ले गए, ऐसे आचरण के लोग हुए दैत्य। तो उनसे कहा, तुममें दया की कमी है। जब तुम किसी को मारते हो, दुःख होता है न

किसी को? जब किसी के बेटे को मार रहे हो या किसी की बेटी को भगा कर ले जा रहे हो या किसी के घर में आग लगाते हो, तो किसी को तो तकलीफ होती होगी, नहीं होती होगी क्या? तुमको कभी ख्याल नहीं आता? तो दैत्य बोले–'नहीं, हमें उसका कुछ ख्याल नहीं आता।' यही ख्याल आना दया है। दूसरे को तकलीफ हो रही है, इसका विचार अगर तुम्हारे मन में आ जाए, तो वह दया है। दानवों में इसकी कमी होती है। इसलिए दानवों को ब्रह्माजी ने दया का विटामिन दे दिया।

रही मनुष्य की बात। मनुष्य में संग्रह करने की कमजोरी होती है, वह हमेशा संग्रह करता रहता है। अपने बेटे के लिए, अपनी बेटी के लिए, सबके लिए। और कभी-कभी देवताओं को देने के लिए भी पैसा जमा करता है। मंत्री लोग क्या करते हैं? हम उसका काम बनायेंगे, लाइसेन्स दिलवायेंगे, इत्यादि। या फिर अपने ऑफिसर को प्रसन्न करने के लिए चालीस-पचास हज़ार रुपए जमा करके रखते हैं। उतना दे दिया और अपना तबादला करा लिया। यह किसी की आलोचना नहीं हो रही है। एकदम सच्ची बात है। माने वह जो पैसा देता है, वह भी अपने मतलब की बात कराने के लिए, अपने स्वार्थ के लिए देता है। राक्षस क्रूर हैं, देवता भोगी हैं और मनुष्य स्वार्थी हैं। इसलिए तीनों को अलग-अलग विटामिन दिया। एक को दिया करुणा का विटामिन, दूसरे को दिया आत्म-निग्रह का विटामिन और तीसरे को दिया दान का विटामिन।

प्राचीन काल में जितनी साधनाएँ हम लोगों को बतलाई गई हैं, इस कलयुग में उन सबकी प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी है। उन्हें करना भी नहीं चाहिए। जिसकी अवधि समाप्त हो चुकी है, वह गोली खाओगे तो गड़बड़ हो जाएगी। इस कलयुग में जब चारों तरफ सड़क भी गंदी है, कुएँ भी गंदे हैं, सब तरफ प्रदूषण ही प्रदूषण है और सबसे बड़ी चीज़ है कि मैं ही गन्दा हूँ, मेरे अन्दर का आइना ही साफ नहीं है, मेरा मन ही मैला है, तब ऐसी हालत में कोई भी साधना कैसे सम्भव है? तब क्या रास्ता है?

रामचरितमानस के अंत में तुलसीदासजी ने निचोड़ निकाला है और कहा है कि कलयुग में दो साधनाएँ तुम्हारे काम आने वाली हैं। उनमें से एक साधना कीर्त्तन है। इस कीर्त्तन के बारे में चैतन्य महाप्रभु ने बहुत विस्तार से लिखा है। वे जहाँ भी जाते थे, कीर्त्तन ही कराते थे। ढोलक और मंजीरा लेकर–हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल कीर्त्तन कराते थे। इसी कीर्त्तन की व्यवस्था को हम लोगों ने यहाँ रिखिया में शुरू किया है। और हमने कहा कि इसका पूरा आयोजन

नन्हे कन्या-बटुकों के द्वारा करवायेंगे, बड़ों से, इन दाढ़ी वालों से नहीं, क्योंकि इन सब दाढ़ी वालों का दिल गंदा हो चुका है। ये सब बगुला भगत हैं। चुपचाप योगी की तरह बैठे रहते हैं और जहाँ मछली आई पट से झपट लेते हैं। छोटे बच्चे बगुला भगत नहीं होते। अब समझने की बात है कि मैं बगुला भगत का उदाहरण दे रहा हूँ, बड़े लोगों को गाली नहीं दे रहा हूँ। उनकी आलोचना नहीं कर रहा हूँ, उनका कोई दोष नहीं बता रहा हूँ। मैं केवल अंतर बतला रहा था। छोटे बच्चे जो हैं, वे बगुला भगत नहीं हैं। इनके मुँह में जो आता है सो बोल देते हैं, मछली खाने को हो तो सीधे माँग लेंगे और तू बोलना हो तो तू भी बोल देंगे।

इसका वैज्ञानिक कारण भी है। शारीरिक विज्ञान और मनोविज्ञान में भी एक उम्र बतलाई है, जिस उम्र तक व्यक्ति का हृदय शुद्ध रहता है। तंत्र-शास्त्र और धर्म-शास्त्रों में भी एक उम्र बतलाई है जब तक व्यक्ति का मन निर्मल रहता है। उसके पास कोई दूसरा उपाय है ही नहीं, उसे शुद्ध रहना ही होगा, क्योंकि तब तक उसके शरीर में वे हार्मोन काम ही नहीं कर रहे होते हैं, जिन हार्मोनों के कारण आदमी के मन में अशुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। पढ़े-लिखे जानकार लोग इस बात को तुरन्त समझ सकते हैं। शरीर में कुछ छोटी-छोटी ग्रंथियाँ होती हैं, जिनसे कुछ रस निकलता है, उसी को हार्मोन कहते हैं। इन हार्मोनों के निकलने की एक उम्र होती है। अब जैसे हमारी उमर है तिरासी वर्ष। हमारी थायरॉइड अब कमजोर होने जा रही है।

असल में मैं दूसरी चीज समझा रहा हूँ, पर थायरॉइड का नाम ले रहा हूँ, समझ जाना। थायरॉइड हार्मोन अपने शरीर के अंदर तापमान को नियंत्रण में रखता है। थायरॉइड हार्मोन एक सुई की नोक में जितना पानी अटकता है उतनी मात्रा में निकलकर खून में मिलता है और खून में मिलकर शरीर के अन्दर तापमान नियंत्रण की व्यवस्था करता है। जिसको तुम कहते हो वातानुकूलन। तुम लोगों के शरीर का तापमान अभी सैंतीस डिग्री सेल्सियस है। जब बाहर का तापमान सैंतीस डिग्री सेल्सियस हो जाता है, तो तुम्हारी क्या हालत होती है? पर शरीर के अन्दर का इतना तापमान तुमको कुछ पता तक नहीं चलता है, क्योंकि शरीर के अन्दर में एक नियंत्रण प्रणाली है। तुम्हारा अपना वातानुकूल यंत्र है।

जिनकी यह थायरॉइड खराब हो गयी, उनको ठण्ढी-गर्मी ज्यादा लगती है। वे बेचारे पंखे के बिना ठण्ढी में भी नहीं रह सकते हैं। जब तुमको पंखे की

जरूरत महसूस होने लगे, समझो कि थायरॉइड गिर रहा है। यह थायरॉइड ग्रन्थि तेरह-चौदह साल में धीरे-धीरे चालू होती है। इन नन्हे कन्या-बटुकों में चालू नहीं हुई है। सामान्यत: तीस के बाद यह कमजोर होने लगती है। किसी-किसी की तो बहुत जल्दी कमजोर हो जाती है। उनको गर्मी के दिनों में भी ठण्ढी लगती है। कितने लोगों को ठण्ढी के दिनों में भी इतनी गर्मी लगती है, बोलते हैं कि स्वामीजी यहाँ आश्रम में पंखा नहीं है। अभी बाहर में तापमान अठारह डिग्री है और तुमको पंखा चाहिए? अजीब आदमी हो!

मैंने तो एक और अजीब चीज देखी है, मुम्बई के लोग गर्मी के दिनों में भी गर्म पानी से नहाते हैं। जब मैं पहली बार मुम्बई गया, तब मुझे लगता था कि कितना गर्म है। हमारे एक पारसी दोस्त थे, मैंने देखा कि वे गर्म पानी से नहा रहे थे। मैंने पूछा, तुम गर्म पानी से नहाते हो? उन्होंने कहा कि स्वामीजी, हम तो हमेशा गर्म पानी से ही नहाते हैं, मुम्बई में सब लोग गर्म पानी से नहाते हैं। मैं अभी केवल थायरॉइड ग्रन्थि की बात बोल रहा हूँ, मुम्बई वालों पर नहीं बोल रहा हूँ और न गरम पानी पर बोल रहा हूँ।

शरीर के अन्दर अनेक ग्रन्थियाँ होती हैं। जो एड्रीनल ग्रन्थि होती है, वह घबराहट और क्रोध पैदा करती है, एड्रीनल ग्रन्थि से अधिक स्राव होने पर डर लगने लगता है, पेशाब और टट्टी जल्दी-जल्दी होने लगती है। इसी प्रकार से ये ग्रन्थियाँ शरीर के अन्दर अलग-अलग प्रकार के भाव उत्पन्न करती हैं। एक ग्रन्थि होती है, जो मनुष्य के हृदय में कामवेग उत्पन्न करती है। वह ग्रन्थि एक उम्र के बाद काम चालू करती है। जब तक उसका काम चालू नहीं होता, तब तक वह बच्चा ब्रह्मचारी है, बटुक है और लड़की कन्या है और तब तक वह भगवान की कृपा, स्वरूप, आशीर्वाद और उनके लक्षण की अच्छी माध्यम बनती है। जैसे बिजली का अच्छा माध्यम ताम्बा या एलुमिनियम है। अब लकड़ी का तार बना दोगे तो बिजली प्रवाहित ही नहीं होगी। वैसे ही भगवान की कृपा हम लोगों में से प्रवाहित हो ही नहीं सकती है। हम कितना भी तुम लोगों को कीर्त्तन करायेंगे, काम ही नहीं करेगा, क्योंकि हम ही तो खुद खटारा हैं।

मनुष्य के पवित्र होने का लक्षण है कि वह संसार में द्वैत को न देखे। गर्मी-ठण्ढी, अच्छाई-बुराई, स्त्री-पुरुष, ऐसा अन्तर देखना द्वैत-भाव है। जब तक यह द्वैत-भाव है, तब तक भगवांन की कृपा तुममें प्रवाहित नहीं हो सकती। इसीलिए जब ये छोटे बच्चे कीर्त्तन करते हैं, तब भगवान की

मौजूदगी प्रकट होती है। और इसीलिए हमने यहाँ दो चीजें शुरू की हैं। इनसे कीर्त्तन कराते हैं और खूब देते हैं। आखिर यही दो चीजें इस युग में काम आने वाली हैं न?

हम योग प्रशिक्षण लेने वाले छात्रों को योग पर मार्गदर्शन देने की कृपा करें।

आपको बिल्कुल स्पष्ट कर दूँ कि यह योग सत्र रिखिया वालों का सम्मेलन नहीं, मुंगेर वालों का है। इस एक महीने के सत्र में आप मुंगेर की तरफ से आए हुए हैं। चूँकि मुंगेर में अभी जगह की कमी है, इसलिए हमने कहा ठीक है, बहुत अच्छा है। परन्तु साथ ही हमने उनको कह दिया कि मुंगेर में तो तुम्हारे पास ए.सी.भी है, पंखा भी है और यहाँ न ए.सी.है, न पंखा है, न गरम पानी है और यहाँ आयोजन कराने वाले साधु भी नहीं हैं। मुंगेर में कोई गर्म या ठण्ढा पानी माँगे तो दे देते हैं, कोई बीमार हुआ तो उसका उपचार कर देते हैं, लेकिन यहाँ कुछ मिलने का नहीं है।

हर एक आदमी को अपना सुख-दुःख खुद भोगना चाहिए। अगर नहाने में ठण्ढी लगती है, तो मत नहाओ। गर्म पानी क्यों माँगते हो? अगर बुखार आ गया है, तो दाल या सब्जी का सूप क्यों माँगते हो, खाओ ही मत। जो बुखार दो दिन में ठीक होने वाला होगा, वह एक ही दिन में ठीक हो जाएगा! बीमारी का सबसे बड़ा उपचार है उपवास। यदि यहाँ कभी कोई बीमार पड़ता है, तो स्वामी सत्संगी बोलती है, आज तुम खाओ ही मत। तो शाम को वे बोलते हैं, स्वामीजी हम ठीक हो गए, खाने के लिए जाएँ? भूख एक ऐसी चीज है, जो बीमारी से भी ज़्यादा कष्टकर होती है। भूख से जो पेट में जलन होती है, वह बुखार से भी ज़्यादा कष्टकर होती है। मन में आता है–बाबा, बुखार सह लेंगे, मगर रोटी जरूर खायेंगे।

आप लोगों ने यहाँ योग का अभ्यास किया, परन्तु रिखिया का विषय योग नहीं है। मैं योग को मुंगेर में वैसे ही छोड़ कर आ गया हूँ जैसे माँ-बाप को घर में छोड़ कर आया। न उनको मुंगेर ले आया और न योग को यहाँ ले आया। यह स्वामी सत्यानन्द के बस की बात नहीं है। मेरा मुँह सामने है, पीछे नहीं। हमें किसी की तरफ देखना आता ही नहीं है। यहाँ केवल दो चीज़ें–पहला कीर्त्तन और दूसरा दो। बस, तीसरी चीज का यहाँ नियम है ही नहीं। और आपसे भी इन्हीं दो चीजों की अपेक्षा है।

हमारे गुरु स्वामी शिवानन्द जी थे। वे दक्षिण भारत के ब्राह्मण परिवार से थे और पेशे के डॉक्टर थे। वे मलेशिया गए, उन दिनों तो मलेशिया नहीं, फेडरेटेड स्टेट्स ऑफ मलाया उसका नाम था। वहाँ से अपना काम शुरू किया। फिर वहाँ से छोड़कर वे ऋषिकेश आए और वहीं रहने लगे। हमने 1943-44 में जब उनके साथ रहना शुरू किया, तो हमने पूछा, 'स्वामीजी, क्या करें?' उन्होंने कहा, 'देखो, दुनिया में बहुत-सी चीजें हैं, जिन पर तुम्हारा मन जाएगा। पर सबसे कठिन चीज है भगवान का नाम लेना और देने की कला सीखना।' उन्होंने योग सीखने के लिए नहीं कहा।

तुम लोगों को स्पष्ट बोल देते हैं कि हमने योग कभी पढ़ा तक नहीं है। हमने योग पर कोई किताब पढ़ी नहीं है और किसी से योग सीखा भी नहीं है। हमारा कोई योगी गुरु नहीं है। और हमने योग पर कुछ लिखा भी नहीं है, हम केवल योग पर बोलते थे। वह तो मजबूरी में इसलिए बोलते थे कि लोग वही पूछते थे। आज पता चलता है कि हमने ठीक बोला।

हमारे गुरुजी ने हमसे कहा, भगवान का नाम गाना सीखो और देना सीखो। देना बहुत मुश्किल चीज है। जब हम रिखिया में आए, तब हम लोगों ने एक ट्रैक्टर और एक ट्रक रखा। कम्बल वगैरह लेकर गाँवों में जाते थे और सब घरों में जाकर नियम से उनको देते थे। सब जगह नहीं, केवल एक पंचायत के लिए। हमारा एक समय था, जब हम देते थे। अगहन के महीने में हम देते थे, क्योंकि हमारा जन्म भी अगहन महीने का है। सन् 1923 में अगहन मास की पूर्णिमा को रात को बारह बज कर चार मिनट पर मेरा जन्म हुआ, उस दिन पचीस दिसम्बर भी था। चौबीस दिसम्बर बारह बजे खत्म हो गया और पचीस दिसम्बर लगे हुए चार मिनट हो गए थे। इसलिए हमने कहा कि अगहन महीने में हम देंगे।

इसे देखकर हमारे उड़ीसा के प्रभारी स्वामी स्वरूपानन्दजी और हमारे रायपुर के प्रभारी स्वामी अशेषानन्दजी को बड़ा जोश चढ़ा। उनमें एक हैं बिहारी और एक उड़िया। उन्होंने भक्तों से कम्बल ले लिये और एक ट्रक में लेकर गाँवों में चले गए देने के लिए। मगर मार खाकर आए। जब हमसे बोले, तब हमने कहा–'देखो, लेना तो तुमको आता था, मगर देना तुमको नहीं आता। देना एक विद्या है, खैरात नहीं।'

रही बात योग की। योग तो अच्छी चीज़ है। योग का मार्केट भी बड़ी तेज़ी के साथ आ रहा है। हिन्दुस्तान में तो अभी शुरू ही हुआ है। मेरे कहने

का सूक्ष्म मतलब है कि आप जो यहाँ एक महीने से आचार्य लोगों से आसन, प्राणायाम, योग निद्रा आदि सीख रहे हैं, उसको सीखिए और अच्छी तरह से उस पर विचार भी कीजिए। अपने घर में और अपने पड़ोसियों को भी सिखाइए। परन्तु योग उसके आगे जाने वाला है। उसकी कल्पना हमने बहुत साल पहले की थी, क्योंकि योग धर्म नहीं है। योग एक विज्ञान है, जिसका आँकड़ों से मूल्यांकन किया जा सकता हैं। जिसे अंग्रेजी में ऑब्जेक्टिव डाटा (वस्तुनिष्ठ आँकड़ा) कहते हैं। विज्ञान देखने-परखने की चीज है। धर्म विश्वास की चीज है। धर्म में विश्वास है, पर योग में कुछ चीजों को दिखलाया जा सकता है। भुजंगासन करते हैं, तो हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी, हृदय और यकृत आदि का क्या कोण रहता है, कहाँ पर कितना दबाव रहता है, कौन अंग किस पर बैठ रहा है, रक्तचाप किधर जा रहा है, कौन-सी धमनी फूल रही है, कौन-सी धमनी दब रही है, यह सब देखा जा सकता है और देखा भी गया है।

हिन्दुस्तान में पूना के पास लोनावला में कैवल्यधाम है, उस जगह में कुवल्यानन्द जी ने इस पर अनेक सालों तक बहुत काम किया। महाराष्ट्र सरकार ने उनकी मदद की। दिल्ली में धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जी ने भी अच्छा काम किया। हमारे पास तो पैसे की कमी थी, तो हमने यहाँ कुछ किया नहीं, क्योंकि उसके लिए बहुत बड़ी प्रयोगशाला इत्यादि की जरूरत होती है।

हम क्या करते थे—यहाँ से फ्रेंकफर्ट हवाई जहाज से जाते थे। वहाँ उतर कर एक कार किराये पर लेते थे। हमारे साथ कोई-न-कोई रहता था और वहाँ से कार से हम यूरोप होते हुए जाते थे। मध्याह्न में हम एक जगह पर मोटल में ठहर जाते थे। एक कमरा आरक्षित कर लेते थे और अखबार में एक विज्ञापन दे देते थे—स्वामी सत्यानन्द आज शाम कुण्डलिनी योग पर या मंत्र योग पर बोलेंगे। शाम को मोटल में सौ-डेढ़ सौ व्यक्ति आ जाते थे। उसकी फीस रहती थी, कहीं फ्रेंक में, तो कहीं पाउण्ड में। हम दीक्षा और दक्षिणा को जोड़ते हैं, हममें इस सम्बन्ध में कोई कुण्ठा नहीं है। दीक्षा और दक्षिणा का आपस में सम्बन्ध है।

पुराने जमाने में दीक्षा पहले देते थे, दक्षिणा बाद में लेते थे। आज दक्षिणा पहले लेते हैं, दीक्षा बाद में देते हैं। युग-युग का अपना नियम है। अभी पहले भुगतान करो, फिर आ जाओ यहाँ रहने के लिए। पहले ऐसा नहीं था। रामजी जब वशिष्ठ आश्रम में गए, तब मुफ्त में वहाँ पढ़ते थे। जब रामजी वशिष्ठ

आश्रम से लौटे, तब महाराज जी ने उनको नेग समर्पित कर दिया, चालीस-पचास एकड़ जमीन दे दी होगी या कुछ और भी दे दिया होगा। तो पहले दक्षिणा बाद में देते थे, दीक्षा पहले देते थे और अब दक्षिणा पहले लेते हैं, क्योंकि आजकल के लोगों की मानसिकता हो गई है, 'मुफ्त का माल है जहाँ, यार कुछ तो गोलमाल है वहाँ।' ऐसा नहीं है क्या? लोग शक करने लगते हैं।

हम फ्रेंकफर्ट जाते थे, शाम को हमारे पास दो-चार सौ लोगों से हजार-डेढ़ हजार पाउण्ड इकट्ठे हो जाते थे। गाड़ी और मोटल का खर्चा निकल जाता था और सीधे वहाँ से नॉटरडाम, हॉलैण्ड पहुँचकर गाड़ी छोड़ देते थे। नॉटरडाम से एक जहाज तीन दिन में न्यूयॉर्क पहुँचाता था, बड़ी तेज़ी के साथ जाता था, उससे न्यूयॉर्क जाते थे। वहाँ हमारा किसी प्रयोगशाला में पहले से आरक्षण रहता था, एक हफ्ता या पन्द्रह दिन के लिए, एक लाख डॉलर किराया दे देते थे उनको। उन दिनों एक लाख डॉलर माने आठ लाख रुपया। एक लाख डॉलर के अंदाज से वहाँ एक विषय, जैसे भस्त्रिका प्राणायाम पर अनुसंधान चलता था। इसमें क्या होता है? पसीना निकलता है, फेफड़े साफ होते हैं, यकृत में जितने एंजाइम हैं, उन पर क्या असर पड़ता है, जो धमनियाँ और नलियाँ खून को प्रवाहित करती हैं, वे किधर संकुचित होती हैं, कब और कहाँ फैलती हैं, उनमें खून की जो निकासी है, वह कितनी ज़्यादा तेज़ होती है? एक घण्टे में कितने लीटर खून ज़्यादा जा सकता है, और इन सब परिणामों का मतलब और निष्कर्ष क्या होता है? इन सब चीज़ों पर हम अनुसंधान करते थे। समझाने के लिए एक छोटा-सा उदाहरण दे रहा हूँ कि यह सब हम करते थे।

फिर जितने अनुसंधान पत्र होते थे, उन्हें संकलित करते थे। सब मुंगेर लाइब्रेरी में बिलकुल तैयार हैं। और वही सबको सिखाते हैं। हम साल में तीन बार वहाँ जाते थे। मैं मुंगेर में रहता ही नहीं था, मुंगेर का प्रबंधन मैंने कभी किया ही नहीं। मैंने वहाँ न बिल्डिंग बनाई, न व्यवस्था देखी। वह सब संन्यासी लोग देखते थे। मैं तो तीन-तीन बार अमेरिका जाता और अपना अनुसंधान करता रहता था। यहाँ तक कि फ्रेंकफर्ट में जो होटल वाला था, वह तो मेरे को पहचानने लग गया था, मेरा यार-दोस्त हो गया था। एक बार मैं अपना रोआना, गरम कोट जल्दी में उसके होटल के कमरे में भूल गया। तीन महीने के बाद गया तो होटल वाले से पूछा। उसने कहा कि हाँ, यहीं पर भूल गये थे, रखा हुआ है। तीन महीने के बाद उन्होंने मेरा कोट मेरे को वापस किया

है। इतना मेरे को वे लोग पहचान गए थे। एयरपोर्ट इतनी बार जाता था कि कस्टम वाले तक पहचान गये थे मुझे।

वहाँ पर प्रयोगशाला में भस्त्रिका प्राणायाम के अलावा, सबसे जरूरी चीज जो मैंने की, वह यह पता लगाया कि यौगिक व्यायाम करने से, मैं व्यायाम शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, तनाव कम होता है। जबकि माना जाता है कि व्यायाम से तो तनाव होता है। हमने विज्ञान के द्वारा देखा कि जब आदमी भुजंगासन, उष्ट्रासन या सुप्त वज्रासन करता है, तब ऐसा लगता है कि सारा शरीर तनाव में है, पर वैज्ञानिक यन्त्र दिखलाते हैं कि तनाव का स्तर गिर गया है। उष्ट्रासन में लगता है कि शरीर तनाव में है, भुजंगासन में भी तनाव में दिखता है। पर शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव, ये अलग-अलग चीजें हैं। तनाव आखिर किसको कहते हैं?

लोग अक्सर कहते हैं–स्वामीजी, हमको आजकल बहुत तनाव हो गया है। क्या मतलब है उसका? किस स्तर पर तुमको तनाव हुआ है? तनाव का अनुकम्पी तन्त्रिका प्रणाली, परानुकम्पी तन्त्रिका प्रणाली, स्वचालित तन्त्रिका प्रणाली और शिराओं तथा धमनियों से क्या सम्बन्ध है? केवल शरीर को तान देने से तनाव नहीं होता। अब तुम घूमने जाते हो, कितना अच्छा लगता है, नहीं लगता है क्या? तनाव कम होता है। व्यायाम से तनाव कम होता है। गतिशील होने से तनाव कम होता है। कभी-कभी बिस्तर में सोए-सोए तनाव बढ़ जाता है, बिस्तर में जो जितना ज्यादा सोता है, उतना ज्यादा तनाव में रहता है। इसीलिए रात को जब सोते हो, सवेरे कम-से-कम आधा घण्टा आसन जरूर कर लिया करो। और किसी वजह से आसन नहीं कर सको, तो पार्क में घूम कर आ जाओ। हम वहाँ पर यही सब प्रयोग करते थे और इनके परिणाम मुंगेर में रखे हुए हैं। जब कभी दो साल के लिए वहाँ रहोगे, तब ये चीज़ें तुमको वहाँ सिखाई जाएँगी, बतलाई जाएँगी।

मैं तुमको बतला रहा था कि योग वास्तव में एक बहुत बड़ा विज्ञान है, इस बात को याद रख लो, कभी गलती नहीं करना। योग का मतलब आसन, प्राणायाम, ध्यान, संन्यास, ब्रह्मचर्य नहीं होता है। योग का मतलब समाधि भी नहीं होता है। योग एक सामान्य शब्द है, जैसे शिक्षा एक सामान्य शब्द है। भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, बीज गणित, रेखा गणित, भूगोल, अर्थ शास्त्र, ये सब शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं। शिक्षा मनुष्य की बुद्धि के लिए अलग-अलग प्रकार के विषयों को सामने रखती है। उसी तरह

से योग में अलग-अलग अनुशासन हैं। आसनों का अनुशासन क्या है? शरीर के अंदर मांसपेशियों का अनुशासन। प्राणायाम जो है, वह ऊर्जा का अनुशासन है।

प्राणायाम केवल ऑक्सीजन नहीं है। ऑक्सीजन वायु की एक अवस्था होती है। हवा का एक प्रकार है, एक गैस है, उसका नाम है ऑक्सीजन, दूसरी का नाम है नाइट्रोजन, तीसरी का नाम है कार्बन, इस प्रकार कई गैसें होती हैं। पर यह उसकी मूल अवस्था नहीं है, न ही अंतिम अवस्था है। हाइड्रोजन और नाइट्रोजन को भी परिष्कृत किया जाता है। और हाइड्रोजन या नाइट्रोजन या ऑक्सीजन, किसी भी गैस को एक-दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है। ऑक्सीजन को हवा की अंतिम अवस्था नहीं माना जाता है। अस्पताल में जब ऑक्सीजन लेते हो, तो क्या होता है? उसमें एक छलनी होती है। उसमें से होकर जब हवा जाती है, तब उसमें बीस प्रतिशत ऑक्सीजन बाकी सत्तर प्रतिशत नाइट्रोजन और अन्य कुछ रहता है। आगे जाकर फिर उसको बैक्टीरिया से संसाधित करते हैं। वहाँ पर हवा के सब तत्त्व छुप जाते हैं और एक तत्त्व पैदा होता है, उसको हम कहते हैं शुद्ध ऑक्सीजन। नाइट्रोजन और अन्य गैसें छुप जाती हैं, शुद्ध ऑक्सीजन मिलती है और शुद्ध ऑक्सीजन मिलने से शरीर के अंदर गर्मी आ जाती है, प्राण आ जाते हैं। इस ऑक्सीजन की प्रोसेसिंग को कहते हैं प्राणायाम।

हम अंग्रेजी में शब्द बोल रहे हैं प्रोसेसिंग। अब अगर इसके बदले कहिए, प्राण-आयाम, इसका मतलब होता है, विस्तार या आयाम बदलना। प्राणायाम का एक आयाम है, ऑक्सीजन का। सारी दुनिया जानती है कि श्वास लेते हैं, तो ऑक्सीजन फेफड़ों में जाती है, फिर कार्बन बन कर बाहर आती है, पर जैसे-जैसे ऑक्सीजन में रूपांतरण होता जाता है, वह प्राण का रूप छोड़ देती है और ऊर्जा या शक्ति का रूप धारण करती है। ऊर्जा उसको कहते हैं, जिसमें गतिशीलता की शक्ति होती है। बिजली जलती है, पंखा चलता है, हीटर चलता है, गाड़ी चलती है, ये ऊर्जा के उदाहरण हैं।

प्राणायाम से अंत में एक ऐसी शक्ति पैदा होती है, जो शरीर के अंदर तमाम हार्मोनों को शुद्ध कर देती है। अब यह जो प्राणायाम है, एक आधार है। प्राणायाम बहुत महत्त्वपूर्ण वस्तु है, मगर उसे ज्यादा नहीं करना है। लोगों की तो आदत है कि किसी दिन खाने को बढ़िया चीज मिले, तो उसी को जल्दी-से-जल्दी खाने लगते हैं। अगर कहेंगे इडली बहुत अच्छी होती है, तो सवेरे-

शाम दिनभर इडली ही चल रही होती है। कोई पूछे, 'क्यों भई, ऐसा क्यों कर रहे हो?' तो कहेंगे, 'स्वामीजी ने कहा था–इडली बहुत अच्छी है, इसलिए ज्यादा खा रहे हैं।' नहीं, ऐसा नहीं करना। अच्छी चीज को भी पचाने के लिए समय देना पड़ता है।

पैदा होते ही अगर विकास हार्मोन्स दोगे, तो छोटा बच्चा जवान हो जाएगा क्या? नहीं, बीमार पड़ जाएगा, मर भी सकता है। उसी तरह से प्राणायाम को भी लोग विकास हार्मोन के रूप में इस्तेमाल करना चाहें कि जल्दी से जल्दी फायदा हो, तो हानि हो जाएगी। नहीं, इसे दीर्घ काल तक नियम से करना पड़ता है। योग शास्त्र कहते हैं कि समय दो तब इसमें ऊर्जा आती है। प्राणायाम अंत में साध्य नहीं, साधन है। प्राणायाम से तुम्हारे अंदर जो ऊर्जा का उदय हुआ, शक्ति पैदा हुई, वह शक्ति क्या है? यह कोई सिद्धि देने वाली ऊर्जा नहीं है। इससे तुमको अपने मन को एक जगह लगाने में मदद मिलेगी। तुमको उसके लिए तैयार करेगी, क्योंकि मन को स्थिर करना बहुत मुश्किल है। दुनिया में अगर तुमको कोई भी शक्ति अर्जित करनी है, तो वह है मन को स्थिर करना। बहुत मुश्किल है। कबीरदासजी ने कहा भी है–

मैं तो उन संतन का दास, जिन्होंने मन मार लिया।

कहते हैं कि जिन्होंने मन को बस में कर लिया, वे भगवान हो जाते हैं। एक वैज्ञानिक था, अमेरिका में उसने डी.सी.टेन का इंजिन बनाया था। उसका नाम था इसाक बेन्टॉफ, चेकोस्लोवाकियन था। हमारा अच्छा दोस्त भी था। उसने एक पुस्तक लिखी है, 'स्टॉकिंग द वाइल्ड पेन्डुलम', उसमें कुण्डलिनी योग और अनेक विषयों पर बहुत बातें लिखी हैं। उसमें एक जगह पर उसने लिखा है, जिस आदमी ने अपने मन को बस में कर लिया, जैसे कि घोड़े को बस में किया जाता है, वह जुनियर गॉड है। यह शब्द याद रखना–जुनियर गॉड। वह संत-महात्माओं को जुनियर गॉड कहता था। जुनियर गॉड का क्या मतलब होता है? भगवान से जुनियर। भगवान सीनियर हैं। संत-महात्मा जुनियर होते हैं, वे जुनियर गॉड हुए। तुम लोग मन को बस में नहीं कर पाते हो। कर पाते हो क्या? तुम्हारा मन तुम्हारे बस के बाहर है।

मन को बस में करने के लिए जबरदस्ती बिल्कुल मत करो। गांजा, भांग, चरस आदि का इस्तेमाल मत करो। तांत्रिक, मांत्रिक, यांत्रिक, कुछ जरूरत नहीं। प्राणायाम पर जोर दो। नियम से प्राणायाम करो और प्राणायाम के लिए

बहुत आवश्यक चीज़ है आहार शुद्ध होना चाहिए। अगर आहार शुद्ध नहीं हुआ, तो आहार में से विषाक्त पदार्थ पैदा होते हैं। सब आहार में विषाक्त पदार्थ पैदा होते हैं, तुम चाहे लौकी खाओ, मुर्गा खाओ, मछली खाओ, पाठा खाओ, कुछ भी खाओ। जो भी खाना तुम खाते हो, जो भी पानी तुम पीते हो, जो भी शराब तुम पीते हो, उसमें से एक हिस्सा विषाक्त पदार्थ बनता है। अन्तर केवल इतना है कि कुछ चीज़ों में विषाक्त पदार्थ कम बनते हैं, कुछ में ज्यादा। पर कुछ चीज़ों में विषाक्त पदार्थ इतने ज़्यादा बनते हैं कि शरीर उनको बाहर फेंक नहीं सकता। जब ये विषाक्त पदार्थ शरीर में इकट्ठे हो जाते हैं और शरीर इन्हें बाहर फेंक नहीं पाता, तब ये शरीर में कैन्सर या घातक रूप धारण कर लेते हैं। प्राणायाम में इन विषाक्त पदार्थों को साफ करने की क्षमता है। इसलिए मैं योग शास्त्र में प्राणायाम को बहुत महत्त्वपूर्ण साधना मानता हूँ। और आज की तारीख में यह हिन्दुस्तान छोड़ कर अमेरिका जाने के लिए एक वीसा बन गया है।

प्राणायाम के बाद धारणा आती है। धारणा क्या है? एक जगह पर अपने मन को बाँध कर रखना। पातंजल योग सूत्र में कहा गया है—*देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।* देश का मतलब होता है एक बिन्दु, वहाँ पर मन को बाँध कर रखना हुआ धारणा। जैसे तुम अपने घोड़े, कुत्ते, गाय या हाथी को बाँध कर रखते हो, ठीक वैसे ही अपने मन को एक जगह पर बाँध कर रखने को ही धारणा कहते हैं। अगर यह कर सकते हो, तो आसन इत्यादि तुम्हारे लिए बायें हाथ का खेल है। आज दुनिया में अगर कोई भी चीज़ कठिन है, तो वह है मन को बाँध कर रखना। जब मन को एक जगह पर बाँध कर रखते हो, तब वही आगे जाकर ध्यान में बदलता है। इसी को कहते हैं एकाग्रता—एक समय पर चित्त केवल एक चीज़ के बारे में सोचता है।

तो तुम मुंगेर की तरफ से यहाँ आए हो और रिखिया के सुविधा-रहित वातावरण में रहने का तुमको मौका मिला। पर यहाँ तुमको हमारे बच्चों का कीर्त्तन सुनने को मिलेगा और देने की आदत सीखने का समय मिलेगा। और अपना कमरा खुद साफ करना, बहुत जरूरी चीज है।

अब आखिरी बात बतला रहा हूँ, जीवन में सब आदमी केवल अच्छा चाहते हैं, बुरा कोई नहीं चाहता। इस कमजोरी को छोड़ो। दुनिया तुम्हारे मुताबिक नहीं चलती है, वह अपने ढंग से चलती है। गर्मी के दिनों में गर्मी आएगी, जाड़े के दिनों में जाड़ा आएगा, बरसात के दिनों में बरसात आएगी।

जब कभी जीवन का मौसम अपने मुताबिक नहीं रहता, तब आदमी बहुत घबरा जाता है। बस, इसी पर नियंत्रण रखो।

रहीमन चुप ह्वै बैठिए देखी दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहैं देर॥

दान एक विज्ञान कैसे है?

देकर देखो तो पता चल जाएगा। हम एक बार हवाई जहाज से जा रहे थे, तो हमारी बगल में एक अंग्रेज़ औरत बैठी थी। उसने भारतीय मिठाइयों पर एक शोध-पत्र लिखा था। जब हमारे पास रसगुल्ला आया, तब उसने हमसे पूछा कि यह क्या है। हमने कहा, 'जो तुमने किताब में लिखा वही रसगुल्ला है।' उसने कहा, 'हमने कभी खाया ही नहीं, लिखा जरूर है। सुनते हैं बहुत मीठा होता है।' हमने कहा, 'जरा खाकर देखो।' ठीक वैसे ही तुम देकर देखो, खुद जान जाओगे। हमने इस रास्ते में बहुत प्रयोग किये हैं। हृदय पवित्र होता है, भय कम होता है और लोगों के प्रति करुणा का भाव बहुत अधिक जाग्रत होता है।

हम मुंगेर में सबसे पहले सन् 1956 में गए थे। वहाँ एक जज के यहाँ हम रहते थे, बाद में केदारनाथ गोयनका के आनन्द भवन में रहने लग गए थे। वहाँ एक टीला था, उसका नाम था कर्ण चौरा। कहते हैं कि वहाँ पर द्वापर युग में कर्ण का महल था। और महाराजा कर्ण की इष्टदेवी वहीं बगल में हैं, चण्डी। वह चण्डी स्थान में जाकर तप करता था और फिर अपनी सिद्धि से सोना पैदा करता था। जब वहाँ से आता था, उस सोने को ब्राह्मणों को दान देता था। जहाँ पर बैठ कर दान देता था, उसी स्थान का नाम है कर्ण चौरा।

उस समय जब हम मुंगेर आते थे, तब दिन में वहाँ कर्ण चौरा पर जाते थे। वहाँ एक समतल जगह थी, उसी पर बैठते थे और वहीं आराम के साथ लेट जाते थे, क्योंकि हमें गृहस्थों के घर में रहना पड़ता था, पर अच्छा तो नहीं लगता था। इसलिए दिन में अपना जितना समय होता था, हम कर्ण चौरा में निकाल लेते थे एकान्त में। कई सालों तक ऐसा चक्कर चला। फिर नीचे लाल दरवाजे में आश्रम बना, उसके कुछ साल बाद सन् 1974 में हमने कर्ण चौरा को मोल ले लिया। जब से हम वहाँ रहने लगे, हमारी पूरी मनोवृत्ति, हमारा पूरा व्यवहार ही बदल गया, क्योंकि महाराजा कर्ण का संस्कार जो था, वह एक दानी का संस्कार था। महाभारत में इसकी कहानी आती है। कितनी चीज़ें उसने दे दी थीं, जबकि उसको मालूम था कि ये लोग उसे ठगने के लिए आए

हैं। अब ऐसे आदमी की धरती में कोई बैठे और उसके विचारों में कोई परिवर्तन न हो, वह संभव नहीं है। और हम वहाँ बैठ गए, तो स्वाभाविक है कि हममें भी परिवर्तन आ गया।

जब तक हम गोयनका जी के आश्रम में थे, हम भी इधर से उधर करते रहते थे, जैसे सब लोग करते थे, पर यहाँ आने के बाद हमारा विचार पूरा का पूरा बदल गया। उस वक्त मुंगेर के पास, लक्ष्मीपुर दियारा था। गंगा को पार करके जाना पड़ता था। वहाँ दो गुटों के बीच लड़ाई हो गई, आगजनी हो गई, सब घर जल गए। हमको किसी ने कुछ बोला नहीं, पर जब हमको खबर लगी तो हमने पटना से एक स्टीमर बुक किया, उसमें कपड़ा, कम्बल, चावल, गेहूँ, पावरोटी वगैरह जो भी चीज़ें होती हैं, उनको भर दिया और सब स्वामी लोगों को कहा, जाओ, जब तक उन लोगों का पुनर्वास नहीं होता है, तब तक तुम वहीं रहो।

अब दो-तीन हजार की बस्ती के लोगों का पुनर्वास इतना मुश्किल काम था, परन्तु पता नहीं कैसे हमें इतनी मदद आने लगी। उस वक्त परमेश्वरी बाबू अग्रवाल, जो संसद सदस्य थे, वे झरिया में थे, उन्होंने बिना मांगे बीस हजार कम्बल भेज दिये। लक्खीसराय वगैरह से ट्रक के ट्रक चावल पहुँचने लग गये। हमने किसी को कुछ बोला नहीं, कोई अपील नहीं की। उन दिनों शायद दूरदर्शन भी नहीं था, सिर्फ रेडियो चलता था। हमें इतनी मदद पहुँची कि बेगुसराय और खगड़िया के लोगों ने रोज थैले का थैला दूध भेजना शुरू कर दिया। एक ने तो मेरे को कहा कि हमारी पूरी जमीन में से जितनी सब्जी आपको निकालनी है, सब सब्जी ले लो पूरे दो महीने।

हमने वहाँ सबकी दवा-दारू की, जिन्हें मरना था सो तो मर गये, लेकिन लोगों को राहत हो गई। सबसे बड़ी चीज़ है कि उन लोगों के बीच बिल्कुल सुलह करा दी। वे नेपाल से गांजा लाते हैं, इधर बेचते हैं, इधर का उधर करते हैं, उधर का इधर करते हैं। सब बेच देते हैं, छोकरियों को भी बेच देते हैं वे लोग। कोई दया-माया नहीं है और उसी कारण से झगड़ा शुरू हुआ था, लेकिन हमने दोनों गुटों में सुलह करा दी।

दुःख और सुख सज्जन को भी आते हैं और दुर्जन को भी आते हैं। एक संत-महात्मा भी बीमार पड़ता है और एक बदमाश, चोर, गुण्डा, खूनी आदमी भी बीमार पड़ता है। उसके घर में भी लड़कियाँ विधवा होती हैं, बहू-बेटियाँ बीमार होती हैं। उसके घर में वही कुछ होता है, जो एक अच्छे आदमी

के घर में होता है। फिर एक और बात जानने की है। क्या हम सब दूध के धुले हैं? फर्क यही है कि हम मन से पाप करते हैं और वे शरीर से पाप करते हैं, अपराध करते हैं। हम तो कितने लोगों को जान से मारने की सोचते हैं, नहीं सोचते हैं क्या? मन करता है न?

मानसिक अपराध तो हम सब करते ही हैं। मानसिक रूप से हम बलात्कार भी करते हैं, झूठ बोलता हूँ तो बतला दो। मानसिक रूप से हम डकैती भी करते ही हैं। मानसिक रूप से हम दूसरों का बुरा चाहते ही हैं। हाँ, एक-आध संत होगा जो दूसरे का बुरा नहीं चाहता या एकदम बेवकूफ आदमी, जिसे समझ में ही नहीं आता कि कौन अच्छा है, कौन बुरा। मगर निन्यानवे प्रतिशत लोग तो अपराधी होते हैं। फर्क क्या है? एक सही में अपराधी होता है, जो क्रिया में चला जाता है और क्रिया में जाने से उसको तकलीफ होती है। इन लोगों को भी तकलीफ होती है। इनके प्रति कुछ लोगों को ख्याल करना चाहिए।

दूसरी बात है, जो देने की कला है, वह अपने अंदर की स्वार्थ-भावना को बहुत जल्दी दूर करती है। जब हम कर्ण चौरा पर बैठे, हमारा पूरा स्वभाव बदल गया। और जब हम यहाँ पहुँचे, तब हमने एक ही निश्चय कर लिया कि दो चीज़ों पर हम जोर देंगे। एक है नाम, दूसरा है दान। जहाँ तक योग का प्रश्न है, स्वामी निरंजन के पास जगह की कमी है, इसलिए लोगों को यहाँ भेज देते हैं। अपने पास अभी जगह है, तो हम भी रख लेते हैं।

मेरी पी.डब्ल्यू.डी. में नौकरी है। पर वहाँ मन नहीं लगता है, अनेक झंझटें आती हैं, सकारात्मक वातावरण तो मिलता ही नहीं। नौकरी छोड़ देना चाहता हूँ।

गीता में अर्जुन ने भी यही कहा था, भगवान मेरे को लड़ना ही नहीं है। उसने कुछ दूसरी वजह दी, तुम दूसरा कारण दोगे, मुझे मालूम है। बोलोगे कि मेरे को अपनी नौकरी में मन नहीं लगता है, क्योंकि फलानी चीजें होती हैं। अर्जुन ने भी तो ऐसे ही कहा था, मेरे को नहीं लड़ना है, क्यों? इसलिए कि फलाना सब होता है। तब भगवान ने उसको समझाया और कहा, 'वाह अर्जुन! बात तो तुम पण्डितों जैसी करते हो और व्यवहार बेवकूफ जैसा। अरे, तू नहीं लड़ेगा तो यह लड़ाई नहीं होगी क्या? लड़ाई तो होगी ही, क्योंकि कप्तान तो तू है नहीं। कप्तान तो धृष्टद्युम्न है।'

तुम्हारी कप्तान तो घर में बैठी गृह-मंत्री है, तो नौकरी छोड़ कैसे सकते हो? तुमको नौकरी करनी ही होगी। भगवान ने अर्जुन को भी ऐसे ही कहा–तस्मात् युध्यस्व भारत। अगर तुम भगवद्गीता को ध्यान से पढ़ोगे, तो भगवान ने कई जगह पर तस्मात् शब्द का इस्तेमाल किया है। जैसे बीजगणित में बोलते हैं न, इसलिए x = 5। बस, तस्मात् का यही मतलब होता है–इसलिए। तो तस्मात् शब्द को निर्णय मानते हैं। गीता में कई जगहों पर भगवान ने समझाया और फिर कहा तस्मात्। हर जगह पर उन्होंने तस्मात् शब्द लिखा है। और हर जगह पर एक ही बात लिखी है कि इसलिए लड़ना होगा, लड़ाई छोड़ नहीं सकते।

यह भगवान का निर्णय है कि जिस आदमी ने शादी कर ली और उसकी शाखा-प्रशाखाएँ हो गईं, उसको पैसा तो कमाना ही पड़ेगा, चाहे पी.डब्ल्यू.डी. से पैसा कमाए, डॉक्टरी से कमाए या और किसी तरह से कमाए। चाहे ईमानदारी से हो या बेइमानी से, परिश्रम से हो या बिना परिश्रम के, किसी भी तरह से उसको पैसा तो कमाना पड़ेगा ही। और जो गृहस्थी का ढाँचा उसने तैयार किया हुआ है, उसको तोड़ नहीं सकता है। उस ढाँचे को तोड़ने का केवल एक तरीका है। भगवान कृष्ण ने यही बतलाया है, मैं आधुनिक भाषा में बतला रहा हूँ। तुम अपने को संन्यासी ही समझ लो और संन्यासी की ही तरह रहो। और इसलिए उसको अपनी पत्नी न समझकर साझेदार मान लो। जब घर में बर्तन माँजने हों, तुम भी हाथ बँटा दिया करो। उसको नौकरानी बना कर मत रखो।

बर्त्तन माँजना नौकरानी का काम नहीं है, टॉयलेट साफ करना मेहतरानी का काम नहीं है, कपड़ा साफ करना धोबन का काम नहीं हैं, मानते हैं, वह तो घर का काम है, पर तुम भी उसमें हाथ बँटाओ। थाली जूठी छोड़ देना, कपड़ा बाथरूम में छोड़ देना, या तो पत्नी करेगी या फिर नौकरानी। तुम भी हाथ बँटाओ। संन्यासी का काम है कि टॉयलेट भी साफ करेगा, बर्त्तन भी साफ करेगा। कभी तुम भी बिस्तर लगा दिया करो और कभी-कभी तुम घर देखो, उसको यहाँ भेज दो। यहाँ का मतलब इसी आश्रम में नहीं, किसी आश्रम में जहाँ उसका मन लगे। उसका तुम्हारे साथ बराबर का हक होना चाहिए। तुम्हारी मर्जी है, उठाया टिकट, निकल चले, मुंगेर पहुँच गए और उसे पहुँचने के लिए तुमसे पूछना पड़ता है। तो बराबरी का सवाल ही कहाँ उठता है? बराबरी का मतलब होता है कि एक बालिग व्यक्ति को, जो पति हो, पत्नी हो या माँ हो,

नाबालिग की तरह नहीं रखना। समाज है कि अंधेरखाना? तुम किस चीज़ के बारे में बात कर रहे हो? यह किस शताब्दी में हम लोग जी रहे हैं?

आज अमेरिका, इंग्लैण्ड और यूरोप ने जो इतनी उन्नति की है, केवल यंत्र और राजनीति के बल पर नहीं की है। उनके दोनों पैर मजबूत हैं। हमारे यहाँ हिन्दुस्तान की लड़कियाँ आती हैं तो हम रखते नहीं हैं, बहुत डरते हैं, क्योंकि कल आश्रम में उसका मन नहीं लगेगा तो कहाँ जाएगी? उसका तो कोई ठिकाना ही नहीं है। घर में जाएगी, तो घर के लोगों को कुण्ठा हो जाएगी कि वह साधु के आश्रम में थी, घर आ गई, क्या हो गया।

अंग्रेज़ लड़की का ऐसा नहीं है। उसको बोलो, जाओ, तो सीधे चली जाती है, उसको कोई दिक्कत नहीं, न ट्रेन टिकट की दिक्कत है, न वीसा की, न पैसे की। उसके पास पैसा नहीं रहेगा, तो वह देवघर जाकर डी.सी.के यहाँ से अपने दूतावास को फोन करेगी, बोलेगी मैं जाना चाहती हूँ, मेरे पास पैसा नहीं है। वह गृह-मंत्री को फोन करेगा, वह अपने सचिव को फोन करेगा और फिर वे डी.सी.को फोन करेंगे कि उसका टिकट बनवा दो। वह लड़की यहाँ से दिल्ली चली जाएगी और दिल्ली से उसका पासपोर्ट जप्त करके उसको यात्रा के कागजात दे देंगे। वह अपना इंग्लैण्ड, अमेरिका, कहीं भी पहुँच जाएगी। वहाँ जाकर पैसा कमाएगी और साल भर के अन्दर पासपोर्ट छुड़वा लेगी। यह यहाँ पर हुआ है। तुम्हारे यहाँ की औरत में ताकत है इतनी?

समाज पुरुष के बल पर नहीं चलता है। आदमी एक पैर पर नहीं चलता है। साइकिल एक पहिए पर नहीं चलती है। गाड़ी दो चक्कों पर नहीं चलती है। समाज एक पैर के ऊपर नहीं चलता है। परिवार एक के बल पर नहीं चलता है। परिवार में माता-पिता नींव का काम करते हैं और बच्चे टाई बीम का काम करते हैं। पहले नींव उठती है, फिर एक टाई बीम होती है सब खम्भों को जोड़ने के लिए। बच्चे टाई बीम होते हैं। कमजोर टाई बीम। आदमी बच्चों को कमजोर बना कर रखता है। कुछ सीखने ही नहीं देता। क्यों नहीं सीखने देता? इसलिए कि लोग क्या कहेंगे। धत् तेरे की! समाज ने कब तुम लोगों की मदद की है? तुम समाज के बनाने वाले हो, समाज कोई ईश्वर का बनाया हुआ नहीं है। समाज तुमने और मैंने मिलकर बनाया है और हम समाज को तभी तोड़ सकेंगे जब बिल्ली के गले में घण्टी बाँधेंगे।

हमको समाज को बदलने के लिए कहीं पर तो कुछ करना पड़ेगा। आज लड़कियों के साथ, स्त्रियों और बच्चों के साथ हम लोगों की जो सामाजिक

अवधारणा है, वह गलत है। जहाँ तक इज्जत या प्रतिष्ठा का सवाल है, यह तो केवल एक सामाजिक अवधारणा है। अच्छा नाम और बुरा नाम, यह एक सामाजिक अवधारणा है। क्लिन्टन की कहानी तो सबको मालूम है। तुम्हारे यहाँ आएगा तो तुम मना करोगे क्या? बोलोगे क्या कि एक रखैल रखते हो, बदनाम हो, नहीं आना? नहीं। उसका तो स्वागत-सत्कार करोगे न? याद रखो–

समरथ को नहीं दोष गोसाई। रवि पावक सुरसरि की नाई।

इसलिए समर्थ बनो। जिसने जो बोलना होगा बोलेगा। अर्जुन ने भगवान को कहा–*न योत्स्य इति गोविन्दम्*–मुझे लगता है कि मुझको लड़ना नहीं चाहिए। तो भगवान ने कहा–*'युध्यस्व'*, तेरे को लड़ना होगा।

दूसरी चीज, मन नहीं लगता है। यह तभी होता है जब तुम फल की आशा से काम करते हो। भगवद्गीता कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति को संसार में रहकर कर्म करना चाहिए, कर्म के बिना उसका उद्धार नहीं हो सकता। कर्म के बिना उसका विकास नहीं हो सकता, उसके जन्म-जन्मांतर नहीं बदल सकते, उसको सुख-संतोष नहीं मिल सकता, उसका दिन कट नहीं सकता। परन्तु उस कर्म से जो विषाक्त चीजें पैदा हो रही हैं, जो मुश्किलें पैदा हो रही हैं, उनको दूर करने के लिए उसको एक संन्यासी की तरह रहना पड़ता है।

आखिर स्वामी विवेकानन्दजी ने इतने आश्रम खुलवाये, नहीं खुलवाये क्या? उनकी तरह क्यों नहीं रह सकते? हमने भी साठ साल काम किया जगह-जगह पर। कोई ऐसा महाद्वीप नहीं है जहाँ हमारा स्कूल न हो। दस ही विद्यार्थी आते हों, मगर प्रतिनिधित्व है। हमने सब कुछ किया। अपनी पत्नी और बच्चों के साथ एक संन्यासी की तरह निष्काम भाव से रहो, और उनके साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित करो जो कि आश्रम में गुरु-शिष्यों के बीच होता है। और जैसे गुरु शिष्य की रक्षा करता है, उसको शिक्षा देता है, मार्गदर्शन देता है, उसके प्रति स्नेहयुक्त रहता है और उसके प्रति कड़ा भी रहता है, ऐसा करो। अपने को कर्ता क्यों मानते हो? अपने को निमित्त मानो और निमित्त किसका?

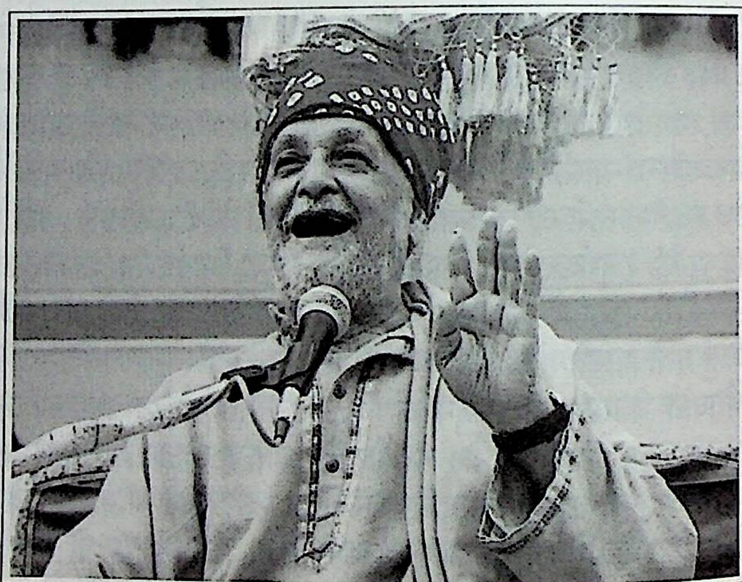
भगवान ने गीता में अर्जुन को कहा–*निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्*–हे सव्यसाची, तुम निमित्त बनो। यह सबको करना पड़ता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने वेदों में कहा है कि दुनिया में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार पैर हैं। एक पैर पर मेज कभी खड़ी नहीं होती, दो पैरों पर भी मेज कभी

खड़ी नहीं होती। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों-के-चारों के योग को गृहस्थ कहते हैं।

गृहस्थ आश्रम में तुमको धर्म का व्यवहार भी करना पड़ेगा। सही और गलत का ख्याल रखना पड़ेगा। अर्थ का उपार्जन करना पड़ेगा, खर्च भी करना पड़ेगा। इच्छाओं की पूर्ति करनी होगी, खाने की इच्छा, भोग की इच्छा, कपड़े की इच्छा, लेने-देने की इच्छा। और मोक्ष, अपने मन को संसार में रहते हुए भी मुक्त रखना।

अगर किसी आदमी को किसी बैंक में नौकरी दी जाती है और वह काम करता है, उसको दस-बीस हजार रुपये महीने में मिलते हैं। फिर जब साठ-पैंसठ साल में उसकी सेवानिवृत्ति हो जाती है, वह बैंक छोड़ देता है। उस बैंक का इष्ट या अनिष्ट होने से उसको क्या मतलब? उसने पचीस-तीस साल बैंक में काम किया, फिर छोड़ दिया न उसने? उसको बैंक के इष्ट-अनिष्ट से कोई मतलब रहा क्या? नहीं। और बैंक में काम करते समय भी शाम को पाँच बजे छुट्टी हुई, घर में आया तो बैंक भूल गया, बीबी-बच्चे सामने हैं। जब बैंक या ऑफिस या दुकान से लौटते हो, उसके बाद वहाँ से कोई मतलब रखते हो क्या? फिर अपने जीवन में भी ऐसा क्यों नहीं करते? यही तो रहस्य है सुखी, सम्पन्न और यशस्वी जीवन का।

– 20 सितम्बर 2006





अध्याय 24

स्त्री संन्यास की व्यवस्था बहुत से धर्मों में है। धर्म में व्यवस्था का मतलब है कि उसके लिए कानून या नियम है। जैन धर्म में उनको जैन मुनि और साध्वी कहते हैं। बौद्ध धर्म में भी लड़कियों के लिए संन्यास की व्यवस्था है। बौद्ध धर्म में उनको भिक्खुनि या संघप्रिया कहते हैं और ईसाई धर्म में उनको नन्स कहते हैं। परन्तु इस्लाम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, उसमें वह अनुच्छेद है ही नहीं। स्त्री संन्यास का इस्लाम और वैदिक धर्म में कोई प्रावधान नहीं है। यहूदी और पारसी धर्म में भी इसका कोई प्रावधान नहीं है। वैध है केवल जैन, बौद्ध और ईसाई धर्म में, इन तीन धर्मों में नियम के मुताबिक उनके यहाँ अनुच्छेद है कि लड़की संन्यास लेगी, तो इन नियमों का पालन करना होगा।

जिसे तुम हिन्दू धर्म कहते हो, वह असल में वैदिक धर्म है, यानि कि जो वेदों से निकला है। जैसे ईसाइयों का धर्म बाइबिल से निकला है, वैसे ही हिन्दू धर्म वेदों से निकला है और उसमें स्त्रियों के लिए संन्यास की व्यवस्था नहीं है। कई लोगों ने प्रयत्न किया, पर स्वीकार्य नहीं हुआ। शंकराचार्य भी कुछ नहीं कर सके और अखाड़ों ने भी कुछ नहीं किया। यद्यपि हमारे यहाँ स्त्री संन्यासी और मण्डलेश्वर हैं, पर इनका कहीं पर भी मठ में पंजीकरण नहीं है।

संन्यास की दीक्षा विधिवत् होती है। जैसे तुम्हारी शादी में समारोह होता है, यज्ञोपवीत समारोह होता है, जन्म से मरण तक सोलह संस्कारों में समारोह होते हैं, उसी तरह से संन्यास एक संस्कार होता है। उसके समारोह में पाँच गुरुओं को गवाह के रूप में उपस्थित रहना पड़ता है। एक अपना गुरु है, जो बाल मुण्डाता है और दीक्षा गुरु कहलाता है। दूसरा ज्ञान गुरु, तीसरा मठ का

गुरु और फिर परम्परा के गुरु रहते हैं। पाँच गुरु गवाह के रूप में रहते हैं, जिस वक्त सिर मुण्डाया जाता है। संन्यास दो जनों के बीच में निजी समारोह नहीं है। आजकल बहुत लोगों ने शादी भी निजी समारोह में करनी शुरू कर दी है, वैसे शादी निजी समारोह नहीं है, वह एक सामाजिक समारोह है। जैसे शादी एक सामाजिक समारोह है, वैसे ही संन्यास भी निजी समारोह नहीं माना जाता है, एक सामाजिक समारोह है।

मेरे कहने से या किसी दूसरे के कहने से तुमको संन्यास मिल जाए, ऐसा नहीं होता है। कुछ लोग ऐसे देते हैं, पर उसको अवैध कहा जाता है। कानून उसको स्वीकार नहीं करता है, इसलिए लड़कियों को संन्यास बहुत मुश्किल से मिलता है। यह वैदिक धर्म की व्यवस्था है और वैदिक धर्म का यह कहना है कि स्त्री संन्यास के लिए उपयुक्त तत्त्व नहीं है। चर्चा कर रहा हूँ। यह तो विचार-विमर्श का विषय है। कोई स्वीकार करे या न करे। वेद एक आदमी के बनाये हुए नहीं हैं और उनको खुदा ने भी बनाया नहीं है। कई विचारकों ने हजारों सालों में जो कुछ कहा, उनका संकलन है। एक ने एक बात कही, दूसरे ने उसको काटा, इस प्रकार कहते-कहते परम्पराएँ बनीं। अंत में व्यास देव जी ने चार वेदों में उसका सम्पादन किया।

वेदों में सबसे मुख्य चीज़ संन्यास या भगवान नहीं है। मुख्य चीज़ दुनिया को बनाने वाला नहीं है। मुख्य चीज़ है, इस दुनिया में कैसे रहना। जो भी तुम करोगे, यह ख्याल करके करो कि तुम इतने लोगों के बीच रहते हो, तुमको क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए। भगवान मुख्य नहीं हैं कि हम संन्यास ले रहे हैं भगवान के लिए, या शादी कर रहे हैं भगवान के लिए। तुम जो कर रहे हो, उसका दस-बीस लाख लोगों पर, जिनके बीच में तुम रहते हो या जिस समाज और परिवार में तुम रहते हो, उस पर दीर्घ काल में क्या असर पड़ेगा? वैदिक धर्म सामाजिक व्यवस्था को सबसे ज़्यादा महत्त्व देता है। और इसी सामाजिक व्यवस्था को नियन्त्रण में रखने के लिए धर्म नाम की संहिता है। धर्म सामाजिक संविधान का नाम है। इसलिए आश्रम में आओ, रहो, फिर जाओ नौकरी करो, पैसा कमाओ, छुट्टी में फिर आ जाओ। थोड़ा बहुत यहाँ दान-धर्म भी करते रहो।

दूसरी बात क्या है कि संन्यास परमात्मा की प्राप्ति के लिए नहीं लिया जाता है, भगवान का भजन करने के लिए भी संन्यास नहीं लिया जाता है। संन्यास का केवल एक प्रयोजन है कि आदमी निर्बन्ध रहकर कुछ काम कर सके।

वैदिक धर्म में, मार्केट और धर्म को समानान्तर रखा है। दोनों एक-दूसरे को संरक्षण देते हैं। तुम लोग मार्केट से सम्बन्ध रखते हो। हमारे धर्म शास्त्रों में मार्केट का मतलब है, अर्थ और काम। धर्म और मोक्ष दूसरा पक्ष है और हम उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। अब दोनों पक्षों के बीच समानान्तरता होनी चाहिए। दोनों को एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए। अगर हम मार्केट को गाली दें और उसकी निन्दा करें और फिर मार्केट हमारी निन्दा और आलोचना करे, तो न तो तुम फलोगे-फूलोगे और न हम फलेंगे-फूलेंगे। ईसामसीह को जो सूली पर लटकाया गया, केवल इसलिए लटकाया गया कि उन्होंने कहा कि मेरे भगवान के दरवाजे पर यह दुकानदारी क्यों होती है, क्योंकि यहूदियों के जो मंदिर थे, उनके सामने पाठे बिकते थे, सिक्के बिकते थे, जैसे अपने यहाँ बाबा धाम में सब चीज़ें बिकती हैं। उस समय उनके मंदिर में भी बिकते थे, जिसको रोकने के लिए उनके चेले आक्रामक हो गए, उन्होंने तोड़ना-फोड़ना शुरू कर दिया। कहानी इतनी भर है। इसी कारण वहाँ के व्यवस्थापकों ने उनको पकड़ कर सूली पर लटका दिया।

इस्लाम, यहूदी और ईसाई धर्म में मार्केट को धर्म से दूर रखा गया है। लेकिन इसका परिणाम क्या हुआ? वे राजनीति के निकट चले गए। आखिर धर्म को किसी की तो मदद की जरूरत पड़ती है। अगर हमको पैसे वाले मदद नहीं करेंगे, तो हम राजनेताओं के पास तो जायेंगे ही मदद के लिए। हमको किसी के साथ साझेदारी में जाना ही पड़ेगा। वैदिक धर्म में धर्म और मोक्ष के मार्ग पर चलने वाले महात्माओं, पण्डितों या आचार्यों को कहा गया कि तुम मार्केट के साथ रहो और अगर तुम इनके साथ नहीं रहोगे तो तुमको राजा के साथ रहना पड़ेगा। यही वजह है हम राजनेताओं या कलेक्टर के पास जाते ही नहीं हैं। कोई सड़क बनानी हो तो तुम जैसों से पैसा लेकर बना लेते हैं। धर्म को प्रायोजकों की जरूरत पड़ती है।

धर्म और मोक्ष को आगे बढ़ाने के लिए या तो अर्थ और काम की जरूरत पड़ती है या फिर राजा की जरूरत होती है। अगर धर्म के कार्य राजा द्वारा प्रायोजित होंगे, तो राजा तुम्हारा इस्तेमाल करेगा। सब जगह कर ही रहा है। इस्लाम में तो यही हो रहा है और इतिहास कहता है कि ईसाई धर्म में भी यही हुआ। कई बार अपने धर्म में भी हुआ है, ऐसी बात नहीं है कि यहाँ नहीं हुआ है, पर बड़े पैमाने पर रोका गया है। धर्म का प्रयोग राजनीति में होना ही नहीं चाहिए, इसलिए धर्म को मार्केट के साथ जोड़ा गया है।

इतिहास की चर्चा हम लोगों को ठीक से पढ़ाई नहीं जाती है। बौद्ध धर्म भगवान बुद्ध के सात सौ साल बाद बना। याद रखना हम जो बोल रहे हैं। सिक्ख धर्म नानक जी की भविष्य की दृष्टि थी, पर बना गुरु गोविन्द सिंह के समय पर। धर्म एक ऐसी प्रक्रिया होती है, जिसका संविधान होता है। तुरन्त जब भी जो आदमी बोलता है, जैसे आज हम कुछ बोल रहे है, तो धर्म बन जाएगा, ऐसा नहीं है। आज अनुयायी बनेंगे, आश्रम बनेंगे, समूह बनेंगे, पर धर्म नहीं बनेगा।

धर्म का एक संविधान होता है। जैसे राजनीति में एक संविधान होता है, वैसे ही हर धर्म का एक संविधान होता है। हमारा संविधान मनु स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, आर्य स्मृति है। हमारे अलग-अलग सम्प्रदायों के बहुत से संविधान हैं। सिक्खों का अपना संविधान है, जैनियों और बौद्धों का अपना संविधान है। भगवान बुद्ध के मरने के बाद, राजगीर के पास संविधान बनाने के लिए आचार्यों की बैठक हुई थी। भगवान बुद्ध के मरने के सात सौ साल बाद धर्म बना, जिसको आधिकारिक तौर पर धर्म बोलते हैं।

अशोक के वक्त बौद्ध धर्म, धर्म नहीं संघ था। जैसे आज 'बिहार योग' एक संस्था है या संघ है, वह अभी धर्म नहीं है। संघ में और धर्म में बड़ा अंतर होता है। जब अशोक राज कर रहा था उस वक्त बौद्ध धर्म एक भिक्खु संघ था, जैसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। हो सकता है आगे जाकर कोई उसको धर्म भी बना दे, पर अभी तक धर्म नहीं है। अभी मात्र संघ है। उसी तरह बौद्ध धर्म केवल संघ था। अशोक ने बौद्ध संघ को स्वीकार किया। उसके स्वीकार करने के बाद बौद्ध संघ का राजनीति के साथ गठबंधन हुआ। फिर अशोक के बाद उन लोगों ने इसको धर्म का रूप देना शुरू किया। यह अशोक की मजबूरी थी। तुमको यह सब इतिहास पढ़ाता नहीं है, मगर हमने पढ़ा है। हम उन्मुक्त चिन्तन का इतिहास पढ़ते हैं। तुम्हारे स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाते हैं, वह इतिहास हमने नहीं पढ़ा।

हमने गजेटियर्स में असली इतिहास पढ़ा है। अशोक ने कलिंग पर हमला किया, जीता या हारा, वह तो राजनीति कहेगी, क्योंकि युद्ध में न कोई जीतता है और न कोई हारता है। फिर भी औपचारिक तौर से तो यह मान्यता है कि वह जीता। उस युद्ध में मरने वालों की संख्या लाखों में थी। उन सबका कोई बाप या बेटा होगा, कोई माँ, बहन या बीबी होगी। मगध में उसकी राजनैतिक प्रतिक्रिया क्या हुई होगी? उस विद्रोह का किसी ने तो

नेतृत्व किया होगा, क्योंकि राजनीति तो कभी विरोध के बिना रह ही नहीं सकती है। राजनीति में तो प्रतिपक्ष होता ही है। उस वक्त भी रहा होगा और अशोक ने ताड़ लिया उसको। उसने उस वक्त के सबसे शक्तिशाली संघ, बौद्ध संघ को स्वीकार कर लिया। बौद्ध बन गया, क्षमादान मिल गया। असली बात इतनी ही है और कुछ नहीं।

इतिहास निष्पक्ष होता है और हज़ार साल के बाद भी किसी संत-महात्मा को इतिहास के कटघरे में खड़ा कर सकता है। आज जिस महात्मा गाँधी या ईसा मसीह या किसी की पूजा हो रही हो, सौ साल के बाद इतिहास उनको कटघरे में खड़ा कर सकता है, क्योंकि इतिहास हमेशा विश्लेषण करता है। और उस इतिहास का विश्लेषण हम लोग करते हैं, क्योंकि हम किसी सम्प्रदाय के अधीन नहीं हैं। अगर अशोक बौद्ध नहीं बनता, भारत कभी गुलाम नहीं हो सकता था। शस्त्र के बिना राज होता ही नहीं है, युद्ध के बिना सभ्यताएँ जन्म नहीं लेतीं। युद्ध सभ्यता के लिए अनिवार्य है।

भले ही आज लोग आदर्श के रूप में कहते हों, 'युद्ध नहीं' और वे युद्ध के खिलाफ बड़े-बड़े पोस्टर लगा दें, क्योंकि यह तो सच है कि किसी-न-किसी का बाप, बेटा या भाई मरता है, पर युद्ध सभ्यता का एक अनिवार्य अंग है, जैसे जीवन में जन्म-मृत्यु और रोग अनिवार्य हैं। उसके बाद सभ्यता का अवसान होता है। जब दवाइयों का एक समाप्ति काल हो सकता है, तब सभ्यताओं का काल नहीं होगा क्या? इस दुनिया में हर चीज़ का अवसान लिखा है। हर दिन तुम अपनी आँखों के सामने देखते हो कि यह संसार नाशवान है। झूठ बात नहीं बोलता हूँ। नाशवान का मतलब क्या होता है? समाप्ति अवधि, मेडिकल की भाषा में बोल रहा हूँ। जैसे दवाई की समाप्ति अवधि होती है, वैसे ही व्यक्ति, सभ्यताओं, राजनैतिक प्रणालियों और धर्मों के भी अवसान का समय होता है।

बुद्ध ने कह दिया था, पन्द्रह सौ साल तक बौद्ध धर्म काल है। अगर अशोक बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं करता, उसको गद्दी से हटा दिया जाता, तब आज हिन्दुस्तान की यह हालत नहीं होती, क्योंकि किसी भी राष्ट्र को चलाने के लिए युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करना पड़ता है। शस्त्रों की अनिवार्यता को स्वीकार करना पड़ता है। मरने के लिए जो तैयार रहते हैं, उनके मूल्य को स्वीकार करना जरूरी रहता है। उसने तो सेना को हटा कर निरस्त्रीकरण करा दिया। इस परिस्थिति में इस देश पर आक्रमण हुए। आ गए अफगानिस्तान से लोग,

आप और हम को पीट कर यहाँ रह गए। एक राष्ट्र को सुरक्षित और मज़बूत रखने के लिए शस्त्र आवश्यक है और युद्ध भी आवश्यक है। मरना कोई बड़ी बात नहीं है और मर तो ऐसे ही रहे हैं। डॉक्टर के पास मरने के लिए तो यहाँ से विदेशों में बहुत बीमार लोग जाते हैं, कोई कोका-कोला पीने से बीमार है, कोई कीटनाशक वाली सब्जी खाने से बीमार है।

बहुत आश्चर्य की बात है कि जैसे यहाँ से लोग विदेश बीमारी ठीक करने या पैसा कमाने जा रहे हैं, वहाँ के लोग यहाँ आश्रम में रहने के लिए आ रहे हैं। आपको इसका अंदाज नहीं है कि ये गोरे लोग कितनी बड़ी संख्या में आज हिन्दुस्तान के आश्रमों में रहने लगे हैं। अपने देश में ये लोग सबेरे उठते ही माँस खाते हैं और माँस इनका प्रिय भोजन है। पाव रोटी तोड़ लेते हैं और हैम के साथ खा लेते हैं। सुअर का माँस इनकी सब्जी में भी पड़ता है। माँस खाना और शराब पीना इनके यहाँ का रिवाज है। पर यहाँ आश्रम में ये लोग सूखी रोटी खाकर जिन्दा रहते हैं! मुझे बड़ा आश्चर्य लगता है।

इनके यहाँ साधारण से साधारण आदमी के कमरे में भी कूलर और हीटर होता है। बिना तापमान नियन्त्रण के वहाँ सरकार मकान में किसी को रहने ही नहीं देती। ए.सी. नहीं चाहिए, हीटर नहीं चाहिए, तापमान नियन्त्रण नहीं चाहिए, तो मकान ही नहीं मिलेगा, उनकी अपनी कोई पसंद नहीं है। और आजकल एक नयी चीज़ निकली है, आयोनाइजर, जो कमरे में आयनों की मात्रा बरकरार रखे। वहाँ टॉयलेट होना ही चाहिए, नहीं तो सरकार मकान को पास नहीं करती। भारतीय लोग जो यहाँ आते हैं, वे एक दिन में परेशान हो जाते हैं। बहुत बड़े लोग नहीं, सामान्य वर्ग के लोगों की बात बोल रहा हूँ। आश्रम में नहीं ठहर सकते हैं। पंखा नहीं है, गरम पानी नहीं है और कमरे से जुड़ा टॉयलेट नहीं है, कमोड सिस्टम नहीं है, भारतीय सिस्टम है। आज के लोग कितने बिगड़ गए हैं इस देश में! आश्रम का भोजन भी उनको मुश्किल लगता है, क्योंकि हम मसाला तो डालते ही नहीं।

क्या हमसे कोई गलती हुई है, आप हमसे नाराज से लगते हैं?

दुःख-सुख और गलतियाँ इंसान के साथ चलती हैं और उसके लिए रोने की कोई जरूरत नहीं है। पूछो न अगर कोई परम सुखी है या परम दुःखी है। और जहाँ तक हमारा सवाल है, हमको तुमसे नाराज होने का हक ही क्या है? कोई अधिकार ही नहीं है। हम क्यों तुम से नाराज होंगे? जैसे माँ कभी बच्चे से

नाराज नहीं होती है। *कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।* बेटा नालायक बन जाए, पर माँ नालायक नहीं बनती है। उसी तरह से हमारा तुमसे नाराज होने का कोई सवाल ही नहीं उठता है। वह हमारा अधिकार ही नहीं है। हमारा स्वभाव ही नहीं है, परन्तु यह तुमको बतला देता हूँ कि दुनिया में जब भी आदमी पैदा हुआ हो, चाहे करोड़पति हो या लखपति, स्त्री हो या पुरुष, बहुत पढ़ा-लिखा हो या कम पढ़ा-लिखा, गलतियाँ सब से होती हैं और सुख-दुःख सब को है। उसके लिए रोने की जरूरत नहीं है। जरूरत यह है कि आदमी जहाँ पर भी रहे, उसको अपना मन लगा कर जीवन बिताना चाहिए। मन लगाने के लिए कुछ-न-कुछ करते रहो।

इस दुनिया में व्यवसाय ही एक प्रकार की दवा है और कोई दवा है नहीं। यह घर-गृहस्थी व्यवसाय ही तो है। सत्तर-अस्सी साल जो आदमी जिन्दा रहता है, कुछ-न-कुछ करता रहे। और जिसके पास कुछ करने को नहीं है, वह दुःखी हो जाता है। अगर तुमको कोई काम नहीं हो, क्या तुम दुःखी नहीं होते हो? और वहीं से फिर विषाद शुरू होता है। कोई भी गलती ध्यान में लाने की जरूरत ही नहीं है। जो आदमी अपनी और दूसरों की गलतियाँ ध्यान में लाता है, वह सुखी नहीं होता है। असली चीज़ क्या है? जिस उम्र में तुम हो, उस उम्र में तुमको क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, उस पर ध्यान दो।

यज्ञ के तीन अंग

यज्ञ के तीन अंग होते हैं—उपासना, दान और सत्संग। द्वापर युग में एक व्यक्ति था, जिसका नाम था कर्ण। वह दुर्योधन का बहुत प्यारा मित्र था और एक प्रकार से अर्जुन का भाई था। वह अंग देश का राजा था, मुंगेर उसकी राजधानी थी। मुंगेर के देवी पीठ, चण्डी स्थान में वह तांत्रिक यज्ञ करता था। कहते हैं कि यज्ञ से उसको सोना मिलता था। और वह ब्राह्मणों को रोज सबेरे सवा मन सोना दान करता था।

अगर तुम भी देना सीख जाओ, तो जो कर्ण को प्राप्त था, वह तुम्हें भी प्राप्त हो सकता है। लेना और देना, दो अलग-अलग कर्म हैं। लेना बहुत सरल है, पर देना बहुत मुश्किल। लेने में हम बहुत जल्दी करते हैं, पर देने में बड़ा सोचना पड़ता है कि यह आदमी लायक है या नालायक? लेने में नहीं सोचते कि लायक है कि नालायक। इसलिए देने का मौका आए, तो समझो

कि भगवान तुमको मौका दे रहे हैं। लेने का मौका आए, तो सोचना कि पता नहीं यह आदमी बदमाशी का माल दे रहा है या चोरी का माल दे रहा है, लूँ कि नहीं।

अगर तुम दुनिया में सुख चाहो तो सुख का पीछा करना छोड़ दो। जिस आदमी को ज़िन्दगी में सुखी रहना है, उसकी एक ही शर्त है, दूसरी शर्त नहीं। सुख की चाह मन से निकल जाए। सब लोगों का यही कहना है कि जब तक सुख की चाह है, सुख नहीं मिलता। सुख का मतलब क्या होता है? टी.वी., बंगला, कार, बीबी-बच्चे हों, बी.ए., एम.ए. पास हों, पैसा हो, ये सुख नहीं, सुविधायें हैं। इनको सुविधा कहते हैं। सुख मन की एक स्थिति का नाम है और वह स्थिति करीब-करीब ऐसी है जैसे रात को खूब बढ़िया नींद आती है, बड़ा अच्छा लगता है। ऐसे ही अच्छा जागृति में लगना चाहिए। उसको कहते हैं सुख।

रात को किसी के घर में कोई मर जाए, किसी के घर में कोई चोट लग जाए, किसी के घर में कोई बीमार पड़ जाए, किसी के घर में कुछ भी झगड़ा हो, पर जब सोता है तो सुख की नींद सोता है। वह स्थिति जाग्रत अवस्था में आनी चाहिए, जो तुमको निद्रा अवस्था में आई है, उसको कहते हैं सुख। लोग कहते हैं, बड़ा सुखी आदमी है। क्या है? बड़ी भारी अट्टालिका है, गाड़ी है, पैसा है। अरे, वह सुख नहीं है। उसका कोई मतलब नहीं है। अगर ऐसा होता, तो ये गोरी जात के लोग हिन्दुस्तान जैसे फटीचर देश में आते ही नहीं। उनके देश के आगे हम कुछ नहीं हैं। गरम पानी नहीं, पंखा नहीं, आराम वाला बिस्तर भी नहीं है। फिर भी लोग आते हैं।

जो अनुशासन प्रिय व्यक्ति है, उसके बारे में किसी भी शिकायत को सुनना नहीं। जो आदमी सही बात बोलता है, उसके विषय में शिकायत सुननी नहीं चाहिए। अंग्रेज़ आदमी केवल 'एक्सक्यूज़ मी' पर भरोसा करता है, पर माफी नहीं देता है। आज तक उन लोगों ने माफी नहीं दी है। किताब में लिखा है, कोई अगर तुमको थप्पड़ मारे, तो दूसरा गाल भी आगे कर दो। मगर उन्होंने उसको खुद व्यवहार में कभी नहीं लाया। 'सॉरी', 'एक्सक्यूज़ मी', उनके यहाँ वह केवल बोलने का तरीका है। पर जिसने उनको एक थप्पड़ मारा, उन्होंने उसको दो मार दिये, जिन्होंने उनका कोट उतारा, उन्होंने उनकी पतलून भी उतार दी, यह इतिहास बताता है। इसी वजह से गोरी जात आज सारी दुनिया में राज कर रही है। तुम्हारे रसोईघर और शौचालय तक पहुँच गई

है। तुम्हारे शौचालय में साबुन रखने का, हाथ धोने का, ब्रश करने का ढंग, सब कुछ उन्हीं की देन है। तुम्हारे रसोईघर और शयनकक्ष में भी उन्हीं की संस्कृति दिखाई देती है। लेकिन तुम्हारी संस्कृति कहीं पर भी नहीं गयी है, क्योंकि जो व्यक्ति अनुशासन में रहते हैं, वे ही उन्नति करते हैं।

मुझे रक्तचाप की शिकायत है, क्या करना चाहिए?

कई लोग यहाँ से बिना तेल की सब्जी सीख कर जाते हैं। हम बिना तेल का भोजन करते हैं। हम खुद बनाते हैं, खिचड़ी बनाते हैं बिना तेल की, कटलेट बिना तेल का। हमको बिना तेल का भोजन मालूम है। हम पचास तरह का खाना बना सकते हैं, जो स्वादिष्ट है, पर जिसमें तेल का इस्तेमाल बिल्कुल नहीं होता है। लोग यहाँ से सीख कर अपने घर में बनाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि बीमार तो सब हैं। लौकी का रस, उसमें तुलसी, अदरक और लहसुन डालकर पीना और बिना तेल का सूप, यह हृदय और रक्तचाप के लिए बहुत अच्छी चीज़ है। लौकी के रस से पेट साफ हो जाता है और पेट साफ हुआ, तो आधी बीमारी साफ हो जाती है।

– 21 अक्टूबर 2006





अध्याय 25

पंचाग्नि के समय मेरे पास पूर्णा नहीं, भोला था। वह बहुत खूँखार था। एक दिन एक संन्यासी घेरे के अन्दर बहुत पास आ गयी, बस, उसने उस पर आक्रमण कर दिया। भोला यहाँ एक विशेष प्रयोजन से आया था। जब मैं पंचाग्नि में बैठता, तब वह भी मेरी बगल में आकर बैठ जाता था। यह पंचाग्नि साधना का एक अनिवार्य अंग है। अपने पास एक कुत्ता रखना होता है, क्योंकि तांत्रिक परम्परा में कुत्ता भैरव का स्वरूप माना गया है। तंत्र में भैरव एक देवता हैं, जो एक आन्तरिक अवस्था के प्रतीक हैं। खुशी एक आन्तरिक अवस्था है, दुःख एक आन्तरिक अवस्था है, ध्यान एक आन्तरिक अवस्था है, समाधि एक आन्तरिक अवस्था है। जो सपने तुम रात में देखते हो, वे क्या हैं? वे भी तुम्हारी आन्तरिक अवस्था के प्रतिबिम्ब हैं।

मैं आन्तरिक अवस्था को समझाने का प्रयास कर रहा हूँ। जीवन के जिस क्षण में तुम्हारा जो भाव होता है, वही तुम्हारी आन्तरिक अवस्था है। कभी तुम खुश रहते हो, कभी नहीं, आन्तरिक अवस्था का यही मतलब है। भैरव प्राणी की आन्तरिक अवस्था है। हिन्दू लोग उसे भैरव कहते हैं और कुत्ता उसका प्रतीक है। भैरव का शाब्दिक अर्थ है, भौंकने की ध्वनि। इसकी व्युत्पत्ति दो संस्कृत शब्दों से हुई है, 'भै' और 'रव'। भै माने चिल्ला उठना और रव का मतलब है ध्वनि या कोलाहल। इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन में भैरव एक अवस्था है, जहाँ तुम बिना जाने, बिना सुने ध्वनि उत्पन्न कर बैठते हो। कभी-कभी तुम सपने में चिल्ला उठते हो, उसे तुम क्या कहोगे? भैरव।

पंचाग्नि साधना में भैरव की उपस्थिति आवश्यक है, हमेशा एक कुत्ता साथ रखा जाता है। इसलिए मैंने भोले को रखा था। उस अवस्था में वह मेरा

साथी था। जब उसने शरीर छोड़ दिया, तब अखाड़ा परिसर में उसकी स्मृति में उसकी समाधि बनाई गई।

मैं उसको याद करता हूँ, क्योंकि कठिन समय में वह मेरा साथी था, जब मैं पाँच अग्नियों के बीच बैठता था। एक अग्नि बायें, एक दायें, एक आगे, एक पीछे और एक ऊपर की अग्नि–सूर्य। इस प्रकार मुझे पाँच अग्नियों को सहना पड़ता था और ये पाँच अग्नियाँ जिनकी मैं चर्चा कर रहा हूँ, बाह्य अग्नियाँ हैं। चारों ओर लकड़ी जलाकर उत्पन्न की गयी अग्नि और उसके अतिरिक्त हाइड्रोजन की अग्नि। सूर्य तो हाइड्रोजन है, इसलिए उसे मैं हाइड्रोजन अग्नि कहता हूँ। किन्तु साथ-ही व्यक्ति को पाँच आन्तरिक अग्नियों का भी सामना करना पड़ता है। और अपने जीवन में मैंने उनका भी सामना किया है। तुम सब लोग भी उनका सामना कर रहे हो, पर तुम बीमार होकर हार जाते हो। पहली अग्नि है काम, दूसरी है क्रोध, तीसरी है लोभ, चौथी है मोह और पाँचवीं है मत्सर। ये पाँच आन्तरिक अग्नियाँ हैं। ये सभी लोगों में हैं और सभी को इन अग्नियों का सामना करना पड़ता है।

तुम सबको भगवान बुद्ध की जीवनी पढ़नी चाहिए। बुद्ध ने कहा था, हम सभी जल रहे हैं। उनके शब्द थे, 'हे भिक्खु! सब कुछ जल रहा है।' हम सभी भिक्खु, भिखारी ही तो हैं, क्यों? इसलिए कि हम हमेशा दूसरों से कुछ चाहते हैं। मेरे लिए पति लाओ, मेरे लिए पुत्र लाओ, मेरे लिए धन लाओ, मेरे लिए खुशियाँ लाओ, मेरे लिए वस्त्र लाओ, मेरे लिए यह लाओ, वह लाओ। हमेशा लेना ही लेना, देना कभी नहीं। हम अपने लिए माँगना ही जानते हैं, इसलिए हम सभी भिखारी ही तो हैं। इसलिए बुद्ध ने कहा था हम सभी जल रहे हैं, क्योंकि हम हमेशा इन पाँच आन्तरिक अग्नियों को झेलते रहते हैं।

भोले अल्सेशियन जाति का था और वह पूरी पंचाग्नि साधना में मेरे साथ रहा। जिस दिन मेरी पंचाग्नि साधना पूर्ण हुई, उसी रात उसने शरीर त्याग दिया और बाद में पूर्णा के रूप में जन्म लिया। पर पूर्णा भोले से एकदम अलग है। यह गूलर के पेड़ के नीचे बैठता है और गूलर तथा अमरूद खाता रहता है। इसे उनको ध्यान से खाना पड़ता है, क्योंकि इसके दाँत उसके लिए बने ही नहीं हैं। यह चोरी भी करता है, कमरे में जाता है और आलू-प्याज चुरा लाता है! कुत्ते को कभी आलू-प्याज चुराते सुना है क्या? लेकिन इसे वही खाना पसन्द है जो तुम खाते हो। जब सत्संगी खा

लेती है, तब उसकी थाली में जो कुछ बचा रहता है, उसे यह खा जाता है, चाहे चावल हो, दाल हो, सब्जी हो या चटनी हो, और कभी-कभी तो सलाद भी। भोले ये सब चीजें कभी छूता भी नहीं था। वह तो कहता था, 'मुझे अपना भोजन चाहिए।' उसका एक भक्त था। उसकी पत्नी रोज उसका खाना लाया करती थी और इस आदमी को वह पकाना पड़ता था। मेरे लिए यह कठिन काम था, क्योंकि मैंने कभी यह काम नहीं किया है। उसकी मृत्यु बड़े शान्तिपूर्ण ढंग से हुई। वह मेरे पास आया, मेरी कुर्सी के पास लेट गया और बस अन्तिम श्वास ली।

तंत्र के अनुसार शिव सर्वोच्च सत्य हैं। तंत्र परम्परा के अनेक रूप हैं। शैव तंत्र, शाक्त तंत्र, वैष्णव तंत्र, आदि। मैं शैव तंत्र की बात कर रहा हूँ। शैव तन्त्र में कहा जाता है कि शिव उच्चतम अनुभूति है। परन्तु उस अनुभूति के पूर्व तुमको भैरव की एक आन्तरिक अनुभूति का सामना करना होगा, जो अति भयावह है। रोने-चिल्लाने, विलाप करने की अनुभूति। विलाप करने की अनुभूति अन्तिम अवस्था के पूर्व होती है, शैव तंत्र यही कहता है। इसलिए जहाँ भी शिव मन्दिर हैं, वहाँ बाहर परिसर में भैरव का मन्दिर भी जरूर होगा। शिव मन्दिर तक जाने के पहले निश्चित रूप से भैरव मन्दिर में जाना पड़ेगा। शिव चेतना की अनुभूति के पूर्व भैरव चेतना का अनुभव करना होगा और भैरव चेतना है, चिल्लाना। कोई-कोई व्यक्ति गहरे ध्यान की अवस्था में कभी-कभी चीख पड़ते हैं। ये ऐसे अनुभव हैं, जिन्हें अच्छी तरह समझाया नहीं जा सकता। तंत्र परम्परा में इस विलाप के अनुभव को ही भैरव कहा जाता है। भैरव मनुष्य तो नहीं है, पर वह मनुष्य के भीतर का मनुष्य है।

जापान में बौद्ध धर्म कैसे आया?

तिब्बत के रास्ते बौद्ध धर्म भारत से चीन पहुँचा, फिर वहाँ से कोरिया और वहाँ से जापान। ऐतिहासिक रूप से चीन और जापान में एक-दूसरे से बराबर अनबन रही और आज भी है। वे हमेशा भारत आना चाहते थे, पर किसी-न-किसी कारण सफल नहीं हो सके। एक व्यापारी ने भारत आना चाहा, उसके बाद किसी अन्य ने भी प्रयास किया, पर वे आ नहीं सके। अलग-अलग समय में अलग-अलग समस्याएँ रही हैं। अन्त में जापान ने चीन से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये और वे मित्र बन गये। फिर उन दोनों देशों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी हुए। जापानी लोग चीन आये और वहाँ बौद्ध

धर्म की पहली शिक्षा प्राप्त की, क्योंकि भारत के आचार्य चीनी राज दरबार में रहा करते थे, जैसे, आचार्य पद्मसंभव। तो जापानी लोगों ने चीन में संस्कृत एवं बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त की और लौट गये।

जापान में दो लिपियाँ हैं–एक तो जापानी भाषा की और दूसरी संस्कृत की, जापानी लिपि से अतिरिक्त ध्वनियों की। मैंने ट्रेन में जापान की लम्बी यात्राएँ की हैं। वहाँ कई ग्रामीण क्षेत्रों में इन्द्र, वरुण, मित्र और अग्नि जैसे वैदिक देवताओं के मन्दिर देखने को मिलते हैं। वे सभी पुराने एवं भग्न अवस्था में हैं। वहाँ कोई पूजा नहीं करता, फिर भी उनके अवशेष वहाँ हैं। वे न बौद्ध देवता हैं और न बोधि सत्त्व। वहाँ भगवान राम या कृष्ण या अन्य पौराणिक देवता भी नहीं हैं, वैदिक देवता हैं। भगवान राम और कृष्ण वैदिक देवता नहीं हैं, पौराणिक देवता हैं। वैदिक देवता हैं–इन्द्र, मित्र, मातरिश्वा, अग्नि, वरुण आदि। और जापान में सभी जगहों पर इनके मन्दिर फैले हुए हैं।

भावी महाशक्तियाँ

अब उत्तरी कोरिया और दक्षिण कोरिया मिल जायेंगे, विश्व राजनीति के लिए यह आवश्यक है। विश्व की उभरने वाली महाशक्तियाँ कोरिया, भारत एवं पाकिस्तान तथा उत्तरी एवं दक्षिणी आयरलैण्ड को पुनः संयुक्त देखना चाहेंगी। मैंने आने वाली कहा, वर्तमान राजनैतिक शक्तियाँ नहीं। वर्तमान राजनैतिक महाशक्तियाँ विभाजन करके शासन करना चाहती हैं, यही उनका दर्शन है, परन्तु आने वाली महाशक्तियाँ एकता से शासन करने में ही अधिक शान्ति और समृद्धि देखेंगी। आज भी यूरोप में यह देख सकते हो–संयुक्त रहो और शासन करो। पहले वे कहा करते थे–विभाजन करो और शासन करो। उन दिनों व्यापार में प्रतिस्पर्धा थी, पर आज तो प्रतिस्पर्धा का कोई सवाल ही नहीं है। आज तो व्यापार होना है, बस, और व्यापार के लिए एकता बहुत आवश्यक है। भावी महाशक्तियाँ, चाहे वे जो भी हों, यही चाहेंगी। संभावित दावेदार दो ही हैं–चीन और भारत।

चीन और भारत की तुलना खरगोश और कछुए से की जा सकती है। एक खरगोश और कछुए में दौड़ की होड़ लगी। खरगोश आगे छलांग लगाता गया, पर जब आधी राह में पहुँचा तो उसने सोचा कि कछुआ तो बड़ा धीमा है, मैं थोड़ी झपकी ले लेता हूँ। आखिर जब तुम तेज दौड़ते हो तो हृदय ही सहयोग देता है। अगर हृदय सहयोग न दे तो क्या होगा? सौ गज के बाद तुम

बैठ जाओगे और कहोगे मेरे को थोड़ा विश्राम कर लेना चाहिए। इसी तरह खरगोश आराम करता रहा और कछुआ तो कछुआ है, वह चलता रहा, धीरे-धीरे पर नियमित रूप से। वह खरगोश को पार कर गया और लक्ष्य तक पहुँच गया। खरगोश ने जब पूरा विश्राम कर लिया, तब छलांग लगाता हुआ लक्ष्य पर पहुँचा। पर हे भगवान! दूसरा तो वहाँ पहले से बैठा था। धीमे, पर नियमित चलने वाला दौड़ जीत जाता है।

आध्यात्मिक जीवन में भी वही नियम लागू होता है, जो राजनैतिक जीवन में है। यदि तुम्हें महाशक्ति बनना है, तो तुम्हें धीमे, पर नियमित चलना होगा। आखिर कछुआ धीमी चाल से भी पहुँच ही गया न। तुम कितनी तेज चलते हो, यह उतना मायने नहीं रखता। इसी प्रकार यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि क्रिया योग में तुम कितनी तेज छलांग लगाते हो, पर तुम निश्चित रूप से रोज अभ्यास करो। हर दिन सुबह और रात को तुम क्रियायोग की साधना करो। उसकी अंतिम उपलब्धि क्या है, यह जानने की कोशिश मत करो। नहीं, आराम से रहो, जीवन ठीक से जीओ, तनाव में मत रहो, आराम से जीओ।

यदि तुम्हें पाँच अग्नियों का सामना करना है, तो करो। एक दिन आग बुझ जायेगी, क्योंकि हर चीज का अन्तकाल निर्धारित है। सभी दवाओं का एक समाप्ति काल होता है। जीवन का भी अन्त होता है, चाहे अस्सी साल में हो या सौ साल में। इस मकान की भी समाप्ति अवधि है, सौ साल या दो सौ साल। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, सबका अन्तकाल निर्धारित है कि नहीं? किसी का समाप्ति काल थोड़ा लम्बा है, किसी का छोटा। पर एक न एक दिन सबको समाप्त होना ही है।

याद रखो, बुद्ध ने कहा था, 'हे भिक्खु! इस सृष्टि में सबका अन्त निश्चित है, कुछ अमर नहीं है, कुछ स्थायी नहीं है।' तुम्हारी वासनायें भी स्थायी नहीं हैं। एक दिन वे भी समाप्त हो जायेंगी, पर उन्हें आज छोड़ने की मत सोचो। मेरे को न अपनी वासनाओं की याद है, न इच्छाओं की और न क्रोध की। पर मैं अभी जीवित हूँ और वे चली गई हैं। धैर्य रखो, तुम्हारी पंचाग्नि भी समाप्त हो जायेगी। ग्लानि का भाव मत रखो, अपने को अपराधी महसूस मत करो और दु:खी मत होओ। जब वर्षा हो रही है, तब तो तुम भीगोगे ही, जब धूप रहेगी तो तुम्हें गर्मी लगेगी ही, जब जाड़ा होगा तब तुम्हें ठण्ढक लगेगी ही। इसी प्रकार वासनायें समाप्त होती हैं, लालसायें समाप्त होती हैं, जीवन भी समाप्त हो जाता है। पर मैं रहूँगा। जो लोग

क्रियायोग का सत्र कर चुके हैं, उन्हें इसी प्रकार सोचना चाहिए कि हमें आध्यात्मिक जीवन में एक महाशक्ति बनना है, परन्तु कछुए की तरह, खरगोश की तरह नहीं।

भारत और चीन को भी अपनी प्रगति की राह के बारे में इसी प्रकार सोचना होगा। आने वाले समय में विश्व की महाशक्तियों का अपना एक अलग ढंग होगा, एक अलग राजनैतिक चिन्तन होगा। पश्चिम से जो शासक आये, उन्होंने महादेशों का, देशों का, राज्य क्षेत्रों का विभाजन किया और उन पर शासन किया। मैं पश्चिम का विरोधी नहीं हूँ। मैं पश्चिम की आलोचना नहीं करता, पर उन्होंने इसी प्रकार शासन किया। अब ऐसा समय आ गया है कि आवश्यकता के अनुरूप भावी महाशक्तियों का अलग विचार होगा। चाहे वह चीन हो या भारत। आज इन दोनों के अतिरिक्त महाशक्ति होने का तीसरा कोई दावेदार नहीं है।

अब जो महाशक्ति होगी, उसे एक अलग दर्शन रखना होगा। उस महाशक्ति में अनेक धर्म होंगे, बहुत्व होगा। जापान में यह नहीं है। रूस में था, पर वह विखण्डित हो गया। अनेक समस्याओं के रहते भी यूरोप प्रयास कर रहा है। भारत में कोई कठिनाई ही नहीं है। बिहार गरीब है और दक्षिण वैभवशाली, पर उन्हें साथ-साथ रहने में कोई कठिनाई नहीं है। धनी, गरीब, ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी, तन्त्र में आस्था रखने वाले और अध्यात्म में विश्वास नहीं रखने वाले, सभी लोग शान्तिपूर्वक साथ-साथ रहते हैं। एक धर्म, एक भाषा, एक कानून गलत है। भारत में कई कानून हैं, इन्हें व्यक्तिगत कानून कहते हैं—मुस्लिम व्यक्तिगत कानून, ईसाई व्यक्तिगत कानून, आदिम जाति व्यक्तिगत कानून और भारत का सामान्य नागरिक कानून।

हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न भाषायें हैं, भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ हैं और बहुत से देवी-देवता हैं। यह अच्छी बात है। हर व्यक्ति का अपना भगवान होना चाहिए। केवल एक की पूजा करने के लिए तुम क्यों कहते हो। मेरे भगवान की पूँछ है, तुम्हारे भगवान का चेहरा भी नहीं है, मेरे भगवान साड़ी पहनी हुई देवी हैं, तुम्हारे भगवान का कोई रूप नहीं है। पर दोनों सही हैं। तो भारत के पास महाशक्ति बनने का मौका है। इसलिए भारत में भी अपनी पूँजी का कुछ हिस्सा निवेश करो।

जब हम रिखिया आये, तो यह जमीन हमें बहुत सस्ते में मिल गयी। अब रिखिंया में यही जमीन तुम्हें लाखों में मिलेगी, काफी महँगी हो गई है। अगर

तुम यहाँ जमीन खरीदना चाहोगे, तो पहले तो तुम्हें मिलेगी ही नहीं, और किसी प्रकार मिल भी गयी तो तुम्हें दस पन्द्रह-लाख खर्च करने पड़ेंगे। यह परिवर्तन केवल पिछले सत्रह वर्षों में आ गया है। यही हाल मुम्बई का भी है।

भारत में अनेकता में जिस प्रकार की एकता है, वह बहुत लाभदायक है। देश को पुलिस, सेना और अन्य चीजों पर कम खर्च करना पड़ता है। बहुत लोग बिना सीमा पार किये एक स्थान से दूसरे स्थान पर नौकरी, धन और व्यापार के लिए आ-जा सकते हैं। तुम रात में अपना आलू लेकर दक्षिण भारत जा सकते हो। एक ट्रक भर लो और चले जाओ, कोई रोकेगा नहीं। यदि दक्षिण में व्यापार में किसी कठिनाई के कारण आलू या प्याज नहीं है, तो आदमी ट्रकों में आलू और प्याज भरकर रातोंरात वहाँ ले जा सकता है, कोई नहीं रोकेगा। पर यूरोप में तुम ऐसा नहीं कर सकते। वे तुम्हें बुल्गारिया की सीमा पर, नहीं तो रोमानिया की सीमा पर या चेकोस्लोवाकिया की सीमा पर रोक देंगे। यहाँ तो मैं दक्षिण भारत, तमिलनाडु, चेन्नई कहीं भी जा सकता हूँ। मैं ट्रकों में भर कर या पूरी मालगाड़ी सामान भर कर भेज सकता हूँ, कोई नहीं रोकेगा। इससे मूल्य पर भी नियंत्रण होता है।

यह आवश्यक है कि देश बड़ा हो, पर बड़े देश की समस्यायें भी बड़ी होती हैं। अलग-अलग मतों और सम्प्रदायों के लोग आपस में हमेशा लड़ते रहते हैं। पर जब देश एक है, और एक राज्य के पास तकनीकी दक्षता है, दूसरा राज्य कृषक प्रधान है, तीसरे को व्यावसायिक दक्षता प्राप्त है, तब वहाँ आपसी अदला-बदली हो सकती है। दक्षिण भारतीयों के पास अच्छी तकनीकी दक्षता है, बिहारी अच्छे कर्मठ लोग हैं, जो कहीं भी जा सकते हैं, कोई भी काम कर सकते हैं। गुजराती और सिन्धी बड़े से बड़ा व्यापार कर सकते हैं, वे व्यापार में दक्ष होते हैं। इस प्रकार हर व्यक्ति, हर राज्य अलग है। भारत की यह विशेषता है। इसके पास अलग-अलग प्रकार की क्षमतायें हैं।

भारत में हम केवल तिब्बत को लेकर दु:खी हैं, क्योंकि उसकी स्वतंत्रता का हनन हुआ है। ऐसा तिब्बत के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। एक समय मंगोलिया बड़ा शक्तिशाली देश था, चंगेज खाँ के बहुत पहले। और तभी मंगोलिया और तिब्बत में एक सन्धि हुई थी कि यदि कभी भी कोई तिब्बत पर आक्रमण करता है, तो मंगोलिया उसकी रक्षा करेगा। अनेक बार चीन की तरफ से तिब्बत पर आक्रमण हुए, पर मंगोलिया की सेना वहाँ पहुँच गयी और तिब्बत पर आक्रमण सफल नहीं हुए।

तिब्बत का धर्म अद्भुत है, वे उसे बौद्ध धर्म कहते हैं। दुनिया में एक ही धर्म है, जो ईश्वर की चर्चा नहीं करता। ईसाई धर्म ईश्वर को मानता है, इस्लाम का केन्द्र है अल्लाह या खुदा। दुनिया का हर धर्म ईश्वर पर आधारित है। बौद्ध धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसमें ईश्वर की चर्चा नहीं है। जब बुद्ध से उनके शिष्य और भक्त ईश्वर के विषय में पूछते, तब वे कहते, 'ईश्वर मेरा विषय नहीं है, मैं उसे नहीं जानता, मैंने उसे नहीं देखा है। तुम कहते हो कि वह मन के परे है। यदि वह कहीं है भी तो मैं उसे नहीं जानता। पर एक चीज मैं जानता हूँ, वह है दुःख। वह दुःख सत्य है। मैं इसका अनुभव करता हूँ और तुम भी इसका अनुभव करते हो। जो भी अनुभव के क्षेत्र में है, मैं उसके बारे में बातें करूँगा।'

जीवनभर बुद्ध ईश्वर की चर्चा से बचते रहे। इसलिए तिब्बत एक ऐसा देश है, जो ईश्वर रहित धर्म द्वारा शासित है। वहाँ किसी भी धर्म का कोई भी व्यक्ति दलाई लामा बन सकता है। एक हिन्दू भी दलाई लामा बन सकता है और ईसाई भी दलाई लामा बन सकता है। कुबला खाँ का बेटा, जो कि मुसलमान था, वह भी दलाई लामा बना था। यह केवल उसी देश में संभव है। और हमें दुःख है कि हमने एक अच्छा देश खो दिया। यह एक अच्छा प्रयोग था और हम आशा करते हैं कि भविष्य में वह स्वतंत्र होगा, पर अहिंसा के मार्ग पर चलकर।

भगवान बुद्ध ने कुछ भी प्राप्त करने के लिए हिंसा के मार्ग पर विश्वास नहीं किया, चाहे वह फिलिस्तीन की समस्या का समाधान हो या इराक की समस्या का समाधान हो या इरान की समस्या का समाधान हो या जर्मनी की समस्या का समाधान हो। वे हिटलर के समान नहीं थे। बौद्ध धर्म कभी हिंसा की अनुशंसा नहीं करता। बौद्ध धर्म में हिंसा बिल्कुल स्वीकार्य नहीं है। वे कहते हैं–*अहिंसा परमो धर्मः।* अहिंसा परम धर्म है, इसलिए तिब्बत को अगर किसी प्रकार स्वतंत्रता मिलती है, तो वह अहिंसा के माध्यम से होगी, सेना या गुरिल्ला युद्ध या उस प्रकार के अन्य किसी साधन से नहीं। लोग अपना काम बन्दूक की नोक पर कराना चाहते हैं, पर वह सही रास्ता नहीं है। बौद्ध धर्म इस पर विश्वास नहीं करता और मेरा विश्वास है कि अब यूरोपवासी भी इस पर विश्वास करने लगे हैं।

– 6 दिसम्बर 2006



अध्याय 26

इस दुनिया में दो किस्म की सभ्यतायें हैं—पाश्चात्य सभ्यता और पूर्वी सभ्यता। हम लोग पूर्वी सभ्यता की संतानें हैं। हम लोगों को केवल ज़िन्दगी को ठीक तरह से बिताने को कहा जाता है। ठीक से रहो, गलती मत करो, जोखिम मत उठाओ। यह मत करो, वह मत करो, यह पूर्वी सभ्यता है, जिसमें क्लच और ब्रेक बहुत ज़्यादा होता है। पाश्चात्य सभ्यता जो है, वह साहसी सभ्यता है और जोखिम उठाती है। उसने बहुत जोखिम उठाया है। सबसे बड़ा ज़ोखिम उन्होंने जो उठाया है, वह यह कि उन्होंने अपनी लड़कियों को एकदम आज़ाद कर दिया है। यह तो सबसे बड़ा जोखिम है, जिसको सामाजिक जोखिम कहते हैं। आप लोग यह जोखिम नहीं उठा सकते, क्योंकि आप लोग कमजोर या पूरी तरह भयभीत हैं। आप लोगों को डर है। उन लोगों ने अपनी लड़कियों को सौ प्रतिशत नहीं, दो सौ प्रतिशत आज़ाद करके रखा है। इतना बड़ा जोखिम कोई समाज उठाये, ऐसे समाज के बारे में आप यहाँ बैठे अंदाज नहीं लगा सकते हैं।

क्या लड़कियों को आजादी देना गलत है? यह गलत कैसे है? तुमने तो घर में लड़कियों को बन्द करके रखा है न, पर वेश्याएँ तो फिर भी बहुत हैं, कोठे भरे हुए हैं। शादी के पहले, शादी के बाद रिश्ता तो होता ही है। क्या कमी है? घर में तो औरतों को नौकर की तरह रखते हैं। पत्नियाँ नौकर हैं, तुम्हारे घर में काम करने, बर्तन-भाण्डा मांजने और तुम्हारा खानदान चलाने के लिए ही वे आती हैं। उनका इस्तेमाल हो रहा है। स्पष्ट बोलें, अगर इस सम्बन्ध में बिना पक्षपात के बहस की जाए, तो स्त्रियों का भारत में गलत इस्तेमाल और शोषण हो रहा है।

तुम यह कैसे कह सकते हो कि लड़कियों को आजादी देना गलत है। कल्पना करो पचास साल या अस्सी साल की ज़िन्दगी आदमी केवल घर में बैठकर रेडियो सुनता रहे, टी.वी. देखता रहे, क्रिकेट न खेले, नौका विहार न करे, जोखिम-भरे काम न करे, माउण्ट एवरेस्ट पर न चढ़े, आल्प्स पर न जाये। पत्नी को पसंद नहीं है, तो दूसरी पत्नी नहीं रख सकते। यह भी कोई ज़िन्दगी है!

मैं स्पष्ट बोलता हूँ। हम लोग जिस सिरे में हैं, उसमें उन्नति नहीं है। न तो आर्थिक उन्नति है, न सामाजिक, न बौद्धिक, न चारित्रिक, किसी प्रकार की उन्नति नहीं है। दूसरे सिरे का सवाल नहीं उठता है। सवाल उठता है, बदलते हुए समय, बदलती हुई फिज़ाओं और बदलते हुए मौसम के मुताबिक तुम कपड़े क्यों नहीं बदलते हो? जाड़ों में सूत का कपड़ा और गर्मी मे ऊन का कपड़ा क्यों पहनते हो? मौसम के मुताबिक कपड़े बदले जाते हैं।

आज जो विश्व-सभ्यता है, उसमें धर्म, जाति और भाषा का कोई खास महत्त्व नहीं है, दो ही चीज़ों का महत्त्व है–पैसा और मौज-मस्ती। नये साल में यहाँ क्यों आए हो? मौज-मस्ती के लिए आए हो और पैसा नहीं होता, तो घर में ही बैठे रहते और जय जगदीश हरे कर लेते। यह कलयुग है। कलयुग में अर्थ और काम ही महत्त्वपूर्ण हैं। लड़कियों को तो चौदह साल में ही काम करना चाहिए और लड़कों को चौदह साल होते-होते अपना पैसा खुद कमाना चाहिए, अकेले फ्लैट लेकर रहना चाहिए, माता-पिता का सम्मान करना चाहिए, उनके साथ अच्छे सम्बन्ध रखने चाहिए, पर माँ-बाप पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

सिवाय इंसान के संसार में कोई ऐसा जीव है ही नहीं, जो माँ-बाप पर इतने दिनों तक निर्भर रहता है। इंसान ही सबसे दुर्भाग्यपूर्ण प्राणी है। चिड़िया दस दिन में अलग हो जाती है। गाय का बच्चा पैदा होते ही लंगड़ाते-लंगड़ाते एक घण्टे में चलने लगता है। संसार में जितने प्राणी भगवान ने पैदा किए हैं, वे सब अपने पैरों पर बहुत जल्दी खड़े हो जाते हैं। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसको बुढ़ापे तक माँ बोलती है, 'बेटे ब्रश कर लिया है क्या? जाओ, जल्दी नहा-धोकर आओ, नाश्ता तैयार है।'

रोज सात बजे नाश्ता होता है, अब गधे को सात बजे की रोज याद दिलानी पड़ती है। यह बच्चों की नहीं, माँ-बाप की कमजोरी है। बच्चे कमजोर हैं, ऐसी बात नहीं है। बात यह है कि उनके माता-पिता बिल्कुल पागल हैं।

जल्दी नाश्ते के लिए आ जाओ—रोज सुबह वही वाक्य सुनते-सुनते कान पक जाता है। बच्चे बोलते होंगे, रोज वही बात बोलती है, सात बजे आ जाओ। अरे आयेंगे तो आयेंगे, नहीं तो नहीं आयेंगे, इसमे कौन-सी बड़ी बात है? नाश्ता बच जाएगा, तो भिखारी को दे देना।

यह अर्थ और काम का युग है। अर्थ का मतलब होता है, ठन्-ठन् गोपाल और काम का मतलब होता है इच्छा, कामना। चार युग हैं—कलयुग, सत् युग, त्रेता और द्वापर। धर्म और मोक्ष के युग तो चले गए। अब चाहे देवघर मंदिर में जाओ या बद्रीनाथ, केदारनाथ, वैष्णव देवी या अपने गुरुजी के आश्रम में जाओ, अर्थ और काम के हेतु ही जाओगे। अब मोक्ष या धर्म के हेतु कोई वहाँ नहीं जाता। कभी जाते रहे होंगे, अब नहीं। लेकिन हर युग का एक महत्त्व होता है।

क्या आपने गुरुजी के पास रहते हुए तमिल भाषा भी सीखी थी?

हाँ, तमिल भाषा सबको सीखनी चाहिए, बहुत अच्छी भाषा है। तमिल में कठोर व्यंजन हैं ही नहीं। जितने भी व्यंजन उनके यहाँ होते हैं, सब कोमल होते हैं। जिसकी वजह से उनकी भाषा बहुत कठोर लगती है। तमिल भाषा की प्रणाली संस्कृत से पुरानी है। हम तो एक हफ्ते के अन्दर तमिल सीख गए थे।

क्या बद्रीनाथ पहले जैनों और बौद्धों का स्थान रहा है?

शास्त्रों में गढ़वाल को देवभूमि और कुमाऊँ को असुर भूमि कहते हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती, ये तीनों नदियाँ गढ़वाल से ही निकलती हैं। और चारों धाम—बद्री, केदार, यमुनोत्री और गंगोत्री गढ़वाल में ही पड़ते हैं। बद्रीनाथ, नारायण की भूमि मानी जाती रही है। बौद्ध काल में कुछ ऐसा हुआ कि नारायण की मूर्ति को वहाँ से हटाकर बुद्ध की मूर्ति को वहाँ स्थापित किया गया। जब आदि शंकराचार्य आए, उन्होंने उस प्राचीन नारायण की मूर्ति को अलकनंदा से निकालकर फिर प्रतिष्ठित करवाया। यह अट्ठारह सौ साल पहले की बात है। उस वक्त भूटान के जो राज-परिवार के लोग थे, उन्होंने इस बात को स्वीकार किया। नारायण मूर्ति की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए शंकराचार्य जी को भूटान के महाराजा की 'हाँ' लेनी पड़ी थी। भूटान के महाराजा ने वहाँ से पूजा और हवन की सामग्री भेजी थी, उसके बाद नारायण की मूर्ति की वहाँ

प्रतिष्ठा हुई, जो अभी है। और तभी से टेहरी महाराज के यहाँ से भी पूजा का सामान वहाँ आता है।

भगवान बुद्ध पचीस सौ साल पहले पैदा हुए थे, किन्तु बौद्ध धर्म को संगठन के कम-से-कम चार-पाँच सौ साल के बाद मान्यता मिली। जैसे हम मर जायेंगे, तो हमारी बातों को मानने वाले लाखों हैं, पर उससे धर्म नहीं बन सकता। धर्म एक संविधान का नाम है और वह संविधान समाज में लागू होता है। समाज के लोग उसको मानते हैं। उसके लिए किन-किन चीज़ों का होना जरूरी है, यह देखा जाता है। ईसा मसीह तो दो हज़ार साल पहले पैदा हुए थे। लेकिन ईसाई धर्म की शासकीय शुरुआत उनके सौ साल बाद हुई। यानि आज से लगभग उन्नीस सौ साल पहले ईसाई धर्म की अधिकारिक शुरुआत हुई थी।

धर्म का मतलब यह थोड़े ही होता है कि अमुक व्यक्ति को सारी दुनिया के लोग मानने लगे हैं, तो उसकी बात धर्म हो जाए, नहीं। धर्म एक संविधान है। वह संविधान संस्था बनाती है और समाज उसको मानता है। तुम मानते हो कि हमारा आदमी मरेगा तो उसको ज़मीन में गाड़ेंगे। हमारी लड़की की शादी तेरह साल में होगी तो सोलह साल में होगी, शादी के वक्त वह बायीं तरफ बैठेगी। पति के अधिकार हैं, पत्नी के अधिकार हैं। यह मंदिर है, तो ऐसी पूजा होगी, वह मंदिर है, तो वैसी पूजा होगी, उसका यह धर्म है। इस प्रकार धर्म जो होता है, वह बहुत बड़ी चीज़ है। और उस धर्म को बनाते वक्त राजा का आश्रय जरूरी होता है। राज्य संरक्षण के बाद फिर धर्म को मदद मिलती है और वह धर्म स्वीकृत होता है।

इस्लाम के साथ भी ऐसा ही हुआ। जब मोहम्मद साहब मरे, तब थोड़े ही इस्लाम था। उनके बाद धर्म चालू हुआ। धर्म तब तक चालू नहीं हो सकता जब तक राज्य की स्वीकृति नहीं मिले। राज्य स्वीकृति और सामाजिक स्वीकृति मिलनी बहुत जरूरी है। अत: यह मानना कि पहले वहाँ जैन धर्म या बौद्ध धर्म था, उचित नहीं है, क्योंकि उस जगह का नाम आदिकाल से बद्रीनाथ है। शास्त्रों में उसका नाम लिखा जाता है बद्रीनाथ। और उसके बगल में जो पर्वत हैं, उनका नाम है नर-नारायण। नदी का नाम है अलकनंदा। और ऊपर से जो नदी आती है, वह है सरस्वती। उसके नीचे पाडुकेश्वर है।

ये सारी परम्पराएँ बताती हैं कि वहाँ जैन नाम की कोई वस्तु नहीं थी। हम जैन के खिलाफ कुछ नहीं बोलते हैं, क्योंकि हमारी विचारधारा दूसरी है।

बद्रीनाथ से ऋषिकेश और हरिद्वार तक कोई मंदिर, कोई घाट, कोई जंगल, कोई पर्वत थोड़ा-सा भी संकेत नहीं देता कि वहाँ कभी जैन रहे। जैसे मुसलमानों के संकेत मिलते हैं, यहाँ पर पाडुकेश्वर है तो वहाँ पर इलाहाबाद है। अत: हमको लगता है कि मुसलमानों का अस्तित्व रहा है। पर कहीं जैनों का अस्तित्व मालूम नहीं पड़ता है। और दूसरी चीज़ है, बदरी का मतलब होता है बेर का फल। शब्द है बदरी, बद्री नहीं। वहाँ पर बदरी वनम् था, बेर का जंगल। और उसके वे नाथ हैं, मालिक। इतिहास को परिवर्तित करना या झुठलाना उचित नहीं है।

जैन धर्म के जो तीर्थंकर हैं, उनमें जड़ भरत, वामदेव आदि संतों के नाम आते हैं, इन सबका उल्लेख आपको महाभारत में मिलेगा। माने हम लोग भी उनको स्वीकार करते हैं, ऐसी बात नहीं कि स्वीकार नहीं करते हैं। अब स्वीकार अगर न करें, तो बोला जाए कि ये उनको नहीं मानते। पर हम तो मानते हैं। वैदिक धर्म, जिसको तुम लोग हिन्दू धर्म बोलते हो, इसमें किसी संत-महात्मा को अस्वीकृत करने का सवाल उठता ही नहीं है। किसी साधु-महात्मा को स्वीकार करें या न करें, यह सवाल उठता ही नहीं है। अब जैसे बाजार है। बाजार में केवल कपड़ा ही बिकेगा क्या? कोई भी चीज़ बिक सकती है। कोई भी व्यापारी आ सकता है, कोई रुकावट है क्या? विश्व के बाजार में कोई रुकावट है क्या? उसी तरह से हमारा धर्म विश्व-स्तरीय धर्म है। इस विश्व-स्तरीय धर्म में सबसे मुख्य चीज़ क्या है? कि हम न तो मोहम्मद साहब की निन्दा कर सकते हैं, न ईसा मसीह की और न जड़ भरत की, कोई वजह ही नहीं है, क्योंकि उनको भी वही चीज़ मिली थी, जो हमको मिली है। जो शंकराचार्य को प्राप्त हुआ, वही ईसा मसीह को प्राप्त हुआ। रामजी को हम भगवान का अवतार कहते हैं और ईसा मसीह को भगवान का बेटा। अब कहने भर को इतना ही तो फर्क है। वे भी भगवान के रूप थे, ये भी भगवान के रूप थे, तो फिर निन्दा का तो सवाल उठता नहीं है। परन्तु बद्रीनाथ का जो इतिहास है, वह बहुत पुराना है, वैदिक है।

जैन तो बहुत देर के बाद आए हैं। महावीर स्वामी का जन्म दक्षिण बिहार में हुआ था। वे राज-परिवार के थे और शादी के वक्त मण्डप से उठ कर उड़न-छू हो गए। फिर उन्होंने भयंकर तप किया। महावीर स्वामी के बराबर तप शायद ही किसी ने किया हो, इतना तप किया था। कहते हैं, उनको देखते ही शेर खड़ा हो जाता था, साँप रुक कर रास्ता बदल लेता था,

आग पीछे खिसकने लगती थी। वे हमेशा नंगे रहते थे। ठण्ढी हो या गर्मी, कपड़े नहीं पहनते थे। बहुत प्रेरणास्पद जीवन है महावीर स्वामी का। वे एक ऐसे तीर्थंकर हैं, जिनके बाद जैन धर्म का अचानक उत्थान हुआ है। आज से दो हजार पाँच सौ साल पूर्व के आस-पास उनका समय रहा। उस वक्त एलेक्ज़ेन्डर, सिकन्दर का भारत में प्रवेश होता है। उसके साथ ही ग्रीक या यूनानी विचारधारा भारत में आयी।

यूनानी विचारधारा और वैदिक विचारधारा में फर्क है। यूनानी विचारधारा पदार्थ को मानती है, आत्मा को नहीं मानती। आत्मा दिखाई नहीं देती, तो कैसे मानोगे? जिसको तुमने देखा नहीं, उसका प्रमाण ही नहीं है। वैदिक विचारधारा आत्मा को भी मानती है और पदार्थ को उसके अधीन मानती है। पदार्थ का मतलब होता है, प्रकृति। आत्मा का मतलब होता है, पुरुष। वेदों में प्रकृति और पुरुष, दोनों को मानते हैं। यूनानी विचारधारा में पुरुष को नहीं मानते, केवल प्रकृति को मानते हैं, जिसको हम लोग पदार्थ कहते हैं। पदार्थ का मतलब होता है, जो दिखाई दे।

सिकन्दर के साथ इस यूनानी विचारधारा का भारत में प्रवेश हुआ। यह विचारधारा जब भारत में आई है, उस वक्त जैन धर्म भारत में प्रबल था। बौद्ध धर्म कमज़ोर होता जा रहा था। जब सिकन्दर ने भारत में प्रवेश किया, तो अरिस्टोटल के कथन के अनुसार वह अपने साथ कुछ विद्वानों को भी लाया था, यूनानी दार्शनिक। सिकन्दर जैनों की विचारधारा से बहुत प्रभावित हुआ, क्योंकि जैनों की विचारधारा में ईश्वर का स्थान नहीं है। बौद्धों की विचारधारा में भी ईश्वर का स्थान नहीं है। वेदों की विचारधारा में ईश्वर का स्थान सबसे पहले है। ईश्वर तो दिखाई नहीं देता, पर वैदिक लोग मानते हैं। जैन और बौद्ध, ईश्वर है या नहीं इसके बारे में बोलते नहीं हैं। जब कोई बुद्ध से ईश्वर के बारे में बात करता, तो वे कहते थे, 'जो दिखाई न दे, उसके बारे में हम क्या कहेंगे? जो है, उसके बारे में बात करो। जो दिखता नहीं, उसके बारे में क्यों बात करोगे? दुःख दिखता है, दुःख के बारे में बात करो। जो नहीं दिखता है, उसके बारे में बात क्या करना।' और यूनानी लोगों को यह विचार बहुत अच्छा लगा।

सिकन्दर जब यहाँ से थक कर वापस लौटा, थक कर बोल रहा हूँ, हार कर नहीं कहा मैंने, तो अपने साथ वह एक जैन मुनि को ले गया। पर सिकन्दर तो रास्ते में मर गया, मुनि ने बेबिलोनिया में, जो कि आज इराक के नाम से

जाना जाता है, आश्रम बनाया और वहाँ टिक गए। उनका नाम था कल्याण मुनि। उनको ग्रीक वांगमय में कोलिनस कहा जाता है। इसके बारे में प्लुटार्क की किताब है। उसको जरूर पढ़ना, उसमें सब बतलाया गया है कि कब, क्या, कैसे हुआ। मैं इतिहास के पन्ने तुमको बोल रहा हूँ। प्लुटार्क के बयान के मुताबिक ये कल्याण मुनि यहाँ से सिपाहियों के साथ गए और बेबिलोनिया में प्रतिष्ठित हुए। अब क्या हुआ कि ग्रीक विचारधारा, जो पदार्थवादी विचारधारा थी, उसमें नैतिक विचारधारा आ गई। नैतिक का मतलब होता है, अच्छे-बुरे का विवेक।

पूर्वी सभ्यता के आधार हैं–पुरुष और प्रकृति, जिसको सांख्य और योग कहते हैं। पाश्चात्य सभ्यता के भी दो ही आधार हैं–पदार्थवाद और नैतिकता। हिन्दू एक जाति का नाम है, धर्म का नहीं। जाति का मतलब होता है जीन्स। अब मान लो तुम हिन्दू हो, कल तुम मुसलमान बन जाओगे, पर तुम्हारी जाति नहीं बदलेगी। तुम्हारा धर्म बदलेगा। तुम साधु बन गए, शादी नहीं की, तुम्हारा क्या बदला? धर्म बदल गया क्या? जीन्स तो वही रहा। हिन्दू शब्द निकलता है, इन्दूस से, सिन्धु से। यह हिन्दू शब्द वेदों में आता है। जिसको तुम पंजाब या सिन्ध कहते हो, पहले वहाँ सात नदियाँ बहती थीं, तो उसको कहते थे सप्त सिंधु। सप्त के बाद हफ्त बना, 'स' का उच्चारण 'ह' हुआ। सप्ताह को हफ्ता बोलते हैं, उसी तरह से सप्त बन गया हफ्त और सिन्धु बन गया हिन्दु। हफ्त हिन्दवः। हिन्दु है एकवचन, हिन्दवः बहुवचन।

'ह' शब्द एक ऐसी ध्वनि है, जिसका उच्चारण सब नहीं कर सकते हैं। फ्रेन्च 'ह' नहीं बोल सकते हैं। 'आइ विल हीट योर रूम' के बदले, 'आइ विल ईट योर रूम' बोलते हैं। ग्रीक जबान को लेकर सिकंदर आया, तो उसने इन्दूस को हिन्दूस कर दिया। इन्द नहीं बोल सका, सिन्ध नहीं बोल सका, तब से इसका नाम इन्दूस से इन्डस हो गया, उससे फिर हिन्दुस्तान हो गया, फिर इण्डिया हो गया। इण्डिया, हिन्दुस्तान, इन्दूस, इण्डी, ये सब एक ही मुल्क से निकले हुए शब्द हैं। ये सब जाति से मतलब रखते हैं।

हमारा धर्म है वैदिक धर्म। हम आज जैन, ईसाई या मुसलमान बन सकते हैं, हम नास्तिक भी बन सकते हैं, क्योंकि धर्म बदलने का मतलब जाति बदलना नहीं होता। धर्म बदलने का मतलब है, विश्वास को बदलना। धर्म एक विश्वास है। धर्म एक विचार है। धर्म का गोत्र से कोई मतलब नहीं

है। तुम अगर आज ईसाई भी बन जाओ, तो अगर भरद्वाज गोत्र के हो तो भरद्वाज गोत्र के ही रहोगे। अगर हमारे परदादा का नाम कृष्णादास रहा, तो हमारे मुसलमान बनने से वे करीम थोड़े बन जायेंगे। वे कृष्णदास ही रहेंगे, हम करीम हो गए।

धर्म एक विचार का नाम है। यह एक दर्शन है। इसलिए अगर कोई हिन्दू जैन भी बने तो क्या फर्क पड़ता है। विचारधारा बदल गई। वह कहेगा, हम भगवान पर विश्वास नहीं करते, धर्म पर विश्वास करते हैं, नैतिकता पर विश्वास करते हैं। ठीक है। जैन लोग तो हमेशा नैतिकता की बात करते हैं।

हम 1950 में बहुत समय तक गुजरात में घूमते रहे। उस वक्त वहाँ पाटन में सब जैन मुनि के संपर्क में रहते थे। झूठ मत बोलो, दूसरों को मारो मत, किसी को ठगो मत, मतलब अच्छी बातें करते हैं। लेकिन सबसे बड़ी बात है कि जो कुछ बात वे कहते हैं, वह हो नहीं सकता। नहीं। सच बोल कर देखो न तुम। कसम खाओ कि झूठ नहीं बोलेंगे, सच बोलेंगे और समाज में रहो, वकील बनो, दुकानदार बनो, पुलिस में जाओ, व्यापार में जाओ, डॉक्टरी करो और सच बोल कर देखो क्या होता है। दिनभर जैन लोग यही बोलते हैं–झूठ मत बोलो, कीड़े को मत मारो, खटमल को मत मारो, मच्छर को मत मारो। बात अच्छी है, सुनने में बहुत अच्छा लगता है। पर ज़िन्दगी एक बहुत व्यावहारिक चीज है। उस व्यावहारिक चीज में आदमी को महाभारत् युद्ध करना पड़ता है। बहुत मुश्किल है।

संन्यास का नियम

हमने जब घर छोड़ा था, तब मुक्तेश्वर में शिवजी का एक मंदिर है, वहाँ पर हमने पहला प्रणाम करके उनसे हुक्म लिया था। हमारा घर तो मुक्तेश्वर के पाँच मील नीचे है। कपिलेश्वर गंगाजी के तट पर हमारा गाँव है। हम वहाँ से ऊपर आए थे। शिवजी के मंदिर में सिर झुकाया और उसके बाद भीमताल में रुके रात को। बहुत पुरानी बात है। तो सोचा कि अब एक बार जाकर शिवजी को बोल दें कि हम ठीक-ठाक हैं। वैसे तो नियम यह है कि संन्यासी को अपनी मातृ भूमि में कभी जाना नहीं चाहिए, अपने लोगों से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहिए, अपनी जात-बिरादरी से कोई मतलब नहीं होना चाहिए। संन्यासी यार किसका, दम लगाया खिसका। संन्यास के बाद अपने घर के लोगों से

कोई मतलब नहीं रखना, यह पहला नियम होता है। हमने कोशिश की है, सफल भी हुए हैं।

क्वाण्टम चिकित्सा

अभी हम लोगों के यहाँ क्वांटम चिकित्सा अंतरिक्ष के क्षेत्र में आ गयी है। जब ये अंतरिक्ष यात्री अंतरिक्ष में जाते हैं, वहाँ पन्द्रह-बीस दिन या एक महीना रहते हैं, वहाँ पर पेट में दर्द होता है तो क्या करते हैं? अगर सिर में दर्द होगा तो क्या करेंगे वे लोग? दस्त लगने लगेंगे तो क्या करेंगे? कल्पना करो। इतनी दवाई तो नहीं ले जा सकते, जितनी अमेरिका, इंग्लैण्ड या रूस में खाते हैं। वहाँ तो नपी-तुली चीज ले जानी पड़ती है। फिर वे अपना इलाज कैसे करते हैं? क्वाण्टम सिद्धान्त से।

वैज्ञानिक लोग यह मानते हैं कि हर एक आदमी का दूसरे आदमी के साथ सम्बन्ध है। देवघर से जो बिजली आती है, उसका तार सब घरों से जुड़ा है, पर सबका अलग सर्किट है। अलग-अलग मीटर बोर्ड है, पर बिजली एक ही है। कनेक्शन सब एक साथ है। उसी तरह से एक फील्ड है, उसको बोलते हैं 'युनिफाईड फील्ड थ्योरी'। उसका मतलब यह होता है कि दुनिया में जितनी चीजें हैं, वे एक हैं, युनिफाइड हैं। हर कोई हर जगह है। हम सब एक हैं। यह वैज्ञानिक लोगों का मत है। यही मत हमारे दर्शन का भी है।

दर्शन तो एक अलग चीज है। अभी पदार्थवादी इसके बारे में बात कर रहे हैं। इसका मतलब यह होता है कि मेरे साथ अगर तुम सम्पर्क करना चाहो, तो तुमको पहले जानना होगा कि कैसे मेरे से सम्पर्क करोगे, क्योंकि मैं तुमको पुकारूँ तो फिर दूसरा भी तो सुनेगा न। मैं ऐसे तुमको पुकारूँ कि तुम ही सुनो और कोई न सुने, यह युनिफाईड फील्ड थ्योरी में किया जाता है। उसमें एक होता है स्कियो, जिसमें पहले तुम्हारी रूप-रेखा लेते हैं। तुम्हारे शरीर का पूरा विवरण, सिर से पैर तक। वह रूप-रेखा उसमें बैठ जाती है। फिर एक कम्प्यूटर होता है, उसमें उस प्रोग्राम को बिठा देते हैं। फिर उस रूप-रेखा के द्वारा आदमी तुमसे सम्पर्क करता है। तुम्हारी आँख या नाक में सूजन हो रही है क्या, तुमको किडनी में क्या हो रहा है? फिर सलाह माँगी जाती है, क्या करना चाहिए? और उसमें पानी का नुस्खा ज़्यादा होता है।

शुद्ध जल को चुम्बकित करके लिया जाता है और फिर वह सॉफ्टवेयर तुमको दवाई भी बतला देता है, तुम यह दवाई भी ले सकते हो। सब कुछ

बिल्कुल स्पष्ट होता है। स्वामी निरंजन को मुंगेर में बैठ कर पता चलता है कि मेरी आँख में से पानी निकल रहा है, सूजन है दाएँ भाग में। यह सब अंतरिक्ष के लिए बना था। यह आध्यात्मिक नहीं, पूर्णत: पदार्थवादी, वैज्ञानिक है। इसमें कोई विश्वास का सवाल उठता नहीं है।

हम मोबाइल के द्वारा तुमको सम्पर्क कर रहे हैं, क्योंकि मोबाइल में तुम्हारा नम्बर है। अगर नम्बर न हो तो तुमको सम्पर्क नहीं कर सकेंगे। उसी तरह से आदमी की रूप-रेखा अंकित की जाती है और उस रूप-रेखा के द्वारा वह आदमी जहाँ पर भी होगा, अमेरिका में भी होगा तो हमसे सम्पर्क करेगा। और जिन तरंगों के माध्यम से वह सम्पर्क करेगा, वे बहुत शक्तिशाली तरंगें होती हैं। मोबाइल की तरह वे कुछ ही क्षणों में दुनिया के किसी भी कोने में पहुँच जाती हैं। इसका टैलीपेथी से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह शत-प्रतिशत वैज्ञानिक तरीका है। यह आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के आधार पर शरीर की चिकित्सा के लिए बनाया गया एक प्रोग्राम है। अगर दिल धड़क रहा है, तो इस मशीन को मालूम पड़ जाएगा कि दिल धड़क रहा है। इसे तुम विकिरण-चिकित्सा या विद्युत-चुम्बकीय चिकित्सा कह सकते हो। यह चिकित्सा पद्धति उपग्रहों के कारण सम्भव है, अगर उपग्रह न हों, तो यह सम्भव नहीं है।

इसका उपयोग करने के लिए डॉक्टर होना या मेडिकल का ज्ञान होना जरूरी है। कम्प्यूटर में प्रोग्राम बैठा दिया गया है। प्रोग्राम के अनुसार उसमें नाम आते हैं, हृदय में क्या स्कैन करना है अगर तुमको मालूम ही न हो तो किस चीज को स्कैन करोगे? इसमें तकनीकी चिकित्सा नामावली की जानकारी बहुत ज्यादा होनी चाहिए। सब आदमी उसको नहीं चला सकते हैं। स्वामी निरंजन को तो भगवान की देन है। यह कर सकता है। इसको बहुत जल्दी समझ में आ जाता है। ये सब कलयुगी बच्चे हैं, हम लोग सत् युग वाले हैं, हम लोगों की समझ में नहीं आता है। उसमें जो रूप-रेखा अंकित की जाती है, वह बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है। वह जिस वक्त तुम्हारी रूप-रेखा अंकित करेगा, उस वक्त बहुत दूर तक कोई आदमी रहना भी नहीं चाहिए। तब वह तुम्हारा सारा विवरण अंकित करेगा, सिर से पैर तक। पूरा-का-पूरा शरीर उसमें आ जाता है। फिर उसी रूप-रेखा पर मशीन काम करती है।

आदमी जो भी विचार करता है, तुम जो भी विचार करते हो, हमारे मन में जो भी विचार आता है, इन बच्चों या बूढ़े लोगों के मन में या किसी साधु-

महात्मा के मन में या किसी चोर-डकैत के मन में जो भी विचार आता है, उस विचार के दो असर होते हैं। यह ख्याल रखने की चीज़ है। एक असर होता है अंतरिक्ष में, दूसरा असर होता है अपने में। आकाश दो होते हैं–आंतरिक आकाश और बाह्य आकाश। बाह्य आकाश में तुम्हारे अपने मित्र-शत्रु रहते हैं। तुम्हारा हर एक विचार उनके पास जाता है।

जब तुम अपने पुत्र या पुत्री का विचार करते हो, तो तुम्हारा विचार निकलता है और पुत्र के पास जाता है। जाता तो सब जगह है, पर एक तो अन्य लोगों को उससे कोई मतलब नहीं है, दूसरा उनके पास तुम्हारी रूप-रेखा भी नहीं है। तुम्हारे बेटे-बेटी, माता-पिता, दुश्मन या मित्र के पास तुम्हारी रूप-रेखा है। इसलिए वह विचार उनको मिलेगा और उनके अंदर अंकित भी होगा, फिर भी उनको पता नहीं चलेगा। मिलना और पता चलना, दोनों अलग चीजें हैं। तुम्हारे अंदर मेरी रूप-रेखा है। तुमने विचार किया, मेरे को मिल गया, मेरे आंतरिक आकाश में वह अंकित हो गया, पर मेरे को पता नहीं है। यह एक तरह से फोन की चूकी हुई कॉल है। मैं केवल एक उदाहरण दे रहा हूँ।

अंत में अंदर। जो भी विचार आदमी करता है, रोग का विचार करे या घृणा, वासना, दया, करुणा अथवा सत् का विचार करे, उसका तुरन्त उसके अंदर असर होता है। और एक-एक असर के लिए प्रकृति ने एक-एक धक्का-सह (शॉक एब्ज़ार्वर) बनाया है। घबराहट हुई, हृदय उसको सहेगा, चिन्ता हुई यकृत उसको सहेगा, डर लगा तो एड्रीनल ग्रंथि उसको सहेगी। वे धक्का-सह हैं। बेचैनी हुई तो हृदय उसको सहेगा, हृदय को चोट लगेगी। चिन्ता करोगे तो यकृत को चोट लगेगी, जिससे यकृत कमज़ोर होगा। किसी चीज से डरोगे, घबराओगे, तो एड्रीनल पर असर होगा, वह कमज़ोर होगी। इस प्रकार हर एक विचार का हमारे शरीर पर असर पड़ता है। इसे हमेशा याद रखना। हर विचार का अच्छी तरह विश्लेषण होना चाहिए और यह ख्याल रखना चाहिए कि तुम आलतू-फालतू बात नहीं सोच रहे हो।

पर तुम्हारा इस विचार प्रक्रिया पर बस नहीं है, क्योंकि बचपन से यह चीज़ तुमको सिखाई नहीं गई है और जिस उम्र में हम तुमको सिखा रहे हैं, उस उम्र में इसका असर नहीं होने वाला है। यह बात बच्चों में आनी चाहिए। विचार मनुष्य के मन के अंदर, मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। मस्तिष्क में लाखों केन्द्र हैं। जैसे बिजली के अलग-अलग केन्द्र हैं। जब ऑन करोगे

तो जलेगा, नहीं तो नहीं जलेगा। वैसे ही मस्तिष्क में भी अलग-अलग केन्द्र होते हैं। विचार से इन केन्द्रों में क्रिया होती है। वहाँ से विद्युत-चुम्बकीय तरंगें निकलती हैं और सम्बन्धित अंग में जाकर असर करती हैं। वहाँ से एक रस निकलता है, वह तुरन्त खून में मिलता है और असर करता है। किसी को कैंसर होता है, किसी को मधुमेह, किसी को उल्टी, किसी को फोड़ा, किसी को बुखार, किसी को फुंसी, किसी को दस्त, तो किसी को सरदर्द।

विचार बहुत बड़ी चीज़ है। आज इक्कीसवीं सदी के जो लोग हैं, वे स्वच्छता के बारे में बहुत सोचते हैं। उधर टट्टी साफ हो, घर साफ हो, रसोईघर साफ हो, कपड़े साफ हों, तो दफ्तर साफ हो, पर उससे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण आंतरिक स्वच्छता है। जब तुम्हारा आंतरिक शरीर गंदा होता है, तब उससे समस्यायें खड़ी होती हैं।

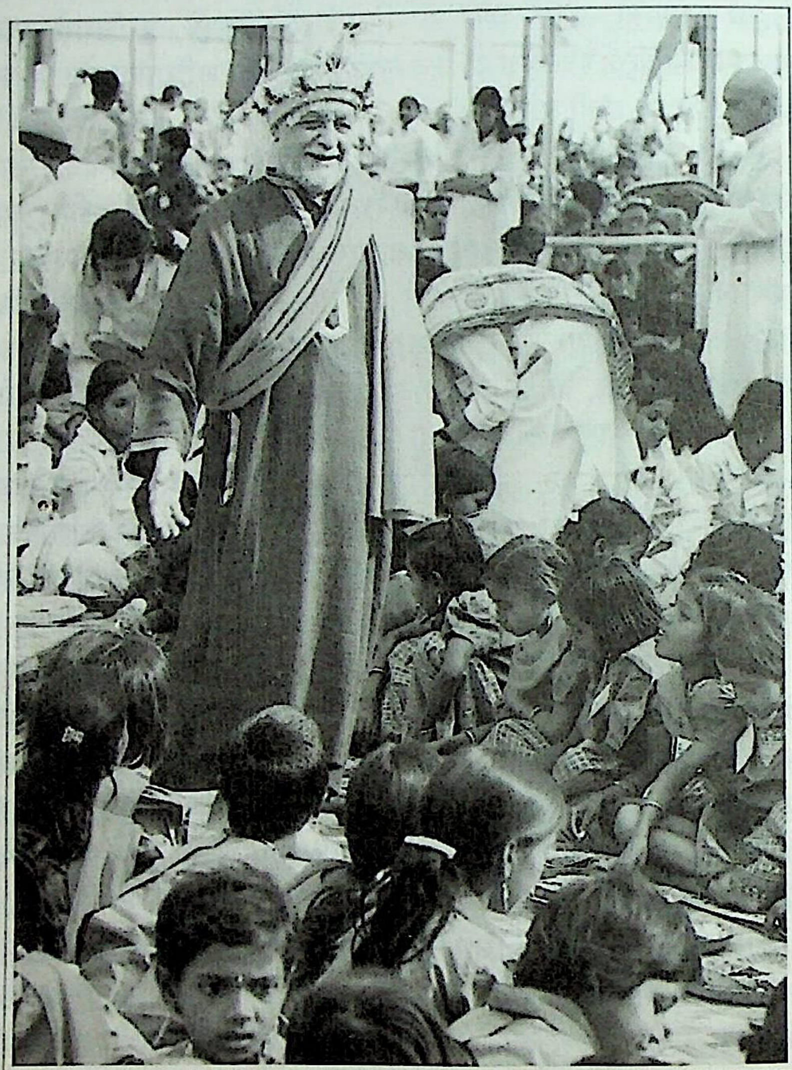
तुमको जो बीमारियाँ होती हैं, इसीलिए होती हैं, और बिना दवाई के वे ठीक भी हो जाती हैं, क्योंकि बिना कारण के वे तुम्हारे अंदर पैदा हुई हैं। तुमने चिन्ता की, तो तुम्हारा यकृत खराब हो गया। जाओ, गणेशजी के मंदिर में जाकर बोलो, ठीक भी हो जाओगे। मनोवैज्ञानिक बीमारी, मनोवैज्ञानिक तरीके। उसमें इन्फेक्शन तो कहीं बाहर से आया नहीं है। तुमको अचानक बड़े जोर से गुस्सा आया, तो असर पड़ा और दर्द होने लग गया। अब जा ही नहीं रहा है, दवाइयाँ खाए जा रहे हैं, दो दिन ठीक हो जाता है, फिर वापस आ जाता है। फिर अंत में थक कर किसी गुरुजी के पास गए, उन्होंने हाथ लगाया, कहा, ठीक है जाओ। तो ठीक हो गए। कैसे ठीक हो गए? तीन-चार दिन से सरदर्द था, हाथ ही लगाया तो ठीक हो गया। अरे भई, बीमारी थी ही नहीं, तुमने पैदा की थी, तुम्हीं ने उसको दूर किया।

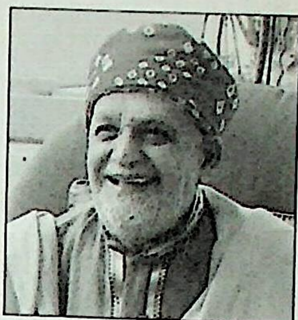
ये जो विचार होते हैं, बहुत शक्तिशाली होते हैं। इसलिए अगर प्रतिकूल परिस्थिति भी जीवन में आए, कोई तुम्हारे साथ बदतमीजी करे या कोई तुम्हारी निन्दा करे या कोई अपमान करे या कोई तुमको तकलीफ दे, तो तुमको अपने मन के विचारों को सम्भाल कर रखना पड़ेगा। अगर नहीं रखोगे, तो जिसने तुम्हारा अपमान किया, वह तो एक तरफ और उसके बाद जो बीमारी तुम्हारे शरीर में हुई, वह दूसरी तरफ।

हमारे यहाँ बोलते हैं, विचार बहुत शक्तिशाली चीज है। विचारों के द्वारा ही आदमी अपने आप को शुद्ध कर सकता है और किसी के विचार किसी के पास पहुँच सकते हैं। पर वह रूप-रेखा पर निर्भर है। कभी-कभी माँ को बच्चे

के बारे में बहुत जल्दी पता चलता है। अक्सर यही देखा जाता है। पति के बारे में उतना ज्यादा सुना नहीं है। बच्चे के बारे में बहुत ज्यादा सुना है, क्योंकि बच्चा माँ की रूप-रेखा को लेकर पैदा होता है और माँ के अन्दर बच्चे की रूप-रेखा होती है।

– 31 दिसम्बर 2006





स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम में 1923 में हुआ। 1943 में उन्हें ऋषिकेश में अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के दर्शन हुए। 1947 में गुरु ने उन्हें परमहंस संन्यास में दीक्षित किया।

1956 में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अगले 20 वर्षों तक वे योग के अग्रणी प्रवक्ता के रूप में विश्व भ्रमण करते रहे।

अस्सी से अधिक ग्रन्थों के प्रणेता स्वामीजी ने ग्राम्य-विकास की भावना से 1984 में दातव्य संस्था 'शिवानन्द मठ' की एवं योग पर वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से योग शोध संस्थान की स्थापना की।

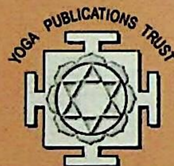
1988 में अपने मिशन से अवकाश ले, क्षेत्र संन्यास अपना लिया और सार्वभौम दृष्टि से परमहंस संनयासी का जीवन जीते हुए रिखिया, झारखण्ड में प्रवास कर रहे हैं।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

इस पुस्तक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा रिखियापीठ में वर्ष 2004, 2005 तथा 2006 में दिये गये सत्संगों का संकलन है। इन सत्संगों में आश्रम-जीवन, गुरुकुल, बच्चों की शिक्षा, कर्म संन्यास, गृहस्थाश्रम में साधना, परमार्थ, प्रारब्ध आदि विषयों पर उनका उन्मुक्त चिन्तन प्रकट हुआ है, जिससे आधुनिक मानव एवं मानव-समाज के व्यक्तिगत, मनो-वैज्ञानिक, सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पक्षों पर छाये भ्रान्तियों के कुहरे छँट गये हैं।

इन सत्संगों के अध्ययन से अनायास ही हमारी कुण्ठाओं, शंकाओं, पूर्वाग्रहों का समाधान मिलता है। उनके क्रान्तिकारी विचार युग के अनुरूप समाज के विकास हेतु एक नयी ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान करते हैं।



ISBN: 978-81-86336-64-9

